गृह्यसूत्र-संग्रह

(आश्वलायन, शाखायन, गोभिल, पारस्कर
आदि प्रसिद्ध गृह्य सूत्रो मे सकलित भाषा टीका सहित)

—※—

सम्पादक

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ
प० श्रीराम शर्मा आचार्य
चार वेद, १०८ उपनिषद, षट्दर्शन, २० स्मृतियाँ,
१८ पुराणो के प्रसिद्ध भाष्यकार और लगभग
१५० हिन्दी ग्रन्थो के रचियता

—※—

प्रकाशक

संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेदनगर) बरेली (उ०प्र०)

प्रकाशक
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब
बरेली (उ० प्र०)



सम्पादक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य



मुद्रक
दाऊदयाल गुप्त,
सस्ता साहित्य प्रेस, मथुरा



प्रथम संस्करण
१९७२



मू० ७)५० रु०

भूमिका

मानव-सभ्यता का जो स्वरूप हम आज देख रहे है, वह सौ-पचास अथवा हजार-दो हजार वर्षों के भीतर विकसित नही हुआ है । धर्म, नैतिकता, परमार्थ, चरित्र सम्बन्धी जो उच्च सिद्धान्त और नियम हमको इस समय दिखाई पड रहे है, वे एक दिन मे उत्पन्न नही हो गये है। इतिहासज्ञो के मतानुसार तो किसी समय अधिकाश मनुष्य ऐसी ही दशा मे थे जिसे जगली पशुओ से कुछ ही उन्नत कहा जा सकता है। अब भी ससार के अनेक भागो मे ऐसे लोगो का अभाव नही है जिनको 'नरभक्षी' कहा जाता है । पर धीरे धीरे महान उपदेशको और ऋषि मुनियो की धम-प्रेरणा से लोगो की मनोभूमि का सस्कार, सुधार होता गया और वह उन्नति करते-करते 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' (समस्त प्राणी हमारे आत्मीय ही है) के सर्वोच्च मन्तव्य तक जा पहुँचा। यह आश्चर्यजनक परिवर्तन सहज मे नही हो गया। इसके लिये धर्म के मार्गदर्शको और उनके अनुयायिओ को बहुत अधिक आत्मत्याग, श्रम और सलग्नता का परिचय देना पडा, तब कही जाकर मनुष्य निम्न स्तर के विचारो तथा कार्यों से विरत होकर धर्मानुकूल और उत्थानकारी नियमो पर चलने मे समर्थ हो सका। इस परिवर्तन मे 'गृह्य-सूत्रो' ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

यद्यपि आज हमको इन 'गृह्य सूत्रो' की उपयोगिता का अनुभव बहुत कम हो पाता है, पर इनके भीतर हमारी वर्तमान सामाजिक प्रथा और रीति-रिवाजो का बीज निहित है। जो समाज जीवित होगा, उसमे देश काल के परिवर्तन के साथ साथ

थोडा-बहुत बदलाव होते चलना तो अनिवार्य है। यह परिवर्तन दो-चार हजार वर्ष मे इतना अधिक हो जाता है कि यह पता लगा सकना भी कठिन लगना है कि वतमान रूढि का सम्बन्ध प्राचीन काल को किस प्रथा से है। इसके लिये 'गृह्य सूत्रो' और धर्म सूत्रो का गहन अध्ययन करना आवश्यक होता है। जब हम विभिन्न प्राचीन ग्र थो से तत्कालीन प्रथाओ का पता लगाते है तब यह समझ मे आता है कि किस प्रकार क्रमश परिवर्तन होकर वर्तमान प्रथायें प्रचलन मे आई है।

धर्मशास्त्र सम्बन्धी नियमो मे इस प्रकार परिवर्तन होते रहना न तो आश्चर्यजनक हे और न अस्वाभाविक। देश काल मे फेर बदल होता ही रहना है और सामान्य मनुष्यो को उसी के अनुसार अपने व्यवहारो मे भी घटा बढी करनी पडती है। अपने गम देश मे हम प्रात काल हो ठण्डे जल से स्नान करके नदी के किनारे नगे वदन भजन करने बैठ जाते है। पर यदि हम किसी परिस्थितिवश इ ग्लैण्ड या रूस जैसे ठण्डे स्थान मे पहुच जाय तो वहाँ हमारा उस नियम पर चलना असम्भव हो जायगा। भजन हम तब भी कर सकते है, पर हमको गम पानी से स्नान करना होगा और ऊनी वस्त्र पहिन कर बन्द स्थान मे बैठना पडेगा। इसी प्रकार जिस समय रेल का प्रचार नही हुआ था और अधिकाश व्यक्ति पैदल या बैलगाडी मे यात्रा करते थे, तब खान-पान तथा छूआछूत के नियमो का जितना पालन कर लिया जाता था, उतना अब रेल, मोटर बसो और समुद्री तथा हवाई जहाजो मे यात्रा करते हुये कदापि पालन नही किया जा सकना है। इसी तथ्य को दृष्टि गोचर रखते हुये एक सनातन धर्मी विद्वान् ने कहा था—

इस समय भारत मे सब आर से सनातन वदिक धम पर आक्रमण हो रहे है, जिससे हम लोगो का धम से श्रद्धा प्रेम

हटता जाता है। इसका मुख्य कारण धर्म की शिक्षा का अभाव और अपने धर्म को ठीक ठीक न जानना है। अतएव हम लोगो को चाहिये कि वैदिक धर्म का सच्चा ज्ञान प्राप्त करे और इसके लिये भारत के प्राचीन श्रौत, गृह्य, धम सूत्रादि ग्रन्थो मे उपदिष्ट कर्तव्यो को समझे-बूझे। वेदो के ६ अङ्गो मे एक 'कल्प' भी है। इसी के 'श्रौत' और 'गृह्य' आदि भेद है। 'गृह्य सूत्रो' मे स्मार्त्त धर्मों का विशेष विधान होने से इस समय कर्म मे प्रवृत्ति कराने के लिये इन सूत्र ग्रथो का अध्ययन परम आवश्यक है।'

गृह्य सूत्रो की रचना मुख्य रूप से इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये की गई है कि वैदिक और स्मृतियो मे दिये गये आदेशो और नियमो का पालन किस विधि-विधान से किया जाय। ये विधान मूल रूप से तो एक ही है पर सम्प्रदाय और शाखा भेद से उनके क्रिया-कलाप मे थोडा-बहुत अन्तर हर जगह पाया जाता है। आज तो सभी प्रान्तो की सामाजिक प्रथाये और रूढियाँ एक दूसरे से बहुत भिन्न है। आप एक शहर मे ही विभिन्न जातियो मे ऐसी ऐसी प्रथाएं देख सकते है जो बिल्कुल विपरीत जान पडे। उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश के ही एक नगर मे वैश्य जातीय एक व्यक्ति के यहाँ कन्या-विवाह के अवसर पर देखा गया कि उसको काले वस्त्र और काली चूडी आदि पहिना कर विधवा का वेश बना दिया गया, उसी तरह का कुछ रोने पीटने का अभिनय किया गया, उसके पश्चात् धूमधाम से विवाह सम्पन्न किया गया। शायद इसका उद्देश्य यह हो कि जिस कन्या से इस प्रकार 'विधवा' का स्वाग करा दिया जायगा, फिर आगे चल कर उसे वैधव्य का अभिशाप सहन न करना पडे। कुछ भी हो हमारे कथन का आशय इतना ही है कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है और विभिन्न जातिया

तथा मानव-समुदाय एक दूसरे के सम्पर्क मे आते जाते है, वैसे-वैसे ही सामाजिक प्रथाओ का बाह्य स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। पर उसका मूल उद्देश्य-उसकी आत्मा तब भी शेष बनी रहती है। इस दृष्टि से इन 'गृह्य सूत्र ग्र थो' का एक बडा महत्त्व यह है कि इनके द्वारा हम प्रचलित रीति-रिवाजो की वास्तविकता को समझ सकते है, और उनमे वतमान परिस्थितियो के अनुरूप नवोन परिवतनो का निर्माण भी कर सकते है।

श्रेष्ठ सस्कारो का कल्याणकारी प्रभाव—

गृह्य सूत्रो मे वर्णित जातकर्म, चूडाकरण, उपनयन आदि सस्कारो के विधि विधानो के अनुसार आचरण का एक सुपरिणाम यह भी होता है कि उनके प्रभाव से मनुष्य मे सद्-गुणो के बढने और दोषो के दूर होने की सभावना उत्पन्न हो जाती है। जिस प्रकार खान से निकला हीरा आरम्भ मे सामान्य पत्थर की तरह ही जान पडता है, पर जब उसे खराद पर चढा सस्कारित किया जाता है तो उसकी चमक-दमक कुछ और ही हो जाती है और मूल्य भी कई गुना अधिक हो जाता है। जिस प्रकार शुक पक्षी और मैना आदि सिखाने से मिष्ट वार्ता करके श्रोताओ को प्रसन्न करते है, हाथी, घोडा, बैल आदि शिक्षा प्राप्त करके साधारण से बहुत महत्त्वपूण बन जाते है, सुवण, रजत, ताम्र अभ्रक, लोहा आदि धातुए सस्कारित होकर बहुमूल्य भस्म बन जाती है,इसी प्रकार मनुष्य भी यथोचित सस्कारो के होने से बहुत सुयोग्य और कार्यक्षम बन सकता है।

ये सस्कार दो प्रकार के होते है दृश्य और अदृश्य अथवा शास्त्रीय और व्यावहारिक। व्यावहारिक सस्कारो, जैसे स्कूल

की परीक्षाये पास करना अथवा कोई कला कारीगरी, का परिणाम तो शीघ्र ही दिखलाई पड जाता है, पर शास्त्रीय सस्कारो का फल शीघ्र ही प्रत्यक्ष दिखाई पडना सभव नही। फिर भी शास्त्रीय सस्कारो से जो आध्यात्मिक और पारलौकिक प्रगति होती है, उसका महत्त्व लौकिक सफलता से किसी प्रकार भी कम नही आँका जा सकता ।

गृह-जीवन की महत्ता—

गृह्य सस्कारो का प्रभाव व्यक्तिगत जीवन और चरित्र को ऊँचा उठाने मे तो सहायक होता ही है, उससे सामाजिक गरिमा की भी बहुत अधिक वृद्धि होती है। कारण यह है कि समाज घरो या परिवारो के समूह का ही नाम है। यदि गृह्य सस्कारो के प्रभाव से हमारा पारिवारिक जीवन सुधरता है, और बहु-सख्यक परिवार इस मार्ग का अनुसरण करते है, तो समाज का उत्थान होना स्वाभाविक ही है। इसका परिचय देते हुये 'गोभिल गृह्य सूत्र' के लेखक का कथन है –

'गृह के लिये उपयोगी होने से इसको 'गृह अग्नि' कहते है। इस ग्र थ मे उम अग्नि से सम्बन्धित अग्निहोत्र आदि नित्य कर्तव्य कर्म और उसके अ गस्वरूप अग्नि के आधान आदि कर्मों का उपदेश करेगे। इसमे बतलाये सभी कर्मो को यज्ञोपवीत-धारी पुरुष आचमन पूवक करे। प्रश्न होता है कि 'गृह्य-अग्नि' कौन सी है ? ब्रह्मचारी गुरुकुल मे वेदाध्ययन को समाप्त कर ब्रह्मचर्य की समापिका समिधा को लेने के लिये अग्नि का समाधान करे और उसमे उस अ तिम समिधा को देवे। फिर जाया (पत्नी) के पाणिग्रहण के पूव विवाह के अवसर पर अग्नि का समाधान करना चाहिये।'

आशय यह है 'गृह्य अग्नि' ज्ञानार्जन, दाम्पतिक, परिवारिक और जातीय कर्तव्यो की शृ खला को यथावत् रखने के लिये एक ऐसा बाह्य प्रतीक है, जिससे व्यक्ति सदैव सावधान और कर्तव्यरत बने रहने की भावना और प्रेरणा प्राप्त करता है। इसमे तो सन्देह ही नही कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भी अग्नि ही मानव जीवन का सबसे बडा आधार है। अग्नि ही जीवन की उत्पादिका और सचालन कर्त्री है। 'ऋग्वेद' की प्रथम ऋचा का सव प्रथम शब्द यही है—'अग्निमीले पुरोहितम्' अर्थात् 'अग्नि समस्त विश्व मे अग्रगण्य है।' बिना अग्नि की सहायता के व्यक्ति और समष्टि का कोई काम सम्पन्न नही हो सकता। इसीलिये प्राचीन काल मे वेद-ज्ञाता ऋषि-महर्षियो ने जीवन सम्बन्धी प्रत्येक महत्त्वपूण कृत्य के अवसर पर अग्नि का आधान करने का आदेश दिया था। इसके लिये प्रत्येक समर्थ व्यक्ति को अपनी अग्नि स्वतत्र रखकर उसे सदैव स्थायी रखनी होती थी। उस अग्नि का आरभ पाँच छ वर्ष की आयु मे, जब मनुष्य को अपने व्यक्तित्व का आभास होने लगता है, होता था और वह मरणकाल तक सहायिका बनी रहती थी।

प्राचीन काल मे प्रत्यक्ष अग्नि का उत्पादन भी ऐसा सरल न था कि झट से जेब से माचिस (दियासलाई) की डिबिया निकाल कर अग्नि प्रकट कर ली। उस समय बहुत समय और परिश्रम लगाकर अरणि मन्थन द्वारा अग्नि प्राप्त की जाती थी। वह कार्य भी सबके लिये सदैव सुलभ न था। इसलिये उस समय के आचार्यो-लोकनायको ने अपनी अग्नि को स्थायी बनाये रखने को एक धर्म कर्तव्य बना दिया था। इससे जीवन-निर्वाह की सामान्य क्रियाएँ तो पूरी होती ही थी, साथ ही मनुष्य को अपने सभी कर्तव्य-कर्मो मे सावधान, मुस्तैद और

एकनिष्ठ रहने की शिक्षा प्राप्त होती थी, उसका अभ्यास बना रहता था। अनेक प्रदेशो और जातियो मे तो 'गृह्य अग्नि' को इतना पवित्र माना जाता था कि उसकी रक्षा के लिये किसी भी परिश्रम, त्याग और बलिदान को अधिक नही समझा जाता था। वैदिक आर्यो को ही एक विशेष शाखा माने जाने वाले पारसी आज तक 'अग्नि पूजक' कहलाते है और वे अपनी अग्यारी (मदिर) मे अग्नि मे सदैव समिधा के रूप मे चन्दन की लकडी डालकर प्रज्ज्वलित करते रहते है और उसी को ईश्वर का प्रतीक मानकर पूजते है। इसी प्रकार प्राचीन काल मे हमारे पूवज भी 'अग्निहोत्र' के रूप मे अपनी अग्नि को सदैव सुरक्षित और स्थायी रखते थे और उसे जीवन का एक महान कतव्य मानते थे।

सूत्रग्रन्थो के प्रतिपादन मे अन्तर--

वैसे तो अग्नि की पूजा के लिये बडे-बड वैदिक (श्रौत) यज्ञ बहुत अधिक खर्च और समारोह से किये जाते थे, पर उनका करना प्रत्येक व्यक्ति के लिये सभव न था। उनका बडे राजा-महाराजा या अन्य विशेष साधन-सम्पन्न व्यक्ति ही किया करते थे। अतएव सामान्य व्यक्तियो के लिये धर्माचार्यो ने 'पाक-यज्ञो' का विधान किया था, जिन्हे वे जीवन निर्वाह के अन्य कार्यो के साथ नित्य प्रति करते रहे। हम लोग बाल्यावस्था मे भोजन आरम्भ करने से पूव भोज्य-सामग्री का जरा-सा अ श निकाल कर चूल्हे की अग्नि मे डाल देते थे या अलग भूमि पर रख देते थे। यह उसी 'गृह्य अग्नि' की आराधना का अवशेष एक छोटा-सा कृत्य था, जिसे हम अनजाने ही किया करते थे। यह विधान शास्त्रीय रूप मे किस प्रकार किया जाय इसी का वर्णन 'गृह्य-सूत्र' का मुख्य विषय है। 'आपस्तम्बीय धर्म-सूत्र' के

प्रथम सूत्र 'अथात सामयाचारिकान्धर्मान् व्याख्यास्याम ' का भाष्य करते हुये पडित हरदत्त कहते है—

'इस प्रथम सूत्र मे 'अथ' यह शब्द आनन्तर्य प्रकट करता है और 'अत ' शब्द हेतु का द्योतक है। अत धर्म शास्त्र मे जो 'श्रौत' और 'गार्ह्य' कर्म बतलाये गये है, वे सभी आगे कहे गये धर्मो की अपेक्षा रखते है। जैसे 'आचान्तने कर्तव्यम्'— 'पवित्र पाणिना कर्तव्यम्' इत्यादि वाक्यो का उल्लेख होने से आचमन आदि के नियमो को जानने की आवश्यकता प्रतीत होती है। सभी आचार विशेष समयो पर किये जाने वाले होते है, इसलिये उनको 'सामयाचारिक' कहा गया है। पौरूषेयी व्यवस्था को समय कहा गया है, और वह तीन प्रकार का होता है—(१) विधि (२) नियम (३) प्रतिषेध। जो कार्य किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया जाता है वह 'विधि' है। नियम और प्रतिषेध का प्रयोजन निवृत्ति अथवा दोषो से बचने का होता है। जैसे 'प्राङ्मुखोऽन्नानिभुञ्जीत' अर्थात् 'पूर्वाभिमुख होकर भोजन करे' यह नियम है। क्षुधा को मिटाने के लिये भोजन किया जाता है, इस प्रवृत्ति मे यह नियम रखा गया कि पूर्व की ओर मुख करके ही भोजन करे। कर्म के आधार पर प्राप्त होने वाला जो अभ्युदय और नि श्रेयस है उसी को अपूव नाम वाला आत्मा का गुण (धर्म) कहते है। इस धर्म को समझाने वाला जो कर्म का कथन है वही इसका व्याख्यान है। धर्म के वास्तविक स्वरूप के ज्ञाता जो महर्षि महामनीषी मनु आदिक है उनका 'समय' ही धर्म और अधर्म का प्रमाण होता है। किसी भी बात को शास्त्र-ग्र थ के रूप मे लिख देना ही धर्म नही होता। यदि ऐसा होने लगे तो अनेको निरथक, अनर्गल बाते धर्म मान ली जायेगी। अनेक लोग ऐसी शका किया भी करते है कि मनु आदि को ही धर्म-ज्ञाता क्यो माना

जाता है, बुद्ध आदि को क्यो नही माना जाय ? क्योकि अतीन्द्रिय ज्ञान, आध्यात्मिक शक्ति मे तो दोनो ही अग्रगण्य है। फिर मनु आदि मे ही क्या विशेषता है ? इसके उत्तर मे सूत्रकार कहते है—"वेदाश्च" जो नियम, विधि–विधान वेद के अनुकूल हो वे ही धम है। 'गृह्यसूत्रो' की रचना वैदिक उपदेशो के आधार पर की गई है, अतएव वे ही सत्य मानव-धर्म माने जाने के अधिकारो है।

पर साथ ही अनेक विद्वानो का यह भी कथन है कि इन सूत्र ग्रन्थो मे भो वैदिक आज्ञाए अपने मूल रूप मे प्राप्त नही होती। यद्यपि प्राचीन मनीषियो ने इन ग्रन्थो को भूलो और मिलावट से बचाने के कुछ उपाय कर दिये थे, तो भी कई कारणो से उनमे अशुद्धियाँ उत्पन्न हो गईं, जिनको बाद के भाष्यकारो ने ठीक मानकर तर्क और युक्ति से नाम लेकर सही सिद्ध कर दिया। ग्रन्थो की नकल करने वालो ने भी असावधानी या अयोग्यता के कारण अनेक स्थानो मे कुछ का कुछ लिख दिया, जिससे अथ का अनथ हो गया। इसका प्रमाण यह है कि जब हम एक ही धम-ग्र थ को विभिन्न स्थानो से प्राप्त प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो का मुकाबला करते ह तो हमको उनमे जगह-जगह पाठ भेद मिलते है। इसका एक और कारण यह भी है कि प्राचीन काल मे वदिक साहित्य पूण रूप स मोखिक था। शिष्य गुरुओ से नित्य प्रति उसका कुछ अ श सीखकर रट लेते थे। पर मनुष्य की स्मरण शक्ति मे बडी उम्र मे जाकर निबलता आ जाती है। ऐसी परिस्थिति मे बाद मे जब उनको लिखा गया तो उनमे अनिवार्य रूप से अन्तर हो गया।

हमारे मतानुसार धर्मशास्त्रो मे भूल अथवा आक्षेप योग्य कथनो के पाये जाने का एक कारण और भी हो सकता है। आपस्तम्ब ने अपने प्रथम सूत्र मे धर्म को जो "सामयाचारिका" कहा है उसका एक आशय यह भी है कि अनेक धार्मिक नियम

किसी विशेष काल के लिये ही विहित और उपयुक्त होते हैं। समय और स्थान के बदल जाने पर उनमे दोष जान पडने लगता है। इस तथ्य को सनातन धर्मानुयायी पडितो तक ने स्वीकार किया है। गृह्यसूत्रो के परम भक्त और बहुत बडे प्रचारक ठाकुर उदयनारायणसिंह ने लिखा है—

"जिस देश काल मे और जिस रीति से जो कर्म जिसके लिए कर्तव्य कहा है, उस उसी देश काल मे, उसी रीति से किया हुआ, उसी मनुष्य के लिए उचित धर्म है, उसी को अन्य प्रकार से करने पर वही अधर्म हो जाता है। जैसे रोना बुरा समझा जाता है,परन्तु वेद प्रमाणानुसार पिता के घर से पति गृह जाती हुई कन्या का रोना अच्छा माना जाता है। गाली देना हर तरह से बुरा है, पर अनेक लोग विवाह के अवसर उनका गाया जाना ठीक बतलाते थे। इसी प्रकार यदि कुछ धर्म शास्त्रो मे यज्ञादि के अवसर पर पशु—आलम्भन का विधान लिखा है, जो उस काल मे किसी कारण बुरा नही माना जाता होगा, तो उसके आधार पर हम अपना मास बढाने के लिए की जाने वाली पशु-हिसा का समर्थन नही कर सकते। वह सदा निकृष्ट और हेय ही मानी जायगी। जब प्राचीन ऋषियो ने लोगो मे ऐसी गर्हित प्रवृत्ति को बढाते देखा तो उसको उद्देश्य करके लिख दिया "लोकविक्रुष्टमेवच।" अर्थात् जो धार्मिक प्रथा जिस समय लोक मे बुरी समझी जाय, उस समय वह कर्तव्य नही है।"

इसलिए हमको उचित है कि धर्म के मूल तत्व का निर्णय करने के लिए प्राचीन शास्त्रो का अध्ययन, मनन तो करे, पर वर्तमान देश काल की परिस्थितियो पर विचार करते हुए अपनी शुद्ध बुद्धि से धर्म-मार्ग का निश्चय करे। यह बात सब विदित है कि मध्यकाल मे मुसलमान शासको ने, जब हिन्दुओ को अपने धर्म से साम-दाम-दण्ड-भेद किसी भी उपाय से हटते न

देखा तो उन्होने छल का आश्रय लिया और कितने ही पेट के गुलाम पडितो का धन पद का लालच देकर हिन्दू-शास्त्रो मे अनेक ऐसी बाते सम्मिलित करा दी जो समाज—कल्याण की दृष्टि से बहुत घातक थी। उदाहरण के लिए यह प्रसिद्ध है कि अकबर या किसी अन्य बादशाह ने पडित काशीनाथ को रिश्वत देकर उनकी पुस्तक मे यह लिखा दिया कि अष्टवर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा च रोहिणी'' । दश वर्ष की लडकी कन्या मानी जाकर ग्यारहवे वर्ष मे वह रजस्वला गिनी जायगी। उस समय अगर उसका विवाह किये बिना पिता और भाई आदि उसका मुँह देखते है तो व घोर नरक मे जाकर उसका रज पीते है।

गृह्यसूत्र और सामाजिक विकास—

इस प्रकार देश, काल और परिस्थियो मे परिवतन हो जाने से यद्यपि गृह्य-सूत्रो के विधान ज्यो को त्यो तो व्यवहारिक नही रहे है, पर इससे उनका महत्त्व मिट नही सकता। एक तो वे हमारी वतमान सामाजिक प्रथाओ तथा जातीय सगठन के मूल स्रोत होने के कारण सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने के योग्य माने ही जायेगे। दूसरे उनके द्वारा प्राचीन सामाजिक सगठन, तत्कालीन पारिवारिक परिस्थितियो, उस समय के लोग-जीवन की विविधताओ और विशेषताओ पर जो प्रकाश पडता है, वह भी इतिहास और मानव—सभ्यता के विकास का अध्ययन करने वालो के लिए अमूल्य है इस सबध मे डा० सीताराम सहगल ने "शाखायन गृह्यसूत्र को अगरेजी भूमिका मे लिखा है—

"गृह्यसूत्र यद्यपि आकार की दृष्टि से छोटे है। पर वे मानव-जीवन के उस विवरण को सुरक्षित रखे हुए है। जो एतिहासिक ग्रन्थो की अपेक्षा बहुत अधिक महत्वपूण है। कोई

व्यक्ति या समुदाय किसी विशेष स्थान और विशेष समय पर क्या-क्या कृत्य करता है। इतिहास इसका विवरण कभी नही रखता। ये परम्परागत लेख ही इस रिक्त स्थान की पूर्ति करते है। जेकोस्लोवाकिया के एक विद्वान् डा० विन्टरनीज ने, जो भारतीय साहित्य और सस्कृति के एक प्रसिद्ध ज्ञाता है, लिखा है कि ये गृह्यसूत्र नृवश विज्ञान के अध्येताओ के लिए एक बहुमूल्य खजाने के समान है। जब योरोप के पुरातत्व के अध्ययन करने वालो ने प्राचीन यूनान और रोम के निवासियो के दैनिक रहन सहन और रीति रिवाजो की खोज की थी तो उनको हजारो ग्रन्थो से उन बातो को एक एक करके इकट्ठा करना पडा था पर भारतवर्ष मे यहाँ के प्राचीन निवासियो के दैनिक जीवन के विषय मे उस समय के विद्वानो और प्रत्यक्ष दर्शियो के पूर्ण रूप से विश्वस्त विवरण मिलते है। यद्यपि ये सूत्र ग्रन्थ देखने मे नगण्य जान पडते है पर उनमे प्राचीन काल के सब नियम तथा विधियाँ ज्यो के त्यो पाये जाते है। वास्तव मे वे तत्कालीन भारतवर्ष के लोक जीवन के जीते जागते इतिहास है। यह ठीक है कि उनमे प्राचीन भारतीय कुटुम्बो के पिताओ और पूर्वजो का चरित्र ही धार्मिक दृष्टिकोण से वर्णन किया है, पर चूँकि प्राचीन भारतवासियो के समस्त जीवन मे धर्म इतना अधिक ओत प्रोत था कि बिना धार्मिक उत्सव के जीवन का कोई कार्य अग्रसर हो ही नही सकता था, इसलिये नृवश विज्ञान वालो के लिये उस समय के लोगो मे सार्वजनिक रूप से प्रचलित प्रथाओ और परम्पराओ का ज्ञान प्राप्त करने के लिये ये बडे ही बहुमूल्य साधन है। इन ग्रन्थो द्वारा ऐसी अनेक प्रथाओ का पता चलता है, जो योरोप मे बसने वाले आर्यो मे प्राचीन काल मे प्रचलित थी। अभी तक खोज करने वाले उनको ठीक-ठीक समझ नही पाते थे, पर गृह्य सूत्रो मे वर्णित विधि विधानो से उनका रहस्य सहज मे विदित हो जाता है। विशेष रूप से

प्राचीन काल मे योरोप मे जो यूनानी, रोमन ट्यूटैनिक और स्लैवोनिक जातियाँ निवास करती थी, उनकी विवाह-पद्धति पर विचार करने से विदित होता है कि उन लोगो की केवल भाषा ही भारतीय आर्यों से मिलती-जुलती 'नही थी, वरन् अपने रीति रिवाजो मे भी वे आरम मे बहुत कुछ मिलते-जुलते थे। उनकी यह एकता इतिहास-पूर्वकाल से चली आई थी।" और इस प्रकार की लोक प्रथाओ की दृष्टि से अथर्ववेद का स्थान भी बहुत महत्त्व पूर्ण है। इसमे सामान्य जनता मे प्रचलित रिवाजो और अन्ध विश्वासो का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। अथर्व की विधियो का एक उद्देश्य लोगो के कष्टो का मिटाना, वरदान और शाप देना भी बतलाया गया है। अथव वेद की ऐसी ही खासियतो के कारण अनेक लोग उसे वास्तविक वेद नही मानते और "त्रयी वेद" की ही घोषणा किया करते है। गृह्यसूत्रो का विस्तार-

गृह्य सूत्रो का विस्तार—

प्राचीन गृह्य सूत्रो मे दी गई सख्याओ के अनुसार किसी समय गृह्यसूत्रो का भी बडा विस्तार था। कहा जाता है कि उस समय ऋग्, यजु, साम और अथव वेदो की ११३१ शाखाये थी, जिनमे से ऋग्वेद की २१, कृष्ण यजुर्वेद की ८६, शुक्ल यजुर्वेद की १५, सामवेद की १००० और अथव वेद की ६ शाखाये थी। इन सभी शासको के अपने-अपने गृह्य सूत्र थे, जो थोडे से भेद के साथ आपस मे मिलते-जुलते ही थे। अब हजारो वर्ष बाद इन सब नामो का तो किसी को पता नही, पर ऋग्वेद की तीन प्रसिद्ध गृह्यसूत्र शाखायन, कोषीतिक और आश्वालायन है। शेष गृह्यसूत्रो मे से आपस्तम्ब, पारस्कर, मानव, जैमिनि, हिरण्यकेशि, भारद्वाज, काठक, वैखानस, लौगाक्षि, गोभिल, कौशिक, बोधायन, और खादिर गृह्यसूत्र प्रसिद्ध है और वर्तमान समय मे प्राप्त होते है।

हमने अपने इस 'गृह्यसूत्र सग्रह' मे जिन सूत्र-ग्रन्थो के अ श सग्रहीत किये है। वे धार्मिक जगत मे बहुत प्रसिद्ध है । हम इनके अतिरिक्त कुछ और गृह्यसूत्रो का भी प्रकाशन कर सकते थे, पर जैसा हम लिख चुके है वतमान समय मे इन सूत्रो मे वर्णित नियमो तथा विधि—विधानो मे बहुत उलट फेर हो गया है। और इनका आशिक पालन करने वाले व्यक्ति भी लाखो मे एकाध मिलेगे। अन्यथा हिन्दू समाज के अ तगत जो ७-८ हजार जातियाँ पाई जाती है वे सब अपनी नई-नई प्रथाये बनाकर उन्ही का अनुसरण कर रही है। ऐसी दशा मे यह ग्र थ विशेष रूप से विद्वानो और धर्म तत्व की खोज करने वालो के काम की ही चीज हो सकती है। पर इस दृष्टि से भी इनका महत्व कम नही है। इसमे तो सदेह नही गृह्य सत्रो मे जीवन सम्बन्धी सस्कारो का जो स्वरूप बतलाया है वह बहुत प्रेरणाप्रद और सद्भावनाओ को उभारने वाला है। यद्यपि उसमे क्रिया कर्मो को बहुत जटिल और बन्धन युक्त बना दिया है। पर उनको हम समयानुकूल और सरल भी बना सकते है । इस लिये यह हिन्दू धर्म के नेता और हितैषी वर्तमान काल मे प्रचलित दिखावटी और प्रदर्शन की विशेषतायुक्त प्रथाओ से जाति का पीछा छुडा कर चाहे तो वे गृह्यसूत्रो मे बहुत-सा ऐसा मसाला भी प्राप्त कर सकते है जो नव निर्माण के कार्य मे भी सहायक सिद्ध हो सके।

— श्रीराम शर्मा आचार्य

ॐ

आश्वलायनगृह्यसूत्रम् ।

प्रथमोऽध्यायः

उक्तानि वैतानिकानि गृह्याणि वक्ष्याम ।१। अथ पाकयज्ञा ।२। हुता अग्नौ हूयमाना अनग्नौ प्रहुता ब्राह्मणभोजने ब्रह्मणिहुता ।३। अथाप्यृच उदाहरन्ति य समिध य आहुता यो वेदेनेति ।४। समिधमेवापि श्रद्दधान आदधन्मन्येत यज इदमिति नमस्तस्मै य आहुत्या यो वेदेनेति विद्ययैवाप्यस्ति प्रीतिस्तदेतत्पश्यन्नृषिरुवाच । अगोरुधाय गविषे द्युक्षा यदरम्य वच । घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचतेति । वच एव म इद घृताच्च मधुनश्च स्वादीयोऽस्ति प्रीति स्वादीयोऽस्त्वित्येव तदाह् । आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्ट भरामसि । ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उतेति । एत एव म उक्षाणश्च ऋषभाश्च वशाश्च भवन्ति । य इम स्वाध्यायमधीयत इति यो नमसा स्वध्वर इति नमस्कारेण वै खल्वपि न व देवा नमस्कारमति यज्ञो व नम इति हि ब्राह्मण भवति ।५। ख० १ ।

वैतानिक बता दिये गये है, अब इससे आगे गृह्यो को बतायेगे । वितान अग्नियो के विस्तार को कहते है अर्थात् वह्न्ग्नि साध्य कर्म है वैतानिक होते है । गृह निमित्त जो अग्नि है वह गृह्य कहा जाता है ।

गृह शब्द भार्या मे और शाला मे आता है। जिनके भार्या के सयोग से उत्पन्नाग्नि मे ये कर्म्म प्रवृत्त होते है उनका यह गृह शब्द भार्या वचन होता है ओर जिनके दाय विभाग काल मे अग्नि उत्पन्न होता है उनका शाला वचन होता है।१। पाकयज्ञ तीन प्रकार के होते है - हुत—प्रहुत और ब्रह्मणिहुत ये तीन भेद है। पाक यज्ञ अल्प यज्ञ अथवा प्रशस्त यज्ञ होते है क्योकि दोनो ही जगहो पर पाक शब्द देखा गया है।२। अब यह बतलाया जाता है कि इसके तीन भेद कैसे होते ह—जो अग्नि मे हूयमान है वे हुत होते है। जो अनग्नि मे क्रियमाण हे जैसे बलि हरण आदि वे प्रहुत कहे जाते है। जहाँ पर ब्राह्मणो का भोजन होता है वे ब्रह्मणिहुत होते है।३। इसके अनन्तर ऋचाओ का उदाहरण दते है। 'य समिधा'— 'य आहुती यो वेदे नेति' इन दो ऋचाओ का अभिप्राय लेकर ही बहुवचन उत्पन्न होता है। ये कर्म भी नित्य और श्रौतो के द्वारा स्तुत्य हे। ये आहिताग्नि वाले के भी होत हे।४। "समिधमेवापि श्रद्धान आदधन्मन्येत" इहा स आरम्भ करके यज्ञो वै नम" इसके अन्त तक ब्राह्मण होता ह। वहाँ पर समिध, इसका तात्पय कथन ब्राह्मण समिध ही है। ।इति। नमस्तस्मै' यहा पर 'नम" इस शब्द से अन्न कहा जाता है। निघण्टुओ मे नम यह शब्द अन्न के नामो मे पढा गया है। समिद् भी उस दवन के लिये नम होती है। अर्थात् प्रीति का हेतु होता है—यही तात्पय है। श्रद्दधान–इस शब्द से श्रद्धा से जो युक्त होना है उसी का पाक यज्ञ मे अधिकार हाता है—यही साबित किया जाता है। य आहुती- इसका विवरण ब्राह्मण य आहुति से है। 'यो वदेन' इस पाद का तात्पय कथन यह हे जो विद्या से ही है— इन्द्रादि होता है। द्रव्य के त्याग के अभाव मे भी वद के अध्यात्म मात्र स भी प्रीति है—यही अभिप्राय है। विद्या से प्रीति होती है —इसको दृढ करन के लिये उस अर्थ मे अन्य मन्त्र को साक्षी के रूप से श्रुति दिखाती है— 'तदेवदितिम्' उस अथ रूप को देखते हुए ही मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने कहा है—"अश्वोरुवायेति"। इस मन्त्र मे स्तोनाओ को प्रत्यक्षीकृत किया गया हे। इस प्रकार के इन्द्र के लिय हे सखाय, वचन बना। "घृतात्स्वादीयो मधुनश्च इत्वा"

इस मन्त्र से बोलना चाहिए। हे इन्द्र ! यह मेरा वचन ही घृत से और मधु से स्वादीय है। "स्वादीयोऽस्तिति" इसको इस ऋषि ने साक्षित्व रूप स कहा है। अतएव प्रीति है। "आते अग्नऋचा हविर्हृदा तष्ट भरामसि। तेते भवन्तूक्षण ऋषभा सो वश उत" इति —इस मन्त्र से तेरे उक्षाण और ऋष भी वश होते है। "य इम स्वाध्यायमधीयते" इति— इस मन्त्र से कहे। इस मन्त्र का तात्पय यह है कि उक्षादि मास से तेरी जितनी प्रीति है उतनी तेरी विद्या से भी होती है। 'ब्रह्माणयो नभसा स्वध्वर" इत्यादि मन्त्र का तात्पर्य यह है कि नमस्कार से भी जो अग्नि का अभ्यर्चन करता है वह भी शोभन यज्ञ होता है। अर्थात् नमस्कार भी यज्ञ है ।५। (१)

अथ साय प्रात सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात् ।१। होममन्त्रानाह—अग्निहोत्रदेवताभ्य सोमाय वनस्पतयेऽग्न।-षोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्या द्यावापृथिवीभ्या धन्वन्तरय इन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे ।२। स्वाहेत्यथ बलिहरणम् ।३। एताभ्यश्चैव देवताभ्य । अद्भ्यच ओषधिवनस्पतिभ्यो गृहाय गृहदेवताभ्यो वास्तुदेवताभ्य ।४। इन्द्रायेन्द्रपुरुपेभ्यौ यमाय यमपुरुषेभ्यो वरुणाय वरुणपुरुषेभ्य सोमाय सोमपुरुषेभ्य इति प्रतिदिशम् ।५।

यहा पर इस सूत्र मे "अथ"—यह शब्द विशेष प्रक्रिया के लिये ही है। यहा पर साय प्रात ये शब्द लक्षणा शक्ति से अहोरात्र को बतलाते है। सिद्ध हविष्य का हवन करना चाहिए। जहा पर किसी द्रव्य का आदेश नही दिया जाता है वहा पर घृत से ही होम करना चाहिए ।१। अब होम के मन्त्रो को बतलाते है—"अग्निहोत्र देवताभ्य सोमाय वनस्पतयेऽग्नि सोमाभ्यामि द्राग्निभ्या द्यावा पृथिवीभ्या धन्वन्तरये इन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणो" ।२। इस मन्त्र मे द्रव्य देवताओ का ग्रहण न करके कर्म देवता ही ग्रहण किये जाते है। अग्नि सूर्य और प्रजापति—ये दोनो जगहो पर होते हैं "सोमाय वनस्पतये"—यह एक आहुति होती है

देव यज्ञ कह दिया गया है । अप्रेषित याग से ही स्वाहाकार सिद्ध होने पर फिर जो स्वाहाकार का वचन है वह यह ज्ञापन करता है कि अन्यत्र बलिहरण मे स्वाहाकार नही होता है । अन्यथा कर्मा तर होने से कालान्तर मे भी बलिहरण होता है । अथवा ब्रह्म यज्ञ पूव होता है और मनुष्य यज्ञ तो उत्तर ही होता हे ।३। इन पूब मे बताये हुए देवताओ के लिये और चकार से आगे बताये जाने वाले देवताओ के लिय बलि का हरण करना चाहिए । 'ब्रह्मणे स्वाहा"—इससे हवन करके अन्तरात्म का त्याग करके "अद्भ्य" इत्यादि से हवन करना चाहिए । "गृह देवताभ्य" यह मन्त्र विधायक नही है तथा "वस्तु देवताभ्य" यह भी नही है । यदि यह विधायक मन्त्र होता है तो उभय वचन अपाथक हो जायगा ।४। जहा पर ही प्रधान देवता है वहा पर ही पुरुषो को होना चाहिए । यह करके प्रधानो का उत्तर की ओर से पुरुषो के लिये बलि का हरण करना चाहिए । यहा पर दिक् के ग्रहण करने से चारो दिशाओ का ग्रहण किया जाता है । अथ यह है—इन्द्र के लिये इन्द्र पुरुषो के लिये, यम के लिये यम पुरुषो के लिये, वरुण के लिए वरुण के पुरुषो के लिए, सोम के लिए सोम पुरुषो के लिए—इस प्रकार से प्रत्येक दिशा मे बलि हरण करे ।५।

ब्रह्मणे ब्रह्मपुरुषेभ्य इति मध्ये ।६। विश्वेभ्यो देवेभ्य ।७। सर्बेभ्यो भूतेभ्यो दिवाचारिभ्य इति दिवा ।८। नक्त चारिभ्य इति नक्तम् ।९। रक्षोभ्य इत्युत्तरत ।१ । स्वधा पितृभ्य इति प्राचीनावीती शेष दक्षिणा निनयेत् ।११।ख०२।

दिशाओ के देवताओ के मध्य मे ब्रह्मा के लिए ब्रह्म पुरुषो के लिए—ऐसी रीति से बलिहरण करना चाहिए ।६। मध्य मे ही विश्वेभ्य देवेभ्य अर्थात् विश्वेदेवो के लिए देवे ।७। दिवाचारी समस्त भूतो के लिए भी मध्य मे ही बलिहरण करे । दिवा शब्द ज्ञापन के लिए ही किया जाता है । इस कारण से वैश्वदेव का प्रात काल से आरम्भण होता है । अन्यथा अग्निहोत्र के समान साय का उपक्रम हो जायगा और वह अनिष्ट

होता है । इसीलिए "दिवा" शब्द का ग्रहण होता है । इससे "अग्नये स्वाहा"—इससे सायङ्काल मे हवन करना चाहिए यही यहा पर साय का उपक्रम होता है ।८। पहिले जैसे "दिवा चारिभ्य"—यह शब्द है उसके स्थान मे 'नक्त चारिभ्य' यह होता है और वह नक्त होता है ।९। अन्य सबके लिए उत्तर की ओर होता है ।१०। प्राचीना वीतित्व अथवा निनीतित्व यह आचार्य के द्वारा विहित नही किया गया है वहा पर केवल यज्ञोपवीतित्व ही प्राप्त होता है । अतएव प्राचीन नीतत्व का विधान किया जाता है । 'निनयेत्'—यह वचन अन्यक्रिया के ज्ञापन के लिए ही है । उससे बलि का हरण नही होता है । क्या इस प्रकार से सिद्ध होता कि स्वाहाकार नही होता है । यह कथन उचित नही है कि स्वाहाकार और स्वधाकार ये दोनो ही समान जातीम होने से एक ही काय के करने वाले है क्योकि जो समानार्थ वालो का समुच्चय दिखलाई देता है । यहा पर शेष ग्रहण आनन्तर्य के लिए होता है । अन्यक्रिया होने से इसमे न होने पर अथवा कालान्तर मे होता है । इस प्रकार से कहा गया है कि जिस किसी अग्नि मे वैश्वदेव कर लेना चाहिए । गृह्य अग्नि मे इसे किया जावे, ऐसा कोई नियम नही है क्योकि विवाहाग्नि का प्रखर विधान होता है ।११।(२)

अथ खलु यत्र क्व च होष्यन्त्स्यादिषुमात्रावर सर्वत स्थण्डिलमुपलिप्योल्लिख्य षड्लेखा उदगायता पश्चा-त्प्रागायते नानाऽन्तयोस्तिस्रो मध्ये तदभ्युक्ष्याग्नि प्रति-ष्ठाप्यान्वाधाय परिसमुह्य परिस्तीर्य पुरस्ताद्दक्षिणत पश्चादुत्तरन इत्युदकसस्थ तूष्णी पर्युक्षणम् ।१। पवित्रा-भ्यामाज्यस्योत्पवनम् ।२। अप्रच्छिन्नाग्रावनन्तर्गर्भौ प्रादेशमात्रौ कुशौ नानऽन्तयोर्गृहीत्वाऽङ्गुष्ठोपकनिष्ठि-काभ्यामुत्तानाभ्या पाणिभ्या सवितुष्ट्वा प्रसव उत्पुनाम्य-च्छिद्रेण पवित्रेण वसो सूर्यस्य रश्मिभिरिति प्रागुत्पु नाति सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम् ।३। कृताकृतमाज्यहोमेषु परिस्तरणम् ।४। तथाऽऽज्यभागौ पाकयज्ञेषु ।५।

अथ शब्द यहा पर अधिकार का अर्थ देने वाला है । यहा से आगे जो भी कहे जॉयगे उनकी ही यह होम विधि होती है । वैश्वदेव मे क्वच ग्रहण करने से प्राप्यमाण होष्यद्धर्म्म नही होता है । यहा पर "खलु" शब्द अपार्थक है । तन्त्र प्रतिषेध के विषय मे श्री औपासनाग्नि के परिचरण मे इस सूत्र के द्वारा विहित परिसमूहन–परिस्तरण–और पर्युक्षण की प्राप्ति के लिए क्वच का ग्रहण होता है । इषुमात्रा मात्रायस्य (स्थण्डिलस्य) तदिषुमात्रम् अर्थ बाण के समान जिसका परिमाण है । तच्च तद वरम् । यहा अवर का निकृष्ट अर्थ होता है । चारो दिशाओ मे इषुमात्र प्रमाण है अथवा उससे भी अधिक है ऐसे चौकोर स्थण्डिल को गोवर लीपकर छै लेखाओ का उल्लेखन करना चाहिए । किसी याज्ञिक के द्वारा शकल के स्थण्डिल के मध्य मे उदग्दीर्घा प्रादेश परिमाण वाली अथवा न्यूना लेखा को अग्नि प्रतिष्ठापन देश के पीछे लिखे–ऐसा मत प्रकट किया गया है । नाना यह शब्द अससग के लिए है । उसके अन्तो मे नाना अससृष्ट प्रागायते लेखाओ को लिखे । मध्य मे तीन अससृष्ट प्रागायता लेखा लिखे । शकल को वही पर रखकर स्थण्डिल का अभ्युक्षण करे । फिर शकल का निरसन करके जल का उपस्पर्शन कर अभ्यात्म अग्नि को प्रतिष्ठापित करके अन्वाधान करता है । अन्वाधान का अर्थ है अमुक कम के अङ्ग होने से दोनो का अथवा तीनो का समिधाभ्याधान है । इसके पश्चात् परिसमूहन करके अर्थात् अग्नि के सब ओर परिमार्जन करे और वह अग्निहोत्र के ही समान होता है । इसके अनन्तर परिस्तरण करे । पुरस्तात्–दक्षिण की ओर–पश्चात् और उत्तर की ओर करे । इसके उपरान्त मौन होकर पर्युक्षण करता है ।१। पवित्राओ से आज्य का उत्पवन करे ।२। इसके उपरान्त पवित्रा किस लक्षण वाले होने चाहिए और उनका उत्पवन कैसे करना चाहिए— इन दोनो का निर्णय करने के लिए कहा है —यहा पर 'प्र' शब्द सूक्ष्म छिन्न अग्रभागो की अनिवृत्ति के लिए है । जिनके मध्य मे गभ नही है ऐसे प्रादेश परिमाण वाले कुश ही पवित्र सज्ञा वाले कहे जाया करते हैं । नाना शब्द यहाँ पर अससर्ग के ही लिए है अर्थात् वे पवित्रा अन्तो मे अससृष्ट होवे ।

उनको अङ्गुष्ठ कनिष्ठिकाओं से उत्तान करो के द्वारा ग्रहण करके पहिले उत्पवन करता है एक बार मन्त्र के द्वारा और दो बार मौनभाव करना चाहिए। मन्त्र यह है— 'सवि तुष्टा प्रसव उत्पनाम्य छिद्रेण पवित्रेण वसो सूर्यस्य रश्मिभि'' इति ।३। कृत और अकृत परिस्तरण आज्य दोनो मे होता है । जहाँ पर केवल घृत ही हवि होता है उसे आज्य होम कहते हे । नही तो आज्य शब्द का ग्रहण करना ही व्यर्थ हो जायगा । सवत्र आधारादि होते ही है । आज्य होमो मे परिस्तरण करना चाहिए अथवा नही करना चाहिए—यही अर्थ होता है और यह परिस्तरण का विकल्प भी जहा पर 'आज्य' शब्द का ग्रहण किया जाता है वही पर हुआ करता है यथा—"आज्याहुतीजुहूयात्" यहा पर है ।४। उसी प्रकार से पाक यज्ञो मे सब मे आज्यभागो को करना चाहिए अथवा नही करना चाहिए-यही अर्थ है । पाक यज्ञ का ग्रहण आज्य के होमाधिकार की निवृत्ति के ही लिए होता है ।५।

ब्रह्मा च धन्वन्तरियज्ञशूलगववर्जम् ।६। अमुष्म स्वाहेति जुहुयात् ।७। अग्निरिन्द्र प्रजापतिर्विश्वेदेवा ब्रह्मेत्य-नादेशे ।८। एकबर्हिराज्यस्विष्टकृत स्युस्तुल्यकाला ।९। तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते । पाकयज्ञान्समासाद्य एका-ज्यानेकबर्हिष । एकस्विष्टकृत कुर्यान्नानाऽपि सति दैवते ।१०। ख०३ ।

ब्रह्मा समस्त पाक यज्ञो मे कृताकृत होता है । धन्वन्तरि यज्ञ और शूलगव को वर्जित कर दिया जाता है । इसके अनन्तर उन दोनो मे नित्य होता है क्योकि उन दोनो का उपदेश है ।६। कही पर नामधेय के द्वारा बतलाया गया है—"सावित्र्यै ब्रह्मणे" इत्यादि के द्वारा ही होता है । कही पर केवल मन्त्र के द्वारा होम कहा गया है । जहा पर दोनो मे से कोई भी नही है वहा पर नामधेय के द्वारा होम कैसे होता है—इसीलिए सूत्र है ।७। जहा पर होम स्थान का आदेश है और कर्म का भी आदेश होता है वहा पर ये देवता हवन करने के योग्य होते है—जहा पर

परशास्त्र मे होम की प्रेरणा दी जाती है और अपने शास्त्र मे कर्म मात्र ही प्रेरित किया जाता है वही पर ये देवता होते है। देवताओ के नाम—अग्नि–इन्द्र–प्रजापति–विश्वेदेवा–और ब्रह्मा है। ये अनादेश मे हवन करने के योग्य होते है।८। एक बर्हि आदि जो पाक यज्ञ है वे उसी भाँति कहे गये है। वे तुल्य काल और एक काल होते है। एक ही काल मे यदि अनेक पाक यज्ञ कायत्व से प्राप्त है तब वे समान तन्त्र वाले होते है और ऐसे ही करने भी चाहिएँ। यदि पव मे रात्रि काम उत्पन्न होता है उस समय मे काम्य और पावण इन दोना का एक कालत्व होता है।९। बर्हि-रादि ग्रहण की तन्त्रोपलक्षणाथता को स्पष्ट करने के लिए यज्ञ गाथा का उदाहरण देता है—उस अथ मे यह यज्ञ की गाथा अभिगीत की जाया करती है। एक काल मे बहुत-से पाक यज्ञो को प्राप्त करके नाना दैवत होने पर भी एकाज्यानेकबर्हिष और एक स्विष्टकृत करना चाहिए। प्रत्येक देवता के तन्त्र का आवर्त्तन नही करना चाहिए। यही अभिप्राय है।१०। (३)

उदगयन आपूर्यमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे चौलकर्मोपनय-नगोदानविवाहा ।१। सार्वकालमेक विवाहम् ।२। तेषा पुरस्ताच्चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयात् ।३। अग्न आयूषि पवस इति तिसृभि· प्रजापते न त्वदेतान्यन्य इति च व्याहृतिभिर्वा ।४। समुच्चयमेके ।५। नैके कावन ।६। त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनामिति विवाहे चतुर्थीम् ।७। ख० ४।

इस सूत्र के द्वारा चौल कर्म आदि के काल का विधान किया जाता है। जिस समय मे आदित्य उदग् की ओर गमन किया करते है उसी को उद्गयन काल कहा जाता है। चन्द्रोदय का जो पक्ष होता है अर्थात् शुक्ल पक्ष होता है वह आपूर्यमाण कहा गया है। वह मास का और पक्ष का कर्त्ता होता है। ज्योति शास्त्र के अविरुद्ध कल्याण नक्षत्र होता है। उसमे चौलकर्म-उपनयन गोदान और विवाह होते है। यही उनका काल

होता है। लाघव के लिए यहा पर गोदान का ग्रहण होता है वस्तुत समावर्त्तन का ही ग्रहण करना चाहिए ।१। कुछ आचार्यों का मत है कि सभी समय मे विवाह हो सकते है। उद्गमन मे ही विवाह होने चाहिये—ऐसा कोई नियम ही नही है। उनका क्या अभिप्राय है ?—इसका उत्तर यही है नियम मे निबद्ध होने पर दोषो का श्रवण होता है अत विवाह मे कोई भी काल का नियम नही है क्योकि लिखा है—"ऋतुमत्या हि तिष्ठन्त्या दोष पितरमृच्छति" अर्थात् जब कन्या ऋतुमती होकर पिता के ही घर मे स्थित रहती है तो इसका दोष पिता को प्राप्त होता है। इसका तात्पर्य यही है कि ऋतुकाल आने के पूर्व ही पिता को कन्या का दान (विवाह) कर देना चाहिए। यह तो शास्त्रीय दोष है। इसके अतिरिक्त अन्य लौकिक दोष भी समुत्पन्न हो जाया करते है ।२। उन दोषो के पूर्व ही चार आज्य की आहुतियो से हवन करना चाहिए ।३। सूत्र मे चारो की ही व्याहृति सज्ञा की गयी है। "अग्न आपू षि पवस" इति—इससे तीन से प्रजापति की है 'नतु ये अन्य है' इति—इससे व्याहृतियो से और स्वाहा इत्यादि से हवन करना चाहिए ।४। कतिपत आचार्य गण ऋचाओ की आहुतियो और व्याहृतियो की आहुतियो का समुच्चय चाहते है। इससे आठ आहुतियाँ होती है ।५। एक आचार्य किसी भी आहुति को नही चाहते है। 'नैके'—इतना ही कहने पर जो इस सूत्र मे 'काचन' इसका ग्रहण किया है वह इसीलिए है कि यह प्रतिषेध ऋगाहुतियो का और व्याहृत्याहुतियो का है अर्थात् अन्य आहुतियो से हवन करना चाहिए—इसीलिए ग्रहण किया गया है। किं शब्द सर्वनाम है और सवनाम सवदा प्रकृत का परामर्शी होता है। इससे अनादेशाहुतियाँ सिद्ध होती है ।६। "त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनाम्" इति—इससे विवाह मे चतुर्थी होती है। यहा पर यह सशय होता है कि पूर्वा के वाध होने पर ही उत्कर्ष होता है। यहा पर यह बालते है कि उत्कर्ष ही होता है क्योकि यह असमान जाति है। जो समान जाति होता है वही पर वाध होता है। इससे सशय का अवसर ही नही है और उत्कर्ष सिद्ध होता है ।७।(४)

कुलमग्रे परीक्षेत ये मातृत पितृतश्चेति यथोक्त पुरस्तात् ।१। बुद्धिमते कन्या प्रयच्छेत् ।२। बुद्धिरूपशाललक्षणसपन्नामरोगामुपयच्छेत ।३। दुर्विज्ञेयानि लक्षणानीति ।४। अष्टौ पिण्डान्कृत्वा 'ऋतमग्रे प्रथम जज्ञ ऋते सत्य प्रतिष्ठितम् । यदिय कुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यता यत्सत्य तद्दृश्यतामिति पिण्डानभिमन्त्र्य कुमारी ब्रूयादेषामेक गृहाणेति ।५। क्षेत्राच्चेदुभयत सस्याद्गृह्णीयादन्नवत्यस्या प्रजा भविष्यतीति विद्याद्गोष्ठात्पशुमती वेदिपुरीषाद्ब्रह्मवचस्विन्यविदासिनो ह्रदात्सर्वसपन्ना देवनात्कितवो चतुष्पथाद्द्विप्रवाजिनीरिणादधन्या श्मशानात्पतिघ्नी ।६। ख० ५ ।

सबसे प्रथम पहिले विवाह करने के अवसर पर कुल की परीक्षा कर लेनी चाहिए । 'कुल'— इस शब्द से दोनो वशो को देखना चाहिए कि ये दोनो वश महापातक दोष आदि से रहित है और अत्यन्त शुद्ध है तथा अपस्मार आदि दोषो से भी रहित है । दोनो वशो से मातृ वश और पितृ वश ग्रहण करने चाहिए जैसा कि पहिले कहा गया है । मातृकुल और पितृकुल मे दश पुरुष तक विद्यातयो से और पुण्य कर्मो से समनुष्ठित है। दोनो ही ओर ब्राह्मण्य का विनाश नही हुआ हो । कुछ विद्वान् पितृवश को ही मानते है ।१। इसके अनन्तर वर के गुण कहते है । बुद्धिमान् वर को ही कन्या देनी चाहिए । जो अर्थ के देखने वाली है वही बुद्धि होती है । अर्थ क्या है इसका समाधान है अथ वही है जो शास्त्र के अविरुद्ध हो । ऐसे अथ वाले वर को ही कन्या का दान करना चाहिए ।२। इसके अनन्तर कन्या के गुण बतलाते हे—जो कन्या बुद्धि—रूप लावण्य–शील स्वभाव और सुन्दर लक्षणो से सयुत हो और रोगो से रहित हो ऐसी ही कन्या को स्वीकार करना चाहिए । रूप वही है जहाँ पर अपने मन का रमण होता है । यो तो एक से एक रूपवती है और रूप लावण्य की कोई सीमा नही होती है ।३। लक्षण तो बहुत ही कठिनता से जानने के योग्य

होते है ऐसा होने पर ही निम्नरीति से परीक्षा करनी चाहिए ।४। आठ पिण्डो की रचना करे "ऋतमग्रे प्रथममजज्ञे ऋते सत्य प्रतिष्ठितम् । यदियकुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यता यत्सत्य तद् दृश्यताम्"— इति—इस मन्त्र से पिण्डो को अभिमन्त्रित करे और फिर उस कुमारी मे कहे—इनमे से किसी भी एक पिण्ड को ग्रहण कर लेवे । क्षेत्र आदि से आठ जगहो से मृत्तिका लाकर आठ पिण्डो को बनावे और उन्ही मे से एक को ग्रहण करने की बात कहनी चाहिए ।५। यदि उभयत सस्य क्षेत्र से आहृत मृत्पिण्ड को ग्रहण करे तो यह समझ लेना चाहिए कि इस कन्या की सन्तति अन्नवती होगी । इसी प्रकार से आगे भी जान लेना चाहिए । गोष्ठ से लाई हुई मिट्टी के पिण्ड के ग्रहण से यह समझ लेवे कि इसकी प्रजा पशुमती होगी । अव्वृत्त कम मे जो वेदि हे उस के पुरीष से लाई हुई मिट्टी के पिण्ड के ग्रहण से समझ लेवे कि इसकी सन्तति ब्रह्म वचस्विनी होगी । अशोष्य ह्रद की मिट्टी के पिण्ड से सर्व सम्पन्ना प्रजा होगी—यह समझ लेवे । द्यूतस्थान से लाई हुई मिट्टी के पिण्ड ग्रहण से कितनी प्रजा होगी—यह जान लेवे । चौराहे की ग्रहण की हुई मिट्टी के पिण्ड को यदि उठावे तो यह समझ लेना चाहिये कि यह द्विप्रवाजिनी अर्थात् स्वैरिणी होगी । जहाँ पर बोया हुआ बीज अङ्कुरित नही होता है वह इरिण होता है । ऐसे स्थान से लाई हुई मिट्टी के पिण्ड को यदि वह ग्रहण करे तो वह अधन्या दुर्भागिनी होती है—यह जान लेवे । श्मशान से लाई हुई मिट्टी के पिण्ड को ग्रहण करे तो समझ लेना चाहिए कि वह अपने पति का हनन करने वाली होगी । यहा पर पति की स्तुति और निन्दा के द्वारा वही स्तुता और निन्दिता होती है—ऐसा मानना चाहिए । उत्तर तीन वाक्यो से वही निन्दित हुआ करती है ।६।(५)

अलकृत्य कन्यामुदकपूर्वा दद्यादेप ब्राह्मो विवाह । तस्या जातो द्वादशावरान्द्वादश परान्पुनात्युभयत । ऋत्विजे वितते कमणि दद्यादलकृत्य स दैवो दशावरान्दश परान्पुनात्युभयत । सह धर्म चरत इति प्राजापत्योऽष्ट वरानष्ट परान्पुनात्युभयत । गोमिथुन दत्त्वोपय-

च्छेत स आर्ष सप्तावरान्सप्त परान्पुनात्यूभयत । मिथ समय कृत्वोपययच्छेत गान्धव । धनेनोपतोष्योपयच्छेत स आसुर । सुप्ताना प्रमत्ताना वाऽपहरेत्स पैशाच । हत्वा भित्त्वा च शीर्षाणि रुदती रुदद्भ्यो हरेत्स राक्षस ।१। ख० ६ ।

कन्या को आभूषणो के द्वारा समलकृत करके उदक पूर्वा का दान करना चाहिए। यह ही ब्राह्म नामक विवाह कहा जाता है, उस स्त्री के गर्भ से जो भी बालक समुत्पन्न होता है वह बारह पूर्व के और बारह आगे होने वाले पुरुषो को दोनो ओर पवित्र कर देता है। दोनो ओर का तात्पय माता और पिता दोनो कुलो के पुरुषो का होता है। जो वैतानिक कर्म मे ऋत्विक के लिये कन्या को समलकृत करके देवे उस विवाह को नामदैव विवाह होता है। यह दूसरी श्रेणी का विवाह माना जाता है। इस बाला के उदर से उत्पन्न होने वाला पुत्र भी दोनो कुलो के दश-दश पूर्वापर पुरुषो को पवित्र कर दिया करता है अर्थात् उनकी सद्‌गति कर देने वाला होता है। साथ मे रह कर धर्म का समाचरण करो—ऐसा कथन कर जो विवाह किया जाता है वह प्राजापत्य नामक विवाह कहा जाता है। इस प्रकार विवाहित स्त्री से जो कुमार अभिजात होता है वह भी दोनो कुलो की आठ आठ पूर्वापर पुरुषो की सद्‌गति कर देता है। जिस कन्या की प्राप्ति एक गौ का जोडा देकर की जाती है उस विवाह को आर्ष विवाह कहते है। इस प्रकार से विवाहित बाला के गर्भ से समुत्पन्न बालक भी सात-सात पूर्वापर पुरुषो को दोनो कुलो मे पवित्र करके तार दिया करता है। जो परस्पर मे समझौता करके कि तुम मेरी भार्या हो जाओ और मै तेरा भर्त्ता हो जाऊँ, ऐसा विवाह किया जाता है उस विवाह का नाम गन्धव विवाह होता है। कन्या के पिता को कुछ धन देकर जो विवाह किया जाता है उस विवाह को आसुर विवाह कहा जाता है। जो कन्यापक्ष के लोग सोये हुए हो—प्रमत्त हो और असावधान हो उनसे बलात् कन्या का अपहरण कर वरवश विवाह कर लिया जाता है उसको पैशाचिक विवाह कहते हैं। युद्ध करके कन्या का

अपहरण करके जो विवाह कर लिया जाता है उसका नाम राक्षस विवाह होता है—इस तरह से ये आठ तरह के विवाह होते है। उनमे प्रथम चारो मे पूर्व पूर्व का विवाह एक दूसरे से प्रशस्त होते है। और जो पीछे वाले चार विवाह बताये गये है उनमे उत्तरोत्तर का विवाह वरीयान् होता है। इनमे सबसे पूर्व दो प्रकार के विवाह ब्राह्मण के होते है इतर, दो विवाहो मे प्रतिग्रह का अभाव होता है और आर्त्विज्य का भी अभाव होता है। गान्धर्व विवाह क्षत्रिय का होता है क्योंकि पुराण मे दृष्ट होता है। युद्ध के सयोग होने से राक्षस विवाह राक्षस का ही होता है। आसुर विवाह वैश्य का होता है क्योंकि उसमे धन का सयोग होता है। इतर तीन अनियत है।१।(६)

अथ खलूच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तान्विवाहे प्रतीयात्।१। यत्तु समान तद्वक्ष्याम।२। पश्चादग्नेर्दृषदमश्मान प्रतिष्ठाप्योत्तरपुरस्तादुदकुम्भ समन्वारब्धाया हुत्वा तिष्ठन्प्रत्यङ्मुख प्राङ्मुख्या आसीनाया गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तमित्यङ्गुष्ठमेव गृह्णीय द्यदि कामयीत पुमास एव मे पुत्रा जायेरन्निति।३।

विवाह मे जो विषय जानना चाहिए उसे बतलाया जाता है। विवाह मे बहुत से ऊँचे नीचे देश धम और ग्राम धम हुआ करते है इनके अतिरिक्त कुछ कुल धम भी होते है। इन सभी को करना चाहिए। यह विवाह का अधिकार है फिर भी जो सूत्र मे विवाह शब्द दिया गया है इससे सम्पूण विवाह मे जिस तरह होवे—यही अर्थ है। अन्यथा उपयमन काल से उत्तर काल विहित होने से उपयमन मे नही होते है। उपयमन का अर्थ कन्या का स्वीकार करना ही होता है।१। जिस प्रकार से अन्यपार्वण आदि सर्वत्र समान ही हुआ करते है क्योंकि वे उपदेश से ही होते है। जनपदादि धम और आगे कहे जाने वाले धर्मों का परस्पर मे विरोध होने पर भी वक्ष्यमाण धर्म को ही करना चाहिए, जनपदादि को नही करे। वैदेह कुछ देशो मे तुरन्त ही व्यवाय देखा गया है और गृह्य

कर्मो मे तीन रात्रि तक ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्यव्रत बताया गया है । यहा पर जनपद धम और गृह्य धम मे परस्पर विरोध होना है तो गृह्य धम का ही समाचरण करना चाहिये, देश धर्म्म का त्याग कर देना चाहिये ।२। वेदी म अग्नि की प्रतिष्ठा करने के उत्तर काल मे ही अग्नि के पीछे दृषदानश्मान को प्रतिष्ठापित करे और उत्तर पूव देश मे जल का कुम्भ प्रतिष्ठापित करना चाहिए । इसके अनन्तर आज्य का वर्हिष्यासादन कम करके फिर समन्वारब्धा या वध्वामिध्माभ्या धाना घाघारान्त कर्म करके फिर इसके पश्चात् पूव मे बताई हुई आहुतियो से हवन करके प्राङ्मुखा आसीना कन्या का अगुष्ठ ही ग्रहण करना चाहिये और गृभ्णामि'—यह कर यदि पुत्रकी कामना वाला होवे अर्थात् मेरे पुत्र ही जन्म लेवे—ऐसी कामना वाला होवे । यही मन्त्र उत्तर हस्त ग्रहणो मे भी होता है । इषत् तो प्रसिद्ध ही है । तत्पुत्रक है । वहा पर दोनो का ही प्रतिष्ठापन सिद्ध है ।३।

अङ्गुलीरेव स्त्रीकाम ।४। रोमान्ते हस्त साङ्गुष्ठमुभयकाम ।५। प्रदक्षिणमाग्निमुदकुम्भ च त्रि परिणयञ्जपति । अमोहमस्मि सा त्व सा त्वमस्यमोह द्यौरह पृथिवी त्व सामाहमृक्त्व ताबेह विवहावहै । प्रजा प्रजनयावहै सप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ जीवेव शरद शतमिति ।६। परिणीय परिणीयाश्मानमारोहयतीममश्मानमारोहाश्मेव त्व स्थिरा भव । सहस्व पृतनायतोऽभितिष्ठ पृतन्यत इति ।७। वध्वञ्जलावुपस्तीर्य भ्रातृस्थानो वा द्विर्लाजानावपति ।८। त्रिर्जामदग्न्यानाम् ।९। प्रत्यभिघार्य हवि ।१०। अवत्त च ।११।

यदि ऐसी हो कामना हो कि मेरे पुत्री जन्म लेवे तो अगुलियो का ग्रहण करे ।४। यदि पुत्रो और पुत्रियो की दोनो की कामना हो तो अगुष्ठ और अगुलियो के सहित इसको ग्रहण करना चाहिये ।५। अग्नि और जल कलश का तीन प्रदक्षिणा करके वधू परिणय का जाप करता है । मन्त्र यह है—'अमोहमस्मि सा त्व सा त्वमस्य मोह द्यौरह पृथिवी

त्व सामाहमृक्त्व तावेह विवहावहै । प्रजा प्रजनयावहै मम्प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्य मानौ जीवेव शरद शतम्'' इति ।६। इम सूत्र मे 'परिणीय' शब्द की वीप्सा इसीलिये है कि सभी परिणयो मे अश्मारोहण करना ही चाहिए । इसके अनन्तर इसके कम्म कर्त्ता आचार्य ही होते है क्योकि ऐसा बन्धन है कि "शिरसी उदकुम्भेनावसिच्य" अर्थात् जल के कुम्भ से शिर पर अवसेचन करे । स्वय ही कर्त्ता होने पर अवसेचन नही किया जा सकता है । ऐमा कथन का तात्पय निकालना असत् है, वहाँ पर वही कर्त्ता होता है ओर विसृष्ट होकर विवाह किया करता है ।७। इसके पश्चात् वधू अपनी अजलियो का उपस्तरण करती है और भाई आदि लाजाओ (खीलो) का वपन किया करता है । भाई न हो तो जो भी कोई भाई के समान स्थानापन्न हो वह करता है । भाई के स्थानापन्न चाचा ताऊ का पुत्र हो या मामा का पुत्र होता है ।८। जामदग्न्यो की तीन होती है । इसका अर्थ है पञ्चावृत्तियो का होता है ।९। शेष का प्रत्यव-धारण करता है ।१०। अवत्त शब्द का अथ अवदान होना है क्योकि यहाँ पर पूर्व कालतामात्र ही विवक्षित है ।११।

एषोऽवदानधर्म ।१२। अयमण नु देव कन्या अग्निमयक्षत । स इमा देवोऽर्यमा प्रेतो मुञ्चातुनामुत स्वाहा । वरुण नु देव कन्या अग्निमयक्षत । स इमा देवो वरुण प्रेतो मुञ्चातुनामुत । स्वाहा । पूषण नु देव कन्या अग्निमयक्षत । स इमा देव पूषा प्रेनो मुञ्चातुनामुत स्वाहेत्यविच्छिन्दत्यञ्जलि स्रुचेव जुहुयात् ।१३। अपरिणीय शूर्पपुटेनाभ्यात्म तूष्णी चतुथम् ।१४। ओप्योप्य हेके लाजान्परिणयन्ति तथोत्तमे आहुती न सनिपतत ।१५।

यह अवदान धम है क्योकि जहाँ-जहाँ पर अवदान होता है वही-वही पर धम होता है ।१२। इस स्थल पर कन्या हवन करती है—ऐसा अथ करना अनुचित है क्योकि स्त्रिया को तो मन्त्रो मे अधिकार ही नही

होता है इसलिये ये हवन के मन्त्र वर ही के लिये है ऐसा सिद्ध होता है। मन्त्र ये है--"स इमा देवोऽर्यमा प्रेतो मुञ्जातुनामुत स्वाहा--"स इमा देवो वरुण प्रेतो मुञ्जातुनामुत स्वाहा","स इमा देव पूष्णा प्रेतो मुञ्जातुनामुत स्वाहा"। अञ्जलि का अविच्छिन्दन करती हुई स्रुच से ही हवन करना चाहिए।१३। इस सूत्र मे अप्राप्त निषेध किसलिये है ? कुछ विद्वानो का मत है कि चतुर्थ होम करके अतन्त्रक परिणयन होता है--इस लिये ही ऐसा होता है। अन्यो का कथन है कि तीन परिणय आन्तर्य से कहे गये है। वहाँ पर तीन होम होते है, वहाँ पर किस प्रकार से पूर्व-पूर्व परिणयन करके पश्चाद् होम होता है--यह ज्ञापन करने के लिये ही है। शूर्पपुट कोण को कहते है। यहाँ पर तूष्णीवचन प्रजाप्रतिज्ञान के लिये है। यहा पर चतुर्थ ग्रहण इसीलिये है कि इस द्रव्य का स्विष्टकृत नही होता है और वही कर्त्ता होता है।१४। इस सूत्र मे अभिमतार्थ ज्ञापन के ही लिये 'इ' शब्द है। कतिपय विद्वानो का कथन है कि खीलो का वपन कर करके पीछे परिणयन करते है। ऐसा होने पर उसके लिये आहुतियाँ नही सनिपात करती है।१५।

अथास्य शिखे विमुञ्चति यदि कृते भवत ।१६। ऊर्णास्तुके केशपक्षयोर्बद्धे भवत प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशादिति।१७। उत्तरामुत्तरया।१८। अथैनामपराजिताया दिशि सप्तपदान्यभ्युत्क्रामयतीष एकपद्यूर्जे द्विपदी रायस्पोषाय त्रिपदी मायोभव्याय चतुष्पदी प्रजाभ्य पञ्चपद्यृतुभ्य षट्पदी सखा सप्तपदी भव सा मामनुव्रता भव। पुत्रान्विन्दावहै बहू स्ते सन्तु जरदष्टय इति।१९। उभयो सनिधाय शिरसी उदकुम्भेनावसिच्य।२०। ब्राह्मण्याश्च वृद्धाया जीवपत्न्या जीवप्रजाया अगार एता रात्री वसेत्।२१। ध्रुवमरुन्धती सप्तऋषीनिति दृष्ट्वा वाच विसृजेत जीवपत्नी प्रजा विन्देयेति।२२।ख०७।

अथ शब्द अब स्विष्टकृत् की निवृत्ति के लिये है। अस्या--यह वर की निवृत्ति के लिये है। यदि--यह अनित्य मे है। देश धर्मादि के द्वारा

यदि कृत मे होते है ।१६। केश पक्षो मे ऊर्णास्तुक बद्ध होते हैं । प्रत्वा मुञ्चामि"—इस के द्वारा दक्षिणा शिखा का विमोचन करता है । "प्रेतो मुञ्चामि" इससे उत्तरा शिखा का विमोचन करता है । वर की शिखाओ का विमोचन तूष्णी भाव से करता है ।१७-१८। इस सूत्र मे का अथ शब्द पूर्व के ही तुल्य होता है । अपराजिता प्रागुदीची दिशा को कहते है । उस अपराजिता दिशा मे निम्न सात मन्त्रो के द्वारा इस वधू को सात पदो का उत्क्रमण कराता है—भव आदि शब्द सर्वत्र समान होता है—"इष" इससे एक यही, 'ऊर्जा इससे द्विपदी, 'राय-स्पोषाय' इससे त्रिपदी, 'मायोभव्याय'—इससे चतुष्पदी, 'प्रजाभ्य' इस-से पचपदी, 'ऋतुभ्य' इससे षट्पदी, 'सखा' इससे सप्तपदी । वह होवे और मेरे अनुव्रता होवे । मै बहुत से पुत्रो को प्राप्त करू और वे पुत्र तेरे जरदष्टि (वृद्धावस्था की यष्टि) के समान ही होवे ।१९। सप्तम पद के अभ्युत्क्कामित होने पर वही पर स्थित दोनो के शिरो पर वहाँ पर स्थित उदककुम्भ से अवसेचन करता है ।२०। दूसरे ग्राम मे गमन करने मे यदि बीच मे कही पर निवास करना पडे तो किसी इस प्रकार के गुण-गण से युक्त ब्राह्मणी के घर मे ही बीच वाली रात्रि मे निवास करना चाहिए । अपने ग्राम मे ही यदि विवाह होवे तो फिर यह विधि नही होती है ।२१। होम के समाप्त हो जाने पर रात्रि मे ध्रुव तारा आदि का दर्शन कर "जीवपत्नी प्रजा विन्देय" इत्यादि मन्त्र के द्वारा वाणी का विसर्जन करना चाहिए । आदि पद से अरुन्धती और सप्तर्षियो का भी दर्शन करे ।२२।(७)

प्रयाण उपपद्यमाने 'पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्येति' यान-मारोहयेत् ।१। अश्मन्वतीरीयते सरभध्वमित्यर्धर्चेन नाव-मारोहयेत् ।२। उत्तरेणोत्क्रमयेत् ।३। जीव रुदन्तीति रुद-त्याम् ।४। विवाहाग्निमग्रतोऽजस्र नयन्ति ।५। कल्याणेषु देशवृंक्षचतुष्पथेषु माविदन्परितन्थिन इति जपेत् ।६। वासेवासे सुमङ्गलीरिय वधूरितीक्षकानीक्षेत ।७। इह प्रिय प्रजया ते समृध्यतामिति गृह प्रवेशयेत् ।८।

विवाह के होम के पश्चात् अपने घर को गमन करना चाहिये। यदि कभी दूसरे ग्राम मे अपना घर हो और भ्रमण करने मे किसी यान (सवारी) की उपपत्ति होवे तो यान के उपपद्यमान होने पर "पूषात्वे तो भवतु हस्तगृह्या" इस मन्त्र के द्वारा वधू को यान पर समारूढ करना चाहिए। यान के अतिरिक्त शिविका आदि के द्वारा प्रयाण करने मे मन्त्र का प्रयोग नही होता है।१। यदि बीच मे कोई ऐसी नदी पडे जो नाव के द्वारा पार करनी पडे तो "अश्मन्नती रीयते सरमध्वम्" इस आधी ऋचा के द्वारा वधू को नाव पर समारूढ करानी चाहिए।२। उत्तराध जो ऋचा का है उसके द्वारा जल मे स्थित नौका से वधू को उतारना चाहिए।३। लेजाती हुई वधू अपने बन्धुओ के वियोग होने के कारण यदि रुदन करती है तो "जीव रुदन्ती" इत्यादि मन्त्र का जाप करना चाहिए। यह विधि अपने ग्राम मे ही विवाह हो तब भी होनी है क्योकि कोई विशेषता नही होती है।४। इस सूत्र मे विवाहाग्नि का ग्रहण अग्नि विशेष के नियम के अभाव की शङ्का की निवृत्ति के लिये है और यहाँ पर अजस्र का ग्रहण ध्रियमाण के नियम के लिये है। इससे अन्यत्र प्रमाण करने मे समारोपण करके नयन गम्यमान होता है। और यह विधान विशेषता न होने के कारण से अपने ग्राम मे भी होता है।५। विवाह आदि शोभन कार्यों मे और देश वृक्ष चतुष्पथो मे "मा विदन्परि पन्थिन" इस मन्त्र का जाप करना चाहिए।६। वास वास मे रक्षक होते है यदि होवे तो "सुमङ्गलीरिय वधू" इस मन्त्र से ईक्षको को देखना चाहिए।७। इह प्रिय प्रजयाते समृध्वत्ताम्" इस मन्त्र से वधू को गृह मे प्रवेश कराना चाहिए। अपने ग्राम मे भी विवाह होने है।।८।।

विवाहाग्निमुपसमाधाय पश्चादस्याऽऽनडुह चर्माऽऽस्तीर्य प्राग्ग्रावमुत्तरलोम तस्मिन्नुपविष्टाया समन्वारब्धायाम्। आ न प्रजा जनयतु प्रजापतिरिति चतसृभि प्रत्यृच हुत्वा समञ्जन्तु विश्वे देवा इति दध्न प्राश्य प्रतिमयच्छे-दाज्यशेषेण वाऽनक्ति हृदये।९। अक्षारालवणाशिनौ

ब्रह्मचारिणावलकुर्वाणावध शायिनौ स्याताम् ।१०। अत ऊर्ध्वं त्रिरात्र द्वादशरात्रम् ।११। सवत्सर बैक ऋषिर्जायत इति ।१२। चरितव्रत सूर्याविदे वधूवस्त्र दद्यात् ।१३। अन्न ब्राह्मणेभ्य ।१४। अथ स्वस्त्ययन वाचयीत ।१५। ख० ८।

अग्नि प्रतिष्ठापनान्त को करके अग्नि का उपसमाधान करता है अर्थात् समिधान से तात्पर्य यह है कि समिधाओ को डाल कर प्रज्वलित करता है। पीछे इसके अवड्डान के चर्म का आस्तरण करता है। प्राग् ग्रीवा और ऊर्ध्वलोम होकर उस चर्म पर उपविष्ट समन्वारब्ध वधू मे इध्माधानादि आज्यभागान्त करके "अग्न प्रजा अवयतु प्रजायति" इन चार ऋचाओ से प्रति ऋचा हवन करके "समञ्जन्तु विश्वेदेवा" इति—इस मन्त्र से दही खिलावे अर्थात् उसका एक भाग स्वय खावे और शेष को प्राशन वधू को देना चाहिए। वह वधू भी मौन होकर प्राशन करती है। आज्य शेष से दोनो के हृदय मे उसी मन्त्र से अक्त करता है ।९। जिस समय मे विवाह होवे तभी से आरम्भ करके दोनो पति-पत्नी के लिये ये नियम होते है दोनो ही अक्षार लवण के अशन करने वाले होवे। निम्न पदार्थों की क्षार सज्ञा मानी गयी है—"हैजम्बिका राज माषा माषा मुद्गा मसूरिका । लङ्कुचाढक्याश्च निष्पावास्तिलाद्या क्षार सज्ञिता"। माष—मुद्गे मसूरिका आदि समस्त पदार्थ क्षार सज्ञा वाले होते है। गृह प्रवेशनीय होम से पहिले भी नियम इष्ट होते है अतएव योगविभाग किया गया है। दोनो को ब्रह्मचर्य धारी होना चाहिए अलकृत होने वाले और भूमि पर शयन करने वाले रहना चाहिए ।१०। इससे ऊर्ध्व तीन रात्रि अथवा बारह रात्रि पर्यन्त नियति मे रहे ।११। अथवा एक सम्वत्सर तक नियति मे रहे यह समझ करके ऋषि के तुल्य ही पुत्र समुत्पन्न होवे। फिर पिता के गोत्र को छोड कर पति के गोत्र को ही माने ।१२। व्रतके अनन्तर सूर्यावित् के लिये वधू के द्वारा उपयमन काल मे उपहित वस्त्र देना चाहिए। सूर्या के द्वारा जो इष्ट होना है वह सूर्या है

यथा "वृषाकपि" इति और वह "सत्येमोत्तमित्ता" यह सूक्त है ।१३। ब्राह्मणो के लिये अन्न का दान करे ।१४। इसके अनन्तर 'ॐ स्वस्तिभवन्तो ब्रुवन्तु' इति यह कहे और वे "ॐ स्वति" इति यह उत्तार देवे ।१५।(८)

पाणिग्रहणादि गृह्य परिचरेत्स्वय पत्न्यपि वा पुत्र कुमायन्तेवासी वा ।१। नित्यानुगृहीत स्यात् ।२। यदि तूपशाम्येत्पत्न्युपवसेदित्येके ।३। तस्याग्निहोत्रेण।४।प्रादुष्करणहोमकालौ व्याययातौ ।५। हौम्य च मासवर्जम्।६। काम तु व्रीहियवतिलै ।७। अग्नये स्वाहेति साय जुहुयात्सूर्याय स्वाहेतिप्रतिस्तूष्णी द्वितीये उभयत्र ।८।ख०९।

पाणिग्रहण आदि गृह्य अग्नि का स्वय अथवा पत्नी आदि परिचरण करे। कुछ विद्वानो का मत है कि कुमारी और पत्नी होम कम न करे क्योकि स्त्रियो को मन्त्रो का अधिकार नही होता है। अन्य विद्वान् कहते हैं पत्नी सहनमवत् वचन होने से सहोमक होवे। अन्तेवासी का अर्थ शिष्य होता है ।१। नित्य परिगृहीत होवे। यदि विवाह की अग्नि नष्ट हो जावे तो नष्टाहरण प्रायश्चित्त करके परिचरण करना चाहिए ।२। यदि प्रादुष्करण काल मे उद्वासित करे तो इसके अनन्तर अन्य होम के काल से पत्नी उपवास करे--ऐसा एक कहते है। एके—इसके ग्रहण से यजमान उपवास करे—ऐसा कुछ का मत है। "अथश्चाग्ने" इस एक आहुति का हवन करना चाहिए—ऐसा एक कहते है क्योकि शास्त्रान्तर मे देखा जाता है। यदि वैवाह्य गृहीत न होवे तो दाय विभाग काल मे ग्रहण की जाया करती है। गृहीत भी नष्ट हो जावे और द्वादश रात्रि तक अतिक्रमण करे तो उक्त क्रिया के द्वारा पीछे गृहीत होती है ।३। यहा पर 'तस्य' इसका ग्रहण योग विभाग के लिए किया गया है। उसकी अग्निहोत्र से ही विधि होती है अन्य के द्वारा नही होती है। उससे पाक यज्ञ तन्त्र नही होता है ।४। प्रादुष्करण और होम काल व्याख्यात कर दिया गया है। प्रादुष्करण नाम "अपराह्णे गार्हपत्य प्रज्वाल्य" एव प्रातर्जुष्टायाम्" "प्रदोषान्तो दोय काल सगवात्त प्रात" ये ही दो होते है।

अन्य नही होता है ।५। हौम्य पदार्थ मास से रहित होना चाहिए । "पयसा नित्य होम" इत्यादि पाँच द्रव्य आम्नात किये गये हैं । "पयो दधि यवागूश्च सर्पिरोदन तण्डुला । सोमो मास तथा तैलमापस्तानि दशैवतु" इस प्रकार से शास्त्रान्तर मे दृष्ट भी हौम्य होता है । जो द्रव द्रव्य है उसको स्रुव से हवन करता है । कठिन द्रव्य का हाथ से करता है । जिस द्रव्य से सायङ्काल को हवन करता है उसी से प्रात काल मे करना चाहिए । यहा प्रतिनिधि वर्जित है ।६। यहा पर काम का ग्रहण पूर्व मे कथित के अभाव मे इनका ग्रहण कैसे होवे—इसीलिए है । व्रीहि-यव और तिल ये प्रत्येक साधन होते है और यह न्याय से ही समझ लेना चाहिए ।७। तूष्णी भाव से द्वितीय आहुतियो का हवन करता है । यहा पर 'तूष्णी' इसका ग्रहण प्रजापति के ध्यान के लिए है । उभयत्र का अर्थ है साय-प्रात दोनो मे । अग्नि का परि समूहन, परि सारण, पयु क्षण और होम द्रव्य का अग्निहोत्र की भाँति सस्कार करके "अग्नये स्वाहा" इससे हवन करता है । इसके अनन्तर 'प्रजापतये' इस चतुर्थी के अन्त वाले शब्द रूप का ध्यान करके 'स्वाहा' यह उपाशु कह कर द्वितीय आहुति का हवन करता है । प्रात होम मे पूर्वोक्त मन्त्र के स्थान मे 'सूर्याय स्वाहा' कह कर हवन करे ।८।(६)

अथ पार्वण स्थालीपाक ।१। तस्य दर्शपूर्णमासाभ्यामुपवास ।२। इध्माबर्हिषोश्च सनहनम् ।३। देवताश्चो पाशुयाजेन्द्रमहेन्द्रवर्जम् ।४। काम्या इतरा ।५। तस्यै तस्यै देवताय चतुरश्चतुरो मुष्टीन्निर्वपत्ति पवित्रे अन्तर्धायामुष्मै त्वा जुष्ट निवपामीति ।६।

इसके अनन्तर पर्व मे होने वाला स्थालीपाक होता है। स्थाली पाक कर्म्म का नाम है। विवाह के अनन्तर जो भी पौर्णमासी आती है उसमे इस कर्म का प्रथम प्रारम्भ होता है। प्रतिपद्यौपासन का हवन करके इसके उपरान्त परि समूहन आदि का प्रारम्भ करना चाहिए ।१। यहा पर 'तस्य' इसका ग्रहण नियम के लिए होता है। अतिदिष्टो का न होकर उसी का उपवास होवे । दर्श पूर्णमास ये दोनो नाम हैं। उपवास

का अर्थ एक भोजन होता है । क्षार लवण रहित सर्पि मिश्र एव दधि मिश्र का अशन करना चाहिए ।२। इध्म और वर्हि का बन्धन होता है । पाञ्चदश दारुक को इध्म कहते है ।३। और देवताओ का सनयन करे किन्तु उपाशु याजेन्द्र महेन्द्र को वर्जित कर देवे ।४। कहे हुए देवताओ से अन्य जो उपाशु या जाद्य देवता है वे सब काम्य है । अर्थात् कामना होने पर ही करने चाहिए ।५। प्रणीता प्रणयन के उत्तर काल मे ब्रीहियो को यवो का और असम्भव होने पर अन्यो को शूर्प मे अन्तर्धान करके होम्य पदार्थों का एक-एक देवता के लिए चार-चार मुष्टियो का निवचन करता है । मन्त्र यह है –"अयुष्मै त्वा जुष्ट निवयामि" इस मन्त्र से करे । अयुष्मै—इसके स्थान मे चतुर्थी विभक्ति से देवता का निर्देश करना चाहिए । वीप्सा के द्वारा यह सूचित किया जाता है कि प्रत्येक देवता के लिए चार-चार मुष्टियाँ देवे ।६।

अथैनान्प्रोक्षति यथानिरुप्तममुष्मै त्वा जुष्ट प्रोक्षामीति ।७। अवहताश्रि फलीकृतान्नाना श्रपयेत् ।८। समोप्य वा ।९। यदि नाना श्रपयोद्विभज्य तण्डुलानभिमृशेदिदममुष्मा इदममुष्मा इति ।१०। यद्यु वै समोप्य व्युद्धार जुहुयात् ।११। शृतानि हवीष्यभिघार्योदगुद्वास्य बर्हिष्यासाद्येध्यमभिघार्याय त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान्प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहेति ।१२।

सब देवताओ के निरुप्त होने पर प्रोक्षण होना चाहिए—इसी को सूचित करने के लिए सूत्र मे अथश के द्वारा प्रयोग किया गया है । 'एतान्'—यह बहु वचन इसी बात को ससूचित करने के लिए दिया गया है कि सब सक्लिष्ट देवताओ का ही प्रोक्षण करे विभाग करके नही करना चाहिए । "यथा निरुप्तम्" इस मन्त्र से उस-उस देवता के लिए चार-चार प्रोक्षण समन्त्रक निर्वापो मे समन्त्रको को और अमन्त्रको मे अमन्त्रको को पवित्रो को अन्तर्धान करके ही करना चाहिए—यह तात्पर्य

होता है । मन्त्र यह है—'अमुष्यै त्वा जुष्ट प्रोक्षामि" । निर्वाण और प्राक्षण एक ही पात्र मे होते है क्योकि उत्तरत्र मे विधान का अभाव है ।७। कृष्णाजिन मे उलूखल को करके पत्नी अवहनन करे। त्रिफली-कृतो का नाना श्रवण करना चाहिए । पितृ पिण्ड पक्ष मे एक बार प्रक्षालन करके करे । यहाँ पर तीन बार करे ।८। अथवा एक ही मे श्रवण करना चाहिए ।९। यदि पृथक् २ श्रवण करे तो ऐसा होने पर 'इदममुष्यै— इदममुष्यै'—यह कहकर तण्डुलो का अभिमृष्ट करना चाहिए । अमुष्मै—इसके स्थान मे पूर्व की भाति अभीष्ट देवता के आगे चतुर्थी विभक्ति लगा देवे ।१०। यदि समनयन करके श्रवण करे तो वैसा होने पर चरु को विशेष रूप से उद्धृत करके हवन करना चाहिए । व्युद्धरण का अर्थ है किसी अन्य पात्र मे पृथक् कर लेना । यदि—इसका कथन होम काल मे ही व्युद्धरण करे—इसी के लिए है ।११। उत्तर की ओर अग्नि के आज्य का उत्पवन करके पीछे वर्हियो का आस्तरण करके आज्य का समासादन करे । इसके अनन्तर हवियो को वर्हि मे आसादन करके इध्म का अभिधारण करे और 'अयते"—इस मन्त्र से अग्नि मे आधान करना चाहिए । इससे जातवेदा इध्यमान हो—बढे और इद्ध एव वर्धित होकर हमको प्रजा से—पशुओ से—ब्रह्मवर्चस से और अन्नादि से समेधित करे—स्वाहा—इति । कुछ महानुभाव ऐसा ही पढते है कि वर्हि मे आसादन करके पुन अभिधारण करना चाहिए ।१२।

तूष्णीमाघारावाघार्याऽऽज्यभागौ जुहुयादग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेति ।१३। उत्तरमाग्नेय दक्षिण सौम्यम् ।१४। विज्ञायते चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ ।१५। तस्मात्पुरुषस्य हि प्रत्यङ्मुखस्याऽऽसीनस्य दक्षिणमक्ष्युत्तर भवत्युत्तर दक्षिणम् ।१६। मध्ये हवीषि प्रत्यक्तर वा प्राक्सस्थान्युदक्सस्थानि वोत्तरपुरस्तात्सौविष्टकृतम् ।१७। मध्यात्पूर्वार्धाच्च हविषोऽवद्यति ।१८। मध्यात्पूर्वार्धात्पश्चार्धादितिपञ्चावत्तिनाम् ।१९।

इस सूत्र मे 'तूष्णीम्' यह शब्द बतलाता है कि मन्त्र से करे क्योकि अन्य शास्त्र मे दृष्ट अन्य धर्म कसे प्रवृत्त होगे ? उत्तर पश्चिम दिशा से आरम्भ करके दक्षिण पूर्वा दिशा की ओर अविच्छिन्न आज्य की धारा का हरण करे। तथा दक्षिण पश्चिमा दिशा से आरम्भ करके उत्तर पूर्वा के प्रति आधारण करना चाहिए। दोनो का स्रुव से ही हवन करना चाहिए क्योकि जहा पर आज्य होम मे अन्य साधन का उपदेश नही होता है वहा पर स्रुव के द्वारा होम होता है—ऐसा साधित है। व्याख्याताओ के द्वारा जितना अपने शास्त्र मे अनुक्त और अपेक्षित है उतना ही ग्रहण करने के योग्य है अपने शास्त्र मे उक्त को भी नही ग्रहण करे। अज्य भागो को "अग्नये स्वाहा–सोमाय स्वाहा" इनसे हवन करना चाहिए।१३। अग्नि के उत्तर पार्श्व मे आग्नेय आज्य भाग का हवन करे—दक्षिण पार्श्व मे सौम्य भाग का हवन करना चाहिए। पूर्व की ही भाँति स्रुव से हवन करे।१४। ये आज्य भाग यज्ञ के चक्षु है—ऐसा ही श्रूयमाण होते है।१५। प्रत्यङ्मुख यज्ञ पुरुष जो आसीन है उसका दक्षिण नेत्र उत्तर होता है और उत्तर दक्षिण होता है। इस कारण से दक्षिण सस्था ही की जा सकती है उदक् सस्था नही—यही अर्थ होता है। अन्यत्र कही पर श्रुत्वाकर्ष जिस प्रकार से उदक् सस्थायी होती है। इससे बलि हरण मे प्रधानो का उत्तर से पुरुषो के लिए बलि का हरण सिद्ध होता है।१६। अग्नि के मध्य प्रदेश मे हवियो का हवन करता है। अथवा प्रत्यक्तर देश मे हवन करता है। उस देश मे भी अथवा प्राक् सस्थो का अथवा उदक् सस्थो का हवन करता है। अग्नि के उत्तर पूव देश मे सौविष्टकृत हवि को हवन करता है।१७। हवि के मध्य से और पूर्वार्ध से अगुष्ठ पर्व मात्र अवद्य होता है अर्थात् अवदान होता है यह देश नियमित किया जाता है।१८। पञ्चावत्तियो का तो मध्य से पूर्वार्द्ध से और पश्चार्ध से—यह ही अवदान होता है। पश्चार्धात् इतने ही से सिद्ध होने पर 'मध्यात्पूर्वाधात्' यह पुनर्वचन इसीलिए है कि प्रत्यक्सस्थता होवे और प्राक्सस्था न होवे।१९।

उत्तरार्धात्सौविष्टकृतम् ।२०। नात्र हवींषि प्रत्यभिघारयति स्विष्टकृत द्विरभिघारयति ।२१। यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिच यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्वान्त्सर्वं स्विष्ट सुहुत करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुतेसर्वप्रायश्चित्ताहुतीना कामाना समर्धयित्रे सर्वान्न कासान्त्समर्धय स्याहा इति ।२२। बर्हिषि पूर्णपात्र निनयेत् ।२३। एषोऽवभृथ ।२४। पाकयज्ञानामेतत्तन्त्रम् ।२५। हविरुच्छिष्ट दक्षिणा ।२६। ख० १०।

समस्त हवियो के उत्तरार्ध से स्विष्ट कृदर्थ अवदान है । स्विष्टकृत् मे हविशेष का अवधारण नही करता है । यहा पर अत्र-इसका ग्रहण यहा पर ही अवधारण नही करता है प्रधान हवियो मे—इसीलिए है । हवि शब्द शेष मे होता है ।२१। निम्नलिखिन मन्त्र के द्वारा स्विष्टकृत का हवन करना चाहिए । मन्त्र यह है—‘यदस्य कर्म्मणोऽत्यरीरिच यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्ट त्स्विष्ट कृद्विद्वान्त्सर्व स्विष्ट सुहुत करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुत हुते सर्व प्रायश्चित्ता हुतीना कामाना समर्धयित्रे सर्वान्न कामान्त्समधय स्वाहा” इति ।२२। जो पूव मे निहित पूर्ण पात्र है उसको अवर्बाहि मे निनयन करे अर्थात् निषिञ्चन करना चाहिए ।२३। जो यह पूर्ण पात्र का निनयन है यह इस कर्म का अवभृथ होता है । यहा पर अवभृथ वचन अवभृथ की प्राप्ति के लिये है ।२४। यह तन्त्र सब पाक यज्ञो का होता है यहा पर पाकयज्ञ का ग्रहण स्थाली पाक सृदृश हुतो का ही तन्त्र जैसे होवे और प्रहुत ब्रह्म मे हूतो का न होवे—इसीलिये है । अङ्ग सहति को तन्त्र कहते है ।२५। उच्छिष्ट हवि दक्षिणा को देता है यदि ब्रह्मा है और उसके अभाव मे ब्राह्मणो के लिए देनी चाहिए । दक्षिणाओ को धर्माङ्गत्व होने से ऐसा करना चाहिए ।२६।(१०)

अथ पशुकल्प ।१। उत्तरतोऽग्ने शामित्रस्याऽऽयतन कृत्वा पाययित्वा पशुमाप्लाव्य पुरस्तात्प्रत्यङ्मुखमवस्थाप्याग्नि दूतमिति द्वाभ्या हुत्वा सपलाशयाऽऽर्द्र शाखया पश्चादुपस्पृशेदमुष्मै त्वा जुष्टमुपाकरोमीति ।२।

व्रीहियवमतीभिरद्भि पुरस्तात्प्रोक्षति, अमुष्मै त्वा जुष्ट प्रोक्षामीति ।३। तासा पाययित्वा दक्षिणमनु बाहु शेष निनयेत् ।४। आवृतव पर्यग्नि कृत्वोदञ्च नयन्ति ।५। तस्य पुरस्तादुल्मुक हरन्ति ।६। शामित्र एष भवति ।७। वपाश्रपणीभ्या कर्ता पशुमन्वारभते ।८। कर्तार यजमान ।९।

इसके अनन्तर पशुकल्प बतलाया जाता है। यहाँ पर पशु से तन्मात्र कहा जाता है। पशु का विधान नही किया जाता है क्योकि कल्प का ग्रहण होता है। इस प्रकार से उपाकरण का विधान अनर्थक है ।१। आज्यभागान्त को करके अग्नि के उत्तर की ओर शामित्र का आयतन करे। इसके पश्चात् पशु को पिलाकर फिर जल से पशु को प्लावित करके अग्नि के आगे प्रत्यङ् मुख अवस्थापित करे। इसके उपरान्त "अग्नि हूतम्" इन दो मन्त्रो से सपर्ण अशुष्क शाखा आर्द्र शाखा सपलाशा से हवन करे। फिर 'अयुष्मैत्वा" इत्यादि मन्त्र मे उपस्पर्शन करना चाहिए ।२। फिर "अयुष्मे न्वा जुष्ट प्रोक्षामि" इस मन्त्र से व्रीहि यव मिश्रित जल से पशु के आगे प्रोक्षण करता है ।३। व्रीहियवो वाले जलो के एक देश को पशु को पान कराकर दक्षिण बाहु को अनुशेष से निषिञ्चन करे। यहा पर 'तास्तम्'—इस पद का ग्रहण प्रोक्षण के प्रतिषेध होने पर भी अष्टका मे पायन हो जावे—इसी लिये किया गया है ।४। तूष्णी भाव से ही पर्यग्नि करके पशु को उदचनयन करते हैं। प्रतिषेध मन्त्र वर्जित होता है। अन्य धम त्रेता मे दृष्ट होते है ।५। उस पशु के आगे प्रदीप्त काष्ठ का हरण किया करते है ।६। यह अग्नि शामित्र होता है। इससे पूर्व मे उक्त शामित्रायतन मे उसका प्रतिष्ठापन होता है ।७। वपाश्रमणी काश्मर्यमयी होती है। उन मे एक विशाखा है और दूसरी सशाखा है जो इस कर्मा का करने वाला है वह अध्वर्यु स्थानीय होता है वह पशु का अन्वारभण करता है ।८। अध्वर्यु को यजमान अन्वारभण करता है ।९।

पश्चाच्छामित्रस्य प्राक्शिरस प्रत्यक्शिरस वोदक्पाद सञ्ज्ञप्य पुरा नाभेस्तृणमन्तर्धाय वपामुत्खिद्य वपामवदाय वपाश्रपणीभ्या परिगृह्याद्भिरभिषिच्य शामित्रे प्रताप्याग्रेणैनमग्नि हृत्वा दक्षिणत आसीन श्रपयित्वा परीत्य जुहुयात् ।१०। एतस्मिन्नेवाग्नो स्थालीपाक श्रपयन्ति ।११। एकादश पशोरवदानानि सर्वाङ्गेभ्योऽवदाय शामित्रे श्रपयित्वा हृदय शूले प्रताप्य, स्थालीपाकस्याग्नो जुहुयात् ।१२। अवदानैर्वा सह ।१३। एकैकस्यावदानस्य द्विर्द्विरवद्यति ।१४। आवृतैव हृदयशूलेन चरन्ति ।१५। ख० ११ ।

"त यत्र निहनिष्पन्नो भवन्ति तदध्वर्युर्वेहिरधस्तादुपास्मति"—इस श्रुति वचन से शामित्र के पश्चिम देश मे कर्त्ता वर्हि का उपस्तरण करता है। इसके उपरान्त उस वर्हि मे शमिता प्राक्शिरस्क अर्थात् पूर्व की ओर शिर वाले प्रत्यक् शिरस्क वोदक वोदकपाद पशु को सञ्ज्ञपित करता है। उदक्पाद्—इतने ही कथन से ही सिद्ध होने पर प्राकशिरस्क और प्रत्यक् शिरस्क यह वचन ऊर्ध्वशिर वाले का सञ्ज्ञपन न होवे—इसीलिये है। इसके पश्चात् कर्त्ता नाभि के वपा स्थान का ज्ञान प्राप्त करके वहाँ पर तृण को अन्तर्धान करके अर्थात् तियक् छेद न करके वपा का उद्धार करे वपा का स्थान पार्श्व का विविक्त प्रदेश होता है। यदि पशु प्राक्शिरा सञ्ज्ञप्त होवे तो वैसा होने पर दक्षिण पार्श्व को ऊचा करके तृणान्तर्धान करना चाहिए। इसके उपरान्त वपा का अवदान पुन करे। सम्पूर्ण वपा के अवदान के ही लिये पुनर्ग्रहण होता है। इसके पश्चात् वपा श्रमणियो से परिग्रहण कर जल से प्रक्षालन करे और शामित्र मे प्रतप्त करे। प्रतापन धर्म मात्र ही है क्योकि श्रपण के उत्तर मे ही उसका विधान होता है। फिर शामित्र के उत्तर मे जाकर अग्रभाग से इस औपासन अग्नि और वपा का हरण करके इसके दक्षिण मे आसीन होता हुआ श्रपण करके श्रपिता उस वपा प्लक्ष शाखाओ पर रख कर दोनो अग्नियो को यथागत परीत कर 'अयुष्मै स्वाहा' इससे हवन करे ।१०। इसी औपासन

अग्नि मे पशु का अङ्ग होने से पशु देवता के लिये स्थाली पाक का हवन करना चाहिए। शामित्र मे न होवे—इसीलिये "एतस्मिन्" यह वचन दिया गया है ।११। पशु का ग्रहण जो त्रेता मे पशु के एकादश अवदान है और वे प्रसिद्ध भी हैं वे जिस तरह होवे—इसीलिये है। उन हृदय-जिह्वा-वक्ष आदि पशु के एकादश अवदानो को सब अङ्गो से लेकर शामित्र मे श्रपण करके शूल पर हृदय को प्रतप्त करे और स्थाली पाक के आगे हवन करना चाहिए ।१२। अथवा अवदानो के साथ ही स्थाली पाक का हवन करता है। जब पृथक् हवन करता है तो उस समय मे स्विष्टकृद् को भी पृथक् करना चाहिए ।१३। एक-एक अवदान का दो-दो बार जिस किसी देश मे अवदान करता है ।१४। स्विष्टकृत् सर्व प्रायश्चितान्त को करके तूष्णी भाव से हृदय शूल से चरण करते है। यहा पर आवृद् का ग्रहण मन्त्र से रहित है। अन्य धर्म त्रेता मे इष्ट जैसे होवे—इसीलिये है ।१५।(११)

चैत्ययज्ञे प्राक् स्विष्टकृतश्चैत्याय बलि हरेत् ।१। यद्यु वै विदेशस्थ पलाशदूतेन यत्र वेत्थ वनस्पत इत्यैतयर्चा द्वौ पिण्डौ कृत्वा वीवधेऽभ्याधाय दूताय प्रयच्छेदिम तस्मै बलि हरेति चैन ब्रूयादय तुभ्यमिति यो दूताय ।२। प्रतिभय चेदन्तरा शस्त्रमपि किंचित् ।३। नाव्या चेन्नद्यन्तरा प्लवरूपमपि किंचिदनेन तरितव्यमिति ।४। धन्वन्तर्ग्यिज्ञे ब्रह्माणमग्नि चान्तरा पुरोहितायाग्रे बलि हरेत् ।५। ख०१२।

जो चित्त मे होता है वह चैत्य कहा जाता है। यदि आत्मा की अभिप्रेत वस्तु लब्ध होवे तो "त्वामहमाज्येन स्थाली पाकेन पशुनावा यक्ष्यामि" यह मन्त्र है। इसके पश्चात् वस्तु के लब्ध होने पर उसका उसके द्वारा याग करना चाहिए वह चैत्य यज्ञ है। वहाँ पर स्विष्टकृत् से पहिले चैत्य के लिये बलि का हरण करना चाहिए। नमस्कारान्त नाम-धेय से पुन चैत्य का ग्रहण प्रत्यक्ष हरण के लिये है। इससे चैत्यायतन मे

ही उपलेपन आदि करना चाहिए ।१। यदि विदेशस्थ चैत्य का यजन करे तब पलाश दूत के द्वारा बलि का हरण करे । जहाँ पर "वेत्थ वनस्पत" इस ऋचा मे दो पिण्डो को करके वीवध मे अभ्याधान करके दूत के लिये देना चाहिए । उन दोनो मे से एक पिण्ड को निर्दिष्ट करके दूत को "इम तस्मै बलिहर"—यह कहता है । "अय तुभ्यम्" इससे आयो के दूत के लिये देता है । "एतयाऋचा"—यह वचन अन्यत्र पाद-ग्रहण मे भी कही पर सूक्त होता है —इसी लिये है । इससे 'आत्वा हाषमन्तरेधि'—यह और "ऋषभ मा समानानाम्" यह सूक्त सिद्ध होता है । अन्य लोग पुन अभ्यास के लिये मानते है ।२। और कर्त्ता को चैत्य के मध्य मे यदि भय हो तो दूत के लिये कुछ शस्त्रयी प्रदान कर देना चाहिए ।३। दोनो के मध्य मे यदि नौका के द्वारा तरण करने योग्य कोई नदी होवे तो उस समय मे कुछ प्लव रूप भी इस मन्त्र से देना चाहिए । ।४। यदि धन्वन्तरि चैत्य होवे तो उस समय मे ब्रह्मा को और अग्नि को तथा बीच मे पुरोहित के लिये आगे बलि का हरण करना चाहिए । मन्त्र ये है— 'पुरोहिताय नम ' "धन्वन्तरये नम "। धन्वन्तरि के विदेश मे स्थित होने पर यह विशेषता है कि धन्वन्तरि और पुरोहित को एक ही पिण्ड देना चाहिए और दूसरा पिण्ड दूत के लिये देवे ।५।(१२)

उपनिषदि गर्भलम्भन पुसवनमनवलोभन च ।१। यदि नाधायात्तृताये गर्भमासे तिष्येणोपोषिताया सरूपवत्साया गोदधनि द्वौ तु माषो यव च दधि प्रसृतेन प्राशयेत् ।२। कि पिबसि कि पिबसीति पृष्ट्वा पुसवन पुसवनमिति त्रि प्रतिजानायात् ।३। एव त्रीन्प्रसृतान् ।४। अथास्य मण्डलागारच्छायाया दक्षिणस्या नासिकायामजातामोषधी नस्त करोति ।५। प्रजावज्जीवपुत्राभ्या हैके । आ ते गर्भो योनिमैतु पुमान्वाण इवेषुधिम् । आ वीरो जायता पुत्रस्ते दशमास्य । अग्निरैतु प्रथमो देवताना सोऽस्य प्रजा मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदय राजा

वरुणोऽनुमन्यता यथेयं स्त्री पौत्रमघ न रोदादिति ।६। प्राजापत्यस्य स्थालीपाकस्य हुत्वा हृदयदेशमस्या आलभेत । यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्त प्रजापतौ । मन्येऽहं मा तद्विद्वास माऽहं पौत्रमघ नियामिति ।७। ख० १३।

इस सूत्र मे 'आम्नातम्'—यह शेष है। गर्भ प्राप्त किया जाता है और जिस कर्म के द्वारा निषिक्त वीर्य अमोघ होता है उसको गर्भलम्भन कहते है। जिस कर्म से लब्ध पुमान् जन्म ग्रहण किया करता है वह पु सवन होता है। पुमान् होता हुआ जिस कर्म मे अविलुप्त नही होता है वह अनवलोपन कहा जाता है। ये किसी उपनिषद् मे आम्रात होते है ।१। कुछ विद्वानो का मत है कि आचार्य के द्वारा गर्भाधान उक्त नही है, इस को मान कर उसे नही करना चाहिये। अन्यो का मत यह है कि पुन शौनकादि उक्त मार्ग से करना चाहिए। यह पु सवन है। गर्भ के सहित मास ही गर्भ मास होता है। निरूपण—यह प्राशन कर्म्म से सम्बन्धिन होता है क्योकि उसकी प्रधानता है। गुण औयर्थात् गौण होने से उपवास के द्वारा सम्बन्धित नही होता है। उस पुनर्वसुत्रे द्वारा उपोषित पत्नी का तिष्य के द्वारा यह कर्म्म करता है। सरूप वत्स वाली गौ का ग्रहण करे। ऐसी गौ के अभाव मे असरूप वत्सा ही का ग्रहण करना चाहिए। गौ के दधि मे दो-दो माष और यव का प्रक्षेप होना चाहिए। प्रसृत् दधि मे प्रक्षिप्त करे। दो माष अण्ड स्वरूप से और शिश्न रूप से देवे ।२। क्या पियोगी ? यह प्रश्न तीन बार करके आचार्य तीन बार 'पु सवनम्' 'पु सवनम्' शब्द का उच्चारण कर के उसका उत्तर दे ।३। इस प्रकार से तीन प्रसृतो का प्राशन करना चाहिए। एक प्रसृत के प्राप्त होने पर तीन प्रसृत तुल्य धर्मो वाले किये जाते है ।४। अन्य कर्म होने से अ य काल की प्राप्ति होने पर 'अथ' यह शब्द अनन्तरता के अर्थ बतलाने वाला है। इसका मण्डलागार करके उसकी छाया मे बिठा कर इसकी दक्षिण नासिका मे त्रस्त दूर्वा को करता है। यहाँ पर दक्षिण का ग्रहण करना इन्द्रियो के अनङ्गत्व के ज्ञापन के

लिये है। नस्तीकरण अर्थ नासिका मे रस का सेवन होता है।५। प्रजावान् के द्वारा इस मन्त्र का प्रजावान् होता है" आतेगर्भो इवेषुधिम्"—इति सूक्त प्रजावान् है। जीव पुत्र के द्वारा इष्ट मन्त्र जीव पुत्र होता है। 'अग्नि रैतु इत्यादि सूक्त जीव पुत्र है। कतिपय विद्वान् इन दोनो सूक्तो से नस्त करण की इच्छा किया करते है। अन्य विद्वान् तूष्णी भाव से किया करते है। यहाँ पर 'ह'—यह शब्द अभिमतत्व के ज्ञापन के लिये होता है।६।प्राजापत्य स्थाली पाक का एक देश हवन करके इसके हृदय के समीप भाग का स्पर्श करना चाहिए। "यज्ञे सुसमीपे" इत्यादि मन्त्र के द्वारा फिर स्विष्टकृद् आदि का समापन करे। यह कर्म प्रत्येक गर्भ मे आवर्त्तित करे, क्योकि यह गर्भ का सस्कार होता है। प्रथम गर्भ मे तीसरे मास मे यदि गर्भ विज्ञात न होवे तो उस दशा मे चौथे मास मे करना चाहिए। गर्भ के विज्ञात होने पर तित्य मे पु सवन सस्कार करे। ऐसा वचन है—"ततृतीये मास्युन्यत्र गृष्टे"। गृष्टि प्रथम गर्भ को कहा जाता है। पाँचवे मास मे अङ्गो की निष्पत्ति होती है। 'माह पौत्रम्'—इस लिङ्ग के होने से इस कर्म का स्वय ही कर्त्ता होता है। यदि उसका अभाव हो तो देवर इस कर्म को सम्पादित करे।७। (१३)

चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम् ।१। आपूर्यमाणपक्षे यदा पु सा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्त स्यात् ।२। अथाग्निमुपसमाधाय पश्चादस्याऽऽनडुह चर्माऽऽस्तीर्य प्राग्ग्रीवमुत्तरलोम तस्मिन्नुपविष्टाया समन्वारब्धाया धाता ददातु दाशुष इति द्वाभ्या राकामहमिति द्वाभ्या नेजमेष प्रजापते न त्वदेतान्यन्य इति च ।३। अथास्य युग्मेन शलाटुग्लप्सेन त्रेण्या च शलल्या त्रिभिश्च कुशपिञ्जूलैरूर्ध्वं सीमन्त व्यूहति भूर्भुव स्वरोमिति त्रि ।४। चतुर्वा ।५। वीणागाथिनौ सशास्ति सोम राजन सगायेतामिति ।६। सोमो नो राजाऽवतु मानुषी प्रजा विविष्टचक्राऽसाविति या नदीमुपवसिता भवन्ति ।७। ब्राह्मण्यश्च वृद्धा जीवपत्यो

जीवप्रजा यद्यदुपदिशेयुस्तत्तत्कुर्युः ।८। ऋषभो दक्षिणा ।९ख०१४।

गर्भ से चौथे मास मे सीमन्तोन्नयन करे। जिस कर्म मे सीमान्त उन्नीत किया जाता है वह सीमान्तोन्नयन होता है। इसे चौथे मास मे करना चाहिए। यह कर्म प्रत्येक गर्भ मे आवर्त्तित नही किया जाता है। क्यो कि यह तो गर्भवती स्त्री का सस्कार होता है और यह गर्भ का सस्कार ही होता है। "एव त गभमाधेहि" यह मन्त्र का हेतु है। ऐसा कुछ विद्वानो का कथन होता है तो भी इसका आवर्तन नही होता है क्योकि आधार से सस्कार की प्रधानता होती है। यदि ऐसा कहा जाये कि कैसे प्रधानता है तो सीमान्तोन्नयनम्—यह समाख्या ही इसका बल है। और आधार सस्कृत होता है। एक बार सस्कार की हुई स्त्री जिस-जिस गभ का प्रसव किया करती है वह सब सस्कृत हो जाया करता है। इससे इस कर्म की आवृत्ति नही हुआ करती है—यह सिद्ध होता है।१। शुक्ल पक्ष मे जब भी पुमान् नक्षत्र से चन्द्रमा युक्त हो तभी इस कर्म को करना चाहिए। नक्षत्रो मे पुरुष नक्षत्र और स्त्री नक्षत्र का परिगणन ज्योतिष मे किया गया है। पुन्नामधेय नक्षत्र से चन्द्रमा युक्त होना चाहिए यही तात्पर्य है। तिष्य, हस्त और श्रवण इत्यादि नक्षत्र होते है। चन्द्रमा युक्त होता है—यह वचन प्रकर्ष से युक्त चन्द्रमा मे जो होवे—यही कथन है। साठ घडियो के मध्य मे बीच की तीस घडियो मे करे। प्रत्येक नक्षत्र साठ घडी तक रहा करता है अत उसके मध्य की घडियाँ ही ग्रहण करनी चाहिए—यही अभिप्राय है।२। इस सूत्र मे 'अथ'—यह शब्द यह ज्ञापन करने के ही लिये है कि यह कर्म अन्य काल मे भी होता है। यहाँ पर "जुहुयात्" यह शेष है। और अन्य शास्त्र मे यह काल विहित है। अग्नि का उपसमाधान करके पीछे इसके बैल का चर्म बिछाकर प्रागग्रीव उत्तर लोम उस पर उप-विष्टा और समन्वारब्धामे "धातादवातु दाशुषे" इससे दो "एकामहम्" इससे दो और अन्यो के मत से 'नेजमेष प्रजायते नत्वदेतानि' इससे आज्य

की आहुतियो का हवन करना चाहिए ।३। इसके अनन्तर इसके सम शलाटुग्लप्स अर्थात् तरुण फलो के सघात से (शलाटु अपक्व फलो की समाख्या है और ग्लप्स शब्द से स्तवक कहा जाता है क्योकि अन्य शास्त्र मे "औदुम्बर स्तवकेन" ऐसा देखा गया है) त्रेणी शलली से और तीन कुशाओ के पिञ्जूलो से—इन सबको एकीकृत करके ललाट केशो की सन्धि का आरम्भ करके ऊर्ध्व मे मन्त्र से व्यूहन करता है । "भूभुर्व स्वरोम्" इस मन्त्र को तीन बार पढे ।४। अथवा मन्त्र से चार बार व्यूहन करता है ।५। वीणा और गाथा वाले "सोम राजन सगायेताम्"—इस मन्त्र से सशासन करता है ।६। वे दोनो इस गाथा को गाते है इसीलिये कहा है—राजा सोम हमारी मानुषी प्रजा की रक्षा करे । "विनियचक्र" इस मन्त्र से यहाँ असौ—इसके स्थान मे जिस नदी के समीप मे बसते है उसका नाम आमन्त्रण की भक्ति से बोलना चाहिए । ब्राह्मणियाँ और वृद्धगण जो-जो भी उपदेश देवे वही-वही करना चाहिए । प्रैष देकर स्विष्टकृद् आदि को समाप्त करा देवे ।७-८। आसेचन मे समर्थ गौ को दक्षिणा मे देना चाहिए ।९।(१४)

कुमार जात पुराऽन्यैरालभा (म्भा)त्सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकाष हिरण्येन प्राशयेत् । प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेद सवित्रा प्रसूत मघोनाम् । आयुष्मान्गुप्तो देवताभि शत जीव शरदो लोके अस्मिन्निति ।१। कर्णयोरुपनिधाय मेधाजनन जपति । मेधां ते देव सविता मेधा देवी सरस्वती । मेधा ते अश्विनौ देवावाधत्ता पुष्करस्रजाविति ।२। असावभिमृशति । अश्मा भव परशुभव हिरण्यमस्तृत भव । वेदो वै तुत्रनामाऽसि स जीव शरद शतमिति । इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेह्यस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीशिन्निति च ।३। नाम चास्मै दद्यु ।४। घोषवदाद्यन्तरन्तस्थमभिनिष्टानान्त द्व्यक्षरम् ।५। चतुरक्षर वा ।६।

यह जातकर्म्म है। यहाँ पर कुमार का ग्रहण कुमारी की निवृत्ति के लिये है—यह कथन उचित नही है क्योकि जिस प्रकार से ब्राह्मण को नही मारना चाहिए इसका अभिप्राय यही है कि ब्राह्मणी का भी हनन नही किया जाना चाहिए। जातग्रहण अधिकार के लिये ही है। पूर्व पुरा का अर्थ है। अन्य शब्द का ग्रहण अनधिकृत आलम्भन से पहिले कर्म्म करना चाहिए—इसीलिये है। मधु और घृत हिरण्य से ससृष्ट निम्न मन्त्र के द्वारा प्राशन करना चाहिए—मन्त्र यह है—"प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेद सवित्रा प्रसूत मघोनाम्'। आयुष्मान् गुप्तो देवताभि शतजीव शरदोलोके अस्मिन्" इति।१। इस नवजात कुमार के दोनो कानो मे हिरण्य का विधान करके मेधा के जनन करने वाले अधोलिखित मन्त्र का जाप करता है। यहा पर 'उप' इसका ग्रहण मुख के समीप मे ही मुख रख कर जाप करने के लिये ही दिया गया है। मन्त्र—"मेधा ते देव सविता मेधा देवी सरस्वती। मेधाते अश्विनौ देवा वाधत्ता पुष्कर स्रजौ" इति। अर्थात् देव सविता तुझे मेधा देवे, देवी सरस्वती और दोनो अश्विनी कुमार तुझे मेधा देवे जो पुष्करो की माला धारण किये हुए है।२। इसके पश्चात अशो को अभिमृष्ट करता है। स्तनो और बाहुओ के मध्य प्रदेश का ही नाम अश होता है। यहा पर दोनो मन्त्रो के विषय मे बहुत सी विप्रतिपत्तिया होती है। यहा पर कुछ लोग यथार्थ से अभि-मर्शन चाहते हैं और सकृन्मन्त्र ही कहते है। अन्य लोग मन्त्र विभाग चाहते हैं "अस्मा भव परशुभव हिरण्य मस्तृत भव। वेदो वै पुत्र नामासि सजीव शरदाशतम्" इससे दक्षिण अश का अभिमर्शन करे और "इन्द्र श्रेष्ठामि द्रविणानि धेह्यस्मै प्रयन्धि मघ न ऋजीषिन्निनि" इन होम मन्त्रो तक का करे। कुछ का कथन है कि एक ही बार उक्त तीनो मन्त्रो को बोलना चाहिए। न तो मन्त्रो का विभाग है और न पृथक् अभिमर्श ही होता है। सिद्धान्तत यही सिद्ध होता कि तीनो मन्त्रो का उच्चारण एक बार करके एक ही साथ दोनो असो का स्पश करना चाहिए।३। इसके पश्चात् आचार्य के द्वारा जातकर्म के अनन्तर ही नामकरण भी करा देना चाहिए क्योकि अन्य काल इसके लिये नही बताया गया है।

अन्य लोग यह भी कहते है कि अन्य शास्त्र मे कथित काल का ग्रहण करना चाहिए। इस विषय मे मनु महर्षि ने कहा भी है—"नामधेय दशम्या तु द्वादश्या वापिकारयेत्। पुण्ये तिथौ मुहूर्त्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते" अर्थात् नामकरण दशम रात्रि के बाद या बारह रात्रि के बाद करना चाहिए। अथवा किसी भी पुण्य तिथि-मुहूर्त्त अथवा गुण युक्त नक्षत्र मे करे।४। अब यह बतलाया जाता है कि नाम किस प्रकार के लक्षणो वाला होना चाहिए। प्रथम और द्वितीय वर्गों के और ऊष्मा सज्ञक हकार को छोड कर अघोष वाले तथा शिष्ट घोष प्रयत्न वाले जिसके आदि मे होवे और मध्य मे अन्तस्थ वर्ण जिसमे हो और अभिनिष्ठान विसर्जनीय जिसके अन्त मे हो ऐसा नाम होना चाहिए। यकार आदि चार अन्तस्थ वर्ण होते है। अकारादि बारह स्वर हैं शेष व्यञ्जन हैं। नाम दो अक्षरो वाला ही होना चाहिए।५। अथवा चार अक्षरो वाला नाम रखना चाहिए। भद्र-देव-भव-भवनाथ-नागदेव-रुद्रदत्त-देवदत्त-ऐसे ही लक्षण वाले नाम होते है।६।

द्व्यक्षर प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षर ब्रह्मवर्चसकाम ।७। युग्मानि त्वेव पु साम् ।८। अयुजानि स्त्रीणाम् ।९। अभिवादनीय च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामोपनयनात् ।१०। प्रवासादेत्यपुत्रस्य शिर परिगृह्य जपति। अङ्गादङ्गात्सभवसि हृदयादधिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरद शतमिति मूर्धनि त्रिरवघ्राय ।११। आवृतैव कुमार्यै ।१२। ख० १५।

प्रतिष्ठा की कामना वाले का नाम दो अक्षरो वाला होता है और ब्रह्मवर्चस की कामना वाले का नाम चार अक्षरो का होता है क्योकि यह भी एक सस्कार होता है।७। एवकार यहाँ पर अवधारण के लिये है। पुरुषों के नाम युग्माक्षरो वाले होते है। यथा-जनार्दन-शिवदत्त—विष्णु शर्मा इत्यादि है।८। अयुग्म अक्षरो वाले नाम स्त्रियो के होने चाहिए। यथा-सुभद्रा-सावित्री-वसुधा इत्यादि हैं।९। नाम का ग्रहण

करके ही अभिवादन करे। अतएव साव्यावहारिक नाम रखकर अभिवादनीय नाम करना चाहिए और उसको माता-पिता उपनयन से जाना करते है।१०। प्रवास से आकर "गृही नीक्षेताप्य नाहिताग्नि" इत्यादि सूत्र मे वर्णित विधि को करके पुत्र के शिर को तीन बार अवघ्राण करके फिर अङ्गादङ्गात्सभवसि हृदयादधि जायसे। आत्मावै पुत्रनामासि स जीव शरदाशतम्" इस मन्त्र के द्वारा अवघ्राण करना चाहिए।११। कुमारी हो तो उसका बिना ही मन्त्र के अवघ्राण करे। यह अनन्तर का शेष है—ऐसा कुछ कहते है उस कम के अनन्तर करे—ऐसा दूसरे लोग कहते है।१२।(१५)

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम्।१। आजमन्नाद्यकाम।२। तत्तिर ब्रह्मवर्चसकाम।३। घृतौदन तेजस्काम।४। दधिमधुघृतमिश्रमन्न प्राशयेत्। अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमोवस्य शुष्मिण। प्र प्रदातार तारिष ऊर्ज नो धेहि द्विपदे चतुष्पद इति।५। आवृतैव कुमार्यै।६। ख०१६।

जन्म से लेकर, गर्भाधान से लेकर नही। छटवे मास मे जाताधिकार होने से वहाँ पर अन्न प्राशन कर्म्म करना चाहिए।१। अन्नादि की न कामना वाला आज का ग्रहण करे। अज का जो मास है वह आज कहा जाता है। तैत्तिर साहचर्य से यहा पर माँस का ही ग्रहण है,दधि घृतादिक का ग्रहण नही है।२। यहाँ पर ओदन के ग्रहण से घृत-सस्कृत ओदन है। यदि घृत मिश्रित अभिप्रेत होता तो "घृत तेजस्काम" इतना ही सूत्र कहा गया होता। और इससे पूर्ववत् व्यञ्जनत्व होने से अन्य भी सिद्ध होता ही है। जहा पर घृतौदन चाहता है वहाँ पर नेदीयस घृत से करने पर घृत सस्कृत होता है। विक्लदे की उपपत्ति न होने से घृत मे श्रपण नही होता है।३ ४। "अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्य नमीवस्य शुश्मिण। प्र प्रदातार तारिषऊर्ज नो धेहि द्विपदे चतुष्पद" इस मन्त्र के द्वारा दधि-मधु और घृत मिश्रित अन्न का प्राशन कराना चाहिए।५। कुमार के ही लिये ही विधि है। जो कुमारी हो तो उसका अन्न प्राशन सस्कार मन्त्र रहित ही कर लेना चाहिए।६।(१६)

तृतीये वर्षे चौल यथाकुलधर्म वा ।१। उत्तरतोऽग्नेर्व्रीहि-यवमाषतिलाना पृथक्पूर्णशरावाणि निदधाति ।२। पश्चात्कारयिष्यमाणो मातुरुपस्थ आनडुह गोमय नवे शरावे शमीपर्णानि चोपनिहितानि भवन्ति ।३। मातु पिता दक्षिणत एकविंशतिकुशपिञ्जूलान्यादाय ।४। ब्रह्मा वैतानि धारयेत् ।५। पश्चात्कारयिष्यमाणस्याव-स्थाय शीतोष्णा अप समानीयोष्णेन वा य उदकेनेहीति ।६। तासा गृहीत्वा नवनीत दधिद्रप्सान्वा प्रदक्षिण शिरस्त्रिरुन्दति । अदिति केशान्वपत्वाप उन्दन्तु वर्चस इति ।७।

जन्म से लेकर तृतीय वर्ष मे अथवा कुलधर्म के द्वारा उपदिष्ट काल मे चौल करना चाहिए । 'कार्पम्'—यह व्यवस्थित विकल्प होता है । कुछ के मत से उपनयन के साथ ही साथ किया जाता है ।१। प्रणीता प्रणयन के उत्तर काल मे अग्नि के उत्तर मे व्रीहि-माष और तिलो से परिपूण (भरे हुए) शरावो (सकोरो) को स्थापित करता है । यहा पर पृथक् का ग्रहण करना द्रव्यो के भेद के लिये ही है । अन्यथा समास के उपदेश होने से मिश्रितो का ही पूरण मान लिया जाता है ।२। अग्नि के पीछे कराये जाने वाला कुमार हे और तत्प्रयुक्त चौल है । वह कुमार माता के उत्सङ्ग मे है । नवीन शराव मे गोमय उपनिहित होता है । शमी के पत्ते अन्य नव शराव मे उपनिहित होते है ।३। माता के दक्षिण मे पिता इक्कीस कुशा के पिञ्जुलको को लेकर रहता है । माता के ही दक्षिण मे रहे और अग्नि के दक्षिण मे न होवे ।४। इन कुश पिञ्जुलको को ब्रह्मा धारण करे यदि ब्रह्मा वहाँ पर विद्यमान होवे ।५। अधारान्त करके अर्थात् पूर्वोक्त आहुतियो का हवन करके कुमार के पश्चिम देश मे स्थित होकर शीत उष्ण उदक को दोनो हाथो से ग्रहण करके अन्य पात्र मे एक साथ निनयन करता है । "उष्णेन" इस मन्त्र से करे ।६। उन जलो के एक देश को ग्रहण करके और नव-

नीत को ग्रहण करके, इसके अभाव मे दधिद्रप्सो को ग्रहण करके मन्त्र के द्वारा तीन बार प्रदक्षिण शिर को क्लेदित करता है। 'अदिति के शान्व-षत्वाय उन्दन्तुवचस इति"—यह मन्त्र है। अथ यह है कि अदित केशो का वपन करे और जल वर्चम के लिये क्लेदित करें।७।

दक्षिणे केशपक्षे त्रीणि त्रीणिकुशपिञ्जूलान्यभ्यात्मा ग्राणि निदधाति—ओषधे त्रायस्वैनम् ।८। स्वधिते मैन हिसीरिति निष्पीडच लौहेन क्षुरेण ।९। प्रच्छिनत्ति येनावपत्सविता शुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्यविद्वान्। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्याऽऽयुष्माञ्जरदष्टिर्यथासदिति ।१०। प्रच्छिद्य प्रच्छिद्य प्रागग्राञ्छमोपर्णे सह मात्रे प्रयच्छति तानानडुहे गोमये निदधाति ।११। येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चाऽऽयुषेऽवपत् । तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तय इति द्वितीयम् । येन भूयश्च रात्र्या ज्योक् च पश्याति सूर्यम् । तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तय इति तृतोयम् ।१२।

यहाँ पर दक्षिण शब्द का ग्रहण करना विशेष स्पष्टता के लिये ही है। उस केशपाश मे तीन-तीन कुश पिञ्जुलको को कुमार के मन्त्र के द्वारा अभ्यात्माग्रो को स्थापित करता है। "ओषधे त्रायस्वैनम्" यह मन्त्र है ।८। 'स्वधिते मैन हिंसी" इस मन्त्र से उन कुशा पिञ्जलको को लोहे के उस्तरा से निष्पीडित करता है। अर्थात् उन पर क्षुर को स्थापित करता है। लोक मे क्षुर लोहे का है—यह प्रसिद्ध है अतएव यहाँ पर उसके अवाच्य होने से लौह शब्द ताम्र मे वर्त्तमान होता है। और अन्य शास्त्र मे विहित भो है। लोक मे लौह शब्द रजत आदि मे भी आता है किन्तु यहाँ पर उस प्रकार से दृष्ट होने के कारण से ताम्र मे ही आता है ।९। "प्रच्छिनत्ति येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् तेन ब्रह्माणो वपते दमस्याऽयुष्माज्जरदृष्टियथा सदिति" यह मन्त्र है। इसी से उस क्षुर से छेदन करता है ।१०। यह दो बार की उक्ति यहाँ पर

जो भी धम है उसमे उपादिष्ट किया जाना है जिममे सभी छेदो मे होवे। प्रणग्रो को शमी के पर्णों के साथ इकट्ठे करके शिशु की माता को स्वय दे देता है। उनको यह गौ के गोबर मे स्थापित करनी है।११। ये दो मन्त्र है—"येन धाता वृहस्पने एनेरिन्द्रस्य चाऽयुषेऽवपत्। तेन त आयुषेवपामि सुश्लक्याय स्वस्तये" इति द्वितीय मन्त्र है—"येन भूयश्चरात्र्या ज्योक् च पश्याति सूर्य्यम्। तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये" इति। यह तृतीय मन्त्र है। यहाँ पर सख्या वचन अन्य मन्त्र के प्रदर्शन के लिये ही दिया गया है।१२।

सर्वैर्मश्चतुर्थम् ।१३। एवमुतरतस्त्रि ।१४। क्षुरतेजो निमृजेत् । यत्क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वप्ता वपासि केशान् । शुन्धि शिरो माऽस्याऽऽयु प्रमोषीरिति ।१५। नापित शिष्याच्छीतोष्णाभिराद्भिरबर्थ कुर्वाणोऽक्षण्वन्कुशलोकुर्विति ।१६। यथाकुलधर्म केशवेशान्कारयेत् ।१७। आवृतैव कुमार्यै ।१८। ख० १७।

उपयुक्त तीनो मन्त्रो के द्वारा चौथी बार भी छेदन करता है।१३। जिस प्रकार से दक्षिण की ओर केशो के पक्ष मे किया गया है उसी भाँति उत्तर केश पक्ष मे करना चाहिए और तीन बार करे। १४। इसके उपरान्त क्षुर की (उस्तरा की) धारा को मन्त्र के द्वारा शोधन करना चाहिए। निमाजन-अवमार्जन दोनो होते है। 'यत्क्षुरेणमचयता सुपेशसा वप्ता वपसिकेशान्। शुन्धि शिरोमाऽस्याऽऽयु प्रमोषीरिति" यह मन्त्र है।१५। "नापित शिष्याच्छीतोष्णामिरद्भि रबथ कुर्वाणोऽक्षण्व कुशली कुर्विति"-यह मन्त्र बोलना चाहिए।१६। अपने कुल के धम के अनुसार ही केशो के वेशो को करना चाहिए। वौद्यायन कहते है—एक शिखा वाला—तीनशिखा वाला—अथवा पाचशिखा वाला होवे। इनमे जिस कुल मे जो भी धर्म हो उसी के अनुकूल करना चाहिए। कुमारी के लिए अमन्त्रक ही कर्म करे। यहाँ पर एक बार अवधारण के ही लिये दिया गया है। विना मन्त्रो वाला होम कही भी इष्ट नही होता है—ऐसी

शङ्का नही करनी चाहिए क्योकि वहा पर भी 'प्रजापतये स्वाहा'—यह मन्त्र होता ही है ।१८।

एतेन गोदानम् ।१। षोडशे वर्षे ।२। केशशब्दे तु शमश्रु-शब्दान्कारयेत्।३। श्मश्रूणीहोन्दति ।४। शुन्धिशिरो मुख माऽस्याऽऽयु प्रमोषीरिति ।५। केशश्मश्रुलोमनखान्युद-क्सस्थानि कुर्विति सप्रेष्यति ।६। आप्लुत्य वाग्यत स्थि-त्वाऽह शेषमाचार्यसकाशे वाच विसृजेत । वर दद्दामीति ।७। गोमिथुन दक्षिणा ।८। सवत्सरमादिशेत् ।९। ख० १८।

इससे गोदान की व्याख्या की गई है। यहाँ पर 'व्याख्यानम्—यह शेष है। 'एतेन'—इससे सम्पूर्ण का उपदेश होता है ।१। तृतीय का अप-चार है क्योकि इसमे माना के उपस्थोपवेश नही होता है वह इसको मुक्त नही होता है। अत षोडश वर्ष मे करना चाहिए ।२। केश शब्द मे श्मश्रु शब्दो को करावे। इससे दक्षिण पक्ष मे श्मश्रु पक्ष—यह साधित होता है ।३। यहाँ पर श्मश्रुओ को क्लेदित करता है। यह शिर उन्दनका अपवाद है ।४। मन्त्र यह है—"शुन्धि शिरो मुख माऽस्याऽऽडयु प्रमोषी-रिति" ।५। "केशश्मश्रु लोम नखान्युदक सस्थानिकुरु"—यह भाषित का अनुशासन होता है ।६। वहा पर स्नान करके वाग्यत अर्थात् मौन होकर स्थित रहे। यहा पर उपवेशन का प्रतिषेध होता है। इस प्रकार से अह अर्थात् दिन के शेष भाग मे स्थित रहे और जब अस्तमित काल हो उसमे आचार्य के समीप मे 'वर ददामि' इसका विसर्जन करना चाहिए ।७। दो गौ की दक्षिणा है। यदि यह भिक्षु हो तो दो गौ की दक्षिणा कैसे सम्भव हो सकती है—ऐसी शङ्का का समाधान है जैसा प्रावरणादि का सम्भव हो वैसा ही इसका भी करे ।८। इस रीति से गोदान करके आगे बतायी हुई विधि से एक सम्वत्सर तक व्रत का समाचरण करना चाहिए। व्रतादेश की अनुपपत्ति होने पर दूसरे दिन यह कर्म करना चाहिए ।९।

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् ।१। गर्भाष्टमे वा ।२। एका-दशे क्षत्रियम् ।३। द्वादशेवैश्यम् ।४। आ षोडशाब्राह्मण

स्यानतीत काल ।५। आ द्वाविशात्क्षत्रियस्या चतु
विशाद्वैश्यस्यात उर्ध्व पतितसावित्रीका भवन्ति ।६।
नैनानुपनयेन्नाध्यापयेन्न याजयेन्न भिर्व्यवहरेयु ।७।

जन्म से लेकर अष्टम वण मे ब्राह्मण का उपनयन करना चाहिए और यह कुमारी की निवृत्ति के लिए ही यहाँ पर कुमार है ।१। अथवा गर्भाधान से लेकर अष्टम वष मे करना चाहिए ।२। जन्म से अथवा गभ से लेकर ग्यारहवे वष मे क्षत्रिय को उपनीत करना चाहिए ।३। जन्म या गर्भ से आरम्भ करके द्वादशवे वर्ष मे वैश्य का उपनयन करना चाहिए ।४। सोलह वष तक ब्राह्मण के उपनयन का काल अव्रतीत हो जाता है अर्थात् उपनयन सस्कार का समय अतीत नही होता है ।५। क्षत्रिय और वैश्य इन दोनो का काल बाईस और चौबीस वर्ष तक क्रम से अतीत नही होता है । इस उपर्युक्त समय से ऊपर जो भी इन तीनो वर्णो का समय है ब्रह्म मे ये तीनो ही वर्ण पतित सावित्री वाले हो जाया करते है अर्थात् ये पतित होकर सावित्री के अधिकारी नही रहा करते है ।६। इस काल के ऊपर ये प्रायश्चित्त के करने के भी अधिकारी नही रहा करते है । उपनयन के प्रतिषेध होने,ही से सवत्र प्रतिपेध सिद्ध हो जाता है । इस काल के ऊपर भी लालच से अथवा अज्ञान से कोई उपनयन करता है तो अनुचित है । उनको जो सावित्री के प्राप्त करन के अधिकार से पतित हो गये है उनका उपनयन–अध्यापन–यजनन और व्यवहार कुछ भी नही करना चाहिए ।७।

अलकृत कुमारकुशलीकृतशिरसमहतेन वाससा सवीत-
मैणेयेन वाऽजिनेन ब्राह्मण रौरवेण क्षत्रियमाजेन
वैश्यम् ।८। यदि वासासि वसीरन्रक्तानि वसीरन्कषाय
ब्राह्मणो माञ्जिष्ठ क्षत्रियो हारिद्र वैश्य ।९। तेषा मे-
खला ।१०। मौञ्जी ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या क्षत्रियस्य आवी
वश्यस्य ।११। तेषा दण्डा ।१२। पालाशो ब्राह्म-
णस्य औदुम्बर क्षत्रियस्य बैल्वो वैश्यस्य केशसमितो

ब्राह्मणस्य ललाटसमित क्षत्रियस्य प्राणसमितो वैश्यस्य ।१३। ख० १६ ।

शिर के वपन किये हुए-अलङकृत और नूतन वस्त्र से सवीत कुमार को करे। जो ब्राह्मण हो उसको ऐणेय अजिन से-रौरव अजिन से क्षत्रिय को और बकरी के अजिन से वैश्य को प्राकृत करना चाहिए।८। यदि एक रगे हुए वस्त्रो का परिधान करे तो ब्राह्मण काषाय वस्त्र का परिधान करे-क्षत्रिय मजीठ के रग वाले को पहिले और वैश्य हारिद्र रँग वाल वस्त्र को धारण करे ।९। अब उन तीनो वर्णो वालो की मेखलाओ के विषय मे बतलाया जाता है।१०। ब्राह्मण की मेखला मूज की होती है अन्य वर्ण की नही होती है। अथवा अन्य होती है—इसमे कोई भी नियम नही है। क्षत्रिय की मेखला धनुष की डोरी की हुआ करती है और वैश्य वर्ण वाले उपनीत ब्रह्मचारी की आवी मेखला होती है ।११। अब उन तीनो वर्णो की उपनीत ब्रह्मचारियो के दण्ड कैसे और किस वृक्ष के होने चाहिए—यह बतलाया जाता है।१२। पलाश (ढाक) का दण्ड ब्राह्मण का हुआ करना है। उदुम्बर (गूलर) का दण्ड क्षत्रिय का होता है। विल्व वृक्ष से बनाया हुआ दण्ड वैश्य का होता है। अब उन दण्डो का पृथक् पृथक् प्रमाण भी बताया जाता है—मस्तक के केशो तक पहुँचने वाला दण्ड ब्राह्मण का होता है—ललाट् तक परिमाण मे जाने वाला दण्ड क्षत्रिय का हुआ करता है और प्राण वायु जहा रहता है वहा तक पहुचने वाला लम्बा दण्ड वैश्य का होता है। मेखलाओ के तुल्य ही दण्ड का नियम होता है।१३।

सर्वे वा सर्वेषाम् ।१। समन्वारब्धे हुत्वोत्तरतोऽग्ने प्रङ्मुख आचार्योऽवतिष्ठते ।२। पुरस्तात्प्रत्यङ्मुख इतर ।३। अपामञ्जली पूरयित्वातत्सवितुर्वृणीमह इति पूर्णेनास्य पूर्णमवक्षारयत्यासिच्य देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनो-र्बाहुभ्यापूष्णो हस्ताभ्या हस्त गृहणाम्यसाविति तस्य पाणिना पाणि साङ्गुष्ठ गृहणीयात् ।४। सविता ते

हस्तमग्रभोदसाविति द्वितीयम् । अग्निराचार्यस्तवासा-
विति तृतोयम् ।५।

अथवा सभी के लिए उक्त वृक्षो के सब दण्ड हो सकते हैं जो कि पलाश आदि के बतलाये गये है ।१। आज्य का वर्हि मे आसदानान्त तक करके समन्वारब्ध मे ब्रह्मचारिणी ध्याघारान्त करके पूर्व मे वर्णित आज्य की आहुतियो का हवन करे । अग्नि के उत्तर भाग मे पूव की ओर मुख वाला आचार्य अवस्थित होता है । ब्रह्मचारी तीथ के द्वारा प्रवेश करके दक्षिण की ओर उपवेशन करे । तीर्थ प्रणीताओ का पश्चिम देश होता है । सब जगह तीर्थ से ही प्रवेश करके कर्म करना चाहिए ।२। आचार्य के आगे प्रत्यड्मुख होकर ब्रह्मचारी को अवस्थित होना चाहिए ।३। जल से दोनो अञ्जलियो को पूरित करके अपनी पूण अञ्जलियो से इसकी पूण अञ्जलि को अवक्षाग्ति करता है । इसका मन्त्र "तत्सवितुर्वृणीमहे" यह है । इसके उपगन्त "देवस्य त्वा"—इस मन्त्र से उसके अडगुष्ठ सहित हाथ को ग्रहण करना चाहिए । आचाय की अञ्जलि को अन्य पूरित करता है । आसिच्य—यह वचन आचार्य अवक्षारण करे और कुमार न करे—इमीलिये है । इसका पूरा मन्त्र यह है—"देवस्य त्वा सविनु प्रसवेऽश्विनो र्वाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्या हस्त गृह्णामि" । इससे यह सिद्ध हो गया है कि आचार्य अवक्षारण करता है ।४। "सविला ते हस्त मग्रभीदसौ" इति-इससे द्वितीय है "अग्नि राचार्य्यस्तवामौ" इति—इमसे तृतीय होती है । यहा पर सख्या का वचन प्रथम हस्त ग्रहण दृष्टाज्जलि पूरणादि धर्म प्राप्ति के लिये ही है ।५।

आदित्यमीक्षयेत् । देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी त गो-
पाय स मामृतेत्याचार्य ।६। कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य
ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुयनयते काय त्वा परिददामीति
। । युवा सुवासा परिवोत आगादित्यर्धर्चेनैन प्रदक्षि-
णामावर्तयेत् ।८। तस्याध्यसौ पाणी कृत्वा हृदयदेशमा-
लभेतोत्तरेण ।९। अग्नि परिसमुह्य ब्रह्मचारी तूष्णी

समिधमादध्यात्तूष्णी वै प्राजापत्य प्राजापत्यो ब्रह्मचारी भवतीति विज्ञायते ।१०। ख० २० ।

इसके अनन्तर मन्त्र के द्वारा आचाय ब्रह्मचारी को आदित्य का दर्शन करावे । मन्त्र यह है—"देव सवितेरेव ते ब्रह्मचारी त गोमाय समामृना" इति ।६। यह मन्त्र आचार्य का है । प्रजापति के लिए ब्रह्मचारी प्रदान किया जाता है। यहा पर 'जयेत्' यह शेष है । मन्त्र का स्वरूप यह है—"कस्य ब्रह्मचार्यासि प्राणस्य ब्रह्मचार्यासि कस्त्वा कमुपनयनेकाय त्वा परिददामि" इति ।७। "युवा सुवास्त परिवीत आगाद्"—इस आधी ऋचा से इस ब्रह्मचारी को प्रदक्षिण आवर्त्तित करना चाहिए ।८। ब्रह्मचारी के दोनो अशो के ऊपर अपने हाथो को करके उसके हृदय देश के समीप का स्पर्श कर और उत्तर अर्ध ऋचा से करना चाहिए ।६। सायङ्काल और प्रात काल मे समिधाओ के आधान मे परिसमूहन पर्युक्षण जिस प्रकार से होवे इसीलिए परिसमूहन वचन है । अग्नि का परिसमूहन करके ब्रह्मचारी चुपचाप समिधाओ का आधान करे । ब्रह्मचारी वचन आचार्य की निवृत्ति के लिये ब्रह्मचारी यह वचन है । "जो प्रजापत्य है वह तूष्णी और ब्रह्मचारी प्रजापत्य है"—यह श्रूयमाण होता है ।१०।

मन्त्रेण हैकेऽग्नये समिधमाहार्ष बृहते जातवेदसे । तया त्वमग्नेवधस्व समिधा ब्रह्मणा वय स्वाहेति ।१। स समिधमाधायाग्निमुपस्पृश्य मुख निमार्ष्टि विस्तेजसा मा समनज्मीति ।२। तेजसा ह्येवाऽऽत्मान समनक्तीति विज्ञायते ।३। मयि मेधा प्रजा मय्यग्निस्तेजो दधातु । मयि मेधा मयि प्रजा मयीन्द्र इन्द्रिय दधातु । मयि मेधा मयि प्रजा मयि सूर्यो भ्राजो दधातु। यत्ते अग्ने तेजस्तेनाह तेजस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाह वर्चस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने हरस्तेनाह हरस्वी भूयासम् । इत्युपस्थाय जान्वाच्योपसगृह्य ब्रूयादधीहि भो सावित्री भो३ अनुब्रू३ हीति ।४। तस्य वाससा

पणिभ्या च पाणी सगृह्य सावित्रीमन्वाह पच्छोऽर्धर्चश सर्वाम् ।५। यथाशक्ति वाचयीत ।६। हृदयदेशेऽस्योर्ध्वाङ्गलि पाणिमुपदधाति । मम व्रते हृदय त दधामि मम चित्तमनु चित्त ते अस्तु । मम वाचमेकव्रतो-जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यमिति ।७। ख० २१ ।

कतिमय विद्वान् मन्त्र के द्वारा समिधा धान की चाहते है। यहा सूत्र मे 'ह' शब्द अभिमत तत्व के ज्ञापन करने के लिये ही है। मन्त्र यह है—"अग्नये समिधमाहार्ष वृहते जात वेदसे। तया त्वमाने वर्धस्व समिधा ब्राह्मण वय स्वाहा" अर्थात् बृहत् जात वेदा अग्नि के लिये समिधा का आहरण मैने किया है। हे अग्ने ! उस समिधा से तुम वर्धमान होओ। पूर्व श्रुति के उत्कृष्टत्व होने पर भी दोनो की तुल्यता सिद्ध होती है ।१। ब्रह्मचारी समिधा का आधान करके अग्नि का उपस्पर्शन करे और मन्त्र के द्वारा तीन बार मुख का निमाजन करता है। मन्त्र—"तेजसा मा समनज्मि" इति। यह है ।२। तेज से ही आत्मा को भली भाँति अक्त करता है"—इसके द्वारा विज्ञायमान होता है। अग्नि का उप स्पशन भी तीन बार होता है ।३। अग्नि देव मुझमे मेधा को—मुझ मे प्रजा को और मेरे अन्दर तेज धारण करे। इन्द्रदेव मेरे अन्दर मेधा—प्रजा और इन्द्रिय को धारण करे। सूर्यदेव मेरे अन्दर मेधा—प्रजा और भ्राज को धारण कर देवे। हे अग्ने ! जो आपका तेज है उससे मे तेजस्वी हो जाऊँ। हे अग्निदेव ! जो आपका वर्च है उससे से वचस्वी हो जाऊँ। हे अग्ने ! जो आपका डर है उससे मैं हरस्वी हो जाँऊ। इस प्रकार से इन छै मन्त्रो से उपस्थान करके दक्षिण जानु को। विधि व्रत उप से ग्रह कर करके आचार्य देव से बोलना चाहिए कि भो ! सावित्री को बताइये, भो ! अनुकथन कनिष्ठ ! इति ।४। उस ब्रह्मचारी के परिहित वस्त्र से और हाथो से दोनो हाथो को सग्रहण करके सावित्री का अनुकथन करता है। आधी ऋचा का पच्छ है। इस रीति से सबको कहे ।५। स्वय पाद-पाद को कहकर उससे कहलवाता है। यदि ब्रह्मचारी पाद—पाद को बोल नही सकता है तो उससे यथा शक्ति बतलाना चाहिए। इस प्रकार से

आधी ऋचा को कहे और सब को कहे ।६। ब्रह्मचारी के हृदय केश के समीप मे ऊर्ध्व अङ्गुलि वाले अपने हाथ को उपधान करता है अर्थात् स्थापित करता है—मेरे व्रत मे तेरे हृदय को धारण करता हूँ—मेरा चित्त आपका अनुचित्त होवे–मेरे वचन को एक व्रत सेवन करो –बृहस्पति मेरे लिये तुझको नियुक्त करे ।७।

मेखलामाबध्य दण्ड प्रदायब्रह्मचर्यमादिशेत् ।१। ब्रह्मचार्यस्यपोऽशान कर्म कुश दिवा मा स्वाप्मीराचार्याधीनो वेदमधीष्वेति ।२। द्वादश वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यम् ।३। ग्रहणान्त वा ।४। सायप्रातर्भिक्षेत ।५।

मेखला को आवद्ध करके दण्ड देकर ब्रह्मचय का आदेश करना चाहिए ।१। ब्रह्मचारी हो अतएव अयोदशान कर्म्म करो। दिन के समय मे कभी शयन मत करो और आचाय देव के अधीन होते हुए वेद का अध्ययन करो । अपाशान का तात्पर्य यह है कि मूत्र पुरीष आदि मे शास्त्र मे विहित आचमन करो । कम से शास्त्र विहित सन्ध्योपासनादि करो ।२। मन्त्र और ब्राह्मण दोनो का वेद नाम होता है । वेद के लिये जो ब्रह्मचर्य होता है उसी को वेद ब्रह्मचर्य कहते हैं । यह बारह वर्ष के काल का नियम वेदमात्र के ही लिये है । इससे महान् अग्न्यादि व्रत्तो के ऊपर द्वादश वर्षों से तीन सम्वत्सर होते हैं । और इस प्रकार से करके उपनयन से लेकर सोहलवे वर्ष मे गौ दान सिद्ध होता है । एक-एक वेद के द्वादश वष का ब्रह्मचय होता है । इस तरह से दो वेदो के चौबीस वर्ष होते है, तीन के छत्तीस और चारो के लिये अडतालीस वर्ष होते है ।३। अथवा वेदो के ग्रहण के अन्त तक ब्रह्मचर्य्य होता है बारह वष से पहिले या पीछे तक होवे । इस प्रकार से बोलने वाले के द्वारा तीन प्रकार के स्नान प्रदर्शित किये जाते है । विद्या स्नान–व्रतस्नान और विद्याव्रत स्नान वे तीन भेद है । बारह वष से पूर्व वेद का अध्ययन करके जो स्नान करता है वह विद्या स्नातक होता है, जो बारह वर्ष तक ब्रह्मचय करके अनधीत वेद वाला स्नान करता है वह व्रत

स्नातक होता है। जो पुन बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण कर वेदो का अध्ययन करने वाला होता है वह विद्याव्रत स्नातक होता है। इसके पश्चात् स्विष्टकृत् आदि कृत्य का समापन करना चाहिए ।४। दिन मे और रात्रि मे आचार्य के लिये और अशन करने के लिये अन्न की याचना करनी चाहिए। उस भिक्षा चरण मे जो अन्य शास्त्र मे विधि देखी गयी है कि भवत् शब्द का प्रयोग कहाँ पर करे—इसको देख लेना चाहिए ।५।

साय प्रात समिधमादध्यात् ।६। अप्रत्याख्यायिनमग्रे भिक्षेताप्रत्याख्यारयिनी वा ।७।भवान्भिक्षा ददात्विति, अनुप्रवचनीयामिति वा ।८। तदाचार्याय वेदयीत् तिष्ठेदह शेषम् ।६। अस्त मिते ब्रह्मौदनमनुप्रवचनीय श्रपयित्वाऽऽचार्याय वेदयीत ।१०।

ब्रह्मचारी के हृदय के भाग के समीप मे ऊर्ध्व अगुलि वाले अपने हाथ को स्थापित करना है। उसका मन्त्र यह है—'मम व्रते हृदय ते दधामि मम चित्त मनुचित्त ते अस्तु। मम वाचमेक व्रतो जुषस्व वृहस्पतिष्ट्वा विमुमक्तु मह्यम्"। अर्थात् मेरे व्रत मे तेरे हृदय को धारण करता हूँ मेरा चित्त तेरे अनुचित्त हावे। मेरी वाणी को एक व्रत होकर सेवन करे। वृहस्पनि मेरे लिये ही तुझको नियुक्त करे। यदि ब्रह्मचारी पाद-पाद को नही बोल सकता है तो उससे यथा शक्ति वाचन कराना चाहिए। इस प्रकार से आधी ऋक् अथवा सबको वचवावे ।६-७। सायङ्काल और प्रात काल मे समिधाओ का आधान करना चाहिए। अग्नि-का परिसमूहन करके उपस्थान के अन्त तक धर्म होते है। इससे भैक्ष-पूर्व मे होना है-इस क्रम का नियम नही है, आगे अप्रत्याख्यान करने वाले से भिक्षा की याचना करे अथवा प्रत्याख्यान न करने वाली से याचना करनी चाहिए। स्त्री से भिक्षा ग्रहण यदि करे तो दोनो जगह मे मन्त्र मे "भवती दद तु"—यह बोलना चाहिए ।८। उस लब्ध हुए भैक्ष को लाकर आचार्य को निवेदित कर देवे और उस दिन मे जितना भी

शिष्ट काल हो उसमे स्थित रहे अर्थात् खडा ही रहे उपवेशन नही करे ।६। इस सूत्र मे ब्रह्म शब्द ब्राह्मण का वाचक है। जो ओदव ब्राह्मणो के लिये है वह ब्रह्मौदन कहा गया है। जो अनु प्रवचन निमित्त जो होता है वह अनुप्रवचनीय होता है। ब्राह्मणो का भोजन विद्यास्यमान होता है इसीलिये चसका होता है सूर्य के अस्तमित होने पर अनुप्रवचनीय ब्रह्मदेव का श्रवण करके आचार्य को वेदन कर देवे ।१०।

आचार्यं समन्वारब्धे जुहुयात् । सहसस्पतिपद्भुतमिति ।११। सावित्र्या द्वितीयम् ।२१। यद्यात्किचात्त ऊर्ध्वमनूक्त स्यात् ।१३। ऋषिभ्यस्तृतीयम् ।१४। सौविष्टकृत चतुर्थम् । १५ । ब्राह्मणान्भोजत्विा वेदसमाप्ति वाचयीत । १६ । अत ऊर्ध्वमक्षारालवणाशी ब्रह्मचार्यध शायी त्रिरात्र द्वादशरात्र सवत्सर वा ।१७। चरितव्रताय मेधाजनन करोति ।१८।

इसके उपरान्त आचार्य्य समन्वारब्ध मे ब्रह्म चारिणीधमाधानद्याधार पर्य्यन्त करके "सहसस्यतिमद्भुतम्" इस ऋक् से हवन करना चाहिए ।११। यहॉ पर द्वितीय का ग्रहण उत्तरार्थ है। सावित्री 'तत्सवितुर्वरेण्यम्" यह प्रसिद्ध है। इससे दूसरी आहुति देवे ।१२। इसके ऊर्ध्व मे भी नाग्न्याद्विजनो मे जो जो अनूक्त है उस उससे द्वितीय होम को करता है। यहाँ पर यही कहना है कि महानाग्न्यादि व्रतो मे श्रवणान्त मे अनुप्रवचनीय होम करना चाहिए। वहॉ पर सावित्री के स्थान मे 'महामाग्नीभ्य स्वाहा—महाव्रताय स्वाहा—उपनिषदे स्वाहा" इस प्रकार से द्वितीय होम करना चाहिए ।१३। यहाँ पर तृतीय वचन ऋषिभ्य इसके विधायकृत्व को निर्वतित करके मन्त्रत्व यापन के लिये है। इससे "ऋषिभ्य स्वाहा" इससे हवन करता है ।१४। सौविष्ट कृत चौथा हवन करे ।१५। ब्राह्मणो को भोजन कराकर आष्ट वेद की समाप्ति बोले— यह बोलना चाहिए ।१६। इससे आगे अक्षार लवण का अशन करने वाला ब्रह्मचारी अधःशायी होवे। तीन रात्रि-द्वादश रात्रि अथवा वर्ष

कहा है ।१७। यहाँ इस सूत्र मे 'चरित्र व्रताय'—यह वचन मेधा जनन के द्वारा व्रत के सम्बन्ध के लिये ही है। इससे जहाँ पर उपनयन के द्वारा मेधा का जनन है वही पर व्रतचर्य्या होती है। जहाँ पर व्रतचर्या है वही पर अनुप्रवचनीय है ।१८।

अनिन्दिताया दिश्येकमूल पलाश कुशस्तम्ब वा पलाशापचारे प्रदक्षिणमुदकुम्भेन त्रि परिषिञ्चन्त वाचयति । सुश्रव सुश्रवा असि यथा त्व सुश्रव सुश्रवा अस्येव मा सुश्रव सौश्रवस कुरु । यथा त्व यज्ञस्य निधिपोऽस्येवमह मनुष्याणा वेदस्य निधिपो भूयासमिति ।१९। एतेन वापनादि परिदानान्त व्रतादेशन व्याख्यातम् । २० । इत्यनुपेतपूर्वस्य ।२१। अथोपेतपूर्वस्य ।२२। कृताकृत केशवपन मेधाजनन च ।२३। अनिरुक्त परिदानम् ।२४। कालश्च ।२५। तत्सवितुर्वृणीमह इति सावित्रीम् ।२६। ख० २२ ।

यह मेधा जनन है। तीन दिशाऐ निन्दित होती हैं—दक्षिणा-प्राग्-दक्षिणा और प्रत्यग्दक्षिणा । अन्य सभी दिशाऐं अनिन्दित होती है। उस अनिन्दित दिशा मे एक मूल पलाश अथवा पलाश के अभाव मे कुशस्तम्ब को प्रदक्षिण जल के कुम्भ से तीन बार परिषेचन करते हुए ब्रह्मचारी को 'सुश्रव' इस मन्त्र को बँचवाता है। एक मूल का अर्थ शाखा रहित होता है। पूर्ण मन्त्र यह है—"सुश्रव सुश्रवा असि यथा-त्व सुश्रव सुश्रवा अस्येव मा सुश्रव सौ श्रवस कुरु। यथा त्व देवाना यज्ञस्य निधियोऽस्येव मह मनुष्याणा वेदस्य निधियो भूयासम्" इति ।१९। इसके द्वारा वापनादि परिदानान्त व्रतादेशन की व्याख्या कर दी गयी है। यहाँ पर वापनादि का ग्रहण अलङ्कारो की निवृत्ति के ही लिये है। परिदानान्त वचन उत्तरितन्त्र की निवृत्ति के लिये है ।२०। 'इति'—यह उपनयन है। उत्तर की विवक्षा से यह आरम्भ किया जाता है ।२१। इसके अनन्तर उपेत पूर्व की विशेषता की व्याख्या करेगे ।२२। कृताकृत

केशो का वपन और मेधा जनन है ।२३। परिदान अनिरुक्त है—यह नही होता है ।२४। और उदगयन आदि अनिरुक्त है ।२५। पूव मे कथित सावित्री के स्थान मे 'तत्सवितुवृ णीमहे' इस सावित्री प्रयोग करना चाहिए । प्रायश्चित्तत्व होने से प्रनरुपनयन की प्राप्ति होने पर इस प्रकार से करना चाहिए ।२५-२६।

ऋत्विजो वृणीतेऽन्यूनानतिरिक्ताङ्गान्ये मातृत पितृत-श्चेति यथोक्त पुरस्तात् ।१। यून ऋत्विजो वृणीत इत्येके ।२। ब्रह्माणमेव प्रथम वृणीतेऽय होतारम थाध्वर्यु मथोद्गातारम् ।३। सर्वान्वा येऽहीनैकाहैर्याजय-न्ति ।४। सदस्य सप्तदश कौषीतकिन समामनन्ति स कर्मणामुपद्रष्टा भवतीति तदुक्तमृग्भ्या यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्त इति ।५।

प्रमाण से और परिमाण से अन्यून अङ्गो वाले और अतिरिक्त अङ्गो वाले ऋत्विजो का स भजन भजन करता है । "मातृत पितृतश्च"—इसमे कथित लक्षणो से युक्त उनको होना चाहिए । वहाँ प्रर प्रमाण से न तो अत्यन्त दीर्घ होवे और न अतिह्रस्व ही होवे । परिमाण से चार अँगुलियो वाले अथवा छ अँगुलियो वाले नही होते है ।१। अन्य विद्वान् कर्म समर्थता वाले ऋत्विजो को वरण करता है जोकि युवक हो पुन ऋत्विक् का ग्रहण करना वरण की सामर्थ्य से जो ऋत्विक् नही है चमसाध्वर्यु प्रभृति गण उनको इस गुण की प्राप्ति होने पर उसकी निवृत्ति के ही लिये है ।२। यहाँ पर एवकार नियम के ही लिये है । सबसे प्रथम ब्रह्मा का ही वरण होता है । इसके अनन्तर होता—अध्वर्यु और उद्-गाता का वरण होता है । इनके वरण मे अनियत क्रम होता है—यह साधित हुआ है ।३। इस मे 'अहीनैकाहैर्याजयन्ति'—यह वचन शमितृ की निवृत्ति के ही लिये है । सामान्य वरण करने के प्रश्न से ही यह प्राप्त होता है । अथवा सबको 'अहीनैकाहै' इससे यजन कराते है ।४। सद्स् का अर्थ सभा है उसमे रहने वाला सदस्य होता है । यहाँ पर सप्त-

दश का ग्रहण ऋत्विक् सधर्मा होता है—इसके ज्ञापन के ही लिये है। अथवा नियम के लिये है। सदस्य एक ही होता हैं। अन्य शास्त्र मे अनेक सदस्य देखे गये है उनकी निवृत्ति के लिए है। और वह कर्मो का उपद्रष्टा होता है इस प्रकार से कौषीतकिन आचाय मानते है। ऋचाओ के द्वारा यह अर्थ कहा गया है जिसको ऋत्विज वहुधा कल्पना किया करते हैं।५।

होतारमेव प्रथम वृणीते।६। अग्निर्मे होता स मे होता होतार त्वाऽमु वृण इति होतारम्।७। चन्द्रमा मे ब्रह्मा स मे ब्रह्मा ब्रह्माण त्वाऽमु वृण इति ब्रह्माणम्।८। आदित्यो मेऽध्वर्युरित्यध्वर्युम्। पजन्यो म उद्गातेत्युद्गातारम्। आपो मे होत्राशसिन इति होत्रकान्। रश्मयो मे चमसाध्वर्यव इति चमसाध्वर्यून्। आकाशो मे सदस्य इति सदस्यम्। स वृतो जपेत्। महन्मेऽवोचो भर्गो मेऽवोचो भगो मेऽवोचो यशो मेऽवोच स्तोम मेऽवोच क्लृप्ति मेऽवोचस्तृप्ति मेऽवोचो भुक्ति मेऽवोच सर्व मेऽवोच इति।९। जपित्वाऽग्निष्टे होता स ते होता होताऽह ते मानुष इति होता प्रतिजानीते।१०। चन्द्रमास्ते ब्रह्मा स ते ब्रह्मा।११।

यहाँ पर एवकार अवधारण के लिये है। प्रथम होता ही का वरण करता है ब्रह्म का नही करते है। ऐसा होने पर पूर्वोक्ति से विरोध नही होता है क्योकि जब चारो का वरण हो तो पहिले ब्रह्मा का वरण होता है और जब सबका वरण हो तो होता का प्रथम वरण होता है।६। इस मन्त्र से होता का वरण करे—"अग्निर्मे होता सभे हो ता हो तारत्वाऽमु (अमुक नामानम्) वृणे इस से होता का वरण करना चाहिए। अमुम्—इसके स्थान मे होता का नाम लेना चाहिए। पुन होता का ग्रहण होता के वरण मे आम्नात मन्त्र उत्तर मे अनुवर्तित होता है—यह ज्ञापन के लिये है।७। "चन्द्रमा मे ब्रह्मा समे ब्रह्मा ब्रह्माण त्वाऽमु वृणे"-

इस मन्त्र से ब्रह्मा का वरण करे ।८। आदित्यो मेऽध्वर्यु । इत्यादि मन्त्र से अध्वर्यु का और " पर्जन्यो मे उद्गाता इत्यादि मन्त्र के द्वारा उद्गाता का वरण करे। "आपोमे होत्राशसिन" इत्यादि मन्त्र से होत्रको का वरण करे। "रश्मयो मे चमसाध्वर्यव" इससे चमसाध्वर्युओ का वरण करना चाहिए। "आकाशो मे सदस्य । इससे सदस्य का वरण करे वृत हुए उसे जप करना चाहिए—जाप का मन्त्र यह है—"महन्मेऽवोचोभर्गो मेऽवोचो भगो मेऽवोचो यशोमेऽवोच स्तोम मेऽवोच क्लृप्ति मेऽवोच स्तृप्ति मेऽवोचोयुक्ति मेऽवोच सर्वमेऽवोच" इति ।९। "जपित्वा" यह वचन इमीलिये है कि "तन्मामवतु तन्माविशतु" इस का भी जाप करना चाहिए। फिर 'अग्निष्टे होता सते होता होताऽह ते मानुष" इति इसका होता प्रतिज्ञा करता है। अनित्य होने से ही "तन्मावतु" इत्यादि को यहाँ पर नहीं पढा गया है ।१०। पुन "चन्द्रमास्ने ब्रह्मा सते ब्रह्मा" इस मन्त्र का पाठ होता है। यह प्रति वचन का अनुवृत्ति मार्ग प्रदवृत्ति के ही लिये किया गया है ।११।

ब्रह्मैवमितरे यथादेश तन्मामवतु तन्मा विशतु तन्मा जिन्वतु तेन भुक्षिषीयेति च याजयिष्यन् ।१२। न्यस्तमार्त्विज्यमकायम् ।१३। अही नस्य नोचदक्षिणस्य ।१४। व्याधितस्याऽऽतुरत्य ।१५। यक्ष्मगृहीतस्य ।१६। अनुदेश्यभिशस्तप्य।१७।

जिस समय मे अग्न्याधेय मे चारो का वरण होता है तब वे याजयिता नही होते है। जहा पर सोमाङ्ग वरण होता है वहा पर याजयिता होते है। अतएव सोमाङ्ग वरण मे ही महाजाप होता है और अग्न्याधेय मे नही होता है। इसी से यह अवित्य है। याजन का मन्त्र यह है—"ब्रह्मैवमितरे यथाकेश तन्मान तु तन्मा विशनु तन्मा जिन्वतु तेनमुक्षिषीय" इति ।१२। भाज्य का लक्षण कहते है—ऋत्विको के द्वारा विवाह से त्यक्त है और आर्त्विज्य अकार्य्य है ।१३। अल्प दक्षिणा वाले अहीनका आर्त्विज्य अकाय है। अतएव जाना जाता है कि एकाह अल्पदक्षिणा वाले का भी करना चाहिए। और यह विशेष रूप से जाना जाता है

कि—'तस्माक्षहुर्दातव्यैन यज्ञे दक्षिणा भवत्यव्य त्रिकापि' अर्थात् इसी से कहते है कि यज्ञ मे चाहे अल्प ही हो दक्षिणा देनी चाहिए ।१४। जो व्याधि ज्वरादि से गृहीत हो और शय्यागत आतुर हो तथा क्षय आदि भयानक रोग से ग्रस्त हो उसको नही करे। कुछ लोगो का मत है कि सदेशी के द्वारा अभिशस्त को न करे। अन्यो के मन मे उसको न करे जो श्राद्ध मे प्रतिषिद्ध हो ।१५-१७।

क्षिप्तयोनेरिति चैतेषाम् ।१८। सोमप्रवाक परिपृच्छेत्को यज्ञ क ऋत्विज का दक्षिणेति ।१९। कल्याणै सह सप्रयोग ।२०। न मासमश्नीयुर्न स्त्रियमुपेयुरा क्रतोरपवर्गात् ।२१। एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्वेति दक्षिणाग्नावाज्याहुति हुत्वा यथार्थ प्रव्रजेत् ।२२। एवमनाहिताग्निर्गृह्य इमामग्ने शरणि मीमृषो न इत्येतयर्चा ।२३। ख० २३ ।

और इनका मत है कि क्षिप्तयोनिका नही करे। क्षिप्तयोनि उसको कहते है जिसकी माता अपने भर्त्ता मे अवस्थित नही होती हैं। नही करना चाहिये—इसका सर्वत्र सम्बन्ध करना चाहिए।१८। जो प्रथम यह निवेदन करता है कि तुझ को यह इसमे करना चाहिए वह सोम प्रवाक होता है उसको ही इस प्रकार से पूछता है।१९। कल्याण पक्ष वाले ऋत्विको के साथ ही करना चाहिए। दक्षिणा भी कल्याणी होती हैं यदि होती है। वैसा ही होने पर करना चाहिए। अन्यथा न करे।२०। ऋत्वादि प्रभृति से द्वारा अपवर्ग से ये नियम होते है वरण प्रभृति-यह कल्प्यमान होने पर यदि मध्ययोपसद् मे वरण होता है तब प्राक् अनियम की प्रसक्ति होगी मासका अशन नही करे—स्त्री का उपामन नही करना चाहिए जब तक क्रतु का अप वर्ग होने।२१। क्रतु के अन्त मे अपनी दक्षिणाग्नि मे "एते नाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व" इस मन्त्र से आज्य की आहुतियो का हवन करना है। फिर यथार्थ का आचरण करना चाहिए। अनियम होता है—यही अर्थ है। ऋतु के समाप्त होने पर भी होम पर्यन्त नियम होते है। आज्याहुति-यह वचन तन्त्र की निवृत्ति के

लिये ही अभीष्ट होता है।२२। इस सूत्र मे 'एतया'—इस वचन से जुहु-यात्' इसी अर्थ के लिये है। इस प्रकार से अनाहिताग्नि पुरुष गृह्यअग्नि मे "इमामाने शरणिं मीभृषो न" इस ऋचा से लौकिक आग्नि मे हवन करना चाहिए। मधुपक के प्रसङ्ग से यहा पर ऋत्विक् का वरण भी आम्नात कर दिया है।२३।

ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत् ।१। स्नातकायोप-स्थिताय ।२। राज्ञे च ।३। आचार्यश्वशुरपितृव्यमा तुलाना च ।४। दधनि मध्वानीय ।५। सर्पिर्वा मध्वलाभे ।६। विष्टर पाद्यमर्घ्यमाचमनीय मधुपर्को-गौरित्येतेषा त्रिस्त्रिरेकैक वेदयन्ते ७।

ऋत्विजो का वरण करके मधु पक का आहरण करना चाहिए।१। उपस्थित अर्थात् कृत समावर्तन स्नातक ने लिये आहरण करना चाहिए।२। और उपस्थित राजा के लिये भी मधुपर्क का आहरण करे।३। आचार्यादिक का पूर्वों का असमास से जो निर्देश है वह अतुल्यत्व ज्ञापन के ही लिये है। और विवाहार्थी के लिये देवे। राजा के लिये तो प्रति-दिन समागत होने वाले के लिए देवे। एक वत्सर मे उषित एव समागत आचार्यदिक के प्रति अन्य शास्त्र मे देखने से विशेष प्राप्त हुआ है।४। दधि मे मधु का ओसेचन करके देवे।५। यदि मधु का लाभ न हो तो उसका प्रतिनिधि सर्पिर घृताना को करे। इस वचन से तैलादि अन्य प्रति निधि नही होते है।६। विष्टर आसन होता है। पाद्य के-अर्घ्य के और आचमन के लिये जल कहा गया है। एतेषाम्—इस वचन से यही ज्ञापित दिया जाना है कि इनका ही तीनवार निवेदन होवे और भोजन का न होवे। और भोजन भी देना चाहिए यह आगे वतलायेगे। ऋत्विजो को मधुपर्क के दान मे दोही गतियाँ सम्भव होती है। पदार्थानुसमय और काण्डिनुसमय। पदार्थानुसमय यथा—सबके लिये वर क्रम से विष्टर देकर इसके पश्चात् पाद्य और फिर अर्घ्य देवे। काण्डानुसमय यथा—विष्टर से आदि से लेकर गौ के निवेदन पर्यन्त समाप्त करके इसके पश्चात् अन्य का सब करे।७।

अह् वर्ष्म सजाताना विद्युतामिव सूर्य । इद तमधिति-ष्ठामि यो मा कश्चाभिदासतीत्युदगग्रे विष्टर उपविशे-दाक्रम्यवा ।८। पादौ प्रक्षालापयीत दक्षिणमग्रे ब्राह्मणाय प्रयच्छेत् ।९। सव्य शूद्राय ।१०। प्रक्षालितपादोऽर्घ्य-मञ्जलिना प्रतिगृह्य ।११। अथाऽऽचमनीयेनाऽऽचा-मति—अमृतोपस्तरणमसीति ।१२। मधुपर्कमाह्रिय-माणमीक्षेत मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष इति ।१३। देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्या प्रतिगृह्णामीति तदञ्जलिना प्रतिगृह्य सव्ये पाणौ कृत्वा मधुवाता ऋतायत इति तृचेनावेक्ष्यानामिकया चाङ्-गुष्ठेन च त्रि प्रदक्षिणमालोडच वसवस्त्वा गायत्रेण च्छन्दसा भक्षयन्त्विति पुरस्तान्निमार्ष्टि ।१४।

इसके अनन्तर ग्रहीता के कम को कहते है—"अहँ वर्ष्म सजाताना विद्युतामिव सूर्य्य । इद तमधितिष्ठामियोन्त कश्चाभिदासतीति"—इससे उद हो विष्टर पर बैठ जाये अथवा पदो से आक्रमण करके बैठे। इन दोनो का यहा पर विकल्प है ।८। फिर पादो का प्रक्षालन करना चाहिए ब्राह्मण के लिये आगे दक्षिण को देना चाहिए ।९। शूद्र के लिये पहिले सव्य देवे पीछे दक्षिण को देवे । जब क्षत्रिय वैश्य दोनो प्रक्षालन करने वाले हो तो चाहे पहिले सव्य को देवे या दक्षिण को देवे-कोई दोष नहीं है । उस दशा मे कोई नियम विशेष नही है ।१०। पाद प्रक्षालन जिसने करा लिया वह इस के अनन्तर अर्घ्य को ही ग्रहण करे अर्थात अर्घ्य ग्रहण करना चाहिए । उसे अञ्जलि से लेवे । गन्ध माल्य आदि द्रव्यो से समन्वित जल को अर्घ्य लोक मे कहा जाता है ।११। "अमृतो पस्तरण मसि" इस मन्त्र से आचमनीय ग्रहण करे अर्थात् उदक को पीता है। यहाँ पर शौच के लिये आचमन नही होता है—ऐसा कहते है किन्तु यह कथन युक्त नही है क्यो कि साम मे अनुच्छिष्ट के विधान से जहा पर आचमन प्रतिषेध नही करता है वहाँ पर शौच के लिये आचमन होता है—यह गम्य मान होता है ।१२।

"मित्रस्य त्वाचक्षुषा प्रतीक्षे" इति इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए मधुपर्क को जो ला रहा है उसे देखना चाहिए ।१३। फिर "देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनो र्बाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्या प्रतिगृह्णामि" इस मन्त्र से उसकी अञ्जलि से प्रतिग्रहण करके सव्य हाथ मे करके "मधुवाता ऋतायते" इस ऋचा से देखकर अनामिक से और अङ्गुष्ठ से तीन वार प्रदक्षिण मे आलोड्न करके "वस वो त्वा गायत्रेण छन्द सा भक्षयन्तु" इस मन्त्र से आगे निमार्जन करता है । अर्थात् अङ्गुलि मत लेप का अपनयन करता है ।१४।

रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्त्विति दक्षिणत आदित्यास्त्वा जागतेन च्छन्दसा भक्षयन्त्विति पश्चाद् विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्त्वित्युतरतो भूतेभ्यस्त्वेति मध्यात्रिरुद्गृह्य।१५। विराजो दोहोऽसीति प्रथम प्राश्नीयाद् विराजो दोमहशीयेति द्वितीय मयि दोह पद्यायै विराज इति तृतीयम् ।१६। न सर्वम् ।१७। न तृप्तिं गगच्छेत् ।१८। ब्राह्मणायोदङ्ङुच्छिष्ट प्रयच्छेदलाभेऽप्सु ।१९ ।

"रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्तु" इति इस मन्त्र से दक्षिण भाग से "आदित्यास्त्वा जागतेनच्छन्दसा भक्षयन्तु" इससे पश्चिम मे "विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्तु" इससे उत्तर मे "भूतेभ्भरस्त्वा" इति-इससे मध्य से उर्ध्व को तीन वार उत्क्षिप्त करता है ।१५। इसके पश्चात् भूमि मे पात्र को रखकर "विराजो दो होऽसि" इससे प्रथम प्राशन करना चाहिए । "विराजो दो महशीय" इस से दूसरा प्राशन करे । 'मयि दोह पश्चायै विराज" इससे तीसरा करे ।१६। सब का प्राशन नही करना चाहिए ।१७। भोजन इतना न करे जिससे तृप्ति हो जाये ।१८। ब्राह्मण के लिये उद्घृत से उच्छिष्ट और अवशिष्ट हो उसको उदङ् मुख होकर मधुपर्क देना चाहिए । ब्राह्मण के लाभ न होने पर जल मे निषिञ्चित कर देवे ।१९।

सर्वं वा ।२०। सत्य यश श्रीर्मयि श्री श्रयतामिति द्वितीयम् ।२२। हतो मे पाप्मा पाप्मा मे हत इति जपित्वोकुरुतेयि कारयिष्यन् ।२४। माता रुद्राणा दुहिता वसूनामिति जपित्वोमुत्सृजतेत्युन्स्रक्ष्यन् ।२५। नामासो मधुषर्को भवति भवति ।२६। ख० २४ ।

अथवा सबका प्राशन कर लेवे ।२०। इसके अनन्तर आचमनीय से 'अमृतपिधानमसि" इस मन्त्र से आचमन करता है ।२१। "सत्य यश श्रीर्मयि श्री श्रयताम्" इस मन्त्र से दूसरा आचमन करना चाहिए ।२२। शौच के लिये आचमन करके कम के अङ्ग स्वरूप आचमन को करना चाहिए इससे आचमन मे 'दूसरा जल होना चाहिए ।२३। "हतो मे पाप्मा पाप्मा मे हत" इस मन्त्र का जप करके "ॐ कुरुत"—यह बोलना चाहिए ।२४। 'माता रुद्राणा दुहिता वसूनाम्" इस का जाप करके उत्सृजन करना चाहिए यदि उत्सृजन करने वाला हो रहा हो ।२५। मधुपक का अङ्ग भोजन मॉस रहित होवे इस अभ्युपाय से यहाँ भोजन का भी विधान किया है ।२६।

इति श्री आश्वलायनगृह्यसूत्रेप्रथमोध्याय समाप्त ।



द्वितीयोऽध्यायः

ॐ श्रावण्या पौर्णमास्या श्रवणाकर्म ।१। अक्षतसक्तूनां नव कलश पूरयित्वा दर्वी च बलिहरणी नवे शिक्ये निदधाति ।२। अक्षतधाना कृत्वा सर्पिषाऽर्धा अनक्ति ।३।अस्तमिते स्थालीपाक श्रपयित्वैककपाल च पुरोलाश-मग्ने नय सुपथा राये अस्मानिति चतसृभि प्रत्यृच हुत्वा पाणिनैककपालमच्युताय भोमाय स्वाहेति ।४। अवि-प्लुत स्यादावि पृष्ठो वा ।५। मा नो अग्नेऽवसृजो अघा-येत्येनमाशयेनाभिजुहोति ।६। श नो भवन्तु वाजिनो हवेष्वित्यक्ता धाना अञ्जलिना ।७।

श्रावणी पौणमासी मे श्रवण कर्म करना चाहिए । जो श्रवण नक्षत्र से युक्त होती है वही श्रावणी है । यदि पौणमासी श्रवण से युक्त न हो तो भी कर्म करना ही चाहिए । इस कम का नाम ही 'श्रवणा कम' है ।१। यवो से बनाये हुए सतुआ से नूतन कलश को पूरित करके स्रुक् के आकृति वाली वैकङ्कती बलि के हरण की जाने वाली वलिहरिणी दर्वी-३ दोनो को नवीन शिक्य मे रखता है ।२। इसके अनन्तर श्रवणा कर्म बताते है यवो से धाव करके उसे असस्कृत घृत से अक्त करे और आधे-धानो को दूसरे पात्र मे करके अन्य आधे धावे को अक्त नही करता है। इतना ही कर्त्तव्य है ।३। अस्तमित वेला मे स्थालीपाक का श्रपणा करके और एक कपाल पुरोडश को अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्" इन चार कपालको 'अच्युताय भौयाय स्वाहा' इस मन्त्र से हवन करना चाहिए ।४। अविप्लुत अथवा आवि पृष्ठ होना चाहिए ।५। "मा नो अग्ने इवसृजो अधाय" इस मन्त्र से इस पुरोडाश को आशय से हवन

करता है। जिस राज्य से पुरोडाश शायित होता है वह आशय होता है ? ।६। 'शनो भवन्तु वाजिनो हस्तेषु'' इससे अक्त किये हुए धानो को अञ्जलि से हवन करता है। दोनो हाथो के सघात को अञ्जलि कहते है ।७।

अमात्येभ्य इतरा दद्यात् ।८। कलशात्सक्तूना दर्वी पूरयित्वा प्रागुपनिष्क्रम्य शुचौ देमेऽपोऽवनिनीय सर्पदेवजनेभ्य स्वाहेति हुत्वा नमस्करोति । ये सर्पा पार्थिवा य आन्तरिक्ष्या ये दिव्या ये दिश्यास्तेभ्य इम बलिमाहाष तेभ्य इम बलिमुपाकरोमीति ।९। प्रदशिण परीत्य पश्चाद्बलेरुपविश्य सर्पोऽसि सर्पता सर्पाणामधिपतिरस्यन्ने न मनुष्यास्त्रायसेऽपूपेन सर्पान्यज्ञेन देवास्त्वयि मा सन्त त्वयि सन्त सर्पा मा हिसिषुर्ध्रु वा ते परिददामीति ।१०। ध्रुवामु ते ध्रुवामु त इत्यमात्याननुपूवम् ।११।

इतर जो धान अक्त किये हुए नही है उन्हे पुत्रादिक को दे देना चाहिए। इसके उपरान्त धानो से चरुका ग्रहण करके स्विष्टकृत हवन करके होम शेष की समाप्त कर देना चाहिए।८। जो कलश और दर्वी नवशिक्य मे स्थापित किये हुए है। वहा कलश से ग्रहण करके सक्तुओ से दर्वी को पूरित करके उसे लेकर घर से निकलकर समीप देश मे प्राची मे शुचि देश मे जल का असिचन करके मन्त्र से सक्तु का हवन करना है—''सर्पदेव जलेभ्य स्वाहा' यह मन्त्र है। इस हवन करके नमस्कार करता है—''ये सर्पा पार्थिवाय आन्तरिक्ष्या ये दिव्या ये दिश्यास्तेभ्य इम बलिमहार्ष तेभ्य इम बलिमुपाकरोमि'' यह मन्त्र है ।९।बलि के प्रदक्षिण जाकर इसके पीछे उपविष्ट होकर मन्त्र को बोलता है ।मन्त्र—सर्पोऽसि सर्पता सर्पाणामधिपति रस्यन्ने न मनुष्यास्त्रासेऽपूयेन सर्पान्यज्ञेन देवास्त्वयि मा सन्त त्वमि सन्त सर्पा मा हिसिषु ध्रुवाँ ते परिददामीति''इति। यह है। यहा पर बलि का ग्रहण करना पश्चात् शक्ति का काल वाचित्व की शङ्का की निवृत्ति के लिये ही है। यह मन्त्र सज्ञा वाला मन्त्र है। जसा कहा गया है—इद कार्य-

मनेनेति न क्वचिद्दृश्यते विधि । लिङ्गादेवे दमथत्व येषा ते मन्त्र सञ्ज्ञका " इति । इसी से उपाशु होता है । कहा गया है कि—गृह्यकम मे सभी जगह जय-अनुमन्त्रण-अभिमन्त्रण-उपस्थान मन्त्रकरण मन्त्र उपाशु ही प्रयुक्त करने चाहिए ।१०। उत्तर मे दृष्ट परिददामि-यह शब्द यहा पर भी सम्बन्ध करता है । यहा वीप्साकाङ्क्षिवचन प्रति अमात्य के परिदान का अभ्यास करना चाहिए सब के नामो का निर्देशन करके एक बार ही कहना चाहिए—इसीलिये है । पहिले पुत्रो से निवेदन करता है 'ध्रुव दवदत्त ते परिददामि । इसके नाद मे अप्रमत्ता दुहिताओ को निवेदन करता है—"ध्रुव सावित्री ते परिददामि' फिर भार्या को निवेदन करता है–ध्रुव सत्यवती ते परिददामि" इति ।११।

ध्रुव मा ते परिददामीत्यात्मानमन्तत ।१२। नैनमन्तरा व्यवेयुरा परिदानात् ।१३। सर्पदेवजनेभ्य स्वाहेति साय प्रातबलि हरेदा प्रत्यवरोहणात् ।१४। प्रसख्याय हैके तात्को बलीस्तदहरेवपोहरन्ति ।१५। ख० १ ।

अन्त मे "ध्रुव मा ते परिददामि" इससे आत्मा को निवेदन करता है । उपदेश से ही 'अन्तत '—यह सिद्ध होने पर भी फिर यह वचन पूव से सम्बन्ध के ही लिये आया है । इससे 'परिददामि'—यह शब्द सिद्ध है ।१२। इस प्रकार से परिदान पयन्त कोई भी आत्मा को बीच मे व्यवधान नही करे ।१३। प्रत्ययरोहण तक "सप दव जनेभ्य स्वाहा" इस मन्त्र से सायङ्काल और प्रात काल मे बलि का आहरण करना चाहिए । जिस दिन मे भी प्रत्यवरोहण करता है तब तक आहरण करे। ।१४। कतिपय विद्वान् ऐसा मानते है कि श्रावणी प्रतिपदा से आरम्भ करके जिस दिन मे प्रत्यवरोहण करता है–मार्गशीर्ष की चतुर्दशी मे अथवा पौर्णमासी मे उससे पीछे के दिनो मे क्षण और वृद्धि से जितने भी परिगणना से साय और प्रात हो उतने ही बलि उस दिन ही देवे "ह"—यह शब्द अभिमत तत्त्व की ज्ञाप्ति के ही लिये है ।१५।

आश्वयुज्यामाश्वयुजीकर्म ।१। निवेशनमलकृत्य स्नाता शुचिवासस पशुपतये स्थालीपाक निरुप्य जुहुयु पशु-

पतये शिवाय शकराय पृषातकाय स्वाहेति ।२। पृषातकमञ्जलिना जुहुयादून मे पूर्यंता पूर्ण मे मोपसदत्पृषातकाय स्वाहेति।३। सजूर्ऋतुभि सजूर्विधाभि सजूरिन्द्राग्निभ्यास्वाहा । सजूर्ऋतुभि सजूर्विधाभि सजूर्विश्वेभ्यो देवेभ्य स्वाहा। सजूर्ऋतुभि सजूर्विधाभि सजूर्द्यावापृथिवीभ्या स्वाहेत्याहिताग्नेराग्रयणस्थालीप क ।४। अनाहिताग्नेरपि शालाग्नौ ।५। ख० २ ।

आश्वप्रजी से आश्वयुजी कर्म होता है अश्वयुगो से युक्त आश्वयुजी होती है। पौर्णमासी यहा पर ग्रहण करे।१। अपने रहने के स्थान अर्थात् घर को अलङकृत करना चाहिए। अर्थात् प्रत्य वरोहण की जो विधि है उससे भूषित करे। फिर सब ग्रह्य स्नान करते है। यहाँ पर स्नान का वचन विशेष रूप से स्नान के ही लिये है। क्योकि शौचार्थ स्नान तो स्मृतियो से ही प्राप्त होता है। शुचि वस्त्र धारी होवे। शुक्ल वस्त्र से तात्पय होता है। फिर 'पशुपतये शिवाय शङ्कराय पृषातकाय स्वाहा" इस मन्त्र से स्थालीपाक का निरूपण का हवन करे। यहा पर "जुहुयु"—यह बहु वचन है वह यह बतलाता है कि पुत्रादि सब गृह्य है वे सब उसका अन्वारम्भ करे।२। "ऊन मे पूयता पूर्ण मे मोषसहत्पृषातकाय स्वाहा" इस मन्त्र से अञ्जलि से पृषा तक का हवन करना चाहिए। पय के आज्य मे निषिक्त होने पर यह त्रय पृषा तक होता है। धाना को तरह इसका सस्कार होता है। सवत्र द्रव द्रव्य का स्रुव से अवदान होता है।३। इसके अनन्तर आग्रहायण कर्म कहा जाता है कोई विशेषता न होने के कारण से श्रवण कम की ही भाँति अहिताग्नि का भी यह सिद्ध होता है। निमनाङ्कित ये तीन मन्त्र है—"सजूर्ऋतुभि सजूर्विधाभि सजूरिन्द्राग्निभ्या स्वाहा"—"सजूर्ऋतुभि सजूर्विधाभि सजूर्विश्वेभ्यो देवेभ्य स्वाहा"—"सजूर्ऋतुभि सजूर्विधाभि सजूर्द्यावा पृथिभ्या स्वाहा"। यहा पर अहिताग्नि का ग्रहण किसलिये हुआ है—इस विषय मे बोलते हैं। कि आहिताग्नि का आग्रहायनान्तर का विदित होने से यह आग्रहायण

प्राप्त नही होता है इसी कारण से उसका यहा पर ग्रहण होता है। और इसका यह त्रेता मे होता है। यहा पर तो इसका विधान पाक यज्ञ के धर्म की प्राप्ति के लिए है।४। जो अनाहिताग्नि होता है उसका भी आग्रहायण करना चाहिए और वह शालाग्नि मे होता है। यहा पर शालाग्नि का ग्रहण नियम के लिये ही किया गया है कि अनाहिताग्नि का ही औपासन है। इससे अहिताग्नि का त्रेता मे सिद्ध होता है। स्विष्टकृत का हवन करके चरु के एक देश का ग्रहण करे और सव्यमाणि मे करके दाहिने हाथ से अभिमर्शण करना चाहिए। "प्रजापतये त्वा"—तत 'मद्रान्न श्रेय"। इन मन्त्रो से प्राशन करके फिर आचमन करे और वही पर समासीन होना हुआ नाभि का आलभन करना चाहिए। पत्नी तो मध्यम हविशेष को चुपचाप प्राशन किया करती है। फिर होम शेष का समापन कर देना चाहिए यह प्राशन आग्रहायण द्वय मे भी होता है सौकर्म के के ही लिये यहा पर लिख दिया गया है।५।

मार्गशीर्ष्यां प्रत्यवरोहण वतुर्दश्याम् ।१। पौर्णमास्या वा ।२। निवेशन पुनर्नवाकृत्य लेपनस्तरणोपस्तरणैरस्तमिते पायसस्य जुहुयुरपश्वेतपदा जहि पूर्वेण चापरेण च। सप्त च वारुणीरिमा सर्वाश्च राजबान्धवी स्वाहा। न वै श्वेतश्चाभ्यागारेऽहिर्जघान किचन।श्वेताय वदार्वायि नम स्वाहेति ।३। नात्र सौविष्टकृत् ।४। अभय न प्राजापत्येभ्यो भूयादित्याग्निमीक्षमाणो जपति शिवो न सुमना भवेति। हेमन्त मनसा ध्यायात् ।५। पश्चादग्ने स्वस्तर स्वास्तीर्णस्तस्मिन्नुपविश्य स्योना पृथिवी भवेति जपित्वा सविशेत्सामात्य प्राक्शिरा उदङ्मुख ।६।

मृगशीर्ष से युक्त मागशीर्षी होती है। यहा पर समीप मे सप्तमी विभक्ति होती है। इससे इसका यह अर्थ होता है कि पौर्णमासी के समीप मे जो चतुदशी है उसमे प्रत्यवरोहण नाम वाला कम करना चाहिए।१। अथवा मार्गशीर्षी पौर्णमासी मे करे। यहाँ पर ऐसा विकल्प है कि उस

मास मे अमावस्या मे–चतुर्दशी मे अथवा पौर्णमासी मे करे । एक बार ही करना चाहिए । पौर्णमासी के साहचय से शुक्ल पक्ष मे ही करना चाहिए ।२। निवेशन को पुन कुड्यादि के लेपन द्वारा नवीकरण करे । स्तरण का अर्थ है उनका आच्छादन करे और उपस्तरण का अथ होता है भूमिका समीकरण । अस्तमित बेला मे पायस के एक देश का हवन करे । ये दो मन्त्र हवन करने के है—"सप्तचवारुगीरिमा सर्वाश्च राज बान्धवी स्वाहा"—"न वैश्वेत श्चाभ्यागारेऽहिर्जधान किचन । श्वेताय वैदार्वाय नम स्वाहा' । अय श्वेतपदा पूर्व और अपर के द्वारा त्याग देवे ।३। इस कर्म मे जो स्विष्टकृत् है वह नही करना चाहिए । यहा पर असति–इसके ग्रहण मे प्रधानान्तर के उच्यमान होने से प्रधान्तर स्विष्टकृत है वह नही करना चाहिए । और अन्त मे तो होता ही है । तात्पय यही है कि अन्यत्र कम के अन्त मे होता है ।४। अर्थ के ध्यान की मुख्यता होने पर भी शब्द का ही ध्यान करना चाहिये—इसीलिए मन का ग्रहण होता है । "अभय न प्रजापत्येभ्यो भूमात्" इस मन्त्र से अग्नि का समीक्षण करता हुआ जाप करता है । मन्त्र यह है—"शिवोन सुषनाभव" इति । हेमन्त का मन से ध्यान करना चाहिए ।५।

यथावकाशमितरे ।७। ज्यायाञ्ज्यायान्वाऽनन्तर ।८। मन्त्रविदो मन्त्राञ्जपेयु ।९। सहाय अतो देवा अवन्तु न इति त्रि ।१०। एता दक्षिणामुखा प्रत्यङ्मुखा उदङ्-मुखाश्चतुर्थम् ।११। सहाय सौर्याणि स्वस्त्ययनानि च जपित्वाऽन्न सस्कृत्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्त्ययन वाचयीत ।१२। ख० ३ ।

जिस स्तर पर स्वय शयन करता है वह स्वस्तर कहा जाया करता है । वह स्वास्तीर्ण होता है । उसका आस्तरण स्वय ही करना चाहिए । उस पर उपविष्ट होकर 'स्योना पृथिवी भव"—इस मन्त्र का जाप करके उस पर पुत्रादिक के सहित पूर्व की ओर शिर करके उदङ् मुख होकर सवेशन करना चाहिए ।६। इतर लोग अमात्यगम्य पुत्रादिक अवकाश के

अनुसार ही पूर्व को शिर करके उत्तर की ओर मुख वाले होते हुए सवेशन करें। अर्थात् शयन करना चाहिए ।७। जो-जो भी जिस-जिस से अधिक बडा हो वही-वह गृही के अनन्तर शयन करे अथवा जैसा भी अवकाश हो उसके अनुसार करे ।८। जो गृह्य मन्त्रो के ज्ञाता होवे वे 'स्योना पृथिवी'' यहाँ से आरम्भ कर के स्वस्त्ययन पर्यन्त मन्त्रो का जप करे ।९। उठकर तीन बार ''अतोदेवा भवन्तुन'' इस मन्त्र को बोलना चाहिए ।१०। 'एताम्'–इसका वचन ग्रहण योग विभाग के लिये ही होता है। अन्यथा तीनो दिशाओ मे मुख करके बोलना चाहिए अर्थात् प्राड् मुख प्रत्यड् मुख और उदड् मुख होकर बोले। चौथी बार तीनो दिशाओ मे मुख वाले होकर एक ही बार बोले ।११। सङ्गत होकर आदित्य देव के उदित होने पर सौय्थ स्वस्त्ययनो का जाप करे। 'उदुत्य जात वेदसम्'—येनो, 'चित्र देवानाम्'—'नमोमित्रस्य''—इन सबकी सौर्य सज्ञा की गयी है। जो स्वस्ति शब्द वाली है वे स्वस्त्ययन है। 'आनो भद्रा'—'स्वस्तिनो मिमीताम्'—'परावतो ये दिधिषन्त आप्यम्'—ये सब स्वस्त्ययन होते है। फिर अन्न का सस्कार करके ब्राह्मणो को भोजन कराकर स्वस्त्ययन का वाचन करना चाहिए ।१२।

हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका ।१। एकस्या वा ।२। पूर्वेद्यु पितृभ्यो दद्यात् ।३। ओदन कृसर पायसम् ।४। चतु शरावस्य वाऽपान् ।५।

हेमन्त और शिशिर ये दोनो ऋतु है। यहा पर 'अष्टका' यह कर्म का नाम है। अपर पक्ष का अर्थ कृष्ण पक्ष है। मार्गशीर्षादि चार मासो मे जो चार कृष्ण पक्ष होते है उनमे जो चार अष्टमियाँ होती है वे चार अष्टका करनी चाहिए। इन दोनो ऋतुओ के मध्य मे यदि मलमास (अधिक मास) आ जाता है तो उस मास मे नही करना चाहिए—इसी लिये चारो का ग्रहण किया है। अन्य शास्त्र मे तीन ही अष्टकाओ का विधान देखने से यह लिखा गया है कि चारो ही अष्टका करनी चाहिए ।१। यहा पर यह भी विकल्प है कि एक ही अष्टमी मे चारो अष्टका करे अथवा चारो अष्टमियो मे करे। दोनो ही पक्ष यहा पर विकल्प से वर्णित

किये गये हैं ।२। इस सूत्र मे पितृ शब्द से पिता पितामह और प्रपितामह कहे गये है । "पितृभ्यो दद्यात्"—इस प्रेरणा मे पिण्ड दान देखा गया है । अतएव प्रेरणा की सामर्थ्य से यहा भी परिग्रहण किया जाता है । ब्राह्मणो का भोजन नही करना चाहिए–यह बतायेगे । इससे पहिले दिन पितृ गण के लिए पिण्डो को और भोजन को देना चाहिए । पिण्ड दान मे इति कर्त्तव्यता की अपेक्षा है । प्रकरणान्तर मे विहित भी पिण्डपितृ यज्ञ कल्प परिग्रहीत किया जाता है । यहा पर भोजन पार्त्रण के ही समान होता है क्योकि भोजन मे भी तन्त्र की अपेक्षित माना गया है ।३। अब उसकी विशेषता बतलायी जाती है—उस पितृ पिण्ड यज्ञ कल्प मे नित्य अग्नि मे चरु का श्रपण होता है । उसके स्थान मे ये तीन हैं जिनको नित्य अग्नि मे श्रपण करना चाहिए । औदन तो प्रसिद्ध है । जो दूध से श्रृत होता है वह पायस होता है ओदन जो तिलो से मिश्रित होता है उसे कृसर कहा गया है । ये ही तीन पदाथ है ।४। चार सकोरो मे जितना आवे उसके परिणाम वाले धान्य को पीसकर अपूय बनाकर श्रमण करना चाहिए । बहुत से साधनो के द्वारा साध्य होने से और अपूयो को स्त्रियो के द्वारा बनाने से नित्य अग्नि मे श्रपण सम्भव नही होता है अतएव घर मे सिद्धो का ही उपादान चाहते है ।५।

उदीरतामवर उत्परास इत्यष्टाभिर्हुत्वा यावतीभिर्वा कामयीत ।६। अथ श्वोभूतेऽष्टका पशुना स्थालीपाकेन च ।७। अप्यनडुहो यवसमाहरेत् ।८। अग्निना वा कक्षमुपोषेत् ।९। एषा मेऽष्टकेति ।१०। न त्वेवानष्टक स्यात् ।११। ता हेके वैश्वदेवी ब्रुवत आग्नेयीमेके सौर्यामेके प्राजापत्यामेके रात्रिदेवतामेके नक्षत्रदेवतामेक ऋतुदेवतामेके पितृदेवतामेके पशुदेवतामेके ।१२।

जितनी अथवा अधिक पितृ लिङ्ग काण्डो से कामना करे उतनो ही से हवन करना चाहिए । हवन का मन्त्र यह है—"उदीरतामवर उत्प-

रास" इन आठो से अथवा चौदहो से हवन करके कर्म पूर्ण करे। ब्राह्मणो को अन्नदानादि शेष निवेदनान्त को पार्वण की भाँति करके भुक्तवान् होने पर पिण्ड पितृ यज्ञ व्रत निनयनादि पात्रोत्सर्ग के अन्त तक करके अनन्तर श्राद्ध शेष को समाप्त करना चाहिए।६। श्वोभूत अष्टमी मे जो अष्टका करना चाहिए उनको पशु से और स्थाली पाक से करना चाहिए। अन्य शास्त्र मे स्पष्ट बन्धन है "पशु के अभाव मे स्थाली पाक प्रवृत्त होता है।७। अपिशब्द विकल्प के ही लिये है—पशु के अभाव मे स्थाली पाक और इसके भी अभाव मे अनडुहा को यवस देना चाहिए। शकट के वाहन करने मे जो समथ बैल होता है उसे अनड्वान् कहते है।८। उपर्युक्त तीनो के अभाव होने पर अथवा अग्नि के द्वारा कक्ष का दाह करना चाहिए।६। यवस के दान मे और कक्ष के दहन मे यह मेरी अष्टका है--ऐसा मन से ध्यान करना चाहिए।१०। इसका यही प्रयोजन है कि चार पक्ष बताये गये है उनमे पूव के लाभ न होने पर उत्तरोत्तर प्रवृत्त हाता है। इसी प्रकार से अष्टका करनी चाहिए। अनष्टक नही होना चाहिए।११। ये आव देवताओ के विकल्प है। वहा पर जब अग्नेयी अष्टका की जाती है तब वपा पशु स्थाली पाक के तीन अवदानो को "अग्नेय स्वाहा" इस मन्त्र मे हवन करना चाहिए। केवल स्थाली पाक को भी इसी से हवन करे। इसी प्रकार से अन्यो मे भी जान लेना चाहिए। वहा पर अनाद्य पक्षो के अयुक्त होने से ज्ञापन के ही लिये आद्य मे 'ह' शब्द पढा है। यहा पर सर्वदा मन्त्रो के द्वारा ही शेम करना चाहिए और नामधेय से कभी नही करे--यह सिद्ध हो गया कुछ लोग उसको वैश्वदेवी बोलते है—कुछ आग्नेयी, अतिपय सौर्य्या—अन्य प्राजापत्या—कुछ रात्रि देवता, अन्य नक्षत्र देवता—कुछ पितृ देवता और कुछ पशु देवता बोले। यह तात्पय है कि जो जो मन्त्रो मे लिङ्गिनी हो वही वही देवता होता है। अग्नि आदि एक-एक ही देवता नही होता हे।१२।

पशुकल्पेन पशु सज्ञप्य प्रोक्षणोपाकरणवर्ज वपामुत्खिद्य जुहुयात्। वह वपा जातवेद पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहिता पराके मेदस कुल्या उपैनान्त्स्रवन्तु सत्या एता

आशिषः सन्तु सर्वा स्वाहेति ।१३। अथावदानाना स्थालीपाकस्य च–अग्ने नय सुपथा राये अस्मानिति द्वे ग्रीष्मो हेमन्त ऋतव शिवा नो वर्षा शिवा अभया शरन्न । सवत्सरोऽधिपति प्राणदो नोऽहोरात्रे कृणुता दीर्घमायु स्वाहा । शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्ष द्यौर्नो देव्यभय नो अस्तु । शिवा दिश प्रदिश उद्दिशो न आपो विद्युत परिपान्तु सर्वत स्वाहा । आपो मरीची प्रवहन्तु नो धियो धाता समुद्रो वहन्तु पापम् । भूत भविष्यदभय विश्वमस्तु मे ब्रह्माऽधिगुप्त स्वाराक्षराणि स्वाहा । विश्व आदित्या वसवश्च देवा रुद्रा गोप्तारो मरुत सदन्तु । ऊर्ज प्रजाममृत पिन्वमान प्रजापतिर्मयि परमेष्ठी दधातु स्वाहा । प्रजापते न त्वदेतान्यन्य ।१४। सौविष्टकृत्यष्टमी ।१५। ब्राह्मणान्भोजयेदित्युक्तम् ।१६। ख० ४ ।

इस सूत्र मे 'पशु कल्पेन'—यह वचन प्रोक्षण का प्रतिषेध है । पशुकल्पस्थ प्रोक्षण का ही प्रतिषेध होता है पश्वङ्गभूत स्थाली पाक प्रोक्षण का नही है । "सज्ञप्य" यह अयमनु वाद है । प्रोक्षणो या करण को छोड कर वया को उत्खिन्न करके वया का हवन करे । मन्त्र—"वह वया जात वेद पितृभ्य यत्रैंज्ञन्वेत्थ निहिता परा के भेदस कुल्या उपैना स्त्रवन्तु सत्या एता आशिष सन्तु सर्वा स्वाहा" यह है ।१३। इसके अनन्तर अवदानो का और स्थालीपाक से ये सात मन्त्र होते है—"अग्ने नय सुपथाराये अस्मानिति द्वे । ग्रीष्मो हेमन्त ऋतव शिवानो त्रर्षा शिवा अभया शरन्न । सम्वत्सरोऽधिपति प्राण दोनोऽहोरात्रे कृणुता दीर्घमायु स्वाहा" । 'शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्ष द्यौर्नो देव्यभय नो अस्तु । शिवा दिश प्रदिश उद्दिशो न आपो विद्युत परिपान्तु सर्वत स्वाहा"—"आपो मरीची प्रवहन्तु नो धियो धाता समुद्रो वहन्तु पापम् । भूत भविष्यदभय विश्वमस्तु ने ब्रह्माऽधि गुप्त स्वाराक्षराणि स्वाहा"—"विश्व आदित्या वसवश्चदेवा रुद्रा गोप्तारो मरुत सदन्तु ऊर्जं प्रजाममृत पिन्वमान प्रजा-

पतिर्मयि परमेष्ठी दधातु स्वाहा"—"प्रजापते न त्वेदतान्यन्य" ।१४। सौविष्टकृती पञ्चदशी होती है उसके सह पक्ष मे अष्टमी होती है। सर्वत्र पृथक् होम होने पर स्विष्टकृत भी पृथक् ही करना चाहिए ।१५। ब्राह्मणो को भोजन कराकर स्वस्त्यमन वचवाना चाहिए—यह जो कहा है उसे यहा पर करे और श्राद्ध शेष समाप्त करावे। इति शब्द यहाँ पर भोजन का परामर्शी है। यह अष्टमी मे भोजन श्राद्ध है—यह उपदेश अन्य शास्त्र मे दिखलाई देता है। इससे यह श्राद्ध है—यह सिद्ध है ।१६।

अपरेद्यु रन्वष्टक्यम् ।१। तस्यैव मासस्य प्रकल्प्य दक्षिणाप्रवणेऽग्निमुपसमाधाय परिश्रित्योत्तरन परिश्रितस्य द्वार कृत्वा समूल बर्हिस्त्रिरपसलैर (लव्य) विधून्वन्परिस्तीर्य हवीष्यासादयेदोदन कृसर पायस दधि मन्थान्मधुमन्थाश्च ।२। पिण्डपितृयज्ञकल्पेन ।३। हुत्वा मधुमन्थवर्ज पितृभ्यो दद्यात् ।४। स्त्रीभ्यश्च सुरा चाऽऽचाममित्यधिकम् ।५। कर्षू ष्वेके द्वयो षट्सु वा ।६। पूर्वासु पितृभ्यो दद्यात् ।७। अपरासु स्त्रीभ्य ।८।

दूसरे दिन मे अर्थात् नवमी मे अन्वष्टका नाम वाला कर्म करना चाहिए ।१। जो अष्टमी मे पशु कृत हुआ उसी का मास ब्राह्मणो के भोजन के लिये प्रकल्पित करके अर्थात् सस्कार करे। दक्षिण प्रवण मे अग्नि का उप समाधान करके अग्नि तिरस्करण्यादि से परिक्षित करके उत्तर की ओर द्वार करता है। मूल के सहित बर्हि ग्रहण करके तीन बार अपसव्य मे अकम्पित होते हुए परिस्तरण करे और इद्रियो का अप्सादमन करना चाहिए—ये पाँच है—ओदन, कृसर, पायस, दधि और मन्थान्मधुमन्था। जो सक्तु दधिमिश्रित होते है वे दधिमन्थ कहे गए है और मधुमिश्रित मधुमन्थ कहे जाते है ।२। यह कर्म भी पिण्ड पितृयज्ञ के ही विधान से करना चाहिए ।३। मधुमन्थ रहित को पितृगण के लिए हवन करके देना चाहिए ।४। यहाँ पर जो माता-पितामही और प्रपितामही ये है उनके लिए पिण्ड देवे। यहाँ पर ओदन आदि से सुरा आचाम अधिक

होता है लिखा है—"ओदनाग्र ग्रव प्राहुराचाम निमहीषिण । गौडी माध्वीच पैष्टी च सुरातु त्रिविधा स्मृता"। अर्थात् ओदन से आगे होने वाले को मनीषीगण आचाम कहते है और सुरागौडी-माध्वी और पैष्टी तीन प्रकार की होती है ।५। कर्षुओ मे एक की इच्छा करने है । जन-षद् है तब परि मगुल है 'ह्यो'—इस वचन से कर्त्र्ों यह एक शेषली-क्य है । पूर्वी कर्षुओ मे पितृगण के लिए देना चाहिए ।७। और अप-राओ मे स्त्रियो को देवे । पितृगणो मे और स्त्रियो मे पृथक् २ नवावट अयुन ब्राह्मण होते है ।८।

एतेन माध्यावर्ष प्रोष्टपद्या अपरपक्षे । । मासि मासि चैव पितृभ्योऽयुक्षु प्रतिष्ठापयेत् ।१०। नवावरान्भोजयेत् ।११। अयुजो वा ।१२। युग्मान्वृद्धिपूर्तेषु ।१३। अयुग्मा-नितरेषु ।१४। प्रदक्षिणमुपचारो यवैस्तिलार्थ ।१५। ख० ५ ।

इससे अर्थात् पूर्वेद्यु प्रभृति कृत्स्न कम का अति देश होता है । प्रोष्ठयदी के समीप मे जो अपर यक्ष होता है वहाँ पर अष्टमी मे माध्या वर्ष नाम वाला कम करना चाहिए । यहाँ पर भी तीन दिनो मे ही करना चाहिए ।६। 'एवम्'—इति वचन अकृत्स्न उपदेश के लिए ही है । पितृभ्य इस वचन मे मातृ की निवृत्ति होती है । प्रतिष्ठाययेत् का अर्थ करना चाहिए होता है । इस प्रकार से प्रति मास मे अपर पक्ष में अयुस्मा तिथियो मे अन्वष्टक्य की ही भाँति पितृगणो के ही लिए श्राद्ध करना चाहिए । गन्धमाल्यादि एक वार ही देना चाहिए अथवा तीन वार या पाँच वार देवे ।१०। नौसे नीचे ही सख्या वाले ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए ।११। यदि विशेष शक्ति का अभाव हो तो उस दशा मे अयुग्म ही को भोजन कराके अर्थात् सात-पाँच तीन अथवा एक को भोजन कराना चाहिए । सात के पक्ष मे एक के लिये एक को और अन्य दो के लिये तीन-तीन को भोजन करावे ।१२।पुसवन-सीमन्तो-न्नयन चौसकर्म उपनयन और विवाह— ये श्रौत कर्म्म है । इनमे यज्ञ-

अग्नि आधेय होती है कुछ का मत है कि यह वृद्धि श्राद्ध का विषय है । अन्य षोडश सस्कार होते है और श्रवणाकर्म आदि श्रौत कर्म है—ऐसा कहते है। स्मृति मे लिखा है—'अभिष्टातु पितृ श्राद्धे वैदिक कर्म्म नारमेत्" अर्थात् श्राद्ध मे पितृगण को यजन न करके वेदोक्त कर्म्म का आरम्भ नही करना चाहिए। बावडी-कूआ तालाब, आगार आराम और उद्यायन आदि पूर्त्त श्राद्ध का विषय होते है। दोनो ही मे युग्मो को भोजन करावे ।१३। पूर्वेद्यु अष्टमी मे काम्य मे और एकोदिष्ट चारो मे यह विधि है। इस प्रकार के श्राद्धो मे ब्राह्मणो का परिमाण कह दिया है। इतरो मे अयुग्म ब्राह्मणो को ही भोजन करावे ।१४। यहाँ पर वृद्धि पूर्वेषु—यह शेष है। यहाँ पर प्रदक्षिण वचन से अन्यो मे प्रसग उपचार गम्य होता है। तिलकाय मे यवो को करे ।१५।

रथमारोक्ष्यन्नाना पाणिभ्या चक्रे अभिमृमेत् । अह ते पूर्व पादावालभेद्बृहद्रथतरे ते चक्रे ।१। वामदव्यमक्ष इत्यक्षाधिष्ठाने ।२। दक्षिणपूर्वाभ्यामारोहेत् । वायोष्ट्वा वीर्येणाऽऽरोहामीन्द्रस्यौजसाऽऽधिपत्येनेति ।३। रश्मोन्स-मृशेदश्मिकान्वा दण्डेन । ब्रह्मणो वस्तेजसा सगृह्णामि सत्येन व सगृह्णामीति ।४। अभिप्रवर्तमानेषु जपेत् । सहस्रसनि वाजमभिवर्तस्व रथदेव प्रवह वनस्पते वीड-वङ्गो हि भूया इति ।५।

यहा पर इतिकार का अध्याहार किया जाता है। तीनो वर्णो का यह समान ही होता है। रथ बहु युग मण्डल की आकृति वाला होता है। जिस समय मे गमन के लिये रथ पर आरोहण करता है तो पूर्व पक्ष मे पहियो को हाथो से मन्त्र के द्वारा अभिमर्शण करना चाहिए। यहा पर 'नाना' पद के ग्रहण से एक ही साथ करे अर्थात् दक्षिण से दाहिने को और सव्य मे सव्य को अभिमृष्ठ करना चाहिए। मन्त्र—'अहते पूव पादा-वालभेद् बृहद्रथतरे तेचक्रे" यह है। दूर देश, गमन मे आद्यमे ही आरोहण मे यह विधि है और अथ प्राप्त आरोहणो मे नही होती है ।१। दोनो हाथो

से एक साथ चक्र की नाभियो का मन्त्र के द्वारा अभिमर्शण करना चाहिए और दक्षिण तथा पूर्व से आरोहण करना चाहिए मन्त्र यह है—"वायोष्ट्वा बोर्ध्येणारो दामीन्द्रस्यौज साऽऽधिपत्येम" इति ।३। फिर रश्मियो का स्पर्श करे। यदि बिना ही रश्मियो वाले अश्व हो तो उनको दण्डे से स्पर्श करे। मन्त्र दोनो ही विधियो मे समान है। मन्त्र—"ब्रह्मणे वस्तेजसा सगृह्णामि सत्येनव सगृह्णामि" यह होता है। यहां पर बहु वचन के प्रयोग से बहुत युगो वाला रथ यहाँ पर अभिप्रेत है ऐसा समझा जा रहा है ।४। जिस समय मे सारथि के द्वारा प्रेरित अश्व यदेष्टा दिशा का अभिगमन करते है उस समय मे "सहस्तसनि वाजमभि वत्तस्व रथदेव प्रवह वनस्पते वीडवङ्गो हिभूया" इति इस मन्त्र का जाप करना चाहिए। इतना ही रथारोहण होता है ।५।

एतयाऽन्यान्यपि वानस्पत्यानि ।६। स्थिरौ गावौ भवता वालु रक्ष इति रथाङ्गमभिमृशेत् ।७। सुत्रामाण पृथिवी द्यामनेहसमिति नावम् ।८। नवरथेन यशस्विन वृक्ष ह्रद वाऽविदासिन प्रदक्षिण कृत्वा फलवती शाखा आहरेत् ।९। अन्यद्वा काटुम्बम् ।१०। ससदमुपयायात् ।११। अस्माकमुत्तम कृधात्यादित्यमीक्षमाणो जपित्वाऽवरोहेत् ।१२। ऋषभ मा समानानामित्यभिक्रामन् ।१३। वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा इत्यस्त यात्यादित्ये ।१४। तद्वो दिवो दुहितरो विभातारिनि व्युष्टायाम् ।१५। ख० ६ ।

इस ऋचा से शकट प्रभृति अन्यो वानस्वत्यो को आरोहण करते हुए उनका भी अभिमर्शण करना चाहिए ।६। इस ऋचा मे जो-जो भी अङ्ग देखा गया है उस उसका ही अभिमर्शण करना चाहिए जैसे दौनो गौ-अक्ष-ईषा और युग है। यह शकटादि मे ही अभिमर्शन होता है रथ मे नही होता क्योकि "गावौ"—यह वहा पर लिङ्ग विद्यमान है। रथ गो युक्त नही होता है वहा पर बहु युग और अश्व युक्तत्व होता है ।७। आरुहेम—इस मन्त्र के लिङ्ग होने से यहा पर 'आसहेयेत्'—यह शेष होता है।

जब-जब उदक के तरण करने के लिये नौका पर समारोहण करता है तब-तब इस ऋचा को पढ कर ही आरोहण करना चाहिए—ऋचा यह है—"सुत्रामाण पृथिवी द्यामने हसम्" ।८। नवीन रथ से जब गमन करता है तो वहा पर विशेषता है कि वानस्यत्यादि करके अर्थात् वानस्पत्य जप के अन्त तक करने के पश्चात् यह भी करना चाहिए । नव का तात्पर्य यह है कि जो उपयुक्त न हुआ हो । यश से युक्त यशस्वी होता है । अवि-दासी का अर्थ अशोठय है । वृक्ष हो या ह्रद हो उसको प्रदक्षिण करके फलो वाली शाखा का आहरण कर लेवे ।९। अथवा अन्य कोई कुटुम्ब का उपयोगी द्रव्य का समाहरण करना चाहिए ।१०। गृह के समीप मे आग-मन करना चाहिए ।११। "अस्माक मुत्तमकृधि"—इस मन्त्र के द्वारा आदित्य देव को समीक्षित करता हुआ ही जाप करके रथ से अवरोहण करना चाहिए ।१२। "ऋषभ मा समानानाम्" इस सूक्त को गृह मे प्रति पद्यमान होता हुआ जाप करे ।१३। "वयमद्येन्द्रस्य श्रेष्ठा" इसको उसी दिन मे आदित्य के अस्तगत होते हुए जाप करे ।१४। यहा पर ये तीन प्रतीक मन्त्र सज्ञा वाले है—'तद्वो दिवो दुहितरो विभाति" इति । इनका जाप उपाशु ही होना चाहिए ।१५।

अथातो वास्तुपरीक्षा ।१। अनूखरमविवदिष्णु भूम ।२। आषधिवनस्पतिवत् ।३। यस्मिन्कुशवीरिण प्रभूतम् ।४। कण्टकिर्क्षीरिणस्तु समूलान्परिखायोद्वासयेदपामार्ग शाकस्तिल्वक परिव्याध इति चैतानि ।५। यत्र सर्वत आपो मध्य समेत्य प्रदक्षिण शयनोय परीत्य प्राच्य स्यन्देरन्नप्रवदत्यस्तत्सर्व समृद्धम् ।६।

इसमे "अत" यह हेतु के अथ वाला होता है । गृह के निमित्त मे समृद्धि वृद्धि होती है इसी से यहा पर वास्तु परीक्षा को कहा जाता है ।१। इस प्रकार से लक्ष से युक्त देश मे वास्तु करना चाहिए—भूमि विवाद मे रहित और ऊषर नही होवे वहाँ पर ही वास्तु करे ।२। जो भूमि ओषधि और वनस्पति से युक्त हो ऐसी ही भूमि से वास्तु करे ।३। जहा पर प्रभूत

कुशवीरिण होवे वही पर वास्तु करना चाहिए ।४। जो कॉटे दार और क्षीर वाले वृक्ष होवे उनको समूल परिखण्डित करके अपामार्गशारस्तिल्वक और परिव्याध इस प्रकार के वास्तु विद्या मे निषिद्ध होते है अतएव ये सब उद्वास्य ही होते है ।५। जिस देश मे जल सब दिशाओ से आकर मध्य मे पहुँच कर रहे वहा पर प्रदक्षिण शयनीय को परीत करके प्राड् मुख्य गमन करना चाहिए । इस लक्षण से युक्त वास्तु विद्या वृत्त-धन-धान्यादि सबसे समृद्ध होता है । सब ओर से उच्छ्रित मध्य मे थोडी निम्न और प्राक्प्रवण भूमि को करके गृह बनाना चाहिए । वहा पर प्राची दिशा मे गृही को शयनीय गृह बनाना चाहिए । शयनीय गृह के उत्तर मे जल के शनै निर्गमन के लिये स्पन्दनिका करे ।६।

समवस्रवे भक्तशरण कारयेत् ।७। बह्वन्न ह भवति ।८। युवानस्तस्या कितवा कलहिन प्रमायुका भवन्ति ।१०। यत्र सर्वत आप प्रस्यन्दरन्सा स्वस्त्वयन्यद्यूता च ।११। ख० ७ ।

जिस मार्ग से जल निकलता है वह देश सभव स्रव होता है अर्थात् प्राची दिशा मे सभवस्रव मे शयनीय के उत्तर मे महानस बनवाना चाहिये । अन्य शास्त्र मे प्रगदक्षिण दिशा मे भक्त शरण देखा गया है तो प्राची दिशा मे कैसे कहा गया है इस प्रकार की शङ्का से प्रकृत का स्तवन किया जाता है कि ऐसा ही करना ऋद्धिमान् होता है । इसलिये यहा पर ही करना चाहिए क्योकि वह बहुत अन्न वाला होता हे ।८। जहा पर गृही स्वजनो और आगन्तुको के साथ स्वतन्त्रता से रहता है वह सभा कही जाती हैं उस सभा को दक्षिण प्रयाण उदीची दिशा मे करना चाहिये । वहाँ पर की हुई सभा घूत से रहित होती है ।९। बिना विधि के करने पर बहुत से दोष होने है । अविहित स्थान मे करने पर उस मे युवा लोग कितव-कल ही और प्रमायुक हो जाया करते है । अर्थात् युवावस्था ही मे अल्पायु होकर मर जाया करते है । इस कारण से वहाँ पर नही करनी चाहिए ।१०। फिर वह सभा कहाँ पर बनानी चाहिए यह बतलाते हुए

कहते है जहाँ पर सभी दिशाओ से जल का आगमन होता है वहा गृह के मध्य मे सभा बनानी चाहिए जहाँ पर वह अछूता और शुभकारी हुआ करती है ।११।

अथैतेर्वास्तु परीक्षेत ।१। जानुमात्र गर्त खात्वा तैरेव पासुभि प्रतिपूरयेत् ।२। अधिके प्रशस्त समे वार्तन्यूने गर्हितम् ।३। अस्तमितेऽपा सुपूर्ण परिवासयेत्।४। सोदके प्रशस्तमार्द्रे वार्त शुष्के गर्हितम् ।५। श्वेत मधुरास्वाद सिकतोत्तर ब्राह्मणस्य ।६। लाहितक्षत्रियस्य ।७। पीत वैश्यस्य ।८।

पूर्वोक्त लक्षणो के सम्भव न होने पर उत्तर लक्षणोको बलवत्ता कैसे होती है—यही यहा पर 'अथ'' इस शब्द का अर्थ होता है। वास्तु की परीक्षा करनी चाहिए। परीक्षा कैसे करे—यह बतलाया जाता है ।१। घुटनो तक एक गड्ढा खोदकर उसे उसी मिट्टी से भर देवे। उस गर्त्त के पूरित होकर शेष धूलिके बच जाने पर वास्तु परम प्रशस्त होता है और यदि उसके भर जाने के बराबर हो तो वहाँ पर वास्तु वृत्ति वाला हुआ करता हैं। तथा गर्त्त की पूर्त्ति हीन हो सके तो वहाँ पर वास्तु कम गर्हित हुआ करता है। उसमे वहा कभी भी नही करना चाहिए ।२-३। अस्तमित वेला मे जल से उस गड्ढे को पूरित करके उस राशि को परिवासित करना चाहिए फिर व्युष्ट मे निरीक्षण करे ।४। जल के सहित होने पर वह स्थल वास्तु कम के लिये प्रशस्त होता है—आद्र रहने पर आर्त्त और शुष्क हो जाने पर गर्हित होता है ।५। जो सिकता की अधिकता वाला और मधुर आस्वाद वाला हो और श्वेत वर्ण का हो वह ब्राह्मण के लिये शुभकारी होता है। मधुरास्वाद युक्त सिकता वाला लोहित वर्ण का हो वह क्षत्रिय को शुभ है और जो पीत वर्ण वाला मधुर स्वाद युक्त सिकता समन्वित हो यह वैश्य को शुभकारी होता है ।६-७-८।

तत्सहस्रसीत कृत्वा यथादिक्समचतुरस्र मापयेत् ।९। आयतचतुरस्र वा ।१०। तच्छमीशाखयोदुम्बरशाखया

वा शन्तातीयेन त्रि प्रदक्षिण परिव्रजन्प्रोक्षति ।११। अविच्छिन्नया चोदकधारया। आपो हि ष्ठा मयोभुव इति तृचेन ।१२। वशान्तरेषु शरणानि कारयेत् ।१३। गर्तेष्ववका शीपालमित्यवधापयेन्नास्याग्निर्दाहुको भवतीति विज्ञायते ।१४। मध्यमस्थूणाया गर्तेऽवधाय प्रागग्रोदगग्रान्कुशानास्तीर्य व्रीहियवमतीरप आसेचयेत् । अच्युताय भौमाय स्वाहेति ।१५। अथैनामुच्छ्रियमाणामनुमन्त्रयेतेहैव तिष्ठ निमिता तिल्विलास्तामिरावती मध्ये पोषस्य तिष्ठन्तीम् । आ त्वा प्रापन्नघायव आ त्वा कुमारस्तरुण आ वत्मो जायता सह । आ त्वा परिश्रित कुम्भ आ दध्न कलशैरयन्निति ।१६। ख० ८ ।

इस प्रकार से परीक्षा किये हुए वस्तु को सहस्रशील करके देखना चाहिए। बहुतवार सीता के द्वारा फिर उसका कषण (जुत ई) करे। फिर सभी दिशाओ मे सम चौकोर वहाँ पर स्थण्डिल की रचना करनी चाहिए। सहस्र शब्द यहा पर बहुत के अथ को ही वताने वाला है ।९। अथवा दीर्घ और चौकोर वनवावे। वहाँ पर इमी प्रकार का क्रम है कि प्रथम वाहिरी परीक्षा करके फिर भीतरी परीक्षा के द्वारा वास्तु का कार्य करना चाहिए। आयत और चौकोर गर्त करके देखे कि जहा पर सब जगह जल मध्य मे समागत होकर रहे—यह समझलेवे। ऐसे ही स्थल पर आगे बताये जाने वाला प्राक्षाण आदि करे ।१०। वहाँ पर शमी शाखा से अथवा उदुम्बर की शाखा से "शन इन्द्राग्नी" इस सूक्त को जो शन्तानीय नाम से प्रसिद्ध है तीन बार परिव्रजन करता हुआ पढे। प्रदक्षिण प्रोक्षण करे। सवत्र मन्त्र के अन्त मे कर्म का आरम्भ करना चाहिए। परशुना छिनति इससे परशुवत् करे। मन्त्र के अन्त मे प्राची से आरम्भ करके ब्रजन का आरम्भ करना चाहिए ।११। तीन बार प्रदक्षिण परिब्रजन करता हुआ अविच्छिन्न जल की धारा से "आयोहिष्ठा भयोभव ?" इस ऋचा से प्रोक्षण करना चाहिए। यहाँ पर भी धारा की और तृचा की आवृत्ति होनी है ।१२। वहा पर जितने भी वाँस होवे वहा दो-दो वाँसो के अन्तरो मे कुउ-

चादि से पृथक् करके अवान्तर गृह बना देने चाहिए ।१३। समस्त स्थूणो के गर्त्तों मे अवका अर्थात् शीपाल का अवधान करना चाहिए। इस प्रकार से इसकी अग्नि दाहुक नहीं होती है--ऐसा सुना जाता है ।१४। यह पर यह गर्त्त विशेष है। मध्य स्थूणा के गर्त्त का शीपाल का अवधान करके कुशाओ का समास्तरण करे और इसके पश्चात् मन्त्र के द्वारा आसिञ्चन करना चाहिए। मन्त्र--"अश्रुताय मामाय स्वाहा" यह है। यहा पर "अवधाय"—यह वचन अबका और शीपाल दोनो के अवधान की प्राप्ति के ही लिये है ।१५। मध्य स्थूणा गर्त्त को आधीयमाना को मन्त्रो से अनुमन्त्रण करना चाहिए—मन्त्र---इहैवतिष्ठ निमिता तिल्जिला स्तामिरावती मध्येपोषस्य तिष्ठन्तीम्। आ त्वा प्रायान्नद्यायन आत्वा कुमारस्तरुण आवत्सो जायत्तास्ह। आत्वा परिश्रित कुम्भ आदघ्न कलशैरयामिति" ये है ।१६।

वशमाधीयमानम् ।१। ऋतेन स्थूणामधिरोह वश द्राघोय आयु प्रतर दधाताइति ।२। सदूर्वासु चतसृषु शिलासु मणिक प्रतिष्ठापयेत्पृथिव्या अधि सभवेति ।३। अरङ्गरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया। इरामु ह प्रशससत्यनिरामनबाधतामिति वा ।४। अथास्मिन्नप आसेचयेत्। ऐतु राजा वरुणो रेवतीभिरस्मिन्स्थाने तिष्ठतु मोदमान इरा वहन्तो घृतमुक्षमाणा मित्रेण साक सह सविशन्त्विति ।५। अथैनच्छमयति ।६। व्रीहियवमतीभिरद्भिर्हिरण्यमवधाय शन्तातीयेन त्रि प्रदक्षिण परिव्रजन्मोक्षति ।७। अविच्छिन्नया चोदकधारया–आपो हि ष्ठा मयोभुव इति तृचेन ।८। मध्येऽगारस्य स्थालीपाक श्रपयित्वा वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मानिति चतसृभि प्रत्यृच हुत्वाऽन्न सस्कृत्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा शिव वास्तु शिव वास्त्विति वाचयीत ।९। ख० ९।

आधीम मान वास का अनुमन्त्रण करना चाहिए ।१। इसके द्वारा मध्यम स्थूणा के ऊपर आधीय मान वास का अनुमन्त्रण करना चाहिए

अन्य विद्वान् तो प्रत्येक वश के लिये आवृत्ति की इच्छा रखते है। मन्त्र है—"ऋतेन स्थूणामधिरोह वश द्राघीय आयु प्रतर दधाना" इति।२। चार शिलाऐ स्थापित करा कर उन पर दूभ रखकर इसके पश्चात् मणिक (जलधारण के लिये भाण्ड विशेष को कहते है) को प्रतिष्ठापित करावे और मन्त्र के ही द्वारा प्रतिष्ठापित करना चाहिए। अथवा "अरङ्गरो वावदीति त्रेधा वद्धो वरत्रया। इरामुङ् प्रश सत्यनि रामपबाधताम्' इति इस ऋचा से प्रतिष्ठापित करावे।३ ४। इसके उपरान्त इस मणिक मे जल का निषिञ्चन करे और यह पूरणार्थ मन्त्र के ही द्वारा करे–मन्त्र–'एतु राजा वरुणो रेवतीभिरस्मिन्स्थाने तिष्ठतु मोदमान। इरा वहन्तो घृत-मुक्षमाणा मित्रेण साक सहसविश तु" इति—यह है।५। इसके अनन्तर इस वास्तु शान्ति को करता है।६। व्रीहि और मन वाली जलो से हिरण्य का अवधान करके सशान्तीय के द्वारा तीन चार प्रदक्षिण परिव्रजन करता हुआ प्रोक्षण करता है।७। अविच्छिन्न जल की धारा से "आपोहिष्ठाभयो भुव"—इस तृचा से करना चाहिए।८। इस सूत्र मे श्रययित्वा"—इस वचन से यह अवगत होता है कि इस स्थाली पाक से पहिले इस गृह मे अन्ययाक का भ्रमण नही करना चाहिए। भुक्तवान् ब्राह्मणो से'शिव वास्तु' शिव वस्तु यह आप लोग बोले—यह वाचन कराना चाहिए। और वे ब्राह्मण भी 'शिव वास्तु-शिव वास्तु'-यह प्रति वचन बोले। अगार के मध्य मे स्थाली पाक को 'वास्तोष्पते प्रतिजानी ह्यस्मान्' इन चार ऋचाओ से प्रतिऋचा हवन करके अन्न का सस्कार करे और फिर ब्राह्मणो को भोजन करना काहिए।६।

उक्त गृहप्रपदनम् ।१। बीजवतो गृहान्प्रपद्येत ।२। क्षेत्र प्रकर्षयेदुत्तरै प्रोष्ठापदै फल्गुनीमी रोहिण्या वा ।३। क्षेत्रस्यानु वा त क्षेत्रस्य पतिना वयमिति प्रत्यृच जुहुया-ज्जपेद्वा ।४। गा प्रतिष्ठमाना अनुमन्त्रयेत मयोभूर्वातो अभिवातूस्रा इति द्वाभ्याम् ।५। आयती । यासामूध-श्चतुर्बिल मधो पूर्ण घृतस्य च। ता न सन्तु पयस्वती-

बह्वीर्गोष्ठ घृताच्य । उप मैतु मयोभुव ऊर्ज चौजश्च बिभ्रती । दुहाना अक्षित पयो मयि गोष्टे निविश्ध्व यथा भवाम्युत्तमो या देवेषु तन्वमैरयन्तेति च सूक्त-शेषम् ।६। आगावीयमेके ।७। गणानासामुपतिष्ठेतागुरु-गवीना भूता स्थ प्रशस्ता स्थ शोभना प्रिया प्रियो वो भूयास श मयि जानीध्व श मयि जानीध्वम् ।८। ख० १० ।

जो "प्रयद्येत गृहानह सुमनस" इत्यादि गृह प्रपदन कहा गया है उसे यहा पर भी करना चाहिए । अन्य लोगो ने कहा है कि जो मणिक प्रतिष्ठायनादि कहा गया है वही गृह प्रपदन सज्ञा वाला होता है । इससे क्या सिद्ध होता है माणिक स्थायन से पहिले ही बीजो का श्रपण करके रुठणीभाव से प्रवेश करे । और भी यह है कि अन्य शास्त्र से सस्कृत अथवा विशीर्ण पुराने गृह का सस्कार करके प्रवेश करते हुए की मणिक प्रतिष्ठायन आदि सिद्धि होता है ।१। यहा पर 'गृहान्'—यह वचन इसी लिये है कि जिस गृह मे प्रवेश करता है वहा पर भी इसी प्रकार से प्रवेश करना चाहिए चाहे वह विशीर्ण का सस्कार करके ही प्रवेश किया जावे । अर्थात् मणिकादि वीज व अपदमान्त वहा भी करना ही चाहिए। इससे पहिले की हुई व्याख्या भी साध्वी होती है ।२। उत्तरा प्रोष्ठ पदो से फाल्गुनीयो से अथवा रोहिणी के द्वारा क्षेत्र का प्रकर्षण करना चाहिए। ये तीन ही नक्षत्र है । नित्यकर्मो को द्रव्य साध्य होने से द्रव्य के लिये क्षेत्र का प्रकर्षण करना चाहिए । तात्पय यही है कि उक्त तीन नक्षत्रो मे कृषि का प्रारम्भ करना चाहिए ।३। प्रारम्भ दिवस मे यह करना चाहिए– यह बतलाते है—"क्षेत्रस्यानु वा त क्षेत्रस्य पतिनावयम् ।। इससे प्रति ऋचा हवन करना चाहिए ? माला जाप करना चाहिये ? वहा पर उप-लेपनादि करके ही हवन करे ।४। भक्षण करने के लिये अरण्य की ओर गमन करती हुई गौओ का अनुमन्त्रण करे और दिनप्रतिदिन करे । गौएे चाहे अपनी हो या अन्य हो—इसका कोई नियम नही है । दो ऋचाये हैं

मयोभूर्वातो अभिवातूस्रा "इति ।५। जब गौऐ ग्राम की ओर आरही हो तो भी गौओ का अनुमन्त्रण प्रतिदिन करना चाहिए—'अहरहयासाम् । इन ऋचाओ से करे और शूक्तशेष के द्वारा करे। 'यासामूध श्रतुर्बिल मधो पूर्ण घृतस्य । तान सन्तु पयस्वतीर्वह्वीर्गोष्ठे घृताच्य उप मैतुमयो-भुवऊर्ज चौजश्च विभ्रती । दुहाना अक्षित पयो मयिगोष्ठे निविशध्व यथा-भवाम्युत्तमो या देवेषु तन्वमैरयन्ता" यह सूक्त शेष है ।६। कुछ विद्वान् आती हुई गौओ के अनुमन्त्रण मे "आगावो अग्मन्"—इसी सूक्त को चाहते है।७। इन अगुरुगवी गौओ के सघो का उपस्थान करे—'अहरह भूतास्य शोभना प्रशस्तास्थ प्रिया । प्रियो को भूमास शममि जानीध्व शेसमि जानीध्य ।

इति आश्व लामन गृह्य सूत्रे द्वितीयोऽध्याय समाप्त ।

———

तृतीयोऽध्यायः

ॐअथात पञ्चयज्ञा ।१। देवयज्ञो भूतयज्ञ पितृयज्ञो ब्रह्म-यज्ञो मनुष्ययज्ञ इति ।१। तद्यदग्नौ जुहोति स देवयज्ञो यद्-बलि करोति स भूतयज्ञो यत्पितृभ्यो ददाति स पितृयज्ञो यत्स्वाध्यायमधीयते स ब्रह्मयज्ञो यन्मनुष्येभ्यो ददाति स मनुष्ययज्ञ इति ।३। तानेतान्यज्ञानहरह कुर्वीत ।४। ख० १ ।

इस सूत्र मे "अत यह शब्द हेतु के अथ वाला है । क्योकि इन के करने से नि श्रेयस की प्राप्ति होती है पञ्च यज्ञ नाम वाले यज्ञ बतलाये जायगे ।१। वे पाच यज्ञ ये है—देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, और मनुष्य यज्ञ ।२। जो अग्नि मे दश आहुतियो का हवन करता है वह देवयज्ञ होता है । जहा बलि का हरण होता है वह भूतयज्ञ होता है जो पितृगण के लिये "स्वधा पितृभ्य" इससे देता है वह पितृयज्ञ होता है । जो स्वाध्याय का अध्ययन करता है वह ब्रह्मयज्ञ होता है । जो मनुष्यो के लिये देता है वह मनुष्य यज्ञ होता है ।३। उक्त इन पाँचो यज्ञो को प्रतिदिन करना चाहिए ।४।

अथ स्वाध्यायविधि ।१। प्राग्वोदग्वा ग्रामान्निष्क्रम्याप आप्लुत्य शुचौ देशे यज्ञोपवीत्याचम्याक्लिन्नवासा दर्भाणा महदुपस्तीर्य प्राक्कूलाना तेषु प्राङ् मुख उपविश्योपस्थ कृत्वा दक्षिणोत्तरौ पाणी सधाय पवित्रवन्तौ विज्ञायतेऽपा वा एष ओषधीना रसो यद्दर्भा सरसमेव तद्ब्रह्म करोति । द्यावापृथिव्यो सधिमीक्षमाण समील्य वा यथा वा युक्तमात्मान मन्येत तथा युक्तो-

ऽधीयीत स्वाध्यायम् ।२। ॐ पूर्वा व्याहृती ।३। सावित्रीमन्वाह पच्छोऽर्धर्कश सर्वामिति तृतीयम् ।४। ख० २ ।

अब स्वाध्याय की विधि बतलायी जानी है। इससे वैश्वदेव के पहिने या पीछे अध्ययन करना चाहिए—इसमे कोई भी क्रम का नियम नही है यह सिद्ध है ॥१॥ पूर्व मे या उत्तर मे ग्राम से निकल कर जल मे आप्लुत होवे और फिर किसी शुद्ध देश मे यज्ञोपवीती आचमन करे। आक्लि वस्त्रो वाला दर्भो महान् उपस्तरण करके उनके युक्त कूलो मे प्राङ्मुख होकर उपविष्ट होकर उपस्थ करके दक्षिण उत्तर दोनो हाथो को सधान करके पवित्री वाले करे। यह श्रवण किया जाता है अर्थात् यह समस्त गृह्य शास्त्र श्रुति मूलक ही होता है। यह जल का रस है अथवा औधियो का रस है जो दर्भ सरस ही उस ब्रह्म को करता है। फिर द्यावा पृथिवी की सन्धि को देखता हुआ अथवा नेत्रो को समीलित करके जैसे भी आत्मा को युक्त माने वैसे ही युक्त होकर स्वाध्याय का अध्ययन करता है ॥२॥ आदि मे प्रणव को कहकर फिर तीनो व्याहृतियो को समस्तो को बोलना चाहिए। "भूर्भुव स्व" ये तीन महाव्याहृतियाँ है ॥३॥ फिर सम्पूर्ण सावित्री को बोले। पच्छ अध ऋचा के क्रम से तृतीय को बोलना चाहिए ॥४॥

अथ स्वाध्यायमधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वाङ्गिरसो ब्राह्मणानि कल्पान्गाथा नाराशसीरितिहासपुराणानीति ।१। यदृचोऽधीते पयआहुतिभिरेव तद्देवतास्तर्पयति यद्यजूंषि घृताहुतिभिर्यत्सामानि मध्वाहुतिभिर्यदथर्वाङ्गिरस सोमाहुतिभिर्यद्ब्राह्मणानि कल्पान्गाथा नाराशसीरितिहासपुराणानीत्यमृता हुतिभि ।२। यदृचोऽधीते पयस कुल्या अस्य पितृन्स्वधा उपक्षरन्ति यद्यजूंषि घृतस्य कुल्या यत्सामानि मध्व कुल्या यदथर्वाङ्गिरस सोमस्य कुल्या यद्ब्राह्मणानि कल्पान्गाथा नाराशसी-

रितिहासपुराणानीत्यमृतस्य कुल्या ।३। स यावन्मन्येत तावदधीत्यतया परिदधाति । नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्व-ग्नये नम पृथिव्यै नम ओषधीभ्य । नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महत करोमीति ।४। ख० ३ ।

इसके अनन्तर स्वाध्याय का अध्ययन करना चाहिए । इसमे यह सिद्ध होता है कि प्रणव जिनके आदि मे है ऐसी तीनो व्याहृतियाँ स्वाध्याय का ही अङ्ग है । फिर यजुर्वेद की ऋचाऐ – सामवेद–ऋग्वेद और अथर्वाङ्गिरस-ब्राह्मण, कल्प, गाथा, नराशसि, इतिहास और पुराणो का अध्ययन करना चाहिए ।।१।। जो बहुत ऋचाओ का अध्ययन करता है, पय की आहुतियो के ही द्वारा करना चाहिए । इससे देवताओ का तर्पण करता है । यजुर्वेद को घृत की आहुतियो के द्वारा, सामवेद को मधु की आहुतियो के द्वारा, आङ्गिरसो को सोम की आहुतियो के द्वारा अध्ययन करता है । इसके अनन्तर ब्राह्मण-कल्प, गाथा,नराशसि-इतिहास पुराणो का अध्ययन अमृत की आहुतियो के द्वारा करना चाहिए ।।२।। जैसा कि बताया गया है कि ब्रह्मयज्ञ के द्वारा देवगण तृप्त होते है वैसे ही अब बताया जाता है कि पितृगण भी तृप्त होते है । जो ऋचाओ का अध्ययन करता है वह पय की नदियाँ पितृगण के समीप मे उपस्थित होती है और स्वधा का उपक्षरण किया करती है । यजुर्वेद के मन्त्र घृत की नदियाँ—सामवेद मधु की नदियाँ तथा आङ्गिरसाथर्व वेद के मन्त्र सोमरस की नदियाँ और ब्राह्मण, कल्प, गाथा, नाराशसि, सब इतिहास-पुराण अमृत की नदियाँ पितृगण को उपस्थित होती है ।।३।। उसको चाहिए कि जितने समय तक अपने मनको एकाग्र समझे उतने ही काल तक अध्ययन करना चाहिए । यह कोई नियम नही है कि दशो का ही ही अध्ययन करे । सब प्रकार से समाहित मन से ही अध्ययन करे । यहा इतना ही करे–ऐसा कोई भी नियम नही है । फिर इस ऋचा से परिधान करता है–"नमो ब्रह्मणे, नमोऽस्त्वग्नये, नम पृथिव्यै नमओषधिभ्य, नमो वाचे, नमो वाचस्पतये, नमोविष्णवे महते" करोमि" ।।इति ।।४।।

देवतास्तर्पयति प्रजापतिर्ब्रह्मा वेदादेवा ऋषय सर्वाणि च्छन्दास्योकारो वषट्कारो व्याहृतय सावित्री यज्ञा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षमहोरात्राणि साख्या सिद्धा समुद्रा नद्या गिरय क्षेत्रौषधिवनस्पतिगन्धर्वाप्सरसो नागा वयासि गाव साध्या विप्रा यक्षा रक्षासि भूतान्येवमन्तानि ।१। अथ ऋषय शतर्चिनो माध्यमा गृत्समदो विश्वामित्रो वामदेवोऽत्रिर्भरद्वाजो वसिष्ठ प्रगाथा पावमान्य क्षुद्रसूक्ता महासूक्ता इति ।२। प्राचीनावीती ।३। सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्या जानन्तिबाहविगार्ग्यगौतमशाकल्यबाभ्रव्यमाण्डव्यमाण्डूकेया गर्गीवाचक्रवी वडवाप्रातीथेयी सुलभामैत्रेयी कहोल कौषीतक महाकौषीतक पैङ्ग्य महापैङ्ग्य सुयज्ञ साख्यायनमैतरेय महैतरेय शाकल बाष्कल सुजा तवक्त्रमौदवाहि महौदवाहि सौजामि शौनकमाश्वलायन ये चान्ये आचार्यास्ते सव तृप्यन्त्विति ।४। प्रतिपुरुष पितॄ स्यर्पयित्वा गृहानेत्व यद्ददाति सा दक्षिणा ।५।

परिधान के अनन्तर इन देवो का उदय के द्वारा तर्पण करता है। यह तर्पण मे प्रसिद्ध है—'प्रजापति–ब्रह्मा–वेद-देव ऋषि–सब छन्द-ओङ्कार-वषट्कार व्याहृतिया-सावित्री-यज्ञ द्यावा पृथिवी-अन्तरिक्ष अहोरात्र-साख्य-सिद्ध-समुद्र नदियाँ- पर्वत- क्षेत्र- ओषधिया- वनस्पति-गन्धर्व-अप्सरा नाग-पक्षी-भौरो साध्य-विप्र-यक्ष-राक्षस और भूत सब तृप्त होवे ऐसी रीति से ही सबका नामोच्चारण करके ही तपण करना चाहिए ॥१॥ इसके अनन्तर शतर्चि प्रभृति बारह ऋषियो का तर्पण करता है। वे बारह ये है—शतर्षि माध्यम-गृत्समद-विश्वामित्र-वामदेव-अत्रि-भरद्वाज-वसिष्ठ-प्रगाध पावमान्य-क्षुद्र सूक्त और महासूक्त ये है ॥२॥ प्राचीनावीती होकर ही जो आगे बताये जाने वाले है उनका तर्पण किया जाता

है ॥३॥ सुमन्तु जैमिन–वैशम्पायन पैल सूत्र भाष्य भारत महाभारत धर्माचार्य्य जानन्ति वाहनि-गार्ग्य गौतम शाकल्य वाभ्रव्य–माण्डव्य माण्डूकेय–गर्गी वाचूकवी वडवा प्रातिथेयी सुलभामैत्रेयी कहोत कौषीतक महकौपीतक पैङ्गच महापैङ्गच सुयज्ञ साख्यायन ऐतरेय महैतरेय-शाकल वाष्कल सुजातवक्त्र औदवाहि महौदवाहि सौजामि शौनक आश्वलायन ये सब तेईस वाक्य है और जो अन्य आचार्य्य है वे सब तृप्त होवे ॥इति ॥४॥ प्रति पुरुष पितृगण को तृप्त करके गृह मे आकर जो देता है वह दक्षिणा होती है ॥५॥

अथापि विज्ञायते स यदि तिष्ठन्व्रजन्नासीन शयानो वा य ऋतुमधीते तेन तेन हास्य क्रतुनेष्ठ भवतीति ।६। विज्ञायते तस्य द्वावनध्यायौ यदाऽऽत्माऽशुचिर्यद्देश ।७। ख० ४ ।

पूव मे कथित उपवेशन के सम्भव न होने पर इस प्रकार से ब्रह्म-यज्ञ करना चाहिए–इस विषय मे श्रुति ने कहा है— नशयानोऽधीयीत-नाश्रम्याम्"—इत्यादि जो निषेध है वह नित्य स्वाध्याय का ही होता है और ब्रह्मयज्ञ का नही होता है। और भी बताया जाता है कि वह यदि खडा होता हुआ, गमन करता हुआ, बैठा हुआ अथवा शयन करता हुआ जिस क्रतु का अध्ययन करता है उस-उस क्रतु से इसका अभीष्ट होता है ।६। उस ब्रह्मयज्ञ की दो ही अनध्याय बतलाई जाती है। प्रथम तो जब आत्मा अशुचि हो चाहे सूतक से–मृतक से अथवा मलादि के द्वारा किसी भी प्रकार से हो तब इसका अनध्याय होता है और दूसरा जब कि अमेध्य आदि पदार्थो से वह देश ही अशुचि हो–इन ही कारणो के होने पर अनध्याय होता है। काल के विषय मे तो श्रुति है कि—"मध्यान्दिने प्रबलमधीयीत य एव विद्वान् महाराज उषसि उदिते च" अर्थात् दिन के मध्य प्रबलता से अध्ययन करे जो इस प्रकार का विद्वान है वह महाराज ऊषाकाल मे और सूयदेव के उदित होने पर अध्ययन करे ।७।

अथातोऽध्यायोपाकरणम् ।१। ओषधीना प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावणस्य ।२। पञ्चम्या हस्तेन वा ।३। आज्यभागौ हुत्वाऽऽज्याहुतीर्जुहुयात् । सावित्र्यै ब्रह्मणे श्रद्धायै मेधायै प्रज्ञायै धारणा यै सदसस्पतयेऽनुमतये छन्दोभ्य ऋषिभ्यश्चेति ।४। अथ दधिसक्तूञ्जुहोति ।५। अग्निमीले पुरोहितमित्येका ।६। कुषुम्भकस्तदब्रवीदावदस्त्व शकुने भद्रमावद गृणाना जमदग्निना धाम ते विश्व भुवनमधिश्रित गन्ता नो यज्ञ यज्ञिया सुशमि यो न स्वो अरण प्रतिचक्ष्व विचक्ष्वाऽऽग्ने याहि मरुत्सखा यत्ते राजञ्छृत हविरिति द्व्यृचा ।७।

यहाँ पर "अत "—यह शब्द हेतु के अथ वाला है। इसके अनन्तर अध्याय का प्रारम्भ जिस कम से होना है उसे ही अध्यायोपाकरण कहते है जो कि ब्रह्मयज्ञ नित्य है इसी हेतु से अध्ययन का प्रारम्भ बतलाते है।१। उसका काल बताते है—जब ओषधियो का प्रादुर्भाव हो तब श्रावण मास के श्रवण नक्षत्र से प्रारम्भ करना चाहिए जब श्रावण मे किसी कारण से औषधियो का प्रादुर्भाव न हो तो भाद्रपद मे श्रवण करे—यही तात्पर्य है। वृष्टि के अपकष मे कम का अपकष कभी नही होता है। यदि भाद्रपद मे भी वृष्टि का अपकर्ष हो जावे तो क्या करे—इसका समाधान यही है कि यह कम वर्षा मे ही किया जाता है। श्रावण और भाद्रपद वर्षा की ऋतु के ही मास है।२। अथवा श्रावण मास की पञ्चमी जब हस्त नक्षत्र से युक्त हो तब करे। इस प्रकार से तीन काल इस कर्म के लिये बता दिये गये है।३। आज्य भागों का हवन करके आज्य की आहुतियो से हवन करना चाहिए। यहाँ पर आज्य भाग का वचन नित्यार्थ होता है। ये नौ आहुतियाँ है इनको घृत से ही हवन करना चाहिए सावित्र्यै स्वाहा—ब्रह्मणे, श्रद्धायै, मेधायै, प्रज्ञायै, धारणायै, सरस्वतये, अनुमतये, छन्दोभ्य, ऋषिभ्य स्वाहा। स्वाहा शब्द सब के ही अन्त मे प्रयुक्त करे।४। इसके अनन्तर दधि से

मिश्रित सक्तुओ का हवन करना चाहिए ।५। एक आहुति "अग्निमीले पुरोहितम्" इससे देवे ।६।कुषुम्भकस्तद ब्रवीदावदन्स्त्व शकुने भद्रमावद गृणाना जमदग्निना धाम ते विश्व भुवन मधि श्रित गन्तानो यज्ञ यज्ञिया सुशमि यो न स्वो अरण प्रतिच विचक्ष्वाग्ने याहि मरत्सखा यत्तो राजञ्छ्रुत हविरिति द्व्यृचा । ये नौ द्व्यृचा है ।७।

समानीव आकुतिरित्येका ।८। तच्छयोरावृणीमह इत्येका ।६। अध्येष्यमाणोऽध्याप्यैरन्वारब्ध एताभ्यो देवताभ्यो हुत्वा सौविष्टकृत हुत्वा दधिसक्तून्प्राश्य ततो मार्जनम् ।१०। अपरेणाग्नि प्राक्कूलेषु दर्भेषूपविश्योदपात्रे दर्भान्कृत्वा ब्रह्माञ्जलिकृतो जपेत् ।११। ॐपूर्वा व्याहृती सावित्री च त्रिरभ्यस्य वेदादिमारभेत् ।१२। तथोत्सर्गे ।१३। षण्मासानधीयीत ।१४। समावृत्तो ब्रह्मचारिकल्पेन ।

"समानीव आकृति" इति--यह भी एका है। "तच्छयोरावृणी वह" इति--यह भी एका हे ।८ ६। 'अध्याप्यैरन्वारब्धे' इतने ही से सिद्ध होने पर 'अध्येय्यमाना'—यह वचन इसी लिये है कि अध्ययन के अभाव मे भी अध्येष्यमाण स्वय ही करे। इन देवताओ के लिये हवन करके और सौविष्टकृत को हवन करके दधि सक्तुओ का प्राशन करे और फिर मार्जन करना चाहिए ।१०। पीछे अग्नि के प्राजग्र दर्भो पर उपवेशन करते है। इसके पश्चात् शयन आदि मे जल का आसेचन करे और फिर ब्रह्माज्जतिकृत हो कर जप करना चाहिए। स्वय करे और यदि वहाँ पर शिष्य हो तो उनके साथ ही मे करना चाहिए ।११। ॐकार पूवक समस्त महा आहुतियों का फिर सावित्री का तीन बार अभ्यास करके वेदादि 'अग्निमीले' इससे आरम्भ करके सूक्त अथवा अनुवाक्य का आरम्भ करना चाहिए ।१२। यहाँ पर कृत्स्न कर्म का अतिदेश नही है किन्तु वेद के केवल आरम्भण का ही अतिदेश किया जाता है। इन देवताओ

के लिये अन्न से हवन करे यही प्रधान होम है। इससे उत्सर्जन मे प्राशन और माजन नही होते है ऐसा सिद्ध हो गया ।१३। छै मास तक अध्ययन करना चाहिए और बीच मे उपराम नही करे ।१४। ब्रह्मचारी के जैसे धर्म होते है उसी के समान समावृत्त रहे। स्वाध्याय के समय मे जो धर्मो का विधान है जैसे—मधु, मास, स्त्री गमन, दिवाशयन आदि है, इन सबका वर्णन करके ही युक्त हो अध्ययन करना चाहिए। जो समावृत्त होता है उसके मेदवलादि नही होती है ।१५।

यथान्पायमितरे ।१६। जायोतेयेत्येके ।१७। प्राजापत्य तत् ।१८। वार्षिकमित्येतदाचक्षते ।१९। मध्यमाष्टकाया-मेताभ्यो देवताभ्योऽन्नेन हुत्वाऽपोऽभ्यवयन्ति ।२०। एता एव तद्देवतास्तर्पयन्ति ।२१। आचार्यानृषीन्पितृश्च ।२२। एतदुत्सर्जनम् ।२३। ख० ५ ।

इस अध्ययन मे ब्रह्मचारियो की भी प्रवृत्ति होती है अ यथा समा-वृत्तो की ही प्रवृत्ति होवे—यह शङ्का होती है। इतर का तात्पर्य ब्रह्म-चारी आदि से ही है ।१६। कुछ का मत है जो समावृत्त है वह जाया गमन करे ।१७। यह जाया का गमन प्रजायतित्व की सिद्धि के ही लिये करना चाहिए। उनका अभिप्राय यही है कि ऋतुगमन सर्वथा करना ही चाहिए। क्योकि गमन न करने पर दोष होता है। पराशर ने कहा है—"ऋतुस्नाता तु या भार्यां सन्निधौ नोप गच्छति। घोरायां भ्रूण हत्या या युज्यते नात्र सशय ।" अर्थात् जो मनुष्य ऋतु काल मे भार्या का गमन नही करता है वह घोर भ्रूण हत्या का भागी होता है—इसमे कोई सशय नही है ।१८। यह उपाकरण वार्षिक है। आचक्षते —यह कहते हुए यह दिखाया जाता है कि यह वैदिकी सज्ञा है पारिभाषिकी नही है। यह अन्वथ सज्ञा है ऐसा पहिले दिखाया जा चुका है ।१९। मध्यमास का इन देवताओ के लिये अन्न से हवन करके होम शेष के समाप्त होने पर जल मे अवगाहन करते हैं ।२०। ये ही उसके देवता तर्पण करते है। द्वितीयान्न देवता को करके 'तर्पयामि'। इससे उन्तीस वाक्यो को कहकर

तपण करना चाहिए ।२१। आचार्यो को, ऋषियों को और पितृगणो को तृप्त करे। ब्रह्म यज्ञ का अङ्ग तर्पण कहा गया है इससे इस समय भी करना चाहिए ।२२। इमकी यह सज्ञा है। इसके पीछे छै मास तक षडङ्गो का अध्ययन करना चाहिए ।२३।

अथ काम्याना स्थाने काम्या ।१। चरव ।२। तानेव कामानाप्नोति ।३। अथ व्याधितस्याऽऽतुरस्य यक्ष्मगृहीतस्य वा षलाहुतिश्चरु ।४। मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनायकमित्येतेन ।५।

त्रेता मे जो इष्टिया थी उनके स्थान मे काम्या अर्थात् पाक यज्ञ करनी चाहिए।१। त्रेता मे पुरोडाश होते थे अब उनके स्थान मे चरु लेना चाहिए। पशु के स्थान मे पशु ही समझना चाहिए क्योकि ओषधि साम्य से समान जातीय का ही बाध होता है ।२। अन्य पाक यज्ञ आहिताग्नि के और अनाहिताग्नि के साधारण है—ऐसा कह दिया गया है। जो काम्य होते है वे अनाहिताग्नि वाले कि ही होते है—इसीलिये यह वचन होता है ।३। अब नैमित्तिको के विषय मे बतलाया जाता है—जो ज्वरादि रोग से गृहीत हो—जो आतुर अर्थात् वन्यगत हो और जो क्षय व्याधि से पीडित हो इन तीनो निमित्तो मे षडाहुति नाम वाला ही चरु ग्रहण करना चाहिए—यह कर्म नाम है। यहा पर चकार का वचन आज्य की निवृत्ति के ही लिये है ।४। प्रत्येक ऋचा मे पाच आहुतियो से हवन करके स्विष्ट कृत करे। "मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनायकम्" इससे करना चाहिए। शौनकादि ने भिन्न वचन कहे है उनकी सब की निवृत्ति के लिये ही यहा पर यह वचन दिया गया है ।५।

स्वप्नममनोज्ञ दृष्ट्वाऽद्या नो देव सवितरिति द्वाभ्या यच्च गोषु दुष्वप्न्यमिति पञ्चभिरादित्यमुपतिष्ठेत ।६। यो मे राजन्युज्यो वा सखा वेति वा ।७। क्षुत्वा जृम्भित्वाऽमनोज्ञ दृष्ट्वा पापक गन्धमाघ्रायाक्षिस्पन्दने कर्णध्वनने च सुचक्षा अहमक्षीभ्या भूयास सुवर्चा मुखेन सुश्रुत्कर्णाभ्या मयि दक्षक्रतू इति जपेत् ।८। अगमनीया गत्वा-

ऽयाज्य याजयित्वाऽभोज्य भुक्त्वाऽप्रतिग्राह्य प्रतिगृह्य चैत्य यूप वोपहत्य पुनर्मा मैत्विन्द्रिय पुनरायु पुनभन । पुनद्र विणमैतु मा पुनर्ब्राह्मणमेतु मा स्वाहा । इमे ये धिष्ण्यासो अग्नयो यथास्थानमिह कल्पताम्। वैश्वानरो वावृधानोऽन्तर्यच्छतु मे मनो हृद्यन्तरममृतस्य केतु स्वाहेत्याज्याहुती जुहुयात् ।९। समिधौ वा ।१०। जपेद्वा ।११। ख० ६ ।

अथवा "योने राजन् युज्य" इससे अथवा "सखा वा"—इससे पूर्व सात आहुतियो से करे—यह विकल्प है ।७। इन छै निमित्तो मे जो नीचे बताये जॉयगे "सुचक्षा अहमक्षी भ्या भूयास सुवर्चा मुखेन सुश्रुत कर्णाभ्या मयि दक्षक्रतू" इमका जाप करना चाहिए । क्षुत् जृम्भण—अमनोज्ञ दर्शन—पावक गन्ध का आघ्राण—अक्षिस्पन्दन और कण ध्वनन ये छै निमित्त होते है ।८। गमन न करने के योग्य स्त्री का गमन करके—अयाज्य का याजन कर कर—अभोज्य का भोजन करके—अप्रतिग्राह्य का प्रतिग्रहण करके अथवा चैत्य यूप का उपहनन करके "पुनर्या यैं । त्वन्द्रिय पुनरायु पुनर्भग । पुनर्द्रविण मैतु मा पुनर्ब्राह्मण मैतु मा स्वाहा"—"इमे धिष्ण्यासो अग्नयो यथा स्थान मिहकल्पताम् । वैश्वानरो वावृधानोऽन्तार्यच्छतु मे मनो हृद्यन्तर ममृतस्य केतु स्वाहा" इससे आज्य की आहुतियो का हवन करना चाहिये ।९। अथवा समिधाओ का आधान करना चाहिए ।१०। अथवा जाप करे । जप के पक्ष मे स्वाहाकार का त्याग कर देना चाहिए क्योकि वहाँ पर तो केवल जाप ही है और प्रदान का आभाव होता है ।११।

अव्याधित चेत्स्वपन्तमादित्योऽभ्यस्तमियाद्वाग्यतोऽनुपविशन्रात्रिशेष भूत्वा येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तम इति पञ्चभिरादित्यमुपतिष्ठेत ।१। अभ्युदियाच्चेदकर्मश्रान्तमनभिरूपेणा कर्मणा वाग्यत इति समानमुत्तराभिश्चतसृभिरुपस्थानम् ।२। यज्ञोपवीती तित्योदक सध्यामुपासीत

वाग्यत ।३। सायमुत्तरापराभिमुखोऽन्वष्टमदेश सावित्री जपेदर्धास्तमिते मण्डल आनक्षत्रदर्शनात् ।४। एव प्रात ।५।

यदि अव्यधित के सोने हुए होने पर सूय अस्तता को प्राप्त हो जावे तो वाग्यत होकरा अनुपविष्ट होता हुआ "येन सूर्य ज्योतिषा वाधसेतम इससे पाँचो मे आदित्य का उपस्थान करना चाहिए अर्थात् उदित होने पर ही करे ।१। अव्याधित स्वपन करते हुए को यदि विहित कम्म से अश्रान्त और अकम श्रान्त को अभ्युदय होवे तो ही यह प्रायश्चित होता है और विहित कम से श्रान्त को यह प्रायश्चित्त नही होता है। अविहित कम से श्रान्त होवे तभी करना चाहिए। उस समय मे "यस्य ते विश्वा" इन चारो से उपस्थान करे और दूसरे दिन उदित होने पर ही करना चाहिए।२। जो यज्ञोपवीती हो उसे नित्योदक होकर वाग्यत होते हुए सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए। यहाँ पर दोनो सन्ध्या समान है ।३। अब प्रति सन्ध्या मे कैसे उपासना करनी चाहिए—यही बतलाया जाता है—सायङ्काल मे उत्तर की ओर अभिमुख होकर करे और अन्वष्टदेश मे अभिमुख होवे प्रतीची दिशा मे जो उत्तर भाग है उसके अभिमुख होना चाहिए—यही तात्पय है। सावित्री का जाप करे। जब मण्डल मे अर्धास्तमित हो तब से लेकर जब तक नक्षत्रो का दर्शन होवे तब तक जाप करते रहना चाहिए।४। इसी विधि से प्रात काल मे भी करना चाहिए ।५।

प्राङ्मुखस्तिष्ठन्नामण्डलदर्शनात् ।६। कपोतश्चेदगारमुपहन्यादनुपतेद्वा देवा कपोत इति प्रत्यृच जुहुयाज्जपेद्वा।७। वयमु त्वा पथस्पत इत्यथचर्चा चरिष्यन् ।८। सपूषन्विदुषेति नष्टमधिजिगमिषन्मूलहो वा ।९। सपूषन्नध्वन इति महान्तमध्वानमेष्यन्प्रतिभय वा ।१०। ख० ७ ।

प्राङ् मुख होकर स्थित रहता हुआ पूव की ही भाति जब नक्षत्र अर्ध अस्तमित हो तब से प्रारम्भ करके सूय उदित हो तब तक करना

चाहिए ।६। शुक्ल वर्ण वाला अरण्य वासी रक्तपाद कपोत यदि उपहनन करे अथवा अनुयत न करे तो " देवा कपोत" इससे प्रति ऋचा के हवन करे अथवा जाप करना चाहिए ।७। 'वयमुत्वा पथस्वता" इससे अर्धचर्या का चरण करता हुआ प्रति ऋचा मे हवन करे अथवा इसका जाप करना चाहिए ।८। नष्ट हुई वस्तु को प्रतिलब्ध करने के लिये अथवा प्रज्ञा से हीन पुरुष हवन करे अथवा इसका जाप करे । मन्त्र यह है—"स पूपनवि दुषा" इति ।९। "सपूषन्नध्वन" इति इसको महान् अध्वा को गमन करते हुए भयानक अध्वा को जाते हुए इस उक्त मन्त्र से हवन करना चाहिए अथवा जाप करना चाहिये ।१०।

अथैतान्युपकल्पयीत समावर्तमानो माण कुण्डले वस्त्रयुग छत्रमुपानद्यु ग दण्ड स्रजमुन्मर्दनमनुलेपनमाञ्जनमुष्णी-षमित्यात्मने चाऽऽचार्याय च ।१। यद्यु भयोर्न विन्दे-ताऽऽचार्यायैव ।२। समिध त्वाहरेदपराजिताया दिशि यज्ञियस्य वृक्षस्य ।३। आर्द्रामिन्नाद्यकाम पुष्टिकामस्ते-जस्कामो वा ब्रह्मवचसकाम उपवाताम् ।४। उभयीमुभय काम ।५।

समावर्त्तन नाम वाला एक सस्कार होता है । उस सस्कार से सस्क्रियमाण होते हुए अपने लिये और आचाय के लिये इन वक्ष्यमाण एकादश द्रव्यो का उपकल्पन करे—द्रव्य ये है—मणि—कुण्डल-युगवस्त्र-छत्र उपानत् का जोडा—दण्ड-स्रक्—उन्मर्दन—अनुलेपन अञ्जन—उष्णीष ।१। यदि इन उक्त एकादशद्रव्यो को दोनो के लिये उपकल्पित न कर सके तो आचार्य के ही लिये करना चाहिए ।२। यज्ञिय वृक्ष की जो अपराजिता दिशा हैं उसी से ग्रहण करके आहरण करना चाहिए । 'यज्ञिय' यह वचन होम के लिये यह समिधा है—इसी के ज्ञापन करने के लिये है । इससे जो पहिले 'तिष्ठन्सामिधमादध्यात्' यह कहा है वह सिद्ध हो जाता है ।३। जो अन्नादि की कामना वाला हो वह आर्द्र लावे—पुष्टि की कामना वाला—तेज की कामना वाला अथवा ब्रह्मवचस

की कामना रखने वाला हो उसको शुष्क समिधा का ही आहरण करना चाहिए ।४। एक मार्ग आर्द्र का है और दूसरा माग शुष्क का होता है। जो दोनो की कामना वाला पुरुष हो उसको आद्र और शुष्क दोनो ही प्रकार की ग्रहण करनी चाहिए ।५।

उपरि समिध कृत्वा गामन्न च ब्राह्मणेभ्य प्रदाय गौदानिक कर्म कुर्वीत ।६। आत्मनि मन्त्रान्त्सनमयेत् ।७। एकक्लीतकेन ।८। शीतोष्णाभिरद्भि स्नात्वा युव वस्त्राणि पीवसा वसाथे इत्यहते वाससो आच्छाद्याश्मन-स्तेजोऽसि चक्षुर्मे पाहीति चक्षुषी आञ्जयीत ।९। अश्मन-स्तेजोऽसि श्रोत्र मे पाहीति कुण्डले आबध्नीत ।१०।

आहुत समिधा को ऊपर रक्खे। इसके पश्चात् ब्राह्मणो को दक्षिणा देनी चाहिए। और कर्म का अङ्ग होने से भोजन भी देना चाहिए। इस के अनन्तर गोदानिक कर्म भी करना चाहिए। कम ग्रहण से कर्म के जो नियम है उन मब का भी परिपालन करना चाहिए। यथा—आप्लवन—वाग्यत आदि है। यह कर्म स्वय मे वही करे ।६। आत्म वाचक मन्त्रो को करना चाहिए यथा "ओषधे त्रायस्व माम्"—"स्वधि ते मा माहिसी" "वयते है ममायुष्मान्"– 'प्रयामतेनय आयुषा"–"शिरो मुख मा म आयु प्रभोषी" इति ।७।करञ्ज बीज का जहाँ पर एक बीज है वह एक क्लीत है। उसका पेषण करके उससे उन्मदन कराना चाहिए ।८। शीतोष्ण जल से स्नान करके 'युय वस्त्राणिपीवसा वसाथे" इस मन्त्र से अहत वस्त्रो को लेकर समाच्छादन करे"अश्मनस्तेजोऽसिच क्षुर्मे पाहि"इससे नेत्रो का अञ्जन करना चाहिए। प्रत्येक वस्त्र के धारण करने मे मन्त्र की आवृत्ति करनी चाहिए। श्रुति का वचन है कि सर्व प्रथम सव्य नेत्र का अ जन करना चाहिए। इसी प्रकार से प्रत्येक चक्षु के अजन लगाने पर भी मन्त्र की आवृत्ति करनी चाहिए। श्रुति—"सव्य मनुष्या अज्मते प्रथमम् यह है ।९। "अश्मयस्तेजोऽसि श्रोत्र मे पाहि'–इससे कुण्डलो को बाँधना चाहिए। यहाँ पर भी पहिले दक्षिण कुण्डल को बाँधे और पीछे सव्य को बाँधे। मन्त्रावृत्ति यहाँ पर भी करनी चाहिए ।१०।

अनुलेपनेन पाणी प्रलिप्य मुखमग्रे ब्राह्मणोऽनुलिम्पेद्-बाहू राजन्य उदर वैश्य उपस्थ स्त्र्यूरू सरणजीविन ।११। अनार्ताऽस्यनार्तोऽह भूयासमिति स्रजमपि बध्नीत न मालोक्ताम् ।१२। मालेति चेद्ब्रूयु स्रगित्यभिधापयीत ।१३। देवाना प्रतिष्ठे स्थ सवतो मा पातमित्युपानहावास्थाय दिवश्छद्मासीति च्छत्रमादत्ते ।१४। वेणुरसि वानस्त्पयोऽसि सर्वतो मा पाहीति वैणव दण्डम् ।१५। आयुष्यमिति सूक्तेन मणि कण्ठे प्रतिमुच्योष्णीष कृत्वा तिष्ठन्त्समिधमादध्यात् ।१६। ख० ८ ।

अनुलेपन का अथ कुड्कम आदि होना है । अनुलेपन से दोनो हाथो प्रलेपन करे । ब्राह्मण सर्व प्रथम मुख पर लगावे । क्षत्रिय बाहुओ पर और वैश्य सर्व प्रथम उदर पर अनुलेपन करे । ऊरुओ को सर्व प्रथम जो सरण जीवी (शूद्र) है वे लेपन करे । स्त्री के विधान होने से यह विधि सर्वत्र होने वाली है ।११। "अनार्त्ताऽस्थनार्त्तोऽह भूयासम्" इस मन्त्र के द्वारा स्रज का भी बन्धन करना चाहिए । माला का बन्धन नही करे ।१२। यदि अज्ञान से माला'—यह बोले तो सक् का अभिधापन करके बाँधे ।१३। "देवानाँ प्रतिषेस्थ सर्वतो मा पातम्" इस मन्त्र के द्वारा उपानहो का अवस्थापन करे और फिर"दिवश्छन्दासि" इस मन्त्र से छत्र का आदान करता है ।१४। "वेणुरसि वानस्यत्योऽसि सर्व तो मा पाहि" इस मन्त्र से वेणु के दण्ड का आदान करना चाहिये ।१५। "आयुष्यम्"—इस सूक्त के द्वारा मणि को काठ मे प्रतिमोचन करके अहत वस्त्र के द्वारा शिर का वेष्टन करना चाहिए । मणि सुवणमय होता है । यहा पर 'तिष्ठन्'—इसका ग्रहण है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तत्र आसीन के ही कर्म होते है ॥१६॥

स्मृत निन्दा च विद्या च श्रद्धा प्रज्ञा च पञ्चमी । इष्ट दत्तमधीत च कृत सत्य श्रुत व्रतम् । यदग्ने सेन्द्रस्य सप्रजापतिकस्य सऋषिकस्य सऋषि राजन्यस्यसपितृकस्य सपितृराजन्यस्य समनुष्यस्य समनुष्यराजन्यस्य साका-

शस्य सातीकाशस्य सानूकाशस्य सप्रतीकाशस्य सदेव-मनुष्यस्य सगन्धर्वाप्सरस्कस्य सहारण्यैश्च पशुभि-र्ग्राम्यैश्च यन्म आत्मन आत्मनि व्रत तन्मे सर्वव्र तमिदम-हमग्रे सर्वव्रतो भवामि स्वाहेति ।१। ममाग्ने वर्च इति प्रत्यृच समिधोऽभ्यादध्यात् ।२। यत्रैन पूजयिष्यन्तो भवन्ति तत्रैता रात्री वसेत् ।३। विद्यान्ते गुरुमर्थेन निमन्त्र्य कृतानुज्ञातस्य वा स्नानम् ।४। तस्यैतानि व्रतानि भवन्ति ।५।

स्मृत, निन्दा, विद्या, श्रद्धा, प्रज्ञा, इष्ट, दत्त, अधीन, कृत, सत्य, श्रुत, व्रत —ये मेरे उभय व्रत है, इन बारदो को कहकर यदाने सेन्द्रस्य सप्रजापतिकस्य सऋषिकस्य सऋषि राजन्यस्य सपितृकस्य सषितृ राजन्यस्य समनुष्यस्य समनुष्य एजन्यस्य शाकाशस्य सतीकाशस्य सानूकाशस्य सप्रतीकाशस्य सदे वमनुष्यस्य सगन्धर्वाप्सरस्कस्य सहा-रण्यैश्च पशुभि ग्राम्यैश्च यन्म आत्मन आत्मनि व्रत तन्मे सवव्रतमिदम हमग्रे सर्व व्रतो भवामि स्वाहा। इति ऐसा उपदेश करते है ।१। "ममाग्ने वच" इससे प्रति ऋचामे समिधाओ का अभ्याधान करना चाहिए। प्रकृत मे आधान होने पर भी पुन. 'अदध्यात्' इसका वचन पूर्व के अधिकार भी निवृत्ति के ही लिये है। इससे यह निकलता है कि उपविष्ट होकर ही आधान करना चाहिए खडे होते हुए न करे। फिर स्विष्टकृत आहि होमशेष को समाप्त करे ।२। जहाँ पर पयुपक से आत्मा को पूजते है वहा पर इस रात्रि मे वसति करनी चाहिए ।३। विद्या के अन्त मे अर्थात् विद्या ग्रहण करने के अन्त मे गुरु को अर्थ के लिये निमन्त्रित करता है— गुरु से प्रार्थना करे मै आपके लिये क्या भेट दू गुरु जिस अथ को कहे उसे करके स्नान करता है। अथवा अनुज्ञात होकर स्नान करना चाहिए। स्नान का तात्पर्य समावर्तन होता है ।४। उसके ये व्रत होते है। उपदेश से ही ब्रह्मत्व के सिद्ध होने पर यह वचन रात्रि मे स्नान नही करे इसी लिये है ।५।

न नक्त स्नायान्न नग्न स्नायान्न नग्न शयीत। न नग्ना

स्त्रियमीक्षेतान्यत्र मैथुनात् । वर्षति न धावेत् ।६। न वृक्षमारोहेन्न कूपमवरोहेन्न बाहुभ्या नदी तरेन्न सशय-मभ्यापद्य ेत ।७। महद्वै भूत स्नातको भवतीति विज्ञायते ।८। ख० ६ ।

रात्रि मे स्नान कभी नही करना चाहिए । नग्न होकर स्नान न करे और नग्न होकर शयन न करे । किसी भी स्त्री को नग्न नही देखे । अपनी स्त्री को भी मैथुन के समय मे ही नग्न देखे अन्य किसी भी समय मे न देखे । वर्षा होने के समय मे धावन नही करे ।६। किसी वृक्ष पर नही चढना चाहिए । किसी कुए मे नीचे न उतरना चाहिए और बाहुओ से नदी को पार न करे । इसी प्रकार से अन्य भी ऐसे काय न करे जिनमे प्राणो का सशय होवे । ये सब प्रतिषेध प्राण सशय के अभ्यापा-दन प्रतिषेधत्व के ज्ञापन के ही लिये है । अर्थ सशमाभ्या पादन मे कोई दोष नही है ।७। स्नातक महद्भूत होता है—ऐसा सुना जाता है । स्ना-तक महत्त्व इसीलिये है कि जैसा स्मृति मे कहा है—"देवैश्चापि मनुष्यैश्च तिर्यग्योनिभिरेवच । गृहस्थ सेव्यते यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी" । अर्थात् देव मनुष्य-निर्यायोनि वाले सबके द्वारा गृहस्थ का ही सेवन किया जाता है अतएव गृहाश्रमी श्रेष्ठ होता है ।८।

गुरवे प्रस्रक्ष्यमाणो नाम प्रब्रुवीत ।१। इद वत्स्यामो भो ३ इति ।२। उच्चैरूर्ध्व नाम्न ।३। प्राणापानयोरुपाशु ।४। आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिरिति च ।५। अतो वृद्धो जपति प्राणापानयोरुरुव्यचास्तया प्रपद्य े देवाय सवित्रे परिददामीत्यृच च ।६। समाप्यो प्राक्स्वस्तीति ज पित्वा महित्रीणामित्यनुमन्त्र्य ।७।

समावृत्त होकर शिष्य गुरु का देवदत्त–ऐसा नाम बोले ।१। इसके अनन्तर यह कहे कि—भो३ इस आश्रम मे वास करेगे।२। नाम के आगे उच्च स्वर से बोलना चाहिए । गुरु का नाम तो उपाशु ही बोले । यही तात्पर्य होता है ।३। इसके अनन्तर "प्राणापानयो रुरुव्चा" इति—इस मन्त्र को उपाशु बोलना चाहिए शिष्य यह अर्थ है ।४। "आमद्रैरिन्द्र

हरिभि " इति और इसको उपाशु बोलना चाहिए शिष्य ।५। अत आचार्य इन दो मन्त्रो को जपता है । अतो वृद्धो जयति—इस वचन मे यह ज्ञात किया जाता हे कि शिष्य भी पूव मे इन दोनो मन्त्रो को जपता है। "आमन्द्रै" इस ऋचा को और "प्राणापानयोरुरव्यचा स्तया प्रपद्ये देवाय सवित्रे परिददामि" इसको जपता है ।६। समाप्य—यह वचन आचाय ही 'ॐ प्राक्' इस मन्त्र को जपे—जप करके "महिन्नीणाम वो स्त्विति" सूक्त से शिष्य का अनुमन्त्रण करके 'वत्स्यथ' इसका अतिसृजन करना चाहिए ।७।

एवमतिसृष्टस्य न कुतश्चिद्भय भवतीति विज्ञायते ।८। वयसाममनोज्ञा वाच श्रुत्वा कनिक्रदज्जनुष प्रब्रुवाण इति सूक्त जपेद्देवी वाचमजनयन्त देवा इति च ।९। स्तुहि श्रुत गर्तसद युवानमिति मृगस्य ।१०। यस्या दिशो विभीयाद्यस्माद्वा ता दिशमुल्मुकसुभयत प्रदीप्त प्रत्यस्येन्मन्थ वा प्रसव्यमालोड्याभय मित्रावरुणा मह्यमस्त्वर्चिषा शत्रून्दहन्त प्रतीत्य मा ज्ञातार मा प्रतिष्ठा विन्दन्तु मिथो भिन्दाना उपयन्तु मृत्युमिति ससृष्ट धनमुभय समाकृतमिति मन्थ न्यञ्च करोति ।११। ख० १०।

इस प्रकार से जो अतिसृष्ठ होता है उसको कही से भी भय नही होना है—यह जाना जाता है । यह श्रुतिमूलार्थ प्रशसा है ।८। पक्षियो की अप्रिय वाणी का श्रवण करके 'कनिक्रदञ्जनुष प्रब्रुवाण" इस सूक्त का जप करे और 'देवी वाचमजनयन्त देवा" इसका जाप करे ।९। मृग की अमनोज्ञ वाणी को सुनकर 'स्तुहि श्रुत गतसद युवानम्" इस ऋचा का जाप करना चाहिए ।१०। जिस दिशा से अथवा जिस पुरुष व्याघ्र से अथवा अन्य से भय होवे उसी दिशा के प्रति दोनो ओर उन्मुक को प्रत्यस्य करे "अभमाम्" इत्यादि से प्रदीप्त करे । अथवा मन्त्र को प्रसव्य मे आलोडन करके उस दिशा के अभिमुख 'ससृष्टम्' इससे न्यञ्च करना चाहिए ।११।

सर्वतोभयादनाज्ञातादष्टाव।ज्यात्पृथिवी वृता साऽग्निना वृता तया वृतया वर्त्र्या यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा। अन्तरिक्ष वृत तद्वायुना वृत तेन वृतेन वर्त्रेण यस्माद्भयाब्दिभेमि तद्वारये स्वाहा। द्यौर्वृता साऽऽदित्येन वृता वृतया वर्त्र्या यस्माद्भयाद्विभेमि तद्वारये स्वाहा। दिशो वृतास्ताश्चन्द्रमसा वृतास्ताभिर्वृताभिवर्त्रीभिर्य स्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा। आपो वृतास्ता वरुणेन वृतास्ताभिर्वृताभिर्वर्त्रीभिर्यस्माद्भयाद् बभेमि तद्वारये स्वाहा। प्रजा वृतास्ता प्राणेन वृतास्ताभिर्वृभिर्वर्त्रीभियमाद्भ- याब्दिभेमि तद्वारये स्वाहा। वेदा वृतास्ते छन्दोभिर्वृतास्तर्वृत्र्यस्माद्भयातद्ब्रभेमि तद्वारये स्वाहा। सव वृत तद्ब्रह्मणा वृत तेन वृतेन वर्त्रेण यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहेति ।१। अथापराजिताया दिश्यवस्थाय स्वस्त्यात्रेय जपति यत इन्द्र भयामह इति च सूक्तशेषम् ।२। ख० ११ ।

यदि सभी दिशाओ से भय उत्पन्न होता है और यह नही जाना जाता है कि इस पुरुष से भय हो रहा है और सभी ओर से भय अज्ञात है तो लौकिक अग्नि मे आठ आज्य की आहुतियो का हवन करना चाहिये। मन्त्र ये हैं– 'पृथिवी वृत्ता साग्निना वृत्ता तया वृतया वर्त्र्या यस्माद्भयाद् निमेमि तद्वारणे स्वाहा"—"अन्तरिक्ष कृत तद्वायुभा कृततेन वृतेन वर्त्रेण यस्माद्भया द्विमेमि तद्वारणे स्वाहा"—द्यौर्वृता साऽदित्येन वृता तया वृतया वर्त्र्या यस्माद्भयाद् निमेमि तद्वारये स्वाहा"—"दिशो वृतास्ताश्चन्द्रमसा वृता स्ताभि वृंताभिवर्त्रीभिर्यस्माद्भयाद्बिमि तद्वारये स्वाहा"—'आपो वृतास्ता वरुणेन वृतास्ताभि वृंताभिवर्त्रीभिर्यस्माद्भया द्बिभेमि तद्वारये स्वाहा"—प्रजा वृतास्ता प्राणेन वृतास्ताभिर्वृताभिर्वर्त्रीभिर्यस्माद्भयाब्दिभेमि तद्वारये स्वाहा"—'वेदा वृतास्ते छन्दोभिर्वृतास्तैर्वर्त्रैर्यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा"—सर्ववृत तद् ब्रह्मणा वृत तेन वृतेन वर्त्रेण यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा" इति ।१। इसके

अनन्तर अपराजित दिशा मे अब स्थित होकर "स्वस्तिनो मिमीताम्" इस सम्पूर्ण सूक्त का जप करना है। इसके अनन्तर सब प्रायश्चित्त आदि का समापन कर देना चाहिए। और "यत इन्द्र भयामहे" इस सूक्त शेष का जाप करता है। वहाँ पर यदि अप्रीति प्रदा वाणी का श्रवण करे और भय उत्पन्न होवे तब इसी प्रकार से करना चाहिए—यह सब अतिसृष्ट का विषय है। तथा अतिसृष्ट को कही और किसी से भी भय नही हुआ करता है।२।

सग्रामे समुपोहले राजान मनाहयेत् ।१। आ त्वाऽहार्ष मन्तरेधीति पश्चाद्रथस्यावस्थाय ।२। जीमूतस्येव भवति प्रतीकमिति कवच प्रयच्छेत् ।३। उत्तरया धनु ।४। उत्तरा वाचयेत् ।५। स्वय चतुर्थी जपेत् ।६। पञ्चम्येषुधि प्रयच्छेत् ।७।

सग्राम के समुपस्थित होने पर आगे बतायी गयी विधि से पुरोहित राजा का सनाहन करे।१। रथ के पीछे अवस्थित होकर "आत्वा हार्षमन्तरेधि" इस का जाप करे।२। इस सूक्त की आद्या ऋचा "जीमूतस्येव भवति प्रतीकम्" इस से राजा के लिये कवच दे देना चाहिए।३। इसके उत्तरा से धनुष को देवे।४। उत्तरा ऋचा को राजा से वचवा देना चाहिए।५। चतुर्थी का स्वय पुरोहित को जप करना चाहिए।६। पाँचवी से राजा को तूणीर देना चाहिए।७।

अभिप्रवर्तमाने षष्ठीम् ।८। सप्तम्याऽश्वान् ।९। अष्टमोमिषूनवेक्षमाण वाचयति ।१०। अहिरिव भोगै पर्येति बाहुमिति तल नह्यमानम् ।११। अथैन सारयमाणमुपारुह्याभीवर्त वाचयति प्र यो वा मित्रावरुणेति च द्वे ।१२। अथैनमन्वीक्षेताप्रतिरथशाससौपर्ण ।१३। प्रधारयन्तु मधुनो घृतस्येत्येतत्सौपर्णम् ।१४।

रथ के यथेष्ट दिशा मे प्रवर्त्तमान होने पर षष्ठी का जाप करे।८। सप्तमी से अश्वो का अनुमन्त्रण करना चाहिए।९। अपने वाणो को

देखने वाले राजा से आठवी का वाचन कराना चाहिए ।१०। ज्याघात के परित्राण को तब कहते है । तल को नह्यमान करने वाले राजा के द्वारा इसका वामन कराना चाहिए ।११। इसके अनन्तर सारथि के द्वारा सार-यमाण राजा को रथ मे उपारूढ करके "आभिवर्त्तन" इस सूक्त को बचवाना चाहिए और प्रथोवाम्" इन दो ऋचाओ का वाचन करावे ।१२। इन निम्न वर्णित सूक्तो के द्वारा इस राजा का अन्वीक्षण करे—"आशु शिशान" यह सूक्त अप्रतिष्ठ है। "शास इत्येति" यह शास है ।१३। सौपर्ण सूक्तो की बहुलता होने से "प्रधारमन्तु मधुनो घृतस्य" यह सौपर्ण होता है ।१४।

सर्वा दिशोऽनुपरियायात् ।१५। आदित्यमौशनस वाऽव-स्थाय प्रयोधयेत् ।१६। उपश्वासय पृथिवीमुत द्यामिति तृचेन दु दुभिमभिमृशेत् ।१७। अवसृष्टा परापतेतीषून्वि-सर्जयेत् ।१८। यत्र बाणा सपतन्तीति युध्यमानेषु जपेत् ।१९। सशिष्याद्वा सशिष्याद्वा ।२०। ख० १२।

इसके अनन्तर राजा सब दिशाओ मे रथ के द्वारा अनुक्रय से गमन करे ।१५। यदि दिन हो तो जिस दिशा मे आदित्य देव हो उसी दिशा मे आस्थित होकर और यदि रात्रि हो तो जिस दिशा मे शुक्र होवे उसी दिशा का परिग्रहण कर राजा को युद्ध करना चाहिए । आदित्य के या शुक्र के प्रति युद्ध नही करना चाहिए ।१६। राजा को चाहिए कि "उप-श्वासय पृथिवी मुतद्याम्" इस तृचा से दुन्दुभिका अभिमशन करे ।१७। "अब सृष्टा परापत" इससे वाणो का राजा विसजन करे ।१८। पुरोहित को चाहिए कि युद्धयमान होने पर "यत्र वाणा सपतन्ति" इसका जाप करे ।१९। अथवा सशिष्याद् सशिष्याद् इसका जाप करे ।२०।

चतुर्थोऽध्यायः

ॐ आहिताग्निश्चेदुपतपेत्प्राच्यामुदीच्यामपराजि-
तायां वा दिश्युदवस्येत् ।१। ग्रामकामा आग्नेय
इत्युदाहरन्ति ।२। आशमन्त एनं ग्राममाजिगमिषन्तोऽ-
गदं कुर्युरिति ह विज्ञायते ।३। अगदः सोमेन पशुनेष्टच्ये-
ष्ट्वाऽवस्येत् ।४। अनिष्ट्वा वा ।५।

यदि आहिताग्नि को व्याधि पीडित करे तो उस प्रकार का होने पर आहिताग्नि को अग्नि के सहित ही ग्राम से निकलकर प्राची—उदीची अथवा अपराजिता दिशा मे गमन करना चाहिए और जाकर वहा पर ही तब तक स्थित रहे जब तक रोग रहे ।।१।। ब्रह्मवादी लोग यह कहते है कि अग्नि ग्राम काम होती है इसलिये गमन करना चाहिए ।।२।। ग्राम मे आने की इच्छा वाले अग्निया इम आहिताग्नि को कहते है कि यह अगद अर्थात् निरोग हो जावे। और ऐसा कहते हुए वे अग्नियाँ इस प्रकार से रोग रहित कर देवे —यह श्रूयमाण होता है। सवत्र श्रुत्याकर्ष गृह्यकर्म समुच्छिन्न श्रुतिमूल है—यह दशन के लिये है ।।३।। जब वह अगद हो जावे तो सोमादि के द्वारा यजन करके ग्राम मे पुन प्रवेश करे। अग्निष्टोम ही सोम काय्य होता है ।।४।। अथवा यजन न करके ही ग्राम मे प्रवेश करना चाहिये ।।५।।

संस्थिते भूमिभागं खानयेद्दक्षिणपूर्वस्यां दिशि दक्षिणा-
परस्यां वा ।६। दक्षिणाप्रवणं प्राग्दक्षिणाप्रवणं वा प्रत्य-
ग्दक्षिणाप्रवणमित्येके ।७। यावानुद्बाहुकः पुरुषस्तावदा-
यामम् ।८। व्याममात्रं तिर्यक् ।९। वितस्त्यवाक् ।१०।

अभित आकाश श्मशानम् ।११। वहुलौषधिकम् ।१२।
कण्टकिक्षीरिणस्त्विति यथोक्त पुरस्तात् ।१३।

इसके अनन्तर मृत हो जाने पर भूमि के एक देश का खनन करके करे और वह खनन आग्नेयी दिशा मे अथवा नैऋत्य दिशा मे करना चाहिए ।।६।। गर्त्त ऐमा होवे कि जो दक्षिणा प्रवण होवे या आग्नेयी दिशा की आर ही प्रवण होना चाहिए ।।७।। अपनी बाहुओ को ऊपर करके खडा होने पर जितना प्रमाण होवे उतने ही प्रमाण वाला दीघ खात (खड्ड) हवे ।।८।। पाच अरत्नी मात्र व्याम मे और तियक भी वह गर्त्त होना चाहिए ।।९।। वारह अङ्गुल के परिमाण वाली वितस्ति होती है उतना ही प्रमाण वाला नीचे करे ।।१०।। यहा पर श्मशान ग्रहण करने से दो श्मशानो ग्रहण किया जाता है। एक तो जो दहन करने का भूमिभाग होता है वह श्मशान होता है। जहा पर सञ्चित की हुई अस्थिया एकसी जाया करती है वह भी श्मशान होता है। ये दोनो ऐसे ही होगे जहा सभी ओर आकाश हो ।।११।। यह दोनो ही बहुत अधिक ओषधियो वाले होने चाहिएँ ।।१२।। वहा पर जो काँटेदार हो और क्षीर वाले हो इस प्रकार से वस्तु परीक्षा मे जो भी उनके विषय मे क्रम बताया गया है वही यहाँ भी प्राप्त होता है और वैसा ही करे— यह भावार्थ है ।।१३।।

यत्र सर्वत आप प्रस्यन्देरन्नेतदादहनस्य लक्षण श्मशा
नस्य ।१४। केशश्मश्रुलोमनखानीत्युक्त पुरस्तात् ।१५।
विगुल्फ बर्हिराज्य च ।१६। दधन्यत्र सर्पिरानयन्त्येत-
त्पित्र्य पृषदाज्यम् ।१७। ख० १ ।

जिस देश मे सभी जगह जल जाया करता है वह दहन श्मशान का लक्षण होता है। यह अस्थि निधान वाले श्मशान का लक्षण नही होता है। सब और से निम्न और मध्य मे ऊँचा जो देश हो और पूर्व मे बताये हुए लक्षणो वाला हो वही पर खनन कराना चाहिए ।।१४।। षष्ठ अध्याय मे पहिले केश श्मश्रु भरब लोम के विषय मे जो कहा गया है

दीक्षित के मरने मे वही यहाँ पर भी करना चाहिए ॥१५॥ बहुत अधिक बर्हि राज्य वाला स्थल ही उपकल्पित करना चाहिए ॥१६॥ यहाँ पर प्रेत कम मे दधि मे सर्पिलाया करते है । यह पृषदाज्य होता है और उसकी भी उपकल्पना करनी चाहिए । यह दिव्य पृष्ठदाज्य है ॥१७॥

अथैता दिशमग्नीन्नयन्ति यज्ञपात्राणि च ।१। अन्वञ्च प्रेतमयुजोऽमिथुना प्रवयस ।२। पीठचक्रेण गोयुक्तेनेत्येके ।३। अनुस्तरणीम् ।४। गाम् ।५। अजा वैकवर्णाम् ।६। कृष्णामेके ।७। सव्ये बाहा बद्ध्वाऽनु सकालयन्ति ।८। अन्वञ्चोऽमात्या अधोनिवीता प्रवृत्तशिखा ज्येष्ठप्रथमा कनिष्ठजघन्या ।९।

जिस दिशा मे भूमि का भाग खोदा गया है उसी दिशा की ओर प्रत्यग्नि यज्ञ पात्रो को बान्धव लोग ले जाया करते है ॥१॥ पृष्ठ मे आगत प्रेत को ले जाते है। वहा पर पुरुष और स्त्रियाँ प्रवयस और विषम होते है ॥२॥ यहा नियम यही है यज्ञपात्र और अग्नि कोई भी पहिले होगा । कुछ मनीषीगण यही मानते है कि गौ से युक्त शकर आदि के द्वारा ही प्रेत का नयन करना चाहिए जो शकर पीठ चक्र वाला होवे ॥३॥ प्रेत को अपने द्वारा जो अनुस्तरण किया जाता है (स्त्री पशु) वह अनुस्तरणी होती है। उसी अनुस्तरणी को कतिपय महानुभाव चाहते है ॥४॥ उस अनुस्तरणी को गौ को करना चाहिए ॥५॥ जो केवल एक ही वण (रग) वाली बकरी हो उसको अनुस्तरणी बनाना चाहिए ॥६॥ कुछ का मन है कि कृष्ण वण वाली को अनुस्तरणी करे ॥७॥ मध्य मे सव्य बाहुओ मे रस्सी को बाँधकर बान्धव प्रेत के पीछे ले जाते है ॥८॥ प्रेत के पृष्ठ भाग मे बान्धव गण अधोनिवीत और मुक्त केशो वाले अनुगमन करे । उन अनुगमन करने वालो मे सबसे बडा प्रथम होवे और इसी अनुपूर्वी से सब अनुगमन करें ॥९॥

प्राप्यैव भूमिभाग कर्तोदकेन शमाशाखया त्रि प्रसव्यमायतन परिव्रजन्प्रोक्षत्यपेत वीत वि च सपतात इति

।१०। दक्षिणपूर्व उद्धृतान्त आहवनीय निदधाति ।११। उत्तरपश्चिमे गार्हपत्यम् ।१२। दक्षिणपश्चिमे दक्षिणम् ।१३। अथैनमन्तर्वेदोध्मचिति चिनोति यो जानाति ।१४।

इस प्रकार से सब लोग उस भूमि भाग का प्राप्त करके फिर दहन का करने वाला उदक से शमी की शाखा से तीन बार अप्रदक्षिण आयतन के परिव्रजन करता हुआ प्रोक्षण करता है। प्रोक्षण का मन्त्र यह है--"अपेत वीत विच सवनात" इति । अन्य लोग 'गर्त्तोदकेन'— इसको पढते है। यह अथ है कि खात के खोदने के समय मे आयुरस्तात् आहवनीय का जानुमात्र गर्त्त खोदकर उसमे जल का निषेचन करे ।।१०।। दक्षिण पूव देश मे खात के अन्त मे एक देश मे आहवनीय को रखना चाहिए। कुछ का कथन है कि खात के बाहिर रक्खे। उत्तर मे इसी प्रकार से जानना चाहिए ।।११।। गार्हपत्य को उत्तर पश्चिम मे रक्खे ।।१२।। दक्षिण पश्चिम मे दक्षिण का विधान करना चाहिए ।।१३।। इस सूत्र मे अथ शब्द अन्य कम के अस्तित्व के ज्ञापन करने के ही लिए है । उससे इस काल मे प्रणीता चमस से प्रणयन करना चाहिए। अन्यत्र तो तन्त्र नही है–ऐसा कहेगे। इस काल मे खात मे सुवर्ण का टुकडा रखकर तिलो का अवकिरण करे इसके पश्चात् इध्म चिति का इष्ट होने से चयन करना चाहिए । खात मे जो कोई भी कुशल हो और जानता हो वह इनमे समर्थ इध्म चिति का (चिता का) चयन किया करता है। इससे चयन करने वाले का कोई भी विशेष नियम नही है ।।१४।।

तस्मिन्बर्हिरास्तीर्य कृष्णाजिन चोत्तरलोम तस्मिन्प्रेत सवेशयन्त्युत्तरेण गार्हपत्य हृत्वाऽऽहमनीयमभिमुखशिरसम् ।१५। उत्तरत पत्नीम् ।१६। धनुश्च क्षत्रियाय ।१७। तामुत्थापयेद्देवर पतिस्थानीयोऽन्तेवासी जरद्दासो वोदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकमिति ।१८। कर्ता वृषले जपेत् ।१९। धनुर्हस्तादाददानो मृतस्येति धनु ।२०। उक्त

वृषले ।२१। अधिज्य कृत्वा सचितिमर्भत्वा सशोर्यानु-
प्रहरेत् ।२२। ख० २ ।

इसके अनन्तर कर्त्ता उस चिता मे वर्हियो का आस्तरण किया करता है। इसके अनन्तर कर्त्ता ही ऊध्व तोम वाले कृष्णाजिन का आस्तरण करता है । उसके उपरान्त उस कृष्णाजिन पर उत्तर की ओर से गार्ह-पत्य प्रेत को ले जाकर फिर आहवनीय को वान्धवगण प्रेत के अभिमुख शिर वाले को सवेशित किया करते है ॥१५॥ उसके उत्तर भाग मे प्रेत की पत्नी को सवेशित करते है अर्थात् सुला दिया करते है । यह कर्म तीनो वर्णों का समान ही हुआ करता है ।।१६॥ यदि प्रेत क्षत्रिय हो तो उसके उत्तर मे धनुष को सवेशित किया करते है ॥१७॥ इसके अनन्तर उस प्रेत की पत्नी को पति स्थानीय देवर का उठाना चाहिए । इससे यह जाना जाता है कि पति द्वारा किये जाने वाला पुसवन आदि कर्म को पति के अभाव मे देवर को करना चाहिए क्योकि वह पति स्थानीय ही माना गया है । अथवा अन्तेवासी करे या बहुत समय पर्यन्त दासता करते हुए जो वृद्ध होगया हो, वह दास करे । मन्त्र यह है—"उदीष्वनार्यभिजीवलोकम" इति ॥१८॥ जरद्दास अर्थात् वृद्ध सेवक क उत्थापयिता होने पर कर्त्ता को मन्त्र बोलना चाहिए । अन्यकाल मे जो उत्थापन करे वही मन्त्र को बोले ॥१९॥ "धनु' इस ऋचा के द्वारा देवरादि धनुष को उठावे ॥२०॥ वृषल क होने पर कर्त्ता मन्त्र का जप करे ॥२१॥ उस समय मे सचिति के पहिले अधिज्य करके और धनुष को उपरिज्य करके भङ्ग करके क्षिप्त कर देना चाहिए । प्रेत के उत्तर मे चिता के ऊपर क्षेप करना चाहिए । होम के अनन्तर प्रेत के उर स्थल पर करे । धनुष का सवेशन–उसका अपनयन और अनुप्रहरण—ये तीन कार्य क्षत्रिय के विशेष होते है शेष सब समान ही है ॥२२॥

अथैतानि पात्राणि योजयेत् ।१। दक्षिणे हस्ते जुहूम् ।२।
सव्य उपभृतम् ।३। दक्षिणे पार्श्वे स्फ्य सव्येऽग्निहोत्रह-

वर्णीम् ।४। उरसि ध्रुवा शिरसि कपालानि दत्सु ग्राव्ण ।५। नासिकयो स्रुवौ ।६। भित्त्वा चैकम् ।७।

'अथ' यहाँ पर अन्य कर्म के ज्ञापन के ही लिये है। सुवण के खण्डो से प्रेत के सात छिद्रो का अविधान करता है। मुख–दो नासिका–दो कान और दो नेत्र—ये सात छिद्र है। घृत से सिक्त तिलो का अवकिरण करना चाहिए। इसके उपरान्त पात्रो का योजन होता है। एतानि–इससे विद्यमानो का निर्देश किया जाता है वे प्राकृत और वैकृत होते है। उसमे प्राकृत पात्रो का भावज्जीवन धारण होता है क्योकि अग्निवत् सब कर्मों का शेष होता है। अग्न्याधान मे उत्पन्न प्राकृत होते है। विकृति मे तो वरुण प्रधासादि मे उत्पन्नो का कर्मान्त मे उत्सग होता है। विकृति के मध्य मे यदि मृत होता है तो उनका भी योजन करना चाहिये। इससे यह सिद्ध होता है कि जितने भी पात्र विद्यमान हैं चाहे वे प्राकृत हो ओर वैकृत होवे उन सबका योजन करना चाहिए ।१। वरुण प्रधासादि मे यदि मृत होवे तो दक्षिण हस्तु मे जुहूद्वय का योजन करना चाहिए ।२। सव्य मे उपभृत का योजन करे ।३। दक्षिण पार्श्व मे स्पत्र का और सव्य मे अग्निहोत्र हवणी का योजन करना चाहिए ।४। सोममध्य मे यदि मृत हुआ हो तो दातो मे ग्रावो का योजन करे—उर मे ध्रुवा को और शिर मे कमलो का योजन करे ।५। दोनो नासिका के छिद्रों मे दो स्रुवो का योजन करे ।६। यदि स्रुव एक ही होवे तो उसका भेदन करके दोनो नासिकाओ मे योजित करे ।७।

कर्णयो प्राशित्रहरणे ।८। भित्त्वा चकम् ।९। उदरे पात्रीम् ।१०। समवत्तधान च चमसम् ।११। उपस्थे शम्याम् ।१२। अरणी ऊर्वोरुलूखलमुसले जङ्घयो ।१३। पादयो शूर्पे ।१४। छित्त्वा चकम् ।१५।

दोनो कानो मे प्राशित्र हरणो का योजन करना चाहिए ।८। एक ही हो तो इसका भी भेदन करके ही योजन करे ।९। जिसमे हवियो का आसादन किया जाता है उसको पात्री कहत है। उदर मे पात्री को योजित करना चाहिए ।१०। जिसमे उपह्वाव के लिये अवत्ता इडा धारण

की जाती है वह चमस का समवत्तधान है और उसको उदर मे योजित करना चाहिए ।११। ऊरुओ के ऊपर का भाग उपस्थ होता है उसमे शम्या को योजित करे ।१२। ऊरुओ मे अरणी और दोनो जाघो मे उलूखल और मुसल इन दोनो को योजित करना चाहिए ।१३। दोनो पैरो मे शूर्पो को योजित करे ।१४। शूप एक ही हो तो भेदन करके करना चाहिए ।१५।

आसेचनवन्ति पृषदाज्यस्य पूरयन्ति ।१६। अमा पुत्रो दृषदुपले ।१७। लौहायस च कौलालम् ।१८। अनुस्त रण्या वपामुत्खिद्य शिरो मुख प्रच्छादयेदग्नेर्वमपरिगोभिर्व्ययस्येति ।१९। वृवका उद्धृत्य पाण्योरादध्यादतिद्रवसारमेयौ श्वानाविति दक्षिणे दक्षिण सव्ये सव्यम् ।२०।

जोभी पात्र हो वे आसेचन वाले होवे अर्थात् विल वाले होने चाहिए तात्पर्य यह है कि पृषदाज्य के धारण मे समथ होवे । पूरित कर के ही योजित करे क्योकि धर्मोत्सादन मे उस प्रकार से इष्ट होता है ।१६। इषद् उपल मे पुत्र अमा करे । आत्मा के उपयोग के लिये सग्रह करना चाहिए । इससे गृह से नही लावे ।१७। और लौहायस कौलाल का सग्रहण करे । अन्य समस्त आयुधो का योजन करना चाहिए ।१८। अनुस्तरणी से वपा का उत्खेदन करके प्रेत के शिर और मुख को समाच्छादित कर देना चाहिए । "अग्नेवमपरिगोभिव्ययस्य" इस ऋचा से ही करे ।१९। इसके उपरान्त वृक्को का उद्धरण करके प्रेत के हाथो मे "अतिद्रवसारमेगौश्वानौ' इस ऋचा से दक्षिण पाणि मे दक्षिण वृक्क को और सव्य मे सव्य को देना चाहिए । मन्त्र का उच्चारण एक ही बार करना चाहिए ।२०।

हृदये हृदयम् ।२१। पिण्डचौ चेके ।२२। वृक्कापचार इत्येके ।२३। सर्वा यथाङ्ग विनिक्षिप्य चर्मणा प्रच्छाद्येममग्ने चमस मा विजिह्वर इति प्रणीताप्रणयनमनु मन्त्रयत्रे ।२४। सव्य जान्वाच्य दक्षिणाग्नावाज्याहुती-

जुहुयादग्नये स्वाहा कामाय स्वाहा लोकाय स्वाहाऽनुमतये स्वाहेति ।२५। पञ्चमीमुरसि प्रेतस्यास्माद्वै त्वमजा यथा अय त्वदधिजायतामसौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति ।२६। ख० ३ ।

हृदय को उद्घृत करके हृदय मे आधान करे ।२१। कुछ का मत है कि पिण्डयो को हाथो मे तूष्णी भाव से देवे । इस प्रकार से वृक्को का और पिण्डयो का समुच्चय होता हे । कुछ मनीषियो का कथन है कि वृक्क के अभाव मे पिण्डयो का आधान करना चाहिए ।२२। अनुस्तरणी से चम को पृथक् करके प्रेत के जो-जो अङ्ग है उस-उस अङ्ग मे कल्पित पशु का भी वही-वही अङ्ग विनिक्षिप्त करके उसी के चर्म से प्रच्छादन करके "इममग्ने चमस मा विजिह्वर" इससे प्रणीता प्रणयन का अनुमन्त्रण करता है ।२३-२४। सव्य जातु को निपतित करके दक्षिणाग्नि मे आज्याहुति से हवन करना चाहिए । मन्त्र ये है—"अग्नये स्वाहा, कामाय स्वाहा—लोकाय स्वाहा—अनुमतये स्वाहा' ।२५। पाच की आहुति प्रेत के उर स्थल मे हवन करे । मन्त्र—"अस्माद्वै त्वम जायथा अय त्वदधिजायत्वाममौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा" इति । यह है । तात्पर्य यह है कि जिस जिस प्रेत का दाह करना स्मृति मे विहित होता है उस प्रेत को इसी विधि से दग्ध करना चाहिए ।२६।

प्रेष्यति युगपदग्नीन्प्रज्वालयतेति ।१। आहवनीयश्चेत्पूर्व प्राप्नुयात्स्वर्गलोक एन प्रापदिति विद्याद्रास्यत्यसावमुत्रैवमयमस्मिन्निति पुत्र ।२। गार्हपत्यश्चेत्पूर्व प्राप्नुयादन्तरिक्ष लोकएन प्रापदिति विद्याद्रा त्स्यत्यसावमुत्रवमयमस्मिन्निति पुत्र ।३। दक्षिणाग्निश्चेत्पूर्व प्राप्नुयान्मनुष्यलोक एन प्रापदिति विद्याद्रात्स्यत्यसावमुत्रैवमयस्मिन्निति पुत्र ।४। युगपत्प्राप्तौ परामृद्धि वदन्ति ।५। त दह्यमानमनुमन्त्रयते प्रेहि प्रेहि पथिभि पूर्व्येभिरिति समानम् ।६। स एवविदा दह्यमान सहव धूमेन स्वर्ग लोकमेतीति ह विज्ञायते ।७।

इसके अनन्तर परिकर्मी का कर्त्ता प्रेपाति युगपरग्नीम्प्रज्वालयुत' इति—इससे व वैसा ही करे ।१। यदि आहनवीय आदिताग्नि शरीर को प्रथम प्राप्त हो जावे तो इस आहिताग्नि को स्वग लोक मे प्राप्त करा देवे—यह जान लेना चाहिए । यह आहिताग्नि इस स्वर्ग लोक मे ऋद्धि को प्राप्त करेगा इसी प्रकार से मनुष्य लोक मे पुत्र ऋद्धि को प्राप्त करेगा यह समझ लेवे ।२।पूर्व मे यदि गार्हपत्यअग्नि प्राप्त करे तो इसको अन्त-रिक्ष लोक प्राप्त हुआ —यह समझ लेना चाहिए । और इस लोक मे पुत्र भी यह प्राप्त करेगा यह समझ लेवे ।३। दक्षिणाग्नि वे पूर्व मे प्राप्ति होने पर बहुत ही शीघ्र उतान्न होकर बहुत-सा अन्न आहिताग्नि मनुष्य लोक मे प्राप्त किया करता है । और पुत्र इस लोक मे बहुत अन्न वाला होता है—यह जान लेवे ।४। यदि सभी अग्नियाँ एक ही साथ शरीर को प्राप्त होवे तो आहिताग्नि को विशिष्ट स्थान मे अत्यन्त उत्कृष्ट ऋद्धि को ब्रह्मवादी लोक कहते है । पुत्रो को इस लोक मे परा ऋद्धि को बतलाते है ।५। यहाँ पर 'तम्' का ग्रहण इस ज्ञापन के करने के लिये है कि उसके प्रति अन्य कर्म भी होता है इस से प्रैप को देकर सिग्वातादि लौकिक करना चाहिए जो दहन किये जाने वाला प्रेत है उसका अनुमन्त्रण करता है । मन्त्र यह है—"प्रेहि प्रेहि पथिभि पूर्व्यैरिति" यह समान है ।६। इस प्रकार से ज्ञाता के साथ ही वह दह्यमान धूम के द्वारा स्वगलोक को प्राप्त होता है—यह जाना जाता है ।७।

उत्तरपुरस्तादाहवनीयस्य जानुमात्र गर्त खात्वाऽवका शीपालमित्यवधापयेत्ततो ह वा एष निष्क्रम्य सहैव धूमेन स्वर्ग लोकमेतीति विज्ञायते ।८। इमे जीवा विमृतैरावव्रृत्रन्निति सव्यावृतो व्रजन्त्यनवेक्षमाणा ।९। यत्रोदकमवहद्भवति तत्प्राप्य सकृन्दुन्मज्ज्यकाञ्जलि-मुत्सृज्य तस्य गोत्र नाम च गृहीत्वोत्तीर्यान्यानि वासासि परिधाय सकृदेनान्यापीड्योदग्दशानि विसृज्याऽऽसत आ नक्षत्रदर्शनात् ।१०।

जानुमात्र गर्त्त मे इतने काल तक अतिवाहिक शरीर को समास्थित करके आहिताग्नि सस्कार की प्रतीक्षा करता है । इसके अनन्तर इस काल मे सन्नवर से निकल कर धूम के साथ ही स्वर्ग को जाता है—यह सुना जाता है ।८। "इमे जीवा विमृतै राववृत्रन्निति" इस ऋचा का जप कर्त्ता करके इसके पश्चात् सब समावृत होकर पीछे की ओर अन्वीक्षमाण होते हुए जावे ।६। जहाँ पर उदक बहता हुआ स्थिर होता है उसके प्रति जाते है और उसको प्राप्त करके एक बार निमञ्जन करते हैं। समानोदक एक बार अञ्जलि का उत्सर्ग किया करते है पुरुष और स्त्रियाँ सभी उसका नाम और गोत्र का ग्रहण करके–यह उदक तुम्हारे लिये है—यह कहकर सेचन किया करते है और दक्षिण की ओर मुख वाले होते हे । उदक से उत्तरण करके अन्य वस्त्रो को धारण करना चाहिए एक बार आर्द्र वस्त्रो को पीडित करते हे । उदगु वस्त्रो को शोषण के लिये विसर्जन कर देते हे । फिर नक्षत्रो के देखने पर गृहो मे प्रवेश करना चाहिए । सभी वान्धव गण ऐमा ही करे ।१०।

आदित्यस्य वा दृश्यमाने प्रविशेयु ।११। कनिष्ठप्रथमा ज्येष्ठजघन्या ।१२। प्राप्यागारमश्मानमग्नि गोमयम क्षतास्तिलानप उपस्पृशन्ति ।१३। नैतस्या रात्र्यामन्न पचेरन् ।१४। क्रीतोत्पन्ने वा वर्तेरन् ।१५। त्रिरात्रमक्षारलवणाशिन स्यु ।१६। द्वादशरात्र वा महागुरुषु दानाध्ययने वर्जयेरन् ।१७। दशाह सपिण्डेषु ।१८। गुरौ चासपिण्डे ।१९। अप्रत्तासु च स्त्राषु ।२०।

अथवा आदित्य देव के दृश्यमान होने पर प्रवेश करना चाहिए ।११। सबसे कनिष्ठ सबसे प्रथम प्रवेश करे और ज्येष्ठ उनके पीछे घर मे प्रवेश करे ।१२। घर मे प्राप्त होकर अश्म अग्नि-अक्षत तिल और जल का उपस्पर्शन करते है ।१३। बान्धवगण उस रात्रि मे अन्न का परिपाक नही करे ।१४। अथवा क्रीत किये हुए अथवा उत्पन्न हुए अन्न से वृत्ति करे । कुछ विद्वान् इस सूत्र को नही पढते हे ।१५। समस्त वान्धवगण तीन रात्रि पयन्त अक्षार लवण का अशन करने वाले रहे

।१६। माता पिता, और जो सम्पूण वेद का अध्यापन किया करता है—ये महा गुरु होते हैं। इनके मृत हो जाने पर बारह रात्रि पर्यन्त दान और अध्ययन को वर्जित कर देना चाहिए। दश दिन तक—इसका विकल्प है। यहाँ पर आशौच का विधान नही किया जाता है बल्कि केवल दान और अध्ययन का वर्णन ही होता है आशौच तो स्मृति मे कहा हुआ दश ही दिन का होता है।१७। जो सपिण्ड हैं उन सब मे दश दिन तक ही शवाशौच होता है। असपिण्ड हैं उनमे भी दश दिन अथवा बारह दिन का होना है—यह विकल्प है।१८। माता पिता के और असपिण्ड के होने पर भी दश दिन अथवा बारह दिन का होता है—यह विकल्प है।१९। और अप्रत्त स्त्रियो के मृत होने पर दश ही दिन का शवाशौच होता है।२०।

त्रिरात्रमितरेष्वाचार्येषु ।२१। ज्ञातौ चासपिण्डे ।२२। प्रत्तासु च स्त्रीषु ।२३। अदन्तजाते ।२४। अपरिजाते च ।२५। एकाह सब्रह्मचारिणि ।२६। समानग्रामीये च त्रियेश्रो ।२७। ख० ४।

इतर एक देश के अध्यापन करने वाले आचार्यो का आशौच तीन ही रात्रि का होता है।२१। असपिण्ड ज्ञाति के मृत होने पर तीन ही रात्रि का होता है।२२। प्रत्ता स्त्रियो के मृत होने पर तीन रात्रि का ही आशौच होता है।२३। जिनके दाँत नही निकले हो उन बच्चो के मृत होने पर भी तीन रात्रि का ही होता है।२४। जो गर्भ सम्पूर्ण हो उसके पात होने पर भी तीन ही रात्रि का आशौच होता है।२५। साथ पढने वाले ब्रह्मचारी के मृत होने पर एक दिन वर्जिन कर देना चाहिए।२६। समान ग्राम मे निवास करन वाले श्रोत्रिय के मृत हो जाने पर एक दिन का वजन कर देव। अर्थात् अध्यापन मात्र को ही वर्जित कर देवे दानादिक का वर्जन नही करे।२७।

सचयनमूर्ध्वं दशम्या कृष्णपक्षस्यायुग्स्वेकनक्षत्रे ।१। अलक्षणे कुम्भे पुमासलक्षणाया स्त्रियमयुजोऽमिथुना

प्रवयस ।२। क्षीरोदकेन शमीशाखया त्रि प्रसव्य-
मायतन परिव्रजन्प्रोक्षति शीतिके शीतिकावतीति ।३।
अङ्गुष्ठोपकानिष्ठिकाभ्यामेकैकमस्थ्यसह्लादयन्नोऽवदध्यु
पादौ पूर्वं शिर उत्तरम् ।४। सुमचितसचित्य पवनेन सपूय
यत्र सर्वत आपो नाभिस्यन्देरन्नन्या वर्षाभ्यस्तत्र गर्तेऽवद-
ध्युरुपसप मातर भूमिमतोमिति ।५। उत्तरया पासूनव-
किरेत् ।६। अवकीर्योत्तराम् ।७। उत्त स्तभ्नामीति कपा
लेनापिधायाथानपेक्ष प्रत्याव्रज्याप उप स्पृश्य श्राद्धमस्मै
दद्यु ।८ ख० ५।

जिस कम के द्वारा अस्थियो का सचयन होता है उसी को सचयन कहते है। कृष्ण पक्ष की दशमी ऊर्ध्व मे अयुग्म तिथियो मे जैसे एकादशी-त्रयोदशी और पञ्चदशी है और एक नक्षत्र मे अर्थात् जिस नाम से एक ही नक्षत्र अधीत किया जाता है तन्नामक नक्षत्र मे अर्थात् जैसे दो आषाढा है—दो फाल्गुनी है और दो भाद्रपदा है इनको छोडकर अन्य किसी नक्षत्र मे करना चाहिए ।१। पुरुष की अस्थियो का अमङ्गल कलश मे सचय करे। जो कुम्भस्तम्भ रहित हो उसे अमङ्गल कलश कहा जाता है। अलक्षणा कुम्भी मे स्त्री की अस्थियो का सचयन करना चाहिए । कुम्भी स्तन वाली होती है ।२। "शीतिके शीतकावनी" इससे क्षीरमिश्रित उदक से शमी की शाखा के द्वारा प्रसव्य आयतन का परिव्रजन करता हुआ कर्त्ता प्रोक्षण करता है ।३। जो सचय करने वाला है वह अङ्गुष्ठ्य कनिष्ठकाओ से एक २ अस्थि को ग्रहण करे । कुछ भी शब्द न हो इस तरीके से कुम्भ मे रक्खे । पैरो को पूर्व मे और शिर को उत्तर मे रखना चाहिए ।४। "उपसर्प मातर भूमिमतोम्" इस ऋचा को कर्त्ता को बोलना चाहिए। शिर तक कुम्भ मे रखकर शूर्प से भस्म का सशोधन करे। सूक्ष्म अस्थियो को शिर के ऊपर सचित करके दोनो तरफ आकाश लक्षण युक्त देश मे गर्त्त खोदकर जिसमे कही से भी जल प्रवेश न करे उसमे कुम्भ को रख देवे ।५। उत्तर भाग वाली 'उच्छ्वच स्वेति" इस ऋचा के धूलि को अवकीण करना चाहिए

।६। अवकिरण करके फिर उत्तर भाग का जाप करे 'उच्छ्व चमानेति" यह उत्तरा भाग है ।७। "उत्ते स्तभ्नामि" इससे धरादिक कपाल से कुम्भ का अभिधान कर गर्त्त को पूरण कर देवे जिससे कुम्भ दिखलाई न पडे । फिर पीछे की ओर न देखते हुए प्रत्याव्रजन करता है । जल उपस्पर्शन करके इस दिन मे प्रेत के लिये श्राद्ध देना चाहिए ।८।

गुरुणाऽभिमृता अन्यतो वाऽपक्षीयमाणा अमावास्याया शान्तिकर्म कुर्वीग्न् ।१। पुरोदयादग्नि सहभस्मान सहायतन दक्षिणा हरेयु क्रव्यादमग्नि प्रहिणोमि दूरमित्यर्धर्चेन ।२। त चतुष्पथे न्युप्य यत्र वा त्रि प्रसव्य परियन्ति सव्यै पणिभि सव्यानूरूपनाघ्नाना ।३। अथानवेक्ष प्रत्याव्रज्याप उपस्पृश्य केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वोपकल्पयीरन्नवान्मणिकान्कुम्भानाचमनीयाश्च शमीसुमनोमालिन शमीमयमिध्म शमीमय्यावरणी परिधीश्चाऽऽनडुह गोमय चर्म च नवनीतमश्मान च यावत्यो युवतयस्तावन्ति कुशपिञ्जूलानि ।४। अग्निवेलायामग्नि जनयेदिहैवायमितरो जातवेदा इत्यर्धर्चेन ।५।

गुरु के द्वारा अभिमृत और यशपक्षि पुत्र हिरण्य आदि से अपक्षीयमाण होते हुए अमावस्या मे शान्ति कम करना चाहिए। मन्त्रवती क्रिया को ज्येष्ठ करता है ।१। पूर्व मे आदित्य के उदय से भस्म सहित अग्नि को आयतन के साथ दक्षिण दिशा मे नयन करे । "क्रव्यादमग्नि प्रहिणोमि दूरम्" इस आधी ऋचा से नयन करे । यहाँ पर आयतन शब्द से अधिश्रवणार्थ मेखला आदि कहे जाते हे—यह समझ लेना चाहिए।२। इसके अनन्तर उस अग्नि को चौराहे पर प्रक्षिप्त करके सव्य पाणियो से सव्य ऊरुओ को ताडन करते हुए उस अग्नि को तीन बार अप्रदक्षिण परियन करते है ।३। पीछे की ओर न देखते हुए ही प्रत्यावजन करते है । इसके उपरान्त सब स्नान किया करते है फिर सब केश–स्मश्रु लोम और नखो का वापन कराया करते है । पुन भी

स्मृति प्राप्त स्नान करते है अर्थात् स्नान करना चाहिए। इसके अनन्तर आगे बतलाये जाने वाले पात्रो का उपकल्पम करना चाहिए। अर्थात् पुरानो का उत्सर्ग करके उनके स्थान मे भी नवीनो का उपयोग करे। मणिक उसको कहते है जो जल धारण करने के लिए एक विशेष पात्र होता है। कुम्भ तो बतना ही दिये गये हैं। आचमनीय आचमन के साधन होते है। जोकि उदज्जन कमण्डलु प्रभृति होते है। शमी के पुष्पो की माला वाले होते है। कुछ का मत है कि "शमीपुष्पमालिन" यह मणिकादिक का विशेषण है। अन्य लोग कर्त्ताओ का विशेषण मानते है। शमीपय इध्म और शमीमयी अरणी की उपकल्पना करनी चाहिए। परिधियो की उपकल्पना करे—आनडुह चर्म, गोमय, नीनवत अश्म और जितनी युवतियाँ हो उतने ही कुशा के पिञ्जूल भी होने चाहिए ॥४॥ इसके उपरान्त अग्निहोत्र के विहरण काल मे अपराह्न समय मे शमीमयी अरणियो से आधी ऋचा के द्वारा अग्नि का मन्थन करना चाहिए। ऋचा यह है—" इहैवायमितरो जातवेदा" ॥५॥

त दीपयमाना आसत आ शान्तरात्रादायुष्मता कथा कीर्तयन्तो माङ्गल्यानीतिहासपुराणानीत्याख्यापयमाना ।६। उपरतेषु शब्देषु सप्रविष्टेषु वा गृह निवेशन वा दक्षिणाद्द्वारपक्षात्प्रक्रम्याविच्छिन्नामुदकधारा हरेत्तन्तु तन्वन्रजसो भानुमन्विहीत्योत्तरस्मात् ।७। अथाग्निमुपसमाधाय पश्चादस्याऽऽनडुह चर्माऽऽस्तीर्य प्राग्ग्रीवमुत्तरलोम तस्मिन्नमात्यानारोहयेदारोहताऽऽयुर्जरस वृणाना इति ।८। इम जीवेभ्य परिधि दधामीति परिधि परिदध्यात् ।९। अन्तर्मृत्यु द धता पर्वतेनेत्यश्मानमित्युत्तरतोऽग्ने कृत्वा पर मृत्यो अनु परेहि पन्थामिति चतसृभि प्रत्यृच हुत्वा यथाऽहान्यनुपूर्वं भवन्तीत्यमात्यानीक्षेत ।१०। युवतय पृथक्पाणिभ्या दर्भतरुणकैर्नवनीतेनाङ्गुष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यामक्षिणी आञ्ज्य पराञ्चो विसृजेयु ।११। इमा नारीरविधवा सुपत्नीरित्यञ्जाना ईक्षेत ।१२।

उस मन्त्र को कथन करते हुए आयुष्मान् कुल वृद्धो की कथा का कीर्त्तन करते हुए और इतिहास आदि माङ्गल्य को बोलते हुए उस अग्नि को दीप्त करने वाले घर से बाहर ही शान्त रात्रि तक निशा मे चुप रहते थे ।६। इसके पश्चात् उस समय मे जब कोई भी शब्द नही बोलते है अथवा अमात्यो के सनिविष्ट होने पर गृह अथवा निवेशन मे प्रवेश करने की कामना करते हैं । दक्षिण द्वार के पक्ष से सतत उदक की धारा का निचन करना चाहिए । सिञ्चन की ऋचा यह है—"त नु त-वन् जमो भानुर्मन्विहीति" । यह उत्तर भाग है ।७। इसके अनन्तर अग्नि का उप-समाधान करके पीछे इसके आनुडुह चर्म का आस्तरण करके उस पर प्राग्ग्रीव उत्तर लोम सब अमात्यो का आरोहण करावे । "मन्त्र आरोह-ताऽऽयुजरस वृणाना" यह है ।८। "इम जीवेभ्य परिधि दधामि" इस मन्त्र से अग्नि की परिधि का परिधान करना चाहिए ।९। "अन्तर्मृत्युर्द-घता पवतेन"—इस मन्त्र से अग्नि के उत्तर मे अश्म को करके 'पर मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम्" इन चार ऋचाओ से प्रति ऋचा हवन करके "यथा हान्यनुपूर्वं भवन्ति" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए श्रमासो का ईक्षण करे ।१०। अमात्यो मे जो युवती स्त्रिया है वे दर्भों के तरुणको के द्वारा नवनीत को ग्रहण करके उससे अगुष्ठ और उपकनिष्ठिका से हाथो से नेत्रो का अश्रित करती है । इसके पश्चात् न देखते हुए कुशो के पिञ्जूलो का विसर्जन करे ।११। "इमा नारीरविधवा सु पत्नी" इस ऋचा से कर्त्ता युवतियो को देखे ।१२।

अश्मन्वतीरीयते सरभध्वमित्यश्मान कर्ता प्रथमोऽभिमृरोत् ।१३। अथापराजिताया दिश्यवस्थायाग्निनाऽऽनडुहेन गोमयेन चाविच्छिन्नया चोदकधारयाऽऽपो हि ष्ठा मयोभुव इति तृचेन परीमे गामनेषतेति परिक्रामत्सु जपेत् ।१४। पिङ्गलोऽनड्वान्परिणय स्यादित्युदाहरन्ति ।१५। अथो-पविशन्ति यत्राभिरस्यमाना भवन्त्यहतेन वाससा प्रच्छाद्य ।१६। आसतेऽस्वपन्त ओदयात् ।१७। उदित आदित्ये सौर्याणि स्वस्त्ययनानि च जपित्वाऽन्न सस्कृत्याप न

शोशुचदघमिति प्रत्यृच हुत्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्त्ययन वाचयीत गौ कसोऽहत वासश्च दक्षिणा ।१८। ख० ६।

इसके अनन्तर अपराजिता दिशा मे स्थित होकर आनुडुह गोमय से और अविच्छिन्न उदक की धारा से "आपोहिष्ठा मयो भुव" इस ऋचा से सिच्यमान से अमात्यो मे औपसन अग्नि का परिक्रमण करते हुआ के "परीमेगामनेष्ठत" इस का जप करना चाहिए। और इसक पूव 'अश्मन्वती रीयते सरयध्वम्" इस मन्त्र से कर्त्ता अश्म को पूव मे अभिमृष्ट करे।१३-१४। इस प्रकार के गुण से युक्त अनड्वान् का परिणत करना चाहिए। इसके उपरान्त स्विष्टकृत् आदि का समापन करना चाहिए यह उदाहरण देते है।१५। इसके उपरान्त जहा पर अभिरस्यमान होते है और जो देश अभीष्ट हाता है उस को अहत अर्थात् नवीन वस्त्र से समाच्छादित करके बैठ जाते हैं।१६। वही पर उदय पयन्त स्वय न करत हुए बैठा करते है।१७। आदित्यदेव के उदित होने पर सतौर्य अर्थात् सूर्य सम्बन्धी स्वस्त्ययनो का जाप करके अ न सस्कृत्यायन श्ने शुच दघम्" इति—इस से प्रतिऋचा हवन करके ब्राह्मणो का भोजन कराकर स्वस्त्ययन का वाचन करावे और गौ-कस तथा नूतन वस्त्र दक्षिणा मे देवे।१८।

अथात पार्वणे श्राद्धे काम्य आभ्युदयिक एकोद्दिष्टे ।१। ब्राह्मणञ्श्रुतशीलवृत्तसम्पन्नानेकेन वा काले ज्ञापितान्स्नातान्कृतपच्छौचानाचान्तानुदङ्मुखान्पितृवदुपवेश्यैकैकमेकैकस्य द्वौ द्वौ त्रीस्त्रीन्वा वृद्धौ फलभूयस्त्व न त्वेवैक सर्वषाम् ।२। काममनाद्ये ।३। पिण्डैर्व्याख्यातम् ।४। अप प्रदाय ।५।

इसमे अथ शब्द अधिकाराथ है। अत यह शब्द हेतु के अर्थ वाला है। कारण यह है कि मूढो के द्वारा भी श्राद्ध से नि.श्रेयस की प्राप्ति की जाया करती है। श्राद्ध पावण-काम्य-अभ्युदयिक और एकोद्दिष्ट होते है। पितृगण का उद्देश्य करके जो हार्दिक श्रद्धा से ब्राह्मणो को दिया जाता

है वह श्राद्ध होता है। जो पर्व मे किया जाता है वह पावण होता है। जो किसी कामना से होता है उसे काम्य कहते है। जो वृद्धि पूत निमित्तक होता है वह आभ्युदयिक श्राद्ध होता है। जो केवल एक ही का उद्देश्य करके दिया जाता है वह एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है।१। ब्राह्मण शब्द का ग्रहण क्षत्रियादि की निवृत्ति के ही लिये होता हे। स्वाध्याय शील और वृत्त साध्यदयादि युक्त तथा क्रोधादि से रहित ब्राह्मणो को श्राद्ध मे ग्रहण करे। वृत्त का तात्पर्य शास्त्र मे जिसका विधान है उसको करे और जो निषिद्ध हो उसको नही करे। ब्राह्मणो को समय पर ज्ञापित कर देवे अर्थात् उचित समय पर निमन्त्रित कर देवे। नियम से स्नान किये हुओ को ही श्राद्ध मे भोजन कराना चाहिए। जो स्नान करने मे असमर्थ हो उनको भोजन नही करावे। हाथ पैरो का प्रक्षालन कर शुद्ध हुए ब्राह्मणो को उत्तर की ओर मुख करने वालो को बिठाना चाहिए अपने पितृगण का उद्देश्य करके ही उनको पिता पितामह आदि के उद्देश्य से एक एक दो-दो अथवा तीन-तीन को बिठाना चाहिए। वृद्धि मे फल की अधिकता होती है। पिता-पितामहादि सब के लिये एक ही ब्राह्मण को नही रखना चाहिए।२। तीनो का उद्देश्य करके किये गये श्राद्ध के मध्य मे आद्य सपिण्डी करण ही प्रथम है। इससे वर्जित समस्त श्राद्धो मे इच्छापूर्वक एक ही को भोजन कराना चाहिए।३। जीवभृतो का पिण्ड नियरण का अधिकार करके जो पक्ष पितृपिण्ड यज्ञ मे कहे गये है उनको श्राद्ध मे भी जान लेना चाहिए।४। उपदेश के अनन्तर ब्राह्मणो के हाथो मे जल देना है। आग्नेयी उपदिशा की ओर मुख वाला प्राचीनावीती होकर पितृगण का कर्म करना चाहिए।५।

दर्भान्द्विगुणभुग्नानासन प्रदाय ।६। अप प्रदाय ७। तैजसाश्ममयमृन्मयेषु त्रिषु पात्रेष्वेकद्रव्येषु वा दर्भान्त र्हितेष्वप आसिच्य शनोदेवीरभिष्टय इत्यनुमन्त्रितासु तिलानावपति तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मित । प्रत्नवद्भि प्रत्त स्वधया पितृनिमाल्लोकान्प्रीणयाहि न स्वधा नम इति ।८। प्रसव्येन ।९। इतरपाण्यङ्गुष्ठा-

न्तरेणोपवीतित्वाद्दक्षिणेन वा सव्योपगृहीतेन पितरिद ते अर्घ्यं पितामहेद ते अर्घ्यं प्रपितामहेद ते अर्घ्य-मिति ।१०।

इसके अनन्तर द्विगुण भुग्न दर्भों को आसनो पर देता है । आसन प्रदान करके । यहाँ पर सप्तमी के अर्थ मे द्वितीया है ।६। इसके अनन्तर पुन जल देता है ।७। इसके उपरान्त तीन पात्र रक्खे—उन पात्रो मे एक पात्र तो तैजस होना चाहिए, एक पात्र अश्ममय हो और एक मृन्मय होना चाहिए । तीन द्रव्यो के सम्भव न होने पर तीनो पात्र चाहे एक ही द्रव्य के होवे । भले ही तीनो तैजस हो, अश्ममय हो या मृन्मय होवें । इन तीनो को आग्नेयी दिशा मे सस्थित करे । उनमे दर्भो को डाले फिर उनमे जल का निषेचन करे । "शनोदेवी" इत्यादि ऋचा से तीनो पात्रो मे स्थित जल का अनुमन्त्रण करे । फिर "तिला सि"—इस मन्त्र के द्वारा उनमे तिलो का आवपन करता है । प्रतिपात्र मन्त्र की आवृत्ति करे । पात्रो मे गन्धमाल्य आदि का आवपन करना चाहिए ।८। समस्त पितृ कर्म प्रमम अप्रदक्षिण होकर ही करना चाहिए ।९। उपवीति के विधान से यह सम्पूर्ण पितृ कम प्राचीन रीति के ही द्वारा करना चाहिए । अब उपवीतित्व के हेतु के निर्देश होने से यहा से आरम्भ करके अर्वाक् गन्ध माल्यादि के दान आदि कम यज्ञोपवीति के द्वारा ही करना चाहिए—ऐसा गृह्यवेत्ता कहते है । अन्य सव्य करके द्वारा अङ्गुष्ठान्तर से अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । जिस कर के द्वारा कम करता है वह दक्षिण हो अथवा सव्य हो उसके अस पर स्थित यज्ञोपवीत के होने पर प्राचीनावीती होता है । तथा अन्य अस पर स्थित होने से उपवीती हुआ करता है । अघ्य देने के समय मे—हे पित ! यह अर्घ्य आपके लिये है—हे पितामह ! यह अर्घ्य आपके लिये है—हे प्रपितामह ! यह अघ्य आपके लिये है—ऐसा कह कर ही अलग अलग अर्घ्य देवे ।१०।

अप्पूर्वम् ।११। ता प्रतिग्राहयिष्यन्सकृत्स्वधा अर्घ्या इति ।१२। प्रसृष्टा अनुमन्त्रयेत या दिव्या आप· पृथिवी

सबभूवुर्या अन्तरिक्ष्या पार्थिवीर्या । हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आप शस्योना भवन्त्विति सस्रवान्समवनीय ताभिरद्भि पुत्रकामो मुखमनक्ति ।१३। नोद्धरेत्प्रथम पात्र पितॄणामर्घ्यपातितम् । आवृनास्तत्र तिष्ठन्ति पितर शौनकोऽब्रवीत् ।१४। ख० ७।

अर्घ्य के प्रदान करने से पूर्व मे अन्य जल देना चाहिए ।११। वे अर्घ्य के लिये दिये हुए जलो को प्रतिग्रह कराता हुआ प्रतिग्रहण से पहिले एक-एक बार अर्घ्य के जल को निवेदित करना चाहिए । मन्त्र—"स्वधा अर्घ्या" यह होता है । पितृगण के लिये जितने भी ब्राह्मण है उन सबके लिये प्रथम एक ही पात्र देवे प्रति ब्राह्मण एक ही बार निवेदन करना चाहिए । एक-एक के पक्ष मे तो एक-एक पात्र का एक एक को निवेदन करे । अन्य जल एक-एक को देकर अर्घ्य भी एक-एक को ही देना चाहिए । सब को एक के पक्ष मे तीनो पात्र उसी को निवेदन करके पुन अन्य जल देकर उसको ही तीन अर्घ्य तीन मन्त्रो से देने चाहिए ।१२। या दिव्या आप पृथिवी सवृभूवुर्या अन्तरिक्ष्या उत पार्थिवीर्या, हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आप सस्योना भवन्तु" इस मन्त्र से ब्राह्मणो के द्वारा प्रसृष्ट अर्घ्यों अप अनुमन्त्रण करे । प्रति ब्राह्मण अनुमन्त्रण पृथक् होता है । सब को अर्घ्य देने से स्रवो अर्थात् अर्घ्यशेषो को जो पेमात्रगत है एक करता है । उन एकीकृत जलो से यदि पुत्र की कामना वाला है तो मुख को अतक्त करे और पुत्र काम न हो तो न करे ।१३। पितृगण के अर्घ्यशेष जल जिस पात्र मे एकीकृत हो ऐसे प्रथम पात्र को उस समवनयन देश से अपनीत नही करना चाहिए जब तक श्राद्ध की परिममाप्ति न होवे क्योकि उस पात्र से पितर विहित स्थित होते है—ऐसा शौनक ने कहा है । यदि उस पात्र को उद्धृत करे अथवा जब वह विकृत होता है उस समय मे पितृगणो के क्रुद्ध हो जाने से वह श्राद्ध आसुर हो जाया करता है ।१४।

एतस्मिन्काले गन्धमाल्यधूपदीपाच्छादनाना प्रदानम् ।१।
उद्धृत्य घृताक्तमन्नमनुज्ञापयत्यग्नौ करिष्ये करवै

करवाणीति वा ।२। प्रत्यभ्यनुज्ञा क्रियतां कुरुष्व कुर्विति ।३। अथाग्नौ जुहोति यथोक्त पुरस्तात् ।४। अभ्यनुज्ञायां पाणिष्वेव वा ।५। अग्निमुखा वै देवाः पाणिमुखा पितर इति हि ब्राह्मणम् ।६। यदि पाणिष्वाचान्तेष्वन्यदन्नमनुदिशति ।७।

एक ही काल मे वस्त्र–गन्ध–माल्य–धूप और दीपो का प्रदान पाँचो ब्राह्मणो के लिये होना है। गो हिरण्य आदि का प्रदान श्राद्ध के अन्त मे प्राक्स्वधा वचन से करना चाहिए। स्मृति मे भी लिखा है—"दत्वा तुदक्षिणा शक्त्या स्वाधाकारमुदाहरेत" अर्थात् ब्राह्मणो को शक्ति से दक्षिणा देकर स्वधाकार का उच्चारण करना चाहिए ।१। इध्म के उप समाधन के अ त तक पिण्ड पितृ यज्ञ को करके और ब्राह्मण यच्छौश्याद्याच्छादना ना पार्वण श्राद्ध को करके पिण्ड पितृ यज्ञ के स्थाली पाक से अन्न को लेकर घृताक्त करे और पित्रार्थ ब्राह्मणो से अनुज्ञा प्राप्त करता है—मैं अग्नि मे करूगा, अग्नि मे करे अथवा अग्नि मे करू ।२। ब्राह्मणो के द्वारा ऐसी अनुज्ञा देनी चाहिए कि यथा सख्य करो ।३। इसके अनन्तर अग्नि मे जैसा कि आगे कहा गया है वैसा हवन करता है। सोमाय पितृमते स्वधा–नमोऽग्नये कव्य वाहनाय स्वधा नम–इस स्वाहाकार से वा अग्नि को पहिले यज्ञोपवाती होकर करे ।४। यदि ब्राह्मण करो मे होम की अनुज्ञा देते है तो ऐसा होने पर करो मे हवन करता है। जहाँ पर पिण्ड पितृ यज्ञ प्र प्ति है वहाँ पर अग्नि की प्राप्ति के सद्भाव से पाणि होम की अनुज्ञा नही देने है। और जहाँ पर पिण्ड पितृ यज्ञ के कल्प की प्राप्ति नही है वहाँ पर अग्नि की प्राप्ति का अभाव होने से पाणि होम की अभ्यनुज्ञा देने है ।५। पाणि होम को श्रुति के द्वारा सुदृढ करते हुए कहते हैं–देव गण अग्नि मुख होते है अर्थात् देवो का मुख अग्नि ही होता है और पितृ गणो का मुख पाणि होता है इसीलिये पाणि होम युक्त होता है—यह ब्राह्मण वचन है ।६। यहाँ पर दो अर्थ करना अभीष्ट है—ऐसा गम्यमान होता है—वहा पर अग्नि मे करके भाजनो मे भोजन के लिये अन्य

अन्न देता है—यह एक अथ है। यदि पाणि होम होता है तो आचान्तो मे अन्य अन्न देता है यह दूसरा अथ होना है। आचान्त शब्द मे कुछ विप्रत्तिपत्ति करने वाले कहते हे—जब पाणियो मे होम होना है तब हुत अन्न को पात्रो मे रख कर, न खाकर ही निकल कर आचमन करना चाहिए।७।

अन्नमन्ने ।८। सृष्ट दत्तमृन्नुकमिति ।९। तृप्ताञ्ज्ञात्वा मधुमती श्रावयेदक्षन्नमीमदन्तेति च ।१०। सपन्नमिति पृष्ट्वा यद्यदन्नमुपभुक्त तत्तत्स्थालोपाकेन सह पिण्डाथमुद्धत्य शेष निवदयेत् ।११। अभिमतेऽनुमते वा भुक्तवत्स्वनाचान्तेपु पिण्डान्निदध्यात् ।१२। आचान्तेष्वके ।१३। प्रकीर्यान्नमुपवीर्यो स्वधोच्यतामिति विसृजेत् ।१४। अस्तु स्वधेति वा ।१५। ख० ८।

हुत शेष अन्न को भाजन के लिये रहने वाले पात्रो मे निहित अन्नो मे अन्न को देता है। अग्नि मे होम मे ओर पाणि होम मे समान है।८। प्रभूत अन्न देना चाहिए। भोजन के पर्याप्त मात्र ही न देवे, किन्तु उससे भी अधिक देना चाहिए। जिसमे कि उच्छेप रहे। इति शब्द हेतु के अर्थ वाला है।९। मधुनाता—ये तीन मधुमत्य—इस नाम से प्रसिद्ध है। अन्नादि से निवृत्त हुई इच्छा को जानकर 'मधुमती'—इन तीनो को और" क्षन्नमीमदन्त"—इस एक का श्रावण करना चाहिए। मनु महर्षि न भी कहा है—"स्वाध्याय श्रावयेत् पित्र्ये धर्म शास्त्राणि चैव हि। आख्यातानीतिहासाश्च पुराणानि खिजानि च' अर्थात् पितृगण के लिये स्वाध्याय—धर्म शास्त्र—आख्यात—इतिहास और सब पुराणो को श्रवण कराना चाहिए।१०। क्या सम्पन्न हो गया—इस वाक्य से ब्राह्मणो को पूछता है। वे सम्पन्न हो गया—यह उत्तर देते है। इसके पश्चात् जो अन्न उपभुक्त हुआ है—उस-उस अन्न से पिण्ड के लिये उद्धृत करता है। फिर स्थाली पाक के साथ उसे एकीभूत करता है फिर शेष मुक्तोद्धृत को ब्राह्मणो के लिये निवेदित कर देना चाहिए। आचाय ने आठ प्रकार के श्राद्ध कहे

है—यथा—"अन्वष्टक्य च पूर्वेद्युर्मासि मासि च पार्वणम् । काम्य मभ्युदयेऽष्टम्यामेकोद्दिष्ट मथाष्टम्वरै अन्वष्टक्य-पूर्वेद्यु मास मास मे होने वाला और पार्वण इन चारो मे स्थालीपाक से उद्धृत करके अग्नि मे करे । पीछे के चारो मे भोजनाथ अन्न से उद्धृत करके घृत से अक्त करके पाणि होम करना चाहिए ।११। शेष निवेदित ब्राह्मणो के द्वारा जो भी स्वीकार करने को अभिमत हो उसे उस समय मे उनको दे देना चाहिए। फिर आचान्त न होने पर पूर्वोक्त विधि से पिण्डो का निपरण करना चाहिए । मनु ने भोजन से पूर्व ही निपरण का विधान बताया है । भुक्तवान् होने पर ही सिद्धान्तत निपरण करना चाहिए । 'भुक्तवत्सु' इस वचन से यही सिद्ध होता है ।१२। कतिपय विद्वान् आचान्त होने पर ही निपरण चाहते हे ।१३। अस्वान्त होने पर पिण्ड दान के पक्ष मे पिण्डो को देकर फिर उच्छिष्टो के समीप मे अन्न का प्रकिरण करना चाहिए । फिर यज्ञोपवीती होकर दक्षिणा देकर ब्राह्मणो को विसर्जित कर देना चाहिए । 'ॐ स्वधा उच्यताम्'—यह कहकर ही ब्राह्मणो को विदाई देवे । ब्राह्मण भी ॐ स्वधा'—यह कहे ।१४। 'अस्तु स्वधा' अथवा इस कहकर विसर्जन करना चाहिए ।१५।

अथ शूलगव ।१। शरदि वसन्ते वाऽऽर्द्रया ।२। श्रेष्ठ स्वस्य यूथस्य ।३। अकुष्ठिपृषत् ।४। कल्माष मित्येके ।५। काम कृष्णमालोहवाश्चेत् । । व्रीहियवमतीभिरद्भिरभिषिच्य ।७। शिरस्त आ भसत्त ।८। रुद्राय महादेवाय जुष्टो वर्धस्वेति ।९। त वधयेत्सपन्नदन्तमृषभ वा ।१०

इसके उपरान्त शूलगव नामक कर्म के विषय मे बतलाते हे । शूल—इस मत्वर्थीय अच प्रत्यय होने से शूली अर्थ निकल आता है अर्थात् शूली शिव के लिए गो पशु के द्वारा याग को ही शूलगव कहा जाता है ।१। शूलगव कर्म्म को शरद—वसन्त इन दो ऋतुओ मे से किसी भी एक मे जब आर्द्रा नक्षत्र हो तभी करना चाहिए ।२। अपने यूथ मे जो श्रेष्ठ हो उसको ही ग्रहण करे और काया के द्वारा अभिषिचन करके करना चाहिए । इससे सम्बन्ध होता है ।३। वह पशु

ऐसा होना चाहिए जो कुष्ठी और पृषन् अर्थात् पृषद्वण वाला लोहित एव शुक्ल विन्दुओ से युक्त नही होना चाहिए—उसे ही ग्रहण करे ।४। कुछ विद्वान् कहते है कल्माष होना चाहिए अर्थात् वह पशु ऐसा हो जो कृष्ण विन्दुओ से युक्त होना चाहिए ।५। यदि आलोहवान् हो तो स्वेच्छया कृष्ण वण वाले को ग्रहण करे जो जामुन के फल के समान होवे ।६। इस प्रकार के गुण से युक्त पशु का पूव मे ही व्रीहि और यवो वाले जल से स्वयमेव अभिषिञ्चन करता है ।७। शिर से ऊपर आरम्भ करके पुच्छ प्रदेश तक स्नपन करना चाहिए ।८। "रुद्राय महादेवाय जुष्टो वधस्व'—इस मन्त्र से करे । उत्सृष्ट पशु जब नक उत्पन्न दाँतो वाला अन्य का सेचन ममर्थ होकर बढता है ।९। उस पशु का इस प्रकार से अथवा ही वर्धित करे । इसके उपरान्त अन्यतर अवस्था मे कर्म करे । वह सम्पन्न दाँतो वाला हो अथवा ऋषभ होवे ।१०।

यज्ञियाया दिशि ।११। असदर्शने ग्रामात् ।१२। ऊर्ध्वमर्धरात्रादुदित इत्येके ।१३। वैद्य चरित्रवन्त ब्रह्माणमुपवेश्य सपलाशामार्द्रशाखा यूप निखाय व्रतत्यौ कुशरज्जू वा रशने अन्यतरया यूप परिव्यायतिरयाऽर्धशिरसि पशु बद्धवा यूपे रशनाया वा नियुनक्ति यस्मै नमस्तस्मै त्वा जुष्ट नियुनज्मीति ।१४। प्रोक्षणादि समान पशुना विशेषान्वक्ष्याम ।१५।

इस कर्म को ग्राम से बाहिर प्राची अथवा उदीची की दिशा मे करना चाहिए ।११। जहा पर स्थित को ग्राम न देखे अथवा जहा पर स्थित ग्राम को न देखे उस देश मे करे ।१२। कुछ लोगो का मत यह है कि आधी से ऊपर उदित होने पर ही इस कर्म का करना चाहिए ।१३। जो शूलगव कर्म को जानता है उसे वैद्य कहते है । जो स्वय कर्म करने वाला हो वह चरित्रवान् कहलाता है । इस प्रकार के गुण वाले ब्राह्मण को इस कर्म मे उपविष्ट कराना चाहिए । यूप के लिये पलाशो के सहित आर्द्र शाखा को अग्नि के आगे निखनित करता है । कुशो की रज्जु अथवा

रसना होनी चाहिए। अथवा वल्ली की होवे। इन दोनो मे से किसी एक से यूप का परिवेष्टन करे और दाहिना सीग जिस तरह से बद्ध होवे उस तरह पशु को बद्ध करे "यस्मै नमस्तस्मै त्वा जुष्ट नियुनज्मि" इस मन्त्र के द्वारा करना चाहिए।१४। पशु कल्प के समान ही प्रोक्षण आदि होता है। जो विशेष है उन्हे बतलायेगे।१५।

पात्र्या पलाशेन वा वपा जुहुयादिति ह विज्ञायते ।१६। हराय मृडाय शर्वाय शिवाय भवाय महादेवोग्राय भीमाय पशुपतये रुद्राय शकरायेशानाय स्वाहेति ।१७। षड्भवोत्तरं ।१८। रुद्राय स्वाहेति वा ।१९। चतसृषु चनसृषु कुशसूनासु चतुसृषु दिक्षु बलि हरेद्यास्ते रुद्र पूवस्या दिशि सेनास्ताभ्य एन नमस्ते अस्तु मा मा हिमीरित्येव प्रतिदिश त्वादेशनम् ।२०। चतुर्भि सूक्तश्चनस्रो दिश उपतिष्ठेत कद्रुदायेमारुद्रायाऽऽतेपितारमा रुद्राय स्थिरधन्वन इति ।२१। सवरुद्रयज्ञेषु दिशामुपस्थानम् ।२२।

पात्री दारुमयी होती हे। पलाश पर्ण को कहते हैं। वपा के होम के समय मे पात्री मे अथवा पलाश से हवन करना चाहिये यह जाना जाता है ।१६। इन तीनो प्रदानो के होम मन्त्र को बतलाते है—"हराय मृडाय शर्वाय शिवाय भवाय महादेवोग्राय भीमाय पशुपतये रुद्राय शकराय ईशानाग स्वाहा।१७।यह दश नामक मन्त्र है। अथवा "उमाय' इत्यादि षण्न मक मन्त्र होता है।१८। "रुद्राय स्वाहा"—यह एक नामक या मन्त्र है।१९। वपा स्थालीपाकाय दान होम पर्य्यन्त करके चारो दिशाओ मे चार कुश सून रखकर उन पर चरु के शेष से और मास के शेष से बलि का आहरण करना चाहिए। "यास्ते रुद्र पूवस्या दिशि" इससे प्रत्येक दिशा मे त्वादेशन करना चाहिए। सब दिशाओ का नाम लेकर यथा 'यास्ते रुद्र दक्षिणस्या दिशि" इस क्रम से देवे। दर्भों के स्तम्बो से और तृणो से कलन के समान ग्रथन करके सबके अग्रभाग को ग्रहण कर एकत्रित करके जो ग्रथित होता है वे कुशसून कहे जाते हैं। पूर्व दिशा मे जो सेना हैं उनके

लिये इसको नमस्ते होवै हिंसा मत मत करो—इसी प्रकार से प्रतिदिशा मे रुद्रादेशन होता है ।२०। चारो दिशाओ मे चारो सूक्तो से यथाक्रम उपस्थान करना चाहिए । कद्र द्रायेमा रुद्रायाऽऽग्ने पितरिमा रुद्राय स्थिर धन्वन "इस सूक्त मे 'अस्मै सोम श्रियमधीत्य, इत्यादि के द्वारा रौद्रो की निवृत्ति के लिये है ।२१। और दिशाओ मे उपस्थान समस्त रुद्र यज्ञो मे होता हे । इसी देवको गोष्ठ के मध्य मे यजन करना चाहिए ।२२।

तुषान्फलीकरणाश्च पुच्छं चर्म शिर पादानित्या(त्य) ग्रावनुप्रहरेत् ।२३। भोग चर्मणा कुर्वीतेति शावत्य ।२४। उत्तरतोऽग्नेर्दभवीतासु कुशसूनासु वा शोणित निनयेच्छ्वासिनीर्घोषिणीचिन्वती समश्नुत ॥ सर्पा एत द्वोऽत्र तद्धरध्वमिति ।२५। अथोदङ्डावृत्य श्वासिनीर्घोषिणोर्विचिन्वती समश्नुती सर्पाए तद्वोऽत्र तद्धरध्वमिति सर्पेभ्या यत्तत्रासृगूवध्य वावस्रुत भवति तद्धरन्ति सर्पा ।२६।

स्थाली पाक और व्रीहियो के जो तुष और फली करण अर्थात् सूक्ष्म कण है उनको और प्रच्छ आदिक को अनुप्रहृत करना चाहिए ।२३। सूयवत्य आचाय तो चर्म से उपानत् आदि भोग करना चाहिए—ऐसा मानते है ।२४। अङ्गो के अवदान के समय मे किसी पात्र के द्वारा शोणित का ग्रहण करे । "श्वासिनीर्घोषिणीर्विचिन्वती समश्नुती सर्वा एतद्वोऽत्र तद्धर ध्वम्" इस मन्त्र से उस समय मे अग्नि के उत्तर मे दर्भ राजियो मे अथवा कुशसूनाओ मे शोणित का विनयन करना चाहिए ।२५। इसके अनन्तर वहाँ पर स्थित होता हुआ ही उदङ्मुख आवृत करके "श्वासिनी" इत्यादि मन्त्र के द्वारा जो वहाँ पर सज्ञपन देश मे भूमि मे निपतित होता वह सर्पो के लिये उद्दिष्ट करता है और देवता के रूप से उसका सप हरण किया करते हे ।२६।

सर्वाणि ह वा अस्य नामधेयानि ।२७। सर्वा सेना ।२८।

सर्वाण्युच्छ्रयणानि ।२९। इत्येवविद्यजमान प्रीणाति ।३०। नास्य ब्र्ुवाण चन हिनस्तीति विज्ञायते ।३१।

जितने भी लोक मे नामधेय है वे सब इसी के नाम है अर्थात् जितने भी लोक मे शब्द है वे सब इमी को कहते है। त्रिलोकी मे जितने भी पदाथ है वे सब रुद्र ही है। ऐमा कथन करते हुए रुद्र को सब मे रहने वाला दिखलाया है।२७। त्रैलोक्य मे जितनी भी सना है वह मब इसी की सेना है। अन्य अल्प भाग्य वाले की सेना सम्भव नही होती है। इसके तो महाभाग्य से उत्पन्न होती ही है। इम प्रकार से कहते हुए ने राजा आदि और देवादि रुद्र ही है—ऐमा कथित होता है और स्तुतियो मे पुनरुक्तता दोष नही होता है।२८। जितने भी लोक मे विद्वत्ता से, अध्येतृता से अध्याययितृता स, दातृता से, तपस्तृप्तता से अथवा अन्य किसी भी विशेषता से उत्कृष्टभूत है वे सब इसी के अश है। इम प्रकार से अनेक रीतियो से आचाय ने स्तुति की थी।२९। इस वर्णित मार्ग के द्वारा जो रुद्र देव को जान कर जो यजन करता है उस यजमान पर रुद्र देव प्रसन्न होते है।३०। इस कर्म के बोलने वाले को–विज्ञाता को, अध्येता को और उपकर्त्ता को भी रुद्रदेव विनष्ट नही किया करते है—ऐसा सुना जाता है।३१।

नास्य प्राश्नीयात् ।३२। नास्य ग्राममाहरेयुरभिमारुको ह्येष देव प्रजा भवतीति ।३३। अमात्यानन्तत प्रतिषेधयेत् ।३४। नियोगात्तु प्राश्नीयात्स्वस्त्ययन इति ।३५। स एप शूलगवो धन्यो लोक्य पुण्य पुत्र्य शव्य आयुष्यो यशस्य ।३६। इष्ट्वाऽन्यमुत्सृजेत् ।३७।

इस पशु के हुत से शेष का प्राशन नही करना चाहिए। यह निषेध कुछ के मत से होता है क्योकि उत्तर मे प्राशन का विधान होता है।३२। इस कर्म्म से सम्बन्धित द्रव्यो का ग्राम मे आहरण नही करना चाहिए यह देव प्रजा का अभिमारुक होता है। आहरण करने पर आहृत करने वाली प्रजा का यह रुद्रदेव हनन कर देते है।३३। इसके समीप मे

पुत्रादिक को प्रतिषिद्ध कर देना चाहिए अर्थात् यहा पर उनको नही आना चाहिए ।३४। पशु के हुत शेष को नियम से स्वस्त्ययन करके प्राशन करना चाहिए । इसी लिये यह जाना जाता है कि जो इसका निषेध किया गया है–वह एक पक्षीय ही होता है ।३५। अब इस कर्म का फल कहते हैं— शूलगव के द्वारा यजन करने वाले पुरुष के धन, लोक, पुण्य, पुत्र, पशु, आयु और यश हुआ करते हैं । ६। इस प्रकार से शूलगव के द्वारा यजन करके अपने यूथ के अन्य श्रेष्ठ पशु का अभिषेचन करके शूलगव करण के लिये उत्सृजन करना चाहिए ।३७।

नानुत्सृष्ट स्यात् ।३८। न हापशुर्मवनाति विज्ञायते ।३९। शन्तातीय जपन्गृहानियात् । ०। पशूनामुपताप एनमेव देव मध्ये गोष्ठस्य यजेत् ।४१। स्थालापाक सर्वहुतम् ।४२। बर्हिराज्य चानुप्रहृत्य धूमतो गा आनयेत् ।४ । शन्तातीय जपन्पशूना मध्यमियान्म-यमियात् ।४४। नम. शौनकाय नम शौनकाय ।४५। ख० ६।

सर्वथा अनुत्सृष्ट नही होना चाहिए । शूलगव के लिये एक बार उत्सग अवश्य ही करना चाहिए । और इस प्रकार से करके यह नित्य कम ही होता है—ऐसा जाना जाता है ।३८। शूलगव नाम वाले पशु-कर्म्म से रहित नही होना चाहिए क्योकि ऐसा सुना जाता है अतएव एक बार उत्सर्ग अवश्य ही करना चाहिए ।३९। शूलगव कर्म को समाप्त करके ग्राम मे प्रवेश करे और फिर पूर्व मे कथित शान्तातीय का जप करता हुआ घर को गमन करना चाहिए ।४०। आत्मीय पशुओ को जब भी उपताप व्याधि होवे तब इसी देव का द्वादश नामक, षण्नामक अथवा एक नामक का गोष्ठ के मध्य मे यजन करना चाहिए ।४१। आज्य भागान्त करके सब स्थाली पाक को दर्वी मे रख कर हवन करना चाहिए । इसके अनन्तर सर्व प्रायश्चित्तादि का सामापन करना चाहिए ।४२। इसके अनन्तर वर्हिष आज्य, तुष और सूक्ष्म कणो को अनुप्रहृत करके प्रतिधूम गौओ को आनीत करना चाहिए ।४३। फिर शान्तातीय का जप करता हुआ पशुओ के मध्य मे गमन करे । अन्य विद्वानो ने तो शान्ताति

शब्दो वाले सूक्तो को ही शान्तातीय शब्द से कहा जाता है—ऐसी व्याख्या करते है। "ईते द्यावा पृथिवी"—'इद ह नूनमेषाम्'—'उतदेवा अवहितम्'—ये इतने है। "शन इन्द्राग्नी"—यह शान्तातीय है यह प्रसिद्ध है ऐसा हमने पहिले कहा है।४४। शौनक के लिये बारम्बार नमस्कार है।४५।

※ इत्याश्वलायन गृह्यसूत्र समाप्तम् ※

अथ गृह्यपरिशिष्टम्

प्रथमोऽध्यायः

१—ग्रन्थप्रतिज्ञा

अथास्मिन्नाश्वलायनगृह्य यानि कानिचिदन्योक्तानीहेच्छता नाऽऽचार्येणानुमतानि ज्ञापितानि यानि चोक्तप्रदर्शितक्रियाणि तानि सर्वाविबोधाय यथावदभिधास्याम कर्ता स्नातो धौतानार्द्रवासा यज्ञोपवीत्याचान्त । प्राङमुख आसीनो दक्षिणाङ्गकारी समाहितो मन्त्रान्ते कर्म कुर्वीत प्रत्यृचोक्तिष्वृगन्तेष्वनादेश आज्य द्रव्य स्त्रुव करणमवदानवत्सु दर्वी पाणि कठिनेषु कर्मावृत्तौ मन्त्रोऽप्यावयते कमणोऽन्त आचमन चेति सामान्यम् ।१।

१—इस आश्वलायन गृह्य मे जो कोई अन्योक्त है उनकी इच्छा यहाँ पर रखने वाले आचाय ने जो उनको अनुमत नही है वे भी ज्ञापित किये गये है और उनके कर्म भी उपदर्शित किये गये है। वे सबको ज्ञान प्राप्त करने के लिये यथावत् बतलायेगे। कर्म कर्त्ता स्नात हो, धुले हुए आर्द्र वस्त्र वाला, यज्ञोपवीती, आचान्त, प्राङ्मुख आसीन, दक्षिणाङ्गकागी समाहित होकर मन्त्र के अन्त मे कर्म करे। प्रत्येक ऋक् के अन्तमे अनादेश आज्य, द्रव्य, स्त्रुव, करण अवदान वानो मे दर्वी पाणि कर्म की आवृत्ति मे मन्त्र की आवृत्ति और आचमन यह सामान्य है ।१।

२—सध्यावन्दनकालादि प्राणायामान्तम्

अथ सध्यामुपासीतेत्याचार्यो याधहोरात्रयो सधी यश्च पूर्वाह्लापराह्लयोस्तत्कालभवा देवतासध्यातामुपासीत ।

बहिर्ग्रामात्प्राच्यामुदीच्या वाऽन्यस्या दिश्यनिन्दिताया-
मनल्पमुदकाशयमेत्य प्रात शुचिर्भूत पाणिपादमुखानि
प्रक्षाल्य, शुचौ देशे भूमिष्ठपादोऽनपाश्रित उपविष्ट
शिखा बद्ध्वाऽऽचामेत् । प्रकृतिस्थमफेनाबुब्दुदमुदकमी-
क्षित दक्षिणेन पाणिनाऽऽदाय कनिष्ठाङ्गुष्ठौ विश्लष्टौ
वितत्य, तिस्र इतराङ्गुली सहतोर्ध्वा कृत्वा ब्राह्मेण
तीर्थेन हृदयप्रापि त्रि पीत्वा पाणि प्रक्षाल्य स्पृष्टाम्भ
साङ्गुष्ठमूलेनाऽऽकुञ्चितोष्ठमास्य द्वि प्रमृज्य सकृच्च
सहतमध्यमाङ्गुलीभि पाणि प्रक्षाल्य सव्य पाणि पादौ
शिरश्चाभ्युक्ष्य स्पृष्टाम्भ सहतध्यमाङ्गुलित्रयाग्रेणाऽऽ-
स्यमुपस्पृश्य साङ्गुष्ठया प्रदेशिन्या घ्राणबिलद्वयमना-
मिकया चक्षुश्श्रोत्रे कनिष्ठिकया च नाभि तलेन हृदय
सर्वाभिरङ्गुलीभि शिरस्तग्रैरसौ चोपस्पृशेदित्येत-
दाचमनम् । एव द्विराचम्याऽऽत्मानमभ्युक्ष्य ततो दन्ता-
ञ्शोधयित्वा पुनर्द्विराचम्य दर्भपवित्रपाणि प्रथममन्त्रक
पञ्चदशमात्रिक प्राणायामत्रय कृत्वा समन्त्रक सकृत्कु-
र्यादायतप्राण सप्रणवा सप्तव्याहृतिका सावित्री सशि-
रस्का त्रिरावतयेदित्येष समन्त्र प्राणायाम ।२।

२—जो अहोरात्र की सन्धि है और जो पूर्वाह्ण पराह्णो के समय मे होने वाले देवता है सन्ध्या मे उनकी उपासना करना आचाय का कर्त्तव्य है। ग्राम से बाहिर प्राची अथवा उदीची मे या अन्य अविन्दित दिशा मे किसी बहुत जल वाले जलाशय पर जाकर प्रात काल मे पवित्र होकर हाथ पैरो को धोकर शुचि देश मे अनपाश्रित भूमिष्ट पाद बैठकर शिखा को बाँधकर आचमन करना चाहिए। स्वाभाविक बिना झागो वाला बुलबुलो से रहित जलको देखकर दाहिने हाथ से ग्रहण करे। कनिष्ठिका और अङ्गुष्ठ को विश्लिष्ट कर इतर तीन अङ्गुलियो को सहत ऊपर को करके ब्राह्मतीथ से हृदय तक प्राप्त हो ऐसी

रीति से तीन बार पान करे। फिर हाथो को धोकर अङ्गुष्ठ मूल से जल का स्पश कर आकुञ्चित ओष्ठ वाले मुख को दो बार प्रमार्जित करे और एक बार सहत मध्यमाङ्गुलियो से हाथ धोकर सव्य पाणि, दोनो पैर और शिर का अभ्युक्षण करे। जल का स्पर्श कर सहत मध्यम तीन अगुलियो के अग्रभाग से मुख का उपस्पर्शन करे और अगुष्ठ के सहित प्रदेशिनी से दोनो नासिका के छिद्रो को, अनामिका से चक्षु और श्रोत्रो को, कनिष्ठिका से नाभि को, तल से हृदय को सब अगुलियो से शिर और उनके अग्रभागो से कन्धो का उपस्पर्शन करना चाहिए—यह आचमन है। इस प्रकार से दो बार आचमन करके अपने आपका अभ्युक्षण करे। फिर दातो का शोधन करके पुन दो बार आचमन करके दर्भ की पवित्री हाथ मे लेकर प्रथम पञ्चदश मात्रा वाले मन्त्र को तीन प्राणायाम करे। आयत प्राण होकर एक बार समन्त्रक प्राणायम करना चाहिए। प्रणव के सहित सात व्याहृतियो से युक्त सशिरस्क सावित्री की तीन बार आवृत्ति करे—यही समन्त्रक प्राणायाम है।२।

३ मार्जनाविधि।

अथ कर्म सकल्प्य शुचौ पात्रे सव्ये पाणौ वाऽप आधाय स्थिरे तूदकाशये यावति कर्म कुर्वीत तावत उदकस्य विभाग कल्पयित्वा तीर्थानि तत्राऽऽवाह्य ता अप सदर्भपाणिनाऽऽदायोत्तानशिरसि मार्जयेदोपूर्व पच्छ आपो हिष्ठेति तिसृभिरथाऽऽचमनम् उदकमादाय, सूर्यश्चेति पिबेत्। सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्य पापेभ्यो रक्षन्ता यद्रात्र्या पापमकार्ष मनसा वाचा हस्ताभ्या पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलम्पतु यत्किचिद्दुरित मयि, इदमह ममामृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहेत्येतत्समन्त्रमाचमनमथ पुनराचम्य मार्जयेत्प्रणवव्याहृतिसावित्रीभिऋर्क्श आपो हिष्ठ ति

सूक्तेन गायत्रीशिरसा चाम्भसाऽऽत्मान परिषिञ्चे-
देतन्मार्जम् ।३।

३—इसके अनन्तर कर्म का सङ्कल्प करे। शुचिपात्र मे अथवा सव्य पाणि मे जल को ग्रहण कर स्थिर उदकाशय मे जितना कम करे उतने विभाग करके तीर्थो का आवाहन करे। उस जल को सदर्भ पाणि से ग्रहण कर उत्तान शिर पर मार्जन करना चाहिए। ॐ पूर्वक "आपोहिष्ठा भयो भुव।" इन तीन म त्रो मे माजन करना चाहिए। फिर "सूयश्च" इस मन्त्र से जल लेकर आचमन करे। पूण मन्त्र यह ऐसा है—"सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्यु कृतेभ्य पापेभ्यो रक्षन्ता यद्रात्र्या पाप मकार्ष मनसा वाचा हस्ताभ्या पम्द्या मुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलम्पतु, यत्किञ्चिद्दुरित मयि, इदमह माममृत यो नौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा"—यह मन्त्र है आचमन करने का। पुन आचमन करके मार्जन करना चाहिए। प्रणव व्याहृति सावित्रीयो से और आपोहिष्ठा इस सूक्त से तथा गायत्री शिर से जल के द्वारा आत्मा का परिषिञ्चन करे यह माजन होता है।३।

४ अघमर्षणम्।

अथ गोकर्णवत्कृतेन पाणिनोदकमादाय, नासिकाग्रे धारय-कृष्णघोरपुरुषाकृति पाप्मानमात्मानमन्तर्व्याप्य स्थित विचिन्त्य, सयतप्राणोऽघमर्षणसूक्त द्रुपदामृच चाऽऽवर्त्य दक्षिणेन नासाबिलेन शनै प्राण रेचयन्सवतस्तेन सहृत्य, कृष्ण रेचनवर्त्मना पाणिस्थ उदके पतित ध्यात्वा, तदुद-कमनवेक्षमाणो वामतो भुवि तीव्राघातेन क्षिप्त्वान वज्रहत सहस्रधा दलित भावयेदेष पाप्मव्यपोह। एन-मेके न कुर्वन्ति। मार्जनेनैव तस्य व्यपोहितत्वादिति। 'द्रुपदादिवेन्मुमुचान स्विन्न स्नातो मलादिव। पूत पवित्रेणेवाऽऽज्यमाप शुन्धन्तु मैनस' इतीय द्रुपदा ऋक् पापशोधिनी।४।

४—गो कर्ण के समान किये हुए पाणि से उदक लेकर नासिका के आगे धारण करते हुए परम घोर काले रंग वाले पुरुष की आकृति से युक्त पाप को अपने अन्दर व्याप्त होकर स्थित रहने वाले का विचिन्तन करके संयत प्राण वाला होकर अघमर्षण सूक्त की ओर द्रुपदा-इस ऋचा की आवृत्ति करके दक्षिण नासिका के छिद्र से धीरे २ प्राण का रेचन करते हुए सब ओर से संहृत करके उस कृष्ण वर्ण वाले को रेचन मार्ग से हाथ में स्थित जल में पतित हुआ ध्यान करके उस जल को अवेक्षित न करते हुए ही भूमि पर बाईं ओर तीव्र आघात के साथ क्षिप्त करे और उस पाप को वज्र से आहत सहस्रों टुकड़ों में दलित हुआ इस पाप के व्यपोह की भावना करनी चाहिए। इसको कोई लोग नहीं किया करते हैं क्योंकि मार्जन के द्वारा ही उसको व्यपोहित स्वीकार करते हैं। "द्रुपदादिवेन्मुमुचान स्विन्न स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाऽऽज्य-माप शुन्धन्तु मैनस" इति—यह द्रुपदा ऋक् पाप शोधिनी है ।४।

५ अर्घ्यादि गायत्र्यर्थान्तम् ।

अथाऽऽचम्य दर्भपाणि पूर्णमुदकाञ्जलिमुद्धृत्याऽऽदित्या-भिमुख. स्थित्वा प्रणवव्याहृतिपूर्वया सावित्र्या त्रिर्नि-वेदयन्नुत्क्षिपेद्य पुन पाप्मव्यपोह नेच्छति त आचम्यै-वार्ध्यमुत्क्षिपेयुरेतदेवार्घ्यनिवेदनमसावादित्यो ब्रह्मेति प्रदक्षिण परियन्परिषिच्याप उपस्पृश्य, शुचौ देशे दर्भा-म्भसोक्षिते दर्भानास्तीर्य, व्याहृतिभिरुपविश्य, प्राणा-यामत्रय कृत्वाऽऽत्मान व्याहृतिभिरभ्युक्ष्य सावित्र्या दैवतमनुस्मृत्यार्षादिक वा तामेता चक्षुरक्षरशो विभक्ता-मन्तर्योजितं षड्भिस्तदङ्गमन्त्रैर्यथाङ्गमात्मनि विन्य-स्याऽऽत्मान तद्रूप भावयेद्यथा तत्सवितुर्हृदयाय नम इति हृदये, वरेण्य शिरसे स्वाहेति शिरसि, भर्गो देव शिखाय वषडिति शिखाया, स्यधीमहि कवचाय

हुमित्युरसि धियो यो नो नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रललाट-देशेषु विन्यस्याथ प्रचोदयादस्त्राय फडिति करतलयोरस्त्र प्राच्यादिषु दशसु दिक्षु विन्यसेदेषोऽङ्गन्यास । एनमेके नेच्छन्ति स हि विभिरवैदिक इत्यर्थमनुसद-धाना । मन्त्रदेवता ध्यात्वाऽऽगच्छ वरदे देवीत्यावाह्य तिष्ठेन्नष्टेषु नक्षत्रेष्वाण्मडलदर्शनान्मन्त्रार्थ मनुसदधान । सधान नेच्छन्त्येके । प्रणवव्याहृतिपूर्विका सावित्री जपेत् । जप चाक्षसूत्रेणानामिकाया मध्या दारभ्य प्रदक्षिण दशभिरङ्गुलीपर्वभिर्वा गणयेत् । 'आगच्छ वरदे देवि जप्ये मे सनिधा भव । गायन्त त्रायसे यस्मा-द्गायत्री त्व तत स्मृता' इत्यावाहनमन्त्र । सवितुर्देवस्य वरणीय तेजो ध्यायेमहि योऽस्माक कर्मणि प्रेरयतीति मन्त्रार्थं । ।

५—इसके अनन्तर आचमन करके हाथ मे दर्भ ग्रहण करने वाला पूर्ण उदक की अञ्जलि का उद्धरण कर सूर्य्य की ओर अभिमुख होवे और स्थित होकर प्रणव और व्याहृतियो के सहित सावित्री से तीन बार निवेदन करता हुआ उत्क्षेपण करना चाहिए । जो पाप का व्यपोह नही चाहता है वह आचमन करके ही वायव्य दिशा मे उत्क्षिप्त करना चाहिए । यह ही अर्घ्य का निवेदन होता है । यह आदित्य ब्रह्मा है—इससे प्रदक्षिण परिपन करता हुआ जल का उपस्पर्शन करके दर्भ और जल से ऊक्षित शुचि देश मे दर्भो का आस्तरण करके व्याहृतियो मे उपवेशन करे । फिर तीन प्राणायाम करके अपने आपको व्याहृतियो से अभ्युक्षण करे । सावित्री से दैवत का अनुस्मरण करके अथवा आर्यादिक को चार अक्षरो मे विभक्त इस उसको अन्तर्योजित छै अङ्ग मन्त्रो से यथाङ्ग आत्मा मे विन्यास कर के अपने आपको उसी प्रकार से भावित करना चाहिए । "तत्सवितु र्हृदयाय नम " इससे हृदय मे, "वरेण्य शिर से स्वाहा"—इससे शिर

मे, "भर्गोदेवस्य शिखायै वषट्" इससे शिखा मे, 'धीमहि कवचाय हुम्" इससे उर मे, "धियो योन नेत्र त्रयाय वौषट्"—इसमे नेत्र ललाट देशो मे, विन्यास करके इसके अनन्तर—"प्रचोदयात् अस्त्रायफट्"—इससे करतलो मे अस्त्र को प्राची आदि दश दिशाओ मे विन्यास करना चाहिए—यह अङ्गन्यास है। कुछ लोग इसको नही चाहते है और वे ऐसा अनुसधान किया करते है कि वह विधि अवैदिक है। मन्त्र के देवता का ध्यान करके 'आगच्छ वरदे देवी"—इससे आवाहन करके स्थित रहे और नक्षत्रो के नष्ट हो जाने पर आमण्डल दर्शन से मन्त्र के अर्थ का अनुसन्धान करता हुआ रहे। कुछ लोग अनुन्धान करने की भी इच्छा नही करते है। फिर प्रणव व्याहृतियो के सहित सावित्री का जाप करना चाहिए। जप अक्ष सूत्र के द्वारा अनामिका के मध्य से आरम्भ करके प्रदक्षिण दश अङ्गुलियो के पर्वो से गणना करनी चाहिए। आवाहन का मन्त्र यह है—"आगच्छ वरदे देवि जप्ये मे सन्निधा भव। गायन्त त्रायसे यस्माद्गायत्री त्व तत स्मृता"। सविता देव का वरणीय तेज का ध्यान करते है जो हमारे कर्म मे प्रेरणा देता है। यही मन्त्र का अर्थ होता है ॥५॥

६ त्रिकालगायत्रीध्यानादि ।

अथ देवताध्यानम् । यासध्योक्ता सव मन्त्रदेवता खलूपास्यते ता सवदैकरूपा ध्यायेदनुसध्यमन्यान्यरूपा वा यदैकरूपामृग्यजु सामत्रिपदा त्रिर्यगूर्ध्वाधरदिक्षु षट्कुक्षि पञ्चशिरसमग्निमुखी विष्णुहृदया ब्रह्मशिरस्का रुद्रशिखा दण्डकमण्डल्वक्षसूत्राभयाङ्कचतुर्भुजा शुभ्रवर्णा शुभ्राम्बरानुलेपनस्रगाभरणा शरच्चन्द्रसहस्रप्रभा सर्वदेवमयीमिमा देवी गायत्रीमेकामेव निसृषु सध्यासु ध्यायेदथ यदि भिन्नरूपा ता प्रातर्बाला बालादित्यमण्डलमध्यस्था रक्तवर्णा रक्ताम्बरानुलेपनस्रगाभरणा चतुर्वक्त्रा दण्डकमण्डल्वक्षसूत्राभयाङ्कचतुर्भुजा ब्रह्मदैवत्यामृग्वेदमुदा-

हरन्ती भूर्लोकाधिष्ठात्री गायत्री नाम देवता ध्यायेदथ मध्यदिने ता युवती युवादित्यामण्डलमध्यस्था श्वेतवर्णा श्वेताम्बरानुलेपनस्रगाभरणा पञ्चवक्त्रा प्रतिवक्त्र त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरा त्रिशूलखड्गखट्वाङ्गडमरुकाङ्कचतुर्भुजा वृषभासनारूढा रुद्रदेवत्या यजुर्वेदमुदाहरन्ती भुवर्लोकाधिष्ठात्री सावित्री नाम देवता ध्यायेदथ साय ता वृद्धा वृद्धादित्यमण्डलमध्यस्था श्यामवर्णा श्यामाम्बरानुलेपनस्रगाभरणामेकवक्त्रा शखचक्रगदापद्माङ्कचतुर्भुजा गुरुडासनारूढा विष्णुदैवत्या सामवेदमुदाहरन्ती स्वर्लोकाधिष्ठात्री सरस्वती नाम देवता ध्यायेद्धयान नेच्छन्त्येके। तत आवाह्य जपित्वा जातवेदसे सुनवाम सोम तच्छयोरावृणीमहे नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नय इत्येताभिरुपस्थाय प्रदक्षिण दिश साधिपा नत्वाऽथ सध्यायै गायत्र्यै सावित्र्यै सरस्वत्यै सर्वाभ्यो देवताभ्यश्च नमस्कृत्य तत 'उत्तमे शिखरे देवि भूम्या पवतमूर्धनि। ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखमिति सध्या विसृज्य भद्र नो अपिवातय मन इत्युक्त्वा शान्ति च त्रिरुच्चार्य नमो ब्रह्मण इति प्रदक्षिण परिक्रामन्नासत्यलोकादापातालादालोकालोकपवतात्। ये सन्ति ब्राह्मणा देवास्तेभ्यो नित्य नमो नम' इति नमस्कृत्य भूमिमुपसगृह्य गुरून्वृद्धाश्चोपसगृह्णीयादेवम्। साय विशेषास्तु सूर्यश्चेति मन्त्रे सूर्यस्थानेऽग्निपदमावपेद्राव्याहूना रात्रिरह स्त्ये ज्योतिषीत्यन्ते ब्रूयाज्जप चार्धास्तमिते मण्डले आ नक्षत्रदशनादासीनेति।६।

६—इसके अनन्तर देवता का ध्यान है। जो सन्ध्या कही गयी है वह ही मन्त्र का देवता उपासना किया जाता है। सवदा एक रूप वाली उसका ध्यान करना चाहिए। अथवा अनुसन्ध्व अन्यान्य रूप वाली

का ध्यान करे । जब एक रूप वाली उसका ध्यान करे तो ऋक्, यजु, साम के त्रिपदा को—तिर्यक्-ऊध्व और अधो भाग मे दिशाओ मे छै कुक्षि वाली, पाच शिरो वाली, अग्नि के मुख वाली, विष्णु के हृदय वाली, ब्रह्म के शिर वालो, रुद्र को शिखा मे धारण किये हुए, दण्ड कमण्डलु अक्षसूत्र और अभय इनको चारो हस्तो मे रखने वाली—शुभ्र वण से युक्त, शुभ्र वस्त्र, शुभ्र अनुलेपन, शुभ्र स्रक् और शुभ्र आभरणो से समन्वित शरत्कालीन सहस्र चन्द्रो की प्रभा वाली सब देवो से परिपूर्ण इस देवी गायत्री का ही तीनो सन्ध्याओ मे ध्यान करना चाहिए। यदि उसका भिन्न रूपो वाली उसका ध्यान करना हो तो प्रात काल मे बाला बाल आदित्य मण्डन मे मध्य मे स्थित, रक्त वण वाली, रक्त ही वस्त्र, अनुलेपन, स्रक् और आभरणो से युक्त, चार मुखो वाली दण्ड कमण्डलु अक्षसूत्राभय—इन चारो को चारो करो मे धारण करने वाली, हसासन पर समारूढ ब्रह्म दैवत्य वाली ऋग्वेद का उच्चारण करती हुई, भूलोक की अधिष्ठात्री गायत्री नाम वाले देवता का ध्यान करना चहिए।

इसके अनन्तर मध्य दिन मे उसका ध्यान युवती के रूप मे करे और युवा ही आदित्य के मण्डल मे मध्य मे स्थित, श्वेत वण वाली, श्वेत अम्बर, अनुलेपन स्रक् और आभरणो से युक्त, पाच मुखो वाली, प्रत्येक मुख मे तीन २ नेत्रो वाली, शेखर मे चन्द्र को धारण करने वाली, चारो भुजाओ मे त्रिशूल-खट्वाङ्ग-डमरु और काङ्क को धारण किये हुए, वृषभ के आसन पर समारूढ, रुद्र देवता वाली, यजुर्वेद का उच्चारण करती हुई, भुवर्लोककी अधिष्ठात्री सावित्री नाम वाले देवता का ध्यान करना चाहिए। इसके अनन्तर सन्ध्या के समय मे उसका ध्यान कैसे रूप मे करे—यह बतलाते है—सायङ्काल मे वृद्ध स्वरूपा—वृद्ध आदित्य के मण्डल मे मध्य मे समवस्थित, श्याम वर्ण से युक्त, श्याम ही वस्त्र, अनुलेपन—स्रक् और आभरणो से समन्वित एक मुख वाली, शख-चक्र-गदा और पद्म—इनको चारो करो मे धारण करती हुई गरुड पर समारूढ, विष्णु दैवत्य वाली, सामवेद का उच्चारण करती हुई, स्वर्ग लोक की अधि-

ष्ठात्री सरस्वती देवता का नाम वाली का ध्यान करना चाहिए। कुछ विद्वान् ध्यान की इच्छा नही करते है।

इसके उपरान्त आवाहन करसे जाप करे। 'जात वेद से सुनवाम सोमत्तच्छ पोरावृणी महे नमो ब्रह्मणे नमो ग्स्त्वग्नय'' इन ऋचाओ से उपस्थान करके प्रदक्षिण मे अधिरा के साथ दिशाओ को नमस्कार करके इसके बाद सन्ध्या के लिय, गायत्री के लिये, सावित्री के लिये, सरस्वती के लिये, सब देवताओ के लिये नमस्कार करे। इसके उपरान्त "उत्तरे शिखरे देविभूम्या पवतमूधनि। ब्राह्मणैरम्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्। इससे सन्ध्या का विसजन कर के "भद्र नो अपिवातय मन" यह कह कर तीन बार शान्ति का उच्चारण करे "नमो ब्राह्मणे" इससे प्रदक्षिण परिक्रमा करते हुए "आसत्यलोकादापातत्विदा लोकालोक पवतात्। येसन्ति ब्राह्मणा देवास्तेभ्यो नित्य नमोनम। इससे नमस्कार करे। फिर भूमिका उपसग्रह करे। इसी प्रकार से गुरु वग को और वृद्धो का उप सग्रहण करना चाहिए। सायङ्काल मे विशेपता यही है कि 'सूयश्चेति' इस मन्त्र मे सूय के स्थान मे अग्निपद का आवयम करे 'रात्र्याह्ना रात्रि रह सत्येज्योतिषी'—इसके अन्त मे बोलना चाहिए। अर्धास्तमित मण्डल के होने पर नक्षत्रो के दशन तक समालीन होकर जप करे।६।

७ आचमनमन्त्रादि ।

अथ मध्य दिन आप पुनन्त्विति मन्त्राचमनमाप पुनन्तु पृथिवी पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पति-र्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभाज्य च यद्वा दुश्चरित मम। सर्व पुनन्तु ममापोऽसता च प्रतिग्रहँ-स्वाहेत्याथाऽऽकृष्णीयया हमवत्या वा त्रि सकृद्वा-ऽर्घ्यमुत्क्षिप्योध्वबाहुरुन्मुख उदुत्य जातवेदस चित्र देवानामिति सूक्ताभ्यामाभ्या वा मन्त्राभ्या तच्चक्षुरित्ये-कया वाऽऽदित्यमुपस्थाय जप प्राङ्मुख आसीनो यथेष्ट-काल कुर्यादित्येष सध्याविधिर्व्याख्यात ।७।

८—इसके उपरान्त मध्यन्दिन मे "आप पुनन्त्वति मन्त्र से आचमन करे "आप पुनन्तु पृथिवी पृथिवी पूता पुनातुमाम् । प्रमन्तु ब्रह्मणस्पति ब्रह्म पूता पुमातुमाम्" । 'यदुच्छिष्ट मभोज्य च यद्वा दुश्चरित मम । सर्व पुन तु मामापोऽसता च प्रतिग्रहम् स्वाहा"—इससे आकृष्णीया से या हसवती से तीन बार या एक बार अघ्य को उत्क्षिप्त करके ऊर्ध्ववाहु वाला होकर उद्ङ्मुख हो 'उदुत्य जात वेदस चित्र देवानाञ्च"—इन सूक्तो से अथवा मन्त्रो से अथवा "तच्चक्षु" इस एक ऋचा से आदित्य देव का उपस्थान करके समासीन हो प्राङ्मुख रहते हुए यथेष्ट कालपर्यन्त जप करना चाहिए—यही सन्ध्याकी विधि है जिसकी व्याख्या कर दी गयी है ।७।

८ मन्त्राणामृषिदैवतच्छन्द क्रम ।

अथास्य मन्त्राणामृषिदैवतच्छदासि । प्रणवस्य ब्रह्मा परमात्मा देवी गायत्री, व्याहृतीना सप्ताना विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजगौतमात्रिवसिष्ठकश्यपा प्रजापतिर्वासर्वासामग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वे देवा गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यस्तिसृणामाद्याना समस्ताना वा दवता प्रजापतिबृहती सावित्र्या विश्वामित्र सविता गायत्री शिरस प्रजापतिर्ब्रह्माग्निवाय्वादित्या देवता यजुश्छ द । आपो हि सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वाऽऽप गायत्र द्व्यनुष्टुबन्त पञ्चमा वधमाना सप्तमी प्रतिष्ठा अन्त्ये द्वे सूर्यश्च ब्रह्मासूयमन्युपतय प्रकृतिराप पुनन्तु विष्णुरापो हिष्ठा अग्निश्च रुद्रोऽग्निमन्युमन्युपतय प्रकृति ऋत च माधुच्छन्दसोऽघमषणो भाववृत्तमानुष्टुभ जातवेदसे कश्यपो जातवेदा अग्निस्त्रिष्टुप् तच्छयो शयुर्विश्वे देवा शक्वरी नमोब्रह्मणे प्रजापतिर्विश्वे देवा जगती आकृष्णेक हिरण्यस्तूप सविता त्रिष्टुप् हस शुचिषद्वामदेव सूर्यो जगत्युदुत्य प्रस्कण्व सूर्यो गायत्रमन्त्या श्चतस्रोऽनुष्टुमश्चित्र देवानामिति कुत्स सूर्यस्त्रिष्टुप् तच्च-

क्षुवसिष्ठ सूर्य पुरउष्णिक् दैवतस्मरणमेव वा कुर्यादेव-मन्यत्र व्याख्यातम् ।८।

८—इसके अनन्तर मन्त्रो के ऋषि देवता और छन्दो को बतलाया जाता है । प्रणव का ब्रह्मा परमात्मा है देवी गायत्री है । सात व्याहृतियो के विश्वामित्र-भरद्वाज-गौतम-अत्रि वसिष्ठ कश्यप अथवा प्रजापति है । सब व्याहृतियो के देवता अग्नि-वायु आदित्य-वृहस्पति-वरुण-इन्द्र और विश्वेदेवा हे ।गायत्री-उष्णिक् अनुष्टुप वृहतीपडिक्तत्रिष्टुप जगती छन्द है ।अथवा आद्य समस्तो का देवता प्रजापति है,वृहती सावित्री का विश्वामित्र सविता गायत्री शिर का प्रजापति है, ब्रह्मा अग्नि वायु-आदित्य देवता है और यजु छन्द है ।८।

९ स्नानविधि ।

अथ स्नानविधिस्तत्प्रातर्मध्याह्ने च गृहस्थ कुर्यादेकत-रत्र वा प्रातरेव ब्रह्मचारी यतिस्त्रिपु सवनेपु द्विस्त्रिर्वा वानप्रस्थस्तत्प्रात सह गोमयेन कुर्यान्मृदा मध्यादिनेसाय शुद्धा भिरद्भिर्न प्रात स्नानात्प्राक्सध्यामुपासीत प्रात-रुत्सृष्ट गोमयमन्तरिक्षस्थ सगृह्य भूमिष्ठ वोपर्यधश्च सत्यक्त तीथमेत्य धौतपादपाणिमुख आचम्य सध्योक्त-वदात्माभ्युक्षणादि च कृत्वा द्विराचम्य दर्भपाणि सयत-प्राण कर्म सकल्प्य गोमय वीक्षितमादाय सव्ये पाणौ कृत्वा त्र्याहृतिभिस्त्रेधा विभज्य दक्षिण मार्गे प्रणवेन दिक्षु विक्षिप्योत्तरोत्तर तीर्थे क्षिप्त्वा मध्यम मानस्तोक इत्यृचाऽभिमृश्य गन्धद्वारामित्यनया मूर्धादिसर्वाङ्गमा-लिप्य प्राञ्जलिर्वरुण हिरण्यशृङ्गमिति द्वाभ्यामवते हेड इति द्वाभ्या प्रसम्राजे बृहदर्चेति सूक्तेन प्रार्थ्य हिरण्य-शृङ्ग वरुण प्रपद्ये तीर्थ मे देहि याचित । यन्मया भुक्तमसाधूना पापेभ्यश्च प्रतिग्रह । यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृत कृतम् । तन्न इन्द्रो वरुणो बृहस्पति

सविता च पुनन्तु पुन पुनरिति । अथ या प्रवतो निवत उद्वत इत्येतया तीथममिमृश्यावगाह्य स्नातो द्विराचम्य मार्जयेदम्बयो यन्त्यध्वभिरित्यष्टाभिरापो हिष्ठेति च नवभिरथ तीर्थमङ्गुष्टेनेम मे गङ्ग इत्यृचा त्रि प्रदक्षिणमालोड्य प्रकाशपृष्ठमग्नावघमषर्णसूक्त त्रिरावत्य निमज्योन्मज्याऽऽदित्यमालोक्य द्वादशकृत्व आप्लुत्य पाणिभ्या शङ्खमुद्रया योनिमुद्रया वोदकमादाय मूर्ध्नि मुखे बाह्वोरुरसि चाऽऽत्मान गायत्र्याऽभिषिच्य 'त्व नो अग्ने वरुणस्य विद्वानिति' द्वाभ्या 'तरत्समदीधावतीति' च सूक्तेन पुन स्नायान्मूर्ध्नि चाभिषिञ्चेत्—'तद्विष्णो परम पदमग्ने रक्षाणो अहसो यत्किञ्चेद वरुणदैव्येजने' इत्येता जपेत् । स्रोतोभिमुख सरित्सु स्नायादन्यत्राऽऽदित्याभिमुखोऽथ साक्षताभिरद्भि प्राङ्मुख उपवीती देवतीर्थेन व्याहृतिभिर्व्यस्तसमस्ता भिर्ब्रह्मादीन्देवान्सकृत्सकृत्तर्पयित्वाऽथोदङ्मुखो निवीती सयवाभिरद्भि प्राजापत्येन तीर्थेन कृष्णद्वैपायनादीनृषीस्ताभिर्व्याहृतिमिर्द्विर्द्विस्तर्पयित्वाऽथ दक्षिणाभिमुख प्राचीनावीती पितृतीर्थेन सतिलाभिरद्भिर्व्याहृतिभिरेव सोम पितृमान्यमोऽङ्गिरस्वानग्निष्वात्ता कव्यवाहन इत्यादीस्त्री स्त्रीस्तपयेदेतत्स्नानागतर्पणमथ तीरमेत्य दक्षिणाभिमुख प्राचीनावीती 'ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृता । ते गृह्णन्तु मया दत्त वस्त्रनिष्पीडनोदकमिति ' वस्त्र निष्पीड्य यज्ञोपवीत्यप उपस्पृश्य परिधानीयमभ्युक्ष्य परिधाय द्वितीय चोत्तरीय पर्युक्षित प्रावृत्य द्विराचामेद्यथोक्तसध्यामुपासीतेद प्रात स्नानविधानम् ।९।

९—इसके अनन्तर स्नान की विधि बतलाते है— प्रात काल मे और मध्याह्न मे गृहस्थ को करना चाहिए । अथवा एक ही समय मे प्रात काल

ही मे करे। ब्रह्मचारी और यति तीनो सवनो मे दो बार अथवा तीन बार करे । वानप्रस्थ प्रात काल मे गोमय के साथ करे, मध्य दिन मे मृत्तिका से करे तथा सायकाल मे केवल शुद्ध जल से करे। प्रात काल मे स्नान मे पहिले सन्ध्योपासना नही करनी चाहिए। प्रात काल मे उत्सृष्ट गोमय को अ तरिक्ष मे स्थित का सग्रह करके भूमि मे स्थित अथवा ऊपर नीचे सत्यक्त को लेवे। तीर्थ मे जाकर हाथ पैर और मुख को धोने वाला आचमन करके सन्ध्या मे कथित के समान आत्मा का अभ्युक्षण आदि करके दो बार आचमन करके हाथ मे कुश लेकर सयतप्राण वाला होवे कर्म का सङ्कल्प करके वीक्षित गोमय को लाकर सव्यपाणि मे रक्खे। व्याहृतियो से उसके तीन भाग करके दक्षिण भाग को प्रणव से दिशाओ मे विक्षिप्त करके उत्तरोत्तर तीर्थ मे क्षेपण करे। मध्यम को " – इस ऋचा से अभिमर्षण करके "गन्धद्वाराम्' इस ऋचा म मूर्धा आदि सब अङ्ग का आलेपन कर प्राञ्जलि होकर "वरुण दिव्य श्रृङ्गम्"–इन दो से "मव ते हेड-इन दो से 'प्रसम्राजे वृहदर्चग—इस सूक्त से प्राथना करे।" हिरण्य शङ्ग वरुण प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचित । यन्मया भुक्तम साधूना पापेभ्यश्च प्रतिग्रह । यन्मे मनसा वाचा कमणा वा दुष्कृत कृतम् । तन्न इन्द्रो वरुणो वृहस्पति सविताच पुनन्तु पुन पुन " इति। इसके उपरान्त 'या पवतो निबत उद्वत" इस ऋचा से तीथ का अभिमर्षण करके अवगाहन करे। स्नात होकर दो बार आचमन करे और माजन करना चाहिए। 'अम्बयो यन्त्यध्वभि" इन आठो से और "आपोदिष्ठा" इन नौ से तीथको अगुष्ठ के द्वारा 'इममेगङ्ग"—इस ऋचा से तीन बार प्रदक्षिण आलोडन करके प्रकाशपृष्ठ अग्नि मे अघमषण सूक्त की तीन वार आवृत्ति करके निमज्जनो मज्जन करके आदित्य देव का आलोकन करे। बारह बार आप्लुत होकर दोनो हाथो स शङ्ख की अथवा योनि की मुद्रा से जल लेकर मूर्धा मे, मुख मे, बाहुओ मे, उर मे अपने आपको गायत्री से अभिषेचन करना चाहिए। फिर "त्व नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्"–इन दो से तरत्सम दीधौ"-इस सूक्त से पुन स्नान करे और मूर्धा मे अभिषेचन करना चाहिए। इसके पश्चात् "तद्विष्णो परम पदाग्ने रक्षाणो अहसो यत्कि-

च्चेद वरुण दैव्येजने—इनका जाप करे ।स्रोत के अभिमुख होकर नदियो म स्नान करना चाहिए । अन्य स्थलो मे आदित्य के अभिमुख होकर करना चाहिए । अक्षतो के सहित जब से प्राङ्मुख होकर उपवीती देवतीथ से व्यस्त समस्त व्याहृतियो से ब्रह्मादि देवो को एक-एक बार तर्पित करके फिर उत्तर की ओर मुख वाला होकर भिवीती होवे और यवो के सहित जल से प्राजापत्य तीथ से उन व्याहृतियो के द्वारा कृष्ण द्वैपायन आदि ऋषियो को दो दो बार तपण करे । इस के उपरान्त दक्षिणाभिमुख हो कर प्राचीनावीती होवे और पितृ तीर्थ से तिलो से युक्त जल से व्याहृतियो के ही द्वारा सोम, पितृमान्, यम, आङ्गिरस्वान्, अग्निस्वात्ता, कव्य वाहन—इत्यादि का तीन-तीन बार तर्पण करे । यह स्नानाङ्ग तर्पण है । इसके अनन्तर तीथ पर प्राप्त होकर दक्षिणाभिमुख होवै और प्राचीनावीती होकर नयेके चास्मत्कुलेजाता अपुत्रा गोत्रिणोमृता । तेगृह्णन्तु मयो दत्त वस्त्र निष्पीडनोदकम्"—इस का उच्चारण कर वस्त्र का निष्पीडन करे । यज्ञोपवीती जल का उपस्पशन कर परिधानीय का अभ्युक्षण करे और दूसरा उत्तरीय का परिधान कर पर्युक्षित को प्रावृत्त कर दो बार आचमन करना चाहिए । इसके पश्चात् सन्ध्या की उपासना करे । यह प्रात. स्नान का विधान है ।६।

१० मध्याह्नस्नानविधि

अथ मध्यदिने तीर्थमेत्य धौतपाणिपादमुखो द्विराचम्याऽऽयतप्राण स्नान सकल्प्य दर्भपवित्रपाणि शुचौ देशे खनित्रेण भूमि गायत्र्यस्त्रेण खात्वोपरि मृद चतुरङ्गुलमुद्वास्याधस्तान्मृद तथा खात्वा गायत्र्याऽऽदाय गर्तमुद्वासितया मृदा परिपूर्य मृदमुपात्ता शुचौ देशे तीरे निधाय गायत्र्या प्रोक्ष्य तच्छिरसा त्रेधा विभज्यैकेन मूर्ध्न आ नाभेरपरेण चाधस्तादङ्गमनुलिप्याप्स्वाप्लुत्य क्षालयित्वाऽऽदित्य निरीक्ष्य, त ध्यायन्स्नायादेतन्मलस्नानमाहु । अथ तीरे द्विराचम्य तृतीयमस्त्रेणाऽऽदाय

सव्ये पाणौ कृत्वा व्याहृतिभिस्त्रेधा विभज्य दक्षिण-भागमस्त्रेण दिक्षु दशसु विनिक्षिप्योत्तर तीर्थे क्षिप्त्वा तृतीय गायत्र्याऽभिमन्त्रितमादित्याय दर्शयित्वा तेन मूर्ध्न आ पादाद्गायत्र्या प्रणवेन वा सर्वाङ्गमनुलिप्य सुमित्र्या न आप ओषधय सन्त्विति सकृदद्भिरात्मान-मभिषिच्य दुर्मित्र्यास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि य च वय द्विष्म इति मृच्छेषमद्भि क्षालयेत् । अथ वरुणप्रार्थना । तर्पणान्तेनोक्तेन विधिना स्नायान्नम्मिन्प्राग्ब्रह्मयज्ञत-र्पणाद्वस्त्र निष्पीडयेद पुत्रादयो ह्यन्ते तर्प्या इष्येष स्नान-विधि । तदेतदसभवेऽद्भिरेव कुर्याद्भौमदिनादिषु च न च गृहे मृदा स्नायान्न च शीनोदकेन शीतोष्णोदकेन गृहे स्नायान्मन्त्रविधि वजयेद्वहिर्वाशुचौ देशे सर्व पश्चा-त्कुर्यादिति । १० ।

१०—मध्य दिन मे तीथ पर पहुच कर हाथो और मुख को धोकर दो बार आचमन करे फिर आयत प्राण वाला होकर स्नान करने का सङ्कल्प करै। हाथ मे दर्भ ग्रहण कर किसी शुचि देश मे गायत्र्यस्त्र के द्वारा खनित्र से भूमि का श्वनन करे। ऊपर की चार अङ्गुल मृत्तिका को उद्वासित करके नीचे की मिट्टी को गायत्री से लेवे और खोदी हुई मिट्टी से गर्त्त को भर देवे। उस ग्रहण की हुई मृत्तिका को पवित्र देश मे रखकर उसका गायत्री से प्रोक्षण करना चाहिए। उसको शिर से तीन भागो मे विभक्त करके एक भाग से मूर्धा को दूसरे से नाभि पर्यंत अङ्ग को और नीचे के अङ्ग को अनुलिप्त करके जल मे गोता लगावे और सबको क्षालित कर सूर्य का निरीक्षण करे और उसी का ध्यान करता हुआ स्नान करे—इसको मल स्नान कहते है।

इसके उपरान्त तीर पर दो बार आचमन करके तृतीय भाग को अस्त्र से सव्य पाणि मे लेकर व्याहृतियो से तीन भागो मे विभाजित करके दक्षिण भाग को अस्त्र से दशो दिशाओ मे विनिक्षिप्त करे

और उत्तर को तीर्थ मे प्रक्षिप्त करे तथा तीसरे भाग को गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके आदित्य देव को दिखा कर उससे मूर्धा स लेकर पाद पर्यन्त गायत्री से अथवा प्रणव से सब अङ्ग को अनुलिप्त करके "सुमित्र्या न आप ओषधय सन्तु"——इससे एक बार जल से अपने आपका अभिषेचन करे। "दुर्मित्र्यास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि य च वय द्विष्म" इससे शेष मृत्तिका का जल से क्षालन कर देना चाहिए। इसके अन तर वरुण की प्रार्थना है। तपणान्त उक्त विधि मे स्नान करना चाहिए। इसमे प्राग्ब्रह्म यज्ञ तपण से वस्त्र का निष्पीडन नही करना चाहिए। जो अनुत्रादिक है उनका अन्त मे तपण करना चाहिए——यह स्नान की विधि है। यह असम्भव हो तो जल के द्वारा ही करना चाहिए। भौमदिनादिक मे घर मे मिट्टी से स्नान नही करे-शीतोदक से, शीतोष्णक उदक से गृह मे स्नान करे। मन्त्र विधि को वर्जित कर देवे। बाहिर किसी शुचि देश मे सब पीछे करना चाहिए।१०।

११ मन्त्रस्नानप्रकार।

अथाशक्तस्य मन्त्रस्नान शुचौ देशे शुचिराचान्त प्राणानायम्य दर्भपाणि सव्ये पाणावप कृत्वा तिसृभिरापोहिष्ठीयाभि पच्छ प्रणवपूर्व दर्भोदकैर्मार्जयेत्। पादयोर्मूर्ध्नि हृदये मूर्ध्नि हृदये पादयोर्हृदये पादयोर्मूर्ध्नि चाथार्धर्चशो मूर्ध्नि हृदये पादयोर्हृदये पादयोर्मूर्ध्नि चाथ ऋक्शो हृदये पादयोर्मूर्ध्नि तृचेन मूर्ध्नीति मार्जयित्वा गायत्र्या दशधाऽभिमन्त्रिता अप प्रणवेन पीत्वा द्विराचामेदेतन्मन्त्र स्नानम्। ११।

११—जो स्नान करने मे किसीभी कारणसे असमर्थ हो वह किसी पवित्र देश मे शुचि होकर आचमन करे और प्राणायाम करके हाथ मे दर्भ ग्रहण करे और सव्य पाणि मे जल लेकर तीन "आपोहिष्ठा" इत्यादि मन्त्रो से प्रणव पूवक दर्भोदक से मार्जन करना चाहिए। पैरो मे, मूर्धा मे, हृदय मे—मूर्धा मे हृदय मे, पैरो मे इसके अनन्तर आधी ऋचाओ

से मूर्धा मे हृदय मे, पादो मे तथा हृदय मे, पादो मे मूर्धा मे और इसके उपरान्त ऋचाओ से हृदय मे, पादो मे और मूर्धा मे मार्जन करके गायत्री मन्त्र से दश वार अभिमन्त्रित जल को प्रणव से पान करके दो बार आचमन करना चाहिए—यह मन्त्र स्नान की विधि है।

१२ वैश्वदेवविधि ।

अथ वैश्वदेवी दिनस्य प्रारम्भो नात्र पाकयज्ञतन्त्रमग्निमौपासन पचन वा परिसमुह्य पर्युक्ष्याऽऽयतनमल कृत्य सिद्ध हविष्यमधिश्रित्याद्भि प्रोक्ष्योदगुद्वास्याग्ने प्रत्यग्दर्भेषु निधाय सर्पिषाऽभ्यज्य सव्य पाणितल हृदये न्यस्य सकृदवदानेन पाणिना जुहुयात् । 'सोमाय वनस्पतये' इत्येकाहुति 'दिवाचारिभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य' इति सर्वभूताना विशेषण प्रजापतेरुक्तिरिष्यते प्रधानबलेरुदक्पुरुषबलिस्तदिदमन्नाभावे मण्डुलादिभि कुर्यादेके चान्ते च परिसमुह्य पयुक्षेदेके नात्र तन्त्रमिति पर्यूहनोक्षणे अपि न कुर्वन्ति केवल हुत्वोपतिष्ठन्ते । विश्वेदेवा सर्वे देवास्तद्दैवत्यमितीद वैश्वदेवम् । १२ ।

१२–इसके अनन्तर वैश्वदेव दिन का प्रारम्भ है। इसमे पाक यज्ञ तन्त्र, अग्नि, औपासन अथवा पचन का परिसमूहन न करके पर्युक्षण करे। आयतन को अलडकृत करके सिद्ध हविष्य को अधिश्रित करके जल से प्रोक्षण करना चाहिए। उत्तर की ओर उद्वासन करके अग्नि के प्रत्यक् दर्भो पर रखकर घृत से अभिजन करके सव्य पाणितल को हृदय पर रक्खे। एक बार अवदान से हाथ के द्वारा हवन करना चाहिए।"सोमाय वनस्पतये" इससे एक आहुति "दिवा चारिभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य." इससे सर्व भूतो का विशेषण प्रजापति की उक्ति अभीष्ट होती है। प्रधान बलि से उदक्पुरुष बलि है। वह उस अन्न के अभाव मे मण्डुलादि के द्वारा करनी चाहिए। कतिपय लोग अन्न मे परिसमूहन करके पर्यु-

क्षण करना चाहिए। कुछ लोग कहते है—यहा पर तन्त्र नही है। ये लोग पर्यु‍हन और ऊक्षण भी नही किया करते है और केवल हवन करके अवस्थित हुआ करते है। विश्वेदेवा सब देव है उसका दैवत्य होता हे—यही वैश्वदेव होता है।१२।

१३ पुण्याहवाचनविधि ।

अथ स्वस्तिवाचनमृद्धिपूर्तेषु स्वस्त्ययन वाचयेदित्याचाय ऋद्धिर्विवाहान्ता अपत्यसस्कारा, प्रतिष्ठोद्यापने पूर्ते, तत्कमण आद्यन्तयो कुर्याच्छुचि स्वलक्तो वाचयीत तथाभूते सद्मनि मङगलसभारभृति युग्मान्ब्राह्मणान्प्रशस्तानाचारलक्षणसपन्नानर्ध्यादिभिरभ्यर्च्य दक्षिणया तोषयेत्। अथ प्राङ्मुता प्रशस्ता दर्भपाण यस्तिष्ठेयुस्तद्दक्षिणतो वाचयितोदमुड्ख सस्कार्या वाचयितुर्दक्षिणपार्श्वमातिष्ठेयु। अथ वाचयिता दर्भपाणिरपा पूर्णमुदकुम्भ स्वर्चित सपल्लवमुख धृत्वा तिष्ठन्समाहितो मन समाधीयतामिति' ब्राह्मणान्ब्रूयात्समाहितमनस' स्म'' इति ते ब्रूयु 'प्रसीदन्तु भवन्त' इति वाचयिता 'प्रसन्ना स्म' इतीतरे। अथ ते सर्वे सहत्य शान्ति पुष्टिस्तुष्टिर्वृद्धिरविघ्नमायुष्यमारोग्य शिव कर्म कर्मसमृद्धिर्धर्मसमृद्धि पुत्रसमृद्धिर्वेदसमृद्धि शास्त्रमृद्धिधनधान्यसमृद्धिरिष्टसमृद्धिरित्येतानि पञ्चदश तन्त्राण्युक्तानि तन्नाम्ना कर्मदेवता प्रीयतामिति ब्रूयु। अथ वाचयिता पूववत्तल्लिङ्गमन्त्रान्पठित्वा त्रिस्त्रिर्मन्द मध्योच्चस्वरैरो भवन्तो ब्रुवन्तु स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ऋद्धि भवन्तो ब्रुवन्त्विति ब्रूयात्तेऽपि तथा प्रत्येक प्रतिब्रूयुरोमित्यृध्यतामित्यृद्धौ प्रतिब्रूयु। अथ प्राङ्मुखमासीन सामात्य कर्तार ब्राह्मणा सपल्लवदर्भपाणय प्राङ्मुखास्तिष्ठेयु शान्तिपवित्रलिङ्गाभिर्ऋग्भिरभिषिञ्चेयु पुरन्ध्र्यो नीरामनादि कुर्यु ॥१३।

इसके अनन्तर स्वास्ति वाचन सभृद्धि पूर्त्तो मे स्वस्त्ययन् का बाचन करना च।हिए । ऋद्धि विवाहान्त अपत्य सस्कार होते है । प्रतिष्ठोद्यापन मे पूर्त्त होता है । उस कर्म के आदि-अन्त मे करना चाहिए । शुचि और भली भाँति अलकृत होकर बाचन करना चाहिए । उस प्रकार के मङ्गलिक सम्भारो से समान्वित सद्म मे आचार के सुलक्षणो से युक्त, परम प्रशस्त दो ब्राह्मणो को अर्घ्य आदि के द्वारा अभ्यचन करके उन्हे दक्षिणा से तोषित करना चाहिए । इसके अनन्तर प्राड्मुख, प्रशस्त और हाथो मे दर्भ ग्रहण करके स्थित रहना चाहिए । दक्षिण की ओर उदड मुख वाचयिता सस्कार्य है और वाचयिता के दक्षिण पार्श्व मे समास्थित होवे । इसके उपरान्त वाचन करने वाला हाथो मे दर्भ ग्रहण करके पूण कुम्भ को भली भाति अर्चित करके और मुख मे पल्लव लगाकर धरे और स्थित होता हुआ ही समाहित होकर ब्राह्मणो से यह कहे—"मन समाधीयताम्" अर्थात् मन को समाहित करिए । फिर उन्हे भी कहना चाहिए—"समाहित मनस स्म" अर्थात् हम समाहित मन वाले है । वाचयिता कहे—"प्रसीदन्तु भवन्त" अर्थात् आप सब प्रसन्न होवे । दूसरो को कहना चाहिए—"प्रसन्ना स्म "अर्थात् हम सम सब प्रसन्न है । इसके उपरान्त वे सभी सहृत करके शान्ति-पुष्टि-तुष्टि वृद्धि-अविघ्न-आयुष्य - आरोग्यशिवकर्मसमृद्धि-धर्म समृद्धि पुत्र समृद्धि-वेद समृद्धि शास्त्र समृद्धि-धनधान्य समृद्धि और इष्ट समृद्धि ये पञ्चदश तन्त्र कहे गये है । तन्नाम से कर्म देवता प्रसन्न होवे—यह बोले । इसके अनन्तर वाचन करने वाला पूर्व की ही भाँति उन्लिग मन्त्रो को पढकर तीन-तीन बार मन्त्र-उच्च स्वरो से ॐ पुण्याह भवन्त' यह बोले—आप लोग 'स्वस्ति' बोल, आप सब ऋद्धि बोले—यह बोलना चाहिए । वे भी प्रत्येक वैसा ही प्रति वचन कहे । "ओमिति ऋध्य स्तम्' यह ऋद्धि मे प्रति वहन करना चाहिए । इसके अनन्तर पूर्व की ओर मुख वाले वैठे हुए अमात्यो के सहित कर्त्ता को ब्राह्मण पल्लव और दर्भ हाथो मे लिये हुए प्राड्मुख ही स्थित रहे । शान्ति

पवित्र लिङ्गो वाली ऋचाओ से अभिविञ्चन करे और पुरन्ध्रिॉ को नीरीजन आदि करना चाहिए ।१३।

१४ स्थण्डिलादि ।

अथ होष्यद्धर्मे किंचिदुच्छिना समाऽकृत्रिमा भूमि स्थण्डिलमुच्यते । तदिषुमात्रावर सर्वतो गोमयेन प्रदक्षिण-मुपलिप्य यज्ञियशकलमूलेनोल्लिख्य शकल प्रागग्र निधाय स्थण्डिलमभ्युक्ष्य शकलमाग्नेय्या निरस्याप उपस्पृशेत् । एष आयतनसस्कार । तत्राग्नि व्याहृति-भिरभ्यात्मान प्रतिष्ठाप्यान्वादधाति । कर्मसकलरपुर-सर द्रव्यदेवताग्रहणाय द्वयोस्तिसृणा वा समिधामभ्या-धानमन्वाधानम् । अथेध्माबर्हिषी सनह्य दर्भे प्रादेश-मात्रैस्त्रिसधी त्रिवृतौ रज्जू कुर्यात्पाणिभ्या सव्योत्त-राभ्या पूर्व वतयेत्ततो दक्षिणोत्तराभ्यामन्ते प्रदक्षिणा-वृत रज्जु कुर्यादितद्रज्जुकरणम् । प्रथमा रज्जुमुदगग्रा-मास्तीर्य प्रादेशमात्र दर्भमुष्टि छित्वा प्रागग्रा तस्या निधाय तया बर्हिर्द्विरावेष्टयित्वा(वेष्टच) तन्मूल च द्विरावेष्टच ता प्रथमवेष्टनस्याधस्तादुन्नयेदेवद्विती-ययेध्म सकृदावेष्टच सनह्य दरत्न्यायाम इध्म पञ्चदश-दारुकस्तदुपरि निदध्यादेतदिध्माबर्हिषो सनहनम् । अथ सोदकेन पाणिना प्रागुदीच्या आरभ्य प्रदक्षिण-मग्नि त्रि परिसमुह्य प्रादेशमात्रैर्दर्भै प्रदणोण प्राच्या-दिषु प्रतिदिशमुक्सस्थ परिस्तृणीयाद्दक्षिणेत्तरयो सन्धिषु मूलाग्रै राच्छादयेद्द्राघिष्ठान्वा दर्भास्तयोस्तृणी-यादुत्तरत पात्रासादनाय दक्षिणतो ब्रह्मासनाय काश्चिद्द-र्भानास्तीर्याग्नि पर्युक्षेदेषोऽग्निसस्कार । अथ तेषु दर्भेषु पात्राणि न्यग्बिलानि द्वद्व प्रागग्रमुदगपवर्ग प्रयुनक्ति प्रोक्षणपात्रस्रुवौ चमसाज्यपात्रे इध्मा-

बर्हिषीत्याज्यहोमेषु तथा चरुस्थालीप्रोक्षणपात्रे दर्वी-स्त्रुवो चममाज्यपात्रे इध्मावर्हिषी चेति दर्वीहोमेषु प्रोक्षणपात्रमुद्धृत्य पवित्रमन्तर्धायाप आसिच्य तूष्णी ता पवित्राभ्या त्रिरुत्पूय पात्राण्युत्तानानि कृत्वध्म विस्रस्य पात्राणि ताभिरद्भिर्युगपत्त्रि प्रोक्षेदेतत्पात्रा-सादनम् ।१४।

१४—इसके अनन्तर होष्यद्धर्म मे कुछ उठी हुई सम और अकृ-त्रिम भूमि को स्थण्डिल कहा जाता है। वह इषुमात्र अवर मत्र ओर से गोमय (गोबर) के द्वारा प्रदक्षिण उपलेपन करके यज्ञिय शकल के मूल से उल्लेखन करे। पहिले अग्रभाग वाले शकल को रखकर स्थण्डिल का अभ्युक्षण करे फिर शकल को अग्नि कोण मे निरसित करके जल का उपस्पर्शन करना चाहिए। यह आयतन का सस्कार होता है। उसमे व्याहृतियो के द्वारा आत्मा की ओर प्रतिष्ठापित करके अन्वाधान करता है। कम क सङ्कल्प पूवक द्रव्य देवता ग्रहण के लिये दो अथवा तीन समिधाओ जो अभ्याधान होता है उसी को अन्वाधान कहते है। इसके अनन्तर इध्म और वर्हि का सन्नहन करके प्रादेशमात्र दर्भो से तीन सन्धियो वाली और त्रिवृतरज्जुओ को करना चाहिए। सव्योतर हाथो से पूव मे वरतना चाहिए इसके पश्चात् फिर दक्षिणोत्तरो से अन्त मे प्रदक्षिणा वृत रज्जु को करना चाहिए। यह रज्जुकरण होता है। प्रथम रज्जु को उदगग्राम आस्तरण करके प्रादेश मात्र दर्भो की मुष्टि का छेदन करके प्रागग्रा को उसमे निधापित करके उससे वर्हि को दो बार आवेष्टित करके और उसके मूल को दो बार आवेष्टित करके उसको प्रथम वेष्टन के नीचे उन्नयन करना चाहिए। इसी प्रकार से द्वितीय इध्म को एक बार ही आवेष्टित करके सन्नद्ध करना चाहिए। अरत्नि आयाम वाला इध्म पन्द्रह दारुक से युक्त होता है। उसके ऊपर इध्म वर्हि का सनहन रक्खे। इसके उपरान्त जल से युक्त हाथ से पूव उत्तार से आरम्भ करके प्रदक्षिण अग्नि को तीन बार परिसमूहन करके

प्रादेश मात्र दर्भो से प्राची आदि मे प्रदक्षिण प्रत्येक दिशा मे उक्सस्थ का परिस्तरण करे । दक्षिण उत्तर मे सन्धियो मे मूल के अग्रभागो से आच्छादन करना चाहिए । अथवा बडी दर्भियो को उन दोनो पर स्तरण करे । उत्तर की ओर पात्र सादन के लिये दक्षिण की ओर ब्रह्मासन के लिये कुछ दर्भो को बिछाकर अग्नि का पर्युक्षण करना चाहिए—यह अग्नि सकार है ।

इसके अनन्तर दर्भो पर न्याविल पात्रो को द्वन्द्व पूर्व को अग्रभाग और उत्तर को अपवग प्रयोग करता है प्रोक्षण पात्र और स्रुव–चमस और आज्यपात्र इध्म और बर्हि आज्य दोनो मे तथा चरुस्थाली और प्रोक्षण पात्र-दर्वी और स्रुव-चमस और आज्यपात्र–इध्म और बर्हि–ये दर्वी होमो मे प्रोक्षण पात्र को उद्धृत करके पवित्र अन्तर्धान करके जल का आसचन करे और ध्रुय चाय उनको पवित्रो से तीन बार उत्पूपनकर पात्रो को उत्तान करके इध्म को विस्रसन कर उन जलो मे एक ही साथ पात्रो का तीन बार प्रोक्षण करना चाहिए– यह पात्रासादन है ।१४।

१५ अथ स्रुक्स्रुवादिसमार्जनम् ।

अथ चमस प्रत्यगग्नेर्निधाय ते पवित्रे अन्तर्धायाद्भि पूरयित्वा गन्धादि प्रक्षिप्य दक्षिणोत्तराभ्या पाणिभ्या नासिकान्तमुद्धृत्योत्तरतोऽग्नेदर्भेयु निधाय दर्भै प्रच्छादयेदेतत्प्रणीताप्रणयनम् । अथ ते एव पवित्रे प्रागग्नेराज्यपात्रेऽन्तर्धायाऽऽज्यमासिच्य बर्हि परिस्तरणादङ्गारानुगपोह्य तेष्वाज्यमधिश्रित्य ट्मुकेनावज्वाल्य दर्भाग्रे प्रोक्ष्याऽऽज्ये प्रास्य ज्वलता तेनवाल्मुकेनाऽऽज्य त्रि परिहृत्यालमुक निरस्याप उपस्पृश्याऽऽज्य कर्षन्निवोगुद्वास्याङ्गारानतिसृज्याऽऽज्यमुत्पूय पवित्रे प्रोक्ष्याग्नौ प्रास्याप उपस्पृशेदेष आज्यसस्कार । अथ बर्हिरात्मनोऽग्रे प्रागग्रमास्तीर्य तत्राऽऽज्यमासाद्य सह दर्भर्दर्वीस्रुवावादायाग्नौ प्रताप्य दर्वी निधाय स्रुक

सव्येन धारयन्दक्षिणेन पाणिना दर्भाग्रैंबिल प्रागारम्य प्रादक्षिण्य प्रागपवर्ग त्रि परिमृज्य तैरेव बिलपृष्ठमभ्यात्म त्रि समृज्याथ पृष्टादारभ्य यावदुपरिबिल दण्ड दभमूलैस्त्रि समृष्य स्रुव प्रोक्ष्य प्रताप्योदगाज्याद्वर्हिष्यासाद्योदकस्पृष्टैस्तैरेवदर्भैरेव दर्वी च सस्कृत्य स्रुवादुदङ् निधाय दर्भान्प्रोक्ष्याग्नौ प्रहरेदेष स्रुक्स्रुवसमार्ग ।१५।

१५—इसके उपरान्त चमस को अग्नि की ओर रखकर उन पवित्रो को धारण करे जलो से पूरित करके गन्ध आदि को प्रक्षिप्त करे । दक्षिणोत्तर हाथो से नासिका के अन्त तक उठाकर अग्नि के उत्तर मे दर्भो पर रख कर दर्भो से पुच्छादित कर देना चाहिए । यह प्रणीता प्रणयन है । इसके पश्चात् उन्ही पवित्रो को अग्नि के प्राक् आज्य मे अन्दर रखकर आज्य का आसेचन करे । वर्हिर परिस्तरण से अङ्गारो को उत्तर की ओर अपोहन कर उनमे आज्य को अधिश्रित करके उरमुक से अवज्वालित कर दर्भो के अग्र मे प्रच्छेदन करे । प्रोक्षण कर आज्य मे प्रास करके जलते हुए उसी उल्मुक से आज्य को तीन बार को परिहरण करके उल्मुक को निरसित करे । फिर जल का उपस्पर्शन कर आज्य का कर्षण करने के ही समान उत्तर मे उद्वासित करके अङ्गारो का अतिसृजन करे । आज्य का उत्पूयन कर पवित्रो का प्रोक्षण करे और अग्नि मे प्रासित करके जल का उपूस्पर्शन करना चाहिए यह आज्यसस्कार होता है ।

इसके अनन्तर अपने आगे वर्हि को प्रकाण्ड ममास्तृन करके उस पर आज्य का आसादन कर दर्भो के सहित दर्भी और स्रुव इन दोनो को लेकर अग्नि मे प्रतापित करके दर्भी को रखकर स्रुव को सव्य कर से धारण करे तथा दक्षिण पाणि से दर्भो के अग्रभागो से बिल को पूर्व से आरम्भ करके प्रादक्षिण्य प्रागप वर्ग का तीन वार परिमार्जन करे और उन्ही से बिल पृष्ठ को अभ्यात्म तीन बार समार्जन कर पृष्ठ से आरम्भ करके जब तक उपरिविल दण्ड को दर्भो के मूलो से तीन बार

समृष्ट कर स्रुव का प्रोक्षण करे और प्रतापित करके उत्तर की ओर आज्य से वर्हि मे आसादन करके उदक सस्पृष्ट उन्ही दर्भों के इस प्रकार दर्वी का सस्कार करके स्रुव से उत्तर की ओर रखकर दर्भों का प्रोक्षण करे और अग्नि मे प्रहरण करे—यह स्रुक्–स्रुव का समण है । ५।

१६ ब्रह्मण पञ्च कर्माणि ।

अथ ब्रह्माऽस्ति चेत्क्रियेत स प्राक् प्रणीताप्रणयनात्समस्तपाण्यङ्गुष्ठो भुत्वाऽग्रेणाग्नि परीत्य दक्षिणन आस्तीर्णेषु दर्भेषु निरस्त रा प वसुरिति तृणमङ्गुष्ठोनकनिष्ठाभ्या नैर्ऋत्या निरस्याप उपस्पृशेदिदमहमर्वावसोः सदने सीदामीत्युदङ्मुख उपविश्य बृहस्पतिर्ब्रह्मा ब्रह्मसदनमाशिष्यते बृहस्पते यज्ञ गोपायेति मन्त्र ब्रह्मा जपेदपा प्रणयने ब्रह्मन्नप प्रणेष्यामीत्यनिसृष्ट ॐ भूर्भुव स्वबृहस्पतिप्रसूत इति जपित्वों प्रणयेत्यतिसृजेत्सवदा च यज्ञमना भवदेके नेच्छन्ति । निरसनमुपवेशन जप प्रायश्चित्तहोम सस्थाजपेनोपस्थान चेति पञ्च कर्माणि ब्रह्मण ।१६।

१६—इसके उपरान्त यदि ब्रह्मा किया जावे तो वह पहिले प्रणीता प्रणयन से समस्त पाण्यङगुष्ठ होकर अग्र से अग्नि को परीत करके दक्षिण की ओर आस्तीर्ण दर्भो पर "निरस्त परा वसु"—इससे तृण को अङ्गुष्ठोपकनिष्ठा मे नैर्ऋत्य दिशा मे निरसन करके जल का उपस्पर्शन करना चाहिए । 'इदमहमर्वा वसो सदने सी दामि" इससे उत्तर की ओर मुख वाला उपविष्ट होकर 'बृहस्पतिर्ब्रह्मा ब्रह्मसदनमाशिष्यते वृहस्पते यज्ञ गोपाय" इस मन्त्र को ब्रह्मा जप करे । "अपा प्रणय ने ब्रह्मन्नप प्रणेष्यामि" इससे अति सृष्ट "ॐ भूर्भुव स्व बृहस्पति प्रसूत" इसका जप करके "ॐ प्रणय' इससे अतिसृजन करना चाहिए और सर्वदा यज्ञ के मन वाला होवे । कुछ लोग नही चाहते है ।

निरसन-उपवेशन-जप प्रायश्चित्त होम—सम्था जप से उपस्थान ये पाँच कम ब्रह्मा के होते है ।१६।

१७ पार्वणस्थालीपाक ।

अथ पार्वणस्थालीपाकस्तस्य पौर्णमास्यामारम्भोऽग्निम ग्नोषोमौ पौर्णमास्या देवते अग्निरिन्द्राग्नी चामावास्याया देवते अप प्रणीय शूर्पे व्रीहीन्निरू(रु)प्य प्रोक्ष्य प्राग्ग्रोवमुत्तरलोम कृष्णाजिनमास्तीर्य तत्रोलूखल निधाय तानवहत्य तण्डुलास्त्रि फलीकृतास्त्रि प्रक्षाल्य श्रपयेद्यदि सह श्रपयेच्चरु विहृत्येदममुष्मा इदममुष्मा इत्यभिमृशेत्स्विष्टकृत द्विरुपरिष्टादभिघारयेत्पश्चावत्ती द्वावत्ती पुरस्तादवद्ये दिध्मरज्जु विस्रस्याग्नौ प्रास्यायाश्चाग्नेऽस्यतो देवा इद विष्णरित्यन्ताभिर्व्याहृतिभिश्च जुहुयादेता सर्वा प्रायश्चित्ताहुतय एता ब्रह्मणा कतव्या परीत्य प्रत्यगुदीच्यामवस्थाय जुहुयात् । अथ बर्हिषि पूणपात्र निनोय ताभिरद्भिरापो अस्मान्मातर शुन्धयन्त्वि दमाप प्रवहतेत्येताभ्या सुमित्र्या न आप ओषधय सन्त्वित्येतेन चाऽऽत्मान शिरसि मार्जयेत्सस्कायमपि सस्कारकमसु । अथाग्निमो च म इति सस्थाजपेनोपतिष्ठते । ततो ब्रह्मा च । अथ कर्ताऽग्ने परिसमूहनपर्युक्षणे कुर्यादेतत्तन्त्रमन्येषाम स्थालीपाकवत्सुकृतकर्ममन्त्राञ्जुहुयात् ।१७।

१७—इनके अनन्तर पावण स्थाली पाक है । उसका पौर्णमासी मे आरम्भ है । पौणमासी मे अग्नि मग्निषाम देवता है । अग्नि और इन्द्राग्नि अमावस्या मे देवता है अप का प्रणयन करके शूर्प मे व्रीहियो को निरूपित करके प्रोक्षण करके प्राग्ग्रीव उत्तरलोम कृष्णाजिनका आस्तरण करके वहाँ पर उलूखलको रक्खे । उन तण्डुलो का अब हनन कर त्रिफली कृत उनको तीन वार प्रक्षातम कर श्रपण करना चाहिहे । यदि चरु

के साथ श्रपण करे तो यह उसके लिये है और यह उसके लिये है—ऐसा अभिमशण करना चाहिए। स्विष्टकृत दा को ऊारति अभिधारण करना चाहिए। पञ्चावत्ती द्वावत्ती आगे अवद्य करे। इध्मरज्जु को विस्रस्त करके अग्नि मे प्रासित कर "याश्चनेऽस्यतो देवा इह विष्णु" इस के अन्त तक व्याहृतियो से हवन करना चाहिए। ये सब प्रायश्चित्ताहुतियाँ है। ये ब्रह्मा के द्वारा करनी चाहिएँ। परीत होकर प्रागुहीची मे अवस्थित होकर हवन करे।

इसके अनन्तर बर्हि मे पूण पात्र विनीत करके उस जात से "आयो अस्मान्मातद शुन्धयन्तु"–दमाप प्रबहेत"–इन ऋचाओं से और "सुमित्र्या न आप ओषधम सन्तु" इस एक के द्वारा अपने आपके शिर मे माजन करे। सस्कार कर्मो मे सस्काय को भी करे। इसके उपरान्त अग्निमो च म इति" सस्था जप से उपस्थान करना चाहिए। ओर इसके पश्चात् ब्रह्मा करे। इमके अनन्तर कर्त्ता अग्नि का परिसमूहन पर्युक्षण करे। इ स त त्र को अन्यो के अस्थालीपाक वत् सुकृत कर्म मन्त्रो से हवन करे।१७।

१८ नित्यमग्न्युपासनम्।

अथ नित्यमौपासन तस्य सायमारम्भोऽनस्तमित आदित्ये सायमग्ने प्रादुष्करणमनुदिते प्रात प्रदोषान्त. साय होमकाल सङ्गवान्त प्रातर्नात्र तन्त्रमिष्यतेऽग्नि परिसमुह्य परिस्तीय पर्युक्ष्य होम्यमपक्कमुल्मुकेनावज्वाल्य तेनैव त्रि परिहृत्योल्मुक निरस्येत्पक्वमुद्गगङ्गारेष्वधिश्रित्य प्रोक्ष्योदगुद्वास्य तानङ्गारानतिसृजेदेष होम्यसस्कार । पयोदधिसर्पिर्यवागूरोदनस्तण्डुला सोमस्तैलमापो व्रीहयो यवास्तिला इति होम्यानि तण्डुला नीवारश्यामाकयावनाला व्रीहिशालियवगोधूमप्रियङ्गव स्वरूपेणातिहोम्यास्तिला स्वरूपेणैव शत चतु षष्टिर्वाऽऽहुति । व्रीहियवाना तदर्ध तिलाना

तदर्धं सर्पिस्तैल च तिल च तिलातसीकुसुम्भाना येन प्रथमामेता जुहुयात्तेनैव द्वितीया जुहुयाद्येनैव साय जुहुयात्तेनव प्रात सायप्रातर्होमौ साय वा समस्येन्न तु प्रात सायप्रातर्होमौ ।१८।

१८—इसके अनन्तर उसका नित्य औपासन सायङ्काल मे आरम्भ होता है । जब आदित्य अनस्तमित हो उस समय मे सायकाल मे अग्नि का प्रादुष्करण होता है । प्रात काल मे सूर्य के अनुदित होने पर प्रात होता है । प्रदोषा त सायकाल मे होम का समय होता है । सगवान्त प्रात काल है । यहाँ पर तन्त्र अभीष्ठ नही होता है । अग्निष्का परिसमुहन—परिस्तरण और पयुक्षण करके अयक होम्य को उल्मुक के द्वारा अवज्वलित करके उससे ही तीन बार परिहरण करे और उल्मुक का निरसन कर देगे । पक को उदक्की ओर अङ्गारो पर अधिश्रित करके, प्रोक्षण करके उदक् से उद्वासित करे और उन अङ्गारो को अति ससृजन कर देव——यह होम्य सस्कार होता है ।

पय-दधि सर्पि भवागू ओदल तण्डुल सोम-आय-तैल-ब्रीहि-मन–तिल ये होम्य है । तण्डुल नीबार-श्यामाक–यावनाल-ब्रीहि-शालि यव-गोधूम-प्रियगुस्वरूप म अति होम्य है । तिल स्वरूप से ही शत अथवा चौसठ आहुति है । ब्रीहि यवो की उससे आधी तिलो की उसस भी आधी-सर्पि, तैल-निल-तिल अलसी कुसुम्भो मे जिसके द्वारा प्रथम इसका हवन करे उसी स द्वितीय आहुति का हवन करना चाहिए । जिससे सायकाल को हवन करे उसी से प्रात काल को करे अथवा प्रातकाल साय प्रात होमा को साथ मिलाकर करे किन्तु प्रात साय प्रात होमो को न करना चाहिए ।१८।

१९ नष्टेऽग्नौ पुनराधानम् ।

अथ पुनराधानमनुगतेऽग्नि शिष्टागारादानीयोक्तवदुपसमाधाय परिसमुह्य परिस्तार्य पर्युक्ष्याऽऽज्यमुत्पूयायाश्चग्न इत्येकामाज्याहुति हुत्वा यथापूर्वं परिचरे-

देवमा द्वादशरात्रादत ऊर्ध्व विवाहगृहप्रवेशहोमाभ्या-मेकततन्त्राभ्यामादध्यात् । तत्रविवाहाज्याहुतयो लाजा-हुतयो गृहप्रशाज्याहुतयो हृदयाङ्कन भवति । कर्तैव लाजानावपत्जेतत्पुनराधान नित्यहोममतीत्य मनस्वत्या चतुर्गृहीत जुहुयादा द्वादशरात्रा दूर्ध्व पुनराधानमेव कुर्यात् ।१६।

१६–इसके अनन्तर पुनराधान का वणन किया जाता है, अनुगत होने पर शिष्ट पुरुषके आगार से लाकर उक्त विधिके समान उपसमाधान करके परिसमुहन परिस्तरण और पर्युक्षण करके आज्य को उत्पूयन कर 'आयाश्चाग्ने'–इससे एक घृत की आहुति का हवन करके यथापूव परिचरण करे । इस प्रकार से द्वादश रात्रि से लेकर इससे आगे विवाह गृह प्रवेश होमो से एकतन्त्रो से आधान करना चाहिए । उसमे विवाहा-ज्याहुनि–लाजा हुति-गृह प्रवेशाज्याहुति और हृदयाज्जन होता है । कर्त्ता ही लाजाओ का आवयन करता है—यह पुनराधान नित्य होम को अतीत करके मनस्वती से चतुगृ हीत का हवन करे और आद्वादश रात्रि से ऊध्व मे पुनेराधान ही करना चाहिए ।१८।

२० अनेकभार्यस्याग्निविचार ।

अथानेकभायस्य यदि पूवगृह्याग्नावानन्तरो विवाह स्यात्तनव सा तस्य सह प्रथयया धर्माग्निभागिनो भवति । यदि तु लौकिके परिणये त पृथक्त्वन परिगृह्य पूर्वेणैकी कुर्यात्तौ पृथगुपसमाधाय पूर्वस्मिन्पूवया पत्न्याऽन्वारब्धाऽग्निमीले पुरोहितमिति सूक्तन प्रत्यृच हुत्वापस्थायाय ते योनिर्ऋत्विय इति त समिधमारोप्य प्रत्यवरोहेति द्वितीये वरो ह्याज्यमागान्त कृत्वोभाभ्या-मन्वारब्धोऽग्निमीले जुहुयादग्निनाऽग्नि समिध्यते, त्व ह्यग्ने, अग्निा, पाहि नो अग्न एकयेति तिसृभिरस्ती-दमधिमन्थमिति च तिसृभिरथैन परिचरेन्मृतामनेन

सस्कृत्यान्यया नपुनराध्यादथवाऽग्नि विभज्य तद्भागेन सस्कुर्याद्वह्नीनामप्येवमेवाग्नियोजन कुर्याद्गमिथुन दक्षिणा।२०।

२०——इसके अनन्तर अनेक भार्याओ वाले का यदि पूर्व ब्रह्माग्नि मे ही अनन्तर विवाह है तो उसीसे वह उसके साथ प्रभया से धर्माग्नि भागिनी होती है। यदि लौकिक परिणय मे उसको वृन्दकर्त्ता से परिग्रहण करके पूव के साथ एकीकरण करे तो उन दोनो को पृथक् उपसमाधान करके पूव मे पूर्व पत्नी से 'अ वारब्धोऽग्निमीले पुरोहितम् इस सूक्त से प्रतिऋचा हवन करके उपस्थान कर 'अमते योनिर्ऋत्विय' इति——इससे उस समिधा को आरोपित करके 'प्रत्यवरोह' इति इससे द्वितीय मे वर आज्य भागान्त को करके फिर दोनो से 'अन्वारब्धोऽग्नि मीले' हवन करे। "अग्नि नाऽग्नि समिध्यते, त्व अग्ने, अग्निना याहिनो अग्ने एकया" इन तीनो से और "अस्तीदमधि मन्थनम्" इन तीनो से इसका परिचरण करे। मृता को इससे सस्कार करके अन्य से पुनराधान करे। अथवा अग्नि का विभाजन करके उसके भागसे सस्कार करना चाहिए। वह्नियो का भी इसी प्रकार से अग्नि योजन करना चाहिए और गौओ का जोडा दक्षिणा होती है।२०।

२१ कन्यावरणादि।

अथ कन्यावरण कन्या परिणेष्यमाणो द्वौ चत्वारोऽष्टौ वरपितुराप्तान्प्रशस्ताकारकर्मणोऽनृक्षरा ऋजव सन्तु पन्था इति प्रहिणुयात्ते तावतीभि पुरन्ध्रीभि सहिता मङ्गलगीततूर्याभ्या कन्यागृहमेत्य शुभे पीठासने प्राङ मुखासीनाया दातृज्ञातिबान्धवोपेताया कन्याया पाणौ फल प्रदाय कन्यावरणकाले वृणीरन्नासीना प्रत्यङ्मुखा वसिष्टगोत्रोद्भवायामुष्य प्रपौत्रायामुष्य पौत्रायामुष्य पुत्राय श्रुतशीलनाम्ने वराय वत्सगोत्रोद्भवाममुष्य प्रपौत्रीममुष्य पौत्रीममुष्य पुत्री सुशीलानाम्नीमिमा

कन्या भार्यात्वाय वृणीमह इति ब्रुयुरथ दाता भार्या-ज्ञातिबन्धुसमेतो यथोक्तमनूद्य वृणोध्वमिति ब्रुयादेव त्रि प्रयुज्य दाता प्रदास्यामीति चोच्चैस्त्रिब्रूयादथ ब्राह्मणा उक्तस्वस्त्ययना शिवा आप सन्तु सोमनस्यमस्त्वक्षत चारिष्ट चास्तु दीर्घमायु श्रेय शान्ति पुष्टिस्तुष्टिश्चास्त्वित्युक्त्वैतद्व सत्यमस्त्वित्यनूद्य समानीव आकूति प्रसुग्मन्ताधिय सानस्य सक्षगीत्येता पठेयु पुरन्ध्रय कन्यायै कल्याणान्कुलधर्माचारान्कुर्यु ।२१।

२१—इसके अनन्तर कन्या वरण के विषय मे बतलाया जाता है—कन्या का परिणय करने वाला दो–चार आठ वर के पिता से आप्त एव प्रशस्त "कार कर्मणोऽभूक्षरा ऋजन सन्तु पन्था" इससे प्रेरित करे । वे उतनी पुरन्ध्रियो के सहित मगल गीततूर्यो से कन्या के गृह मे आकर शुभ पीठासन पर पूर्व की ओर मुख वाली बैठी हुई दाता और ज्ञाति वान्धवो से उपेत् कन्या के हाथ मे फल प्रदान कर कन्या के वरण का सब मे वरण करे बैठे हुए पूर्व की ओर मुखो वाले वसिष्ठ गोत्र मे उद्‌भव वाले अमुक के प्रपौत्र, अमुक के पौत्र, और अमुक के पुत्र श्रुनशील नाम वाले वरके लिये वत्स गोत्र मे उत्पन्न अमुक की प्रपौत्री, अमुक की पौत्री, और अमुक की पुत्री सुशीला नाम वाली इस कन्या का भार्यात्व के लिये वरण करते है—ऐसा बोलना चाहिए । इसके अनन्तर दाता भार्या-ज्ञाति और बन्धुओ के समेत यथोक्त को कहकर वरण करते है—ऐसा तीन बार प्रयोग करके दाता प्रदान करूगा—यह बडे उच्चस्वर से तीन बार बोले । इसके अनन्तर ब्राह्मण स्वस्त्यय न बोलने वाले—शिवा आप सन्तु, सौमनस्य भक्षत चारिष्ट चास्तु दीघमायु श्रेय शान्ति पुष्टिस्तु विश्चास्तु"—यह कहकर 'एतद्व सत्यमस्तु"—यह कहकर "समानीव आकूति प्रसुग्मन्नाधिय सानस्य साक्षणी" इति—इन ऋचाओ को पढना चाहिए । पुरन्ध्रियो को कन्या के लिये कल्याण और कुल धर्मो के आचारो को करना चाहिए ।२१।

२२ विवाहप्रयोग ।

अथोपयमन लक्षण्यो वरो लक्षणवती कन्या यवीयसी-मसपिण्डामसगोत्रजामविरुद्धसबन्धामुपयच्छेत्पितृत सप्त-पुरुष सापिड्य मातृत पञ्चपुरुष भृगुवत्साङ्गिरसश्च प्रवरे त्र एकर्षियोगे सगोत्रा एकर्षियोग इतरे दपत्योर्मिथ पितृविरुद्ध सबन्धो यथा भार्यास्वसुदु हिता पितृव्यपत्नी स्वसा चेति । केचिन्मातृगोत्रता च वर्जयित्वा तदपत्य-मसगोत्र स्यादिति । सुस्नातोऽलङ्कृतो वर स्वस्ति वाच-यित्वा सहित स्वर्चितैर्ब्राह्मणै पुरन्ध्रीभिर्ज्ञातिबान्धवै पदातिभिर्मङ्गलगीततूर्यघोषाभ्या सबन्धिनो गृहमेत्य चतुष्पदे सोत्तरच्छदे हरितदर्भास्तीर्णे भद्रपीठे प्राङ्मुख उपवेश्य तस्य पुरस्तात्प्रत्यङ्मुखी भद्रपीठासीना सुस्नातामलङ्कृतामहतवासस स्रग्विणी कन्या पुरस्कृत्य दाता सामात्य उपविशेद्वर विधिदभ्यर्चयेत् । अथ दक्षिणत पुरोधा उदङमुख उपविश्य मध्ये प्रागग्रोद-गग्रान्दर्भानास्तीर्य तैजसमपा पूर्णकलश निधाय व्रीहि-यवानोप्य गन्धादिभिरलङ्कृत्य दूर्वापल्लवैर्मुखमवस्ती-र्याब्लिङ्गाभिर्ऋग्भिरभिमन्त्र्य तामिरद्भि प्रयोजयेत् । अथ दाता पुण्याहादीनि वाचयित्वा शिवा आप सन्तु सौमनस्यमस्त्वक्षत चारिष्ट चास्तु दीर्घमायुरस्तु शान्ति पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु तिथिकरणमुतनक्षत्रसपदस्त्वित्युक्त्वा भार्यादिसमेत कन्या प्रतिगृह्य वत्सगोत्रोत्पन्नाममुष्य प्रपौत्रीममुष्य पौत्रीममुष्य पुत्री सुशीलानाम्नीमिमा कन्या वसिष्ठगोत्रोद्भवायामुष्यप्रपौत्रायामुष्यपौत्रायामुष्य पुत्राय श्रुतशीलनाम्नेऽस्मै वराय सप्रददे कन्या प्रतिगृ-ह्णातु भवानिति ब्रुवन्वरस्य पाणौ हिरण्यमुपधाय कल-शोदकधारामासिञ्चन्मनसाप्रजापति प्रीयतामितिब्रूयात्।

अथ शिरसि पुण्याहाशिषो वाचयित्वा दक्षिणेऽसे कन्यामभिमृश्य क इद कस्मा अदात्काम कामायादात्कामो दाता काम प्रतिग्रहीता काम समुद्रमाविश कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते वृष्टिरसि द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी प्रतिगृह्णात्त्विति जपित्वा प्रजापतिमनुस्मृत्य धर्मप्रजासिद्धयर्थं कन्या प्रतिगृह्णामीति ब्रूयादेव त्रि प्रयुज्य पुरोधा दातृवरौ प्रति'ऋतस्य हि शुरुध सन्ति पूर्वीरिति' तिस्रो जपित्वैतद्व सत्यसमृद्रमस्त्विति ब्रूयात् ।२२।

२२—इसके अनन्तर उपशमन को बतलाते है—नक्षत्रो मे मुक्त वर सुलक्षणो वाली यवीमसी असपिण्ड असगोत्र नाम विरुद्ध सम्बन्धो वाली कन्या का उपादान करे। पिता से सात पुरुष तक सापिण्डता होती है और माता से पाँच पुरुषो तक अर्थात् पाँच पीढी तक सपिण्डता होती है। भृगु के समान साङ्गिर और प्रवर एक ऋषि के भोग मे सगोत्रा होती है इतर एकर्षियोग मे दम्पतियो के परस्पर मे पितृ विरुद्ध सम्बन्ध होता है यथाभार्या की स्वसा की दुहिता और पितृव्य की पत्नी की स्वसा है। कुछ विद्वान् मामा की सगोत्रता का वजन करके उसकी सन्तति अगोत्र होती है—ऐसा मानते है। भली भाँति स्नान किया हुआ और अलङ्कृत हुआ वर स्वस्ति वाचन कराकर भली भाँति अर्चित ब्राह्मणो के सहित और पुरन्ध्री, ज्ञाति वान्धव और पदातियो के सहित मङ्गल गीत तूय घोषो से सम्बन्धी के ग्रह मे आकर चतुष्पद उत्तरच्छद से युक्त हरितदर्भास्तरण वाले भृदपीठ पर प्राङ्मुख होकर उपनिष्ट कराकर उसके आगे प्रत्यङमुखी भद्रपीठ के आसन वाली भली भाति स्नान की हुई अलङ्कृत नूतन वस्त्रो वाली माला धारिणी कन्या को आगे करके दाता अमात्यो के सहित उप वेशन करे और वर का विधिवत् अभ्यर्चन करना चाहिए। इसके अनन्तर दक्षिण दिशा मे पुरोहित बैठ कर मध्य मे पूर्व की ओर उदगग्रदर्भो को फैलाकर तैजस जल से भरा हुआ कलश रखकर व्रीहि

और यवो को बोकर गन्धादि के द्वारा अलकृत करके दूर्वापल्लवा से मुख का अयस्तरण कर अब्लिङ्ग वाली ऋचाओ से अभियन्त्रित करके उन जलो से प्रयोग करे।

इसके अनन्तर दाता प्रण्याह वाचनादि का वाचन कराकर "शिवा आप सन्तु, सौमनस्य मस्तु, अक्षत चारित्र्य चास्तु, दीर्घमाशु रस्तु, शान्ति पुष्टिस्तुष्टि श्चास्तु तिथि करण मुहूर्त नक्षत्र सम्यदस्तु"—यह कहकर भार्यादि समेत कन्या का प्रनि ग्रहण कर वत्सगोत्र मे समुत्पन्ना अमुक की प्रपौत्री अमुक की पौत्री, अमुक की पुत्री सुशील नाम वाली इस कन्या को वसिष्ठ गोत्र मे उद्भूत अमुकका प्रपौच, अमुक का पौत्र और अमुक का पुत्र श्रुतशील नाम वाले इस वर के लिये सम्प्रदान करता हूँ। आप इस कन्या को प्रतिग्रहण करे—यह कहता हुआ वर के हाथ मे हिरण्य का उपधान करके कलश के उदक की धारा का आसेचन करना चाहिए मन से प्रजापति प्रसन्न होवे—यह बोलना चाहिए। इसके अनन्तर शिर पर पुज्याशीष् का वाचन करा कर दक्षिण अस मे कन्या का अभिमर्शण कर के "कइह कस्मा अदात् काम कामामाहात्कामो दाता काम प्रतिग्रहीता काम समुद्रमाविश का मे न त्वा प्रतिग्रह्णामि कामैतत्ते वृष्टिरमि घोस्त्वा ददातु पृथिवी प्रनिगृह्णातु" इसका जाप करके प्रजापति का अनुस्मरण करे "धमप्रजा सिद्धयर्थं कन्यामि मा प्रतिगृह्णामि"—यह बोलना चाहिए। इस प्रकार से तीन बार प्रयोग करके पुरोहित दाता और वर के प्रति "ऋतस्य हिशुरुध सन्नि पूर्वी" इसको तीनो का जाप करके "व सत्यसमृद्धमस्तु'—यह बोलना चाहिए।२२।

२३ परस्परावलोकनम्।

अथानयोर्निरीक्षण स्वलकृते वेश्मनि मङ्गलगीततूर्यनिर्घोषे पूर्वापरावरल्युच्छ्रितौ हस्तान्तरालौ शुक्लतण्डुलराशी कृत्वा मध्ये स्वस्तिका तिरस्करिणी धारयेयु। अथ पूर्वस्मिन्राशौ प्रत्यङ्मुखी गुडजीरकपाणि कन्या स्थापयेयुरपरस्मिन्प्राङ्मुख तथाभूत वर तौ मनसेष-

देवता ध्यायन्तौ तिष्ठन्तौ ब्राह्मणा सूर्यसूक्त पठेयु पुरन्ज्यो मङ्गलगीतानि कुर्यु । अथ ज्योतिर्विदादिष्टे काले प्रविष्टे सद्यस्तिरस्करिर्णामुदगपसार्य कन्यावरौ परस्परगुडजीरकादनकिरत परस्पर निरीक्षेयाताम-भ्रातृघ्नीमिति तामक्षिमाणो जपत्यघोरचक्षुरपतिघ्न्ये-घोति तथेक्ष्यमाणोऽथास्या भ्रुवोर्मध्य दर्भाग्रेण परि-मृज्य दर्भे निरस्याप उपस्पृशेत् । अथ ब्राह्मणा बान्धवा पुरन्ध्ज्यस्तावाशीर्भिरभिनन्दयेयु ॥२३॥

२३—इसके अनन्तर इन दोनो का एक दूसरे के निरीक्षण के विषय मे बतलाया जाता है—इन दोनो मे निरीक्षण सुन्दर रूप से अलङ्कृत घर मे मङ्गल गीत और तूय की ध्वनि होने पर पूर्वापरध्यरन्त्रिउच्छ्रिल एक हाथ अन्तराल वाली श्वेततण्डुलो की राशि बनाकर मध्य मे स्वस्तिका और तिरस्करिणी धारण करावे । इसके उपरान्त पूर्व राशिमे पश्चिम मुख वाली गुड और जीरा हाथ मे लेनेवाली कन्या को स्थापित करानी चाहिए । दूसरी पर प्राङ्मुख उस प्रकार वाले वर को स्थापित करे । वे दोनो ही मन से इष्ट देवता का ध्यान करते हुए स्थित रहे । ब्राह्मण सूर्य सूक्त पाठ करे और पुरन्ध्रियाँ मङ्गल गीतो का गान करे । इसके अनन्तर ज्योतिषी के द्वारा आदिष्ट काल मे प्रविष्ट होने पर तुरन्त ही तिरस्करिणी को उत्तर की ओर अपसारण करके कन्या और वर दोनो परस्पर मे गुण जीरा का अवकिरण करते हुए आपस मे देखे । उसको देखते हुए "अभ्राम्घ्नीम्" इसका जाप करता है । "अघोरचक्षुरप तिघ्न्येधि" इससे उस तरफ देखते इसके भौहो के मध्य को धर्मों के अग्रभाग से परिमार्जन करके दर्भको डालकर जल का उपस्पशन करे । इसके अनन्तर सब ब्राह्मण, वान्धव और पुरन्ध्री उन दोनो को आशीर्वादो से अभिनन्दन करे ।२३।

२४ अक्षतारोपणादि ।

अथानयोरार्द्राक्षतारोपण तैजसेन पात्रेण क्षीरमानीय घृतमासिच्यान्येनार्द्राक्षततण्डुलान् । अथ तथास्थितयोर्व-

धूवरयोर्वर्धनकमेतत्कारयेयुरमृतक्षीरमायुर्घृतमरिष्टरक्षता अप एतेषामारोपणमिष्यते । वर प्रक्षालितयाणिर्वध्वा प्रक्षालितेऽञ्जलो क्षोरघृत पाणिना द्विरुपस्तीर्य द्विस्तण्डुलानञ्जलिनाऽऽवपति यथापूर्येत ततो द्विरुपरिष्टादभिघारयत्येव वराञ्जलावन्यस्तण्डुलापूरण कुर्याद्दातातयोरञ्जल्योर्हिरण्यमवदधात्यथ वर कन्याञ्जलौ स्वाञ्जलि धारयेद्दाता कन्या तारयतु दक्षिणा पान्तु बहु धेयचास्तु पुण्य वर्धता शान्ति पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रसपदस्त्वित्युक्त्वा कन्यामुत्क्षिप्य तदञ्जल्यक्षतान्वरमूर्ध्न्यारोपयेद्वरोऽपितन्मूर्ध्नि स्वाञ्जल्यक्षतानारोपयेदेव त्रिर्वधूपूर्व वराञ्जलौ वधूस्तण्डुलपूरण कुर्यात्तदञ्जलावन्योऽथ ममारोपण कारयेदिदानी दाता वराय गोभूमिदासीयानशयनमन्नादिकमनुदान दधात् । अथ पुरोधा कास्ये पय आसिच्यौदुम्वर्याऽर्द्रयाशाखयासपलाशया सहिरण्यपवित्रया सदूर्वापवित्रयाऽभिषिञ्चेदब्लिङ्गाभिर्ऋग्भि । अथ वधूवरौ स्वशेखरपुष्प क्षोरघृतेनाऽऽप्लाव्य परस्परतिलक कुरुत कण्ठे स्रज चाऽऽमुञ्चत कौतुकसूत्र च करे बध्नीयाताम् । अथ पुरोधास्तयोरुत्तरीयान्तयो पञ्च पुगफलानि विवाहव्रतरक्षिण गणाधिपमनुस्मृत्य गणाना त्वा गणपति हवामहे इत्यातून इन्द्र क्षुमन्तमिति च वधूवरयोरुत्तरीयान्तौ च नोललोहित भवतीति बध्नीयात् । अथ दाता सभार्यो वृद्धापुरन्ध्यो ज्ञातिबान्धवाश्च क्रमादाशीर्भिरार्द्राक्षतारोपण कुर्यु ॥२४॥

२४—इसके इन दोनो का आर्द्राक्षत रोपण बतलाया जाता है—तैजस पात्र के द्वारा क्षीर लाकर घृतका आसेचन कर अन्य के द्वारा आर्द्राक्षत तण्डुलो का आरोपण करे । इसके अनन्तर उस तरह से स्थित वर वधू के वर्धन करने वाले इस कृत्य को कराना चाहिए । अमृत-क्षीर आयु और अरिष्ट रक्षत अप—इनका आरोपण अभीष्ट होता है । प्रक्षालित हाथो वाला

वर वधू की प्रक्षालित अञ्जलि मे क्षीर घृत हाथ मे दो बार उपस्तरण करा के दो बार तण्डुलो को अञ्जलि द्वारा आवपन करता है। जिस रीति मे पूर्ण हो जावे उससे भी दो बार ऊपर अभिघारण करता है। इस प्रकार से वर की अञ्जलि मे कोई अन्य पुरुष तण्डुलो का पूरण करे। दाता उन दोनो की अञ्जलियो मे हिरण्य को अवधारण करता है। फिर वर कन्या की अञ्जलि मे अपनी अञ्जलि को धारण करे। दाता कन्या तारण करे, दक्षिणा रक्षा करे, यह वहुधा पुण्य होवे, शान्ति पुष्टि और तुष्टि होवे तिथि कारण- मुहूर्त्त और नक्षत्र की सम्पदा होवे – यह कह कर कन्या उत्क्षिप्त करके उसकी अञ्जलि के अक्षतो को वर के मूर्धा मे अरोपण करे वर भी उस वधू के मूर्धा मे अपनी अञ्जलि के अक्षतो को आरोपित करे। इस तरह से तीन बार वधू पूर्व वराञ्जलि मे वधू तण्डुलो का पूरण करे और उसकी अञ्जलि मे अन्य समारोपण करावे। इस समय मे दाता वर के लिये गौ- भूमि-दासी यान-शयन और अन्न आदि का अनुदान देवे इसके उपरान्त मे पुरोहित कासे के पात्र मे यम का अ सेचन करके गूलर की गीली शाखा से जिसमे पत्ते भी होवे और हिरण्य पवित्रा होवे तथा दूर्वा और पवित्रा होने अब्लिङ्ग वाली ऋचाओ से अभिषेचन करे। इस के अनन्तर वधू वर दोनो अपने शेखर पुण्य को क्षीर घृत से आप्लावित करके परस्पर मे तिलक करे कण्ठ मे स्रज का आमुञ्च न करे और कौतुक सूत्र को कर मे बाँधना चाहिए। इसके अनन्तर पुरोहित उन दोनो के उत्त-रीयो के छोरो मे पाच सुपारीयो को विवाह व्रत के रक्षा करने वाले भगवान् गणाधिप का अनुस्मरण करके "गणाना त्वा गणपति हवामहे' यह और "आलूम इन्द्र क्षुयन्तम्" यह पढकर वधू वर के उत्तरी यान्त्रो को "नील लोहित भवति"—इससे बाध देवे। इस के अनन्तर दाता भार्या के सहित, वृद्ध पुरुष, पुरन्ध्रियाँ, और ज्ञाति वान्धव क्रम से आशी-र्वादो के द्वारा आर्द्राक्षतारोपण करे ।२४।

२५ ऋतुमतीकृत्यादि ।

अथर्तुमत्या प्राजापत्यमृतौ प्रथमेऽनुकूलेऽहनि सुस्नात-याऽऽन्वारब्ध प्राजापत्यस्य स्थालीपाकस्य हुत्वैता

आज्याहुतीजु हुयाद्विष्णुर्योनिमिति तिस्रो नेजमेषेति तिस्र प्रजापते न त्वदित्येकाऽथातो मूर्न्यपन शोशुचद्घमित्यभिमृश्य या फलि नीर्या अफना इति जपित्वा वधेन दस्यु प्रहि चातयस्वेति षड्भिरग्निस्तु विश्रवस्तममिति ताभ्यामग्निमुपस्थाय सूर्यो नो दिवस्पात्विति सूक्तेनाऽऽदित्यमुपतिष्ठेत। अथ गर्भलम्भनमृतावनुकूलाया निशि स्वलङ्कृते सुगन्धवासिते वेश्मनि तथ भूते पर्यङ्कशयने सुस्नातामलङ्कृता शुक्लवसना स्रग्विणी भार्या स्वय तथाभूत प्रवेश्य दूर्वा पिष्टुऽश्वगन्धा वा सूक्ष्मेण वाससा सगृह्योदीर्ष्वात पतिवतीति द्वाभ्या स्वाहाकारान्ताभ्यामुभयोर्नासाबिलयोर्निषिच्य सवेश्य गन्धवस्य विश्वावसोर्मुखमसीत्युपस्थमभिमृश्य विष्णुर्यानि कल्पयत्विति द्वाभ्या विहृत्य यो गर्भमोषधीनामह गर्भमदधामोषधीष्विति जपित्वापगच्छेत्प्राणे ते रेतो दधाम्यसावित्यनुप्राण्या यथा भूमिरग्निगर्भा यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी। वायुर्यथा दिशा गर्भ एव ते गर्भ दधाम्यसाविति हृदयमभिमृशेन्नैक उपगमने मन्त्रविधिमिच्छन्ति न ह्यनन किंचित्संस्क्रियत इति त ओषधीभिर्निषेक कृत्वापगच्छन्ति ॥२५॥

२५—इसक अनन्तर ऋतुमती के प्राजापत्य को बतलाते हैं—ऋतु मे प्रथम अनुकूल दिन मे भली भाँति स्नान की हुई के द्वारा अन्वारब्ध प्राजापत्य स्थाली पाक का हवन करके ये निम्न निर्दिष्ट आज्य की आहुतियो से हवन कराना चाहिए "विष्णुर्योनिम्" ये तीन आहुतियाँ, "नेजमेषेति" ये तीन "प्रजायतेन त्वद्" यह एक आहुनि देवे। इसके उपरान्त मूर्धा मे "अपत्र शोशुचदगम्" इससे अभिमर्शण करके "या फलिनीर्या अकला" इमका जाप करके "वधेन दस्यु प्रहि धातयस्व" इन छै से "अग्निस्तु विभ्रवस्तमम्" इन दो से अग्नि का उपस्थान करके

"सूर्यो नो दिवस्यात्विति"—इस सूक्त से आदित्य देव का उपस्थान करना चाहिए। इसके अनन्तर गर्भलम्भन है। ऋतु मे जो अनुकूल रात्रि हो उसमे किसी भली भाँति भूषित गृह मे जो सुन्दर गन्ध से सुवासित होवे उसी प्रकार से सुवासित पर्यङ्क शयन मे सुस्नाता—स्वलङ्कृता—शुक्ल वस्त्रधारिणी—स्रक्धारिणी भार्या को स्वय भी उसी प्रकार से सुसज्जित होकर प्रवेश करके दूबको पीसकर अथवा अश्वगन्धा को पीसकर एक सूक्ष्म वस्त्र से सगृहीत करके "उदीर्ष्यति पतिवती" इन दो से जिनके अन्त मे स्वाहाकार होवे दोनो नासिका के छिद्रो मे निषेचन करके भली भाँति प्रवेश कराकर "गन्धर्वस्य विश्वावसो मुखमसि" इससे अपने ने उपस्थ का अभिमर्शण करके "विष्णुर्योनि कल्पयतु" इन दो ऋचाओ से विहृत करके "योगममोप ीनायह गर्भ मदधामोषधीषु" इसका जाप करके उपगमन करे। "प्राणे ते रेतो दधाम्यसाविति" इससे अनुप्राण्या करे यन्था भूमिरग्निगर्भा यथाद्यौरिन्द्रेण गर्भिणी। वायुर्यथा दिशा गर्भ एव ते गर्भ दधाम्यसौ" इति—इससे हृदय का अभिमर्शण करते हुए—ऐसा कतिपय मनीषी मन्त्र विधि की इच्छा उपगमन मे चाहते है और इससे कुछ सस्कार नही किया जाता है। वे लोग ओषधियो स निषिक्त करके उपगमन करते है ॥२५॥

२६ जातकर्मादि।

अथ जातकर्म पुत्र जाते पुराऽन्यैरालम्भादाग्निरिन्द्र प्रजापतिर्विश्वेदेवा ब्रह्मेत्यनादेशदेवता हुत्वा प्राक् स्विष्टकृत सर्पिर्मधुप्राशनादि कुर्यात्। एव निष्क्रमण चतुर्थे मास्यापूर्यमाणपक्षे स्वस्ति वाचयित्वा स्विष्टकृत. प्राक् सुस्नातालकृत कुमारमादाय सह भार्याज्ञातिबान्धवै पुरन्ध्रीभिश्च मङ्गलतूर्यनिर्घोषेण गृहान्निष्क्रम्य देवतायतनमेत्य देवतामुपहारेणाभ्यर्च्याऽऽशिषो वाचयित्वाऽऽयतन प्रदक्षिणीकृत्य गृहमयात्सबन्धिना वा

गृह् नीत्वाऽऽयेदेवमन्नप्राशनादावपीच्छायामनादिष्टदेवता यष्टव्या यष्टव्या ॥२६॥

२६—इसके अनन्तर जात कर्म बतलाते हे । पुत्र के उत्पन्न होने पर पहिले अन्यो के द्वारा आलम्भ से "अग्निरिन्द्र प्रजापति विश्वेदेवा ब्रह्म" इससे अनादेश देवताओ का हवन करके पहिले स्विष्टकृत सर्पिमधु प्राशनादि करे । इस प्रकार से निष्क्रमण करे । चतुथ मास मे आपूर्ण माण पक्ष मे स्वास्ति वाचन कराकर स्विष्टकृत पहिले भली-भाँति स्नान कराकर अलङ्कृत कुमार को लेकर भार्या-ज्ञाति और वान्धवो तथा पुरन्ध्रियो के साथ शख तूर्य की ध्वनि से घर से निकल कर किसी देवायतन मे जाकर वहाँ के देवता का उपहार के द्वारा अभ्यचन करके आशिषो का वाचन कराकर देवायतन की प्रदक्षिणा करे गृह मे आवे अथवा सम्बन्धी गृह को ले जाकर देव को लावे । अन्न प्राशनादि मे भी इच्छा मे इष्ट देवताओ का यजन करना चाहिए ।२६।

इति आश्वलायन गृह्यसूत्रे परिशिष्टे प्रथमोऽध्याय समाप्त ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

१ ग्रहयज्ञादि ।

अथ ग्रहयज्ञश्चैत्ययज्ञश्चैत्यमुपयाचितमुच्यते तत्र भवा शान्तिपुष्टिदा देवनाश्चैत्या शान्ति च खलु पुष्टि च सर्वे ग्रहा समुपयाचन्ते ततश्चैत्या आदित्य इन्दुरङ्गारक सौम्यो गुरुर्भार्गव शनैश्चरो राहु केतुरिति नव ग्रहास्ते हि स्वस्वगत्या जगदभिगृह्णन्ति तानुदगयनादिषु पुण्यकालेषु यजेत शान्तये सद्य उद्भूतेषु माङ्गल्यादिष्वाभ्युदयिक करिष्यमाणो ग्रहयज्ञ कुर्यादाभ्युदयिक हि शान्तिकम यदि तदानुकूल्यकाम काम प्रागभ्युदयात्सप्ताहान्तरितात्कुर्यात्त दशाहुती स्वयमेक कुर्यादूध्वमापञ्चशत चत्वार ऋत्विज स्युराशत वरमष्टौ नवम आचार्य स्वयमेव वा यदि स्वयमाचार्यो स्यात्तद्भाग कल्पविदे दद्यात्तान्विधिवद्वरयित्वाऽर्हयदाचार्यो आदित्याय जुहुयादितरेभ्य इतरे पूर्वोत्तरतन्त्रमाचार्यो कुर्यात्तदितरेऽन्वारमेरन् ॥१॥

१—इसके अनन्तर ग्रह यज्ञ और चैत्य यज्ञ उपयाचित कहा जाता है। उनमे होने वाले शान्ति पुष्टि के देने वाले देवता चैत्य है। सब ग्रह शान्ति और पुष्टि की समुप याचना करते है। इसके उपरान्त चैत्य आ त्य, चन्द्र, अङ्गारक, मौम्य, गुरु, भागव, शनैश्चर, राहु, केतु, ये नौ ग्रह है। वे अपनी-अपनी गति से सम्पूर्ण जगत् का अभिग्रहण करते है उनको उद्गमनादि पुण्य कालो मे यजन करना चाहिए। शान्ति के लिये सद्य उद्भूत माङ्गल्यादि मे आभ्युदार्यक को करने वाला होता हुआ ग्रह यज्ञ

करे। आभ्युदायिक ही शान्ति कर्म होता है। यदि उसके आनुकूल्य कामना वाला यथेच्छया अभ्युदय से पहिले जो एक सप्ताह के अन्तरित हो उसको करना चाहिए। दश परहुतियो को स्वय एक ही करे। इसके आगे पाच सौ आहुतियाँ चार ऋत्विज करे। सौ तक आठ ही श्रेष्ठ है नवम आचार्य होते है अथवा स्वय ही होवे। यदि स्वय आचार्य होवे तो उनका भाग कल्प वेत्ता को दे देना चाहिए। उनको विधिवत् वरण करके आचार्य करे और आदित्य देव के लिये हवन करे। इतर इतरो के लिये करे। आचार्य पूर्वोत्तर तन्त्र को करे और इतर अन्नारम्भ करे ।१।

२ ग्रहयज्ञसमारादि ।

अथास्य सभरा हस्तमात्रावर चतुरस्र कुण्ड स्थण्डिल वा सस्कृत्य तत ईशान्या कुण्डवदायता चतुरस्रा चतुरस्रद्व्यङ्गुलोच्छ्रिता विस्तृता त्रिभूमिका ग्रहवेदि कुर्यात्तस्या च शुक्लव्रीहितण्डुलै सकर्णिकमष्टदलमम्बुजमुल्लिख्य कर्णिकाया दलेषु च यथास्थान ग्रहपीठानि स्थापयेदुदीच्या धान्यपीठे तैजस मृन्मय वा नवमनुलिप्तालकृत शुभमभिषेककुम्भ निधाय प्रसुव आपो महिमानमित्यृचाऽद्भि पूरयित्वा पञ्चगव्यानि पञ्चामृतानि नवपर्वतधातून्नवपवित्रमृदो नवरत्नानि प्रक्षिप्य दुर्वापल्लवैर्मुखमाच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयित्वा समुद्रादोनि पुण्यतीर्थान्यावाह्य कुम्भमभिमृश्याब्लिङ्गा वारुणा पावमानीश्च जपेत् ॥२॥

२—इसके अनन्तर सम्भारो के विषय मे कहा जाता है—एक हस्त मात्रा वर चौकोर कुण्ड अथवा स्थण्डिल का सस्कार करके इसके अनन्तर ईशान दिशा मे कुण्डवत् आयत चतुरस्र चौकोर हो अङ्गुल उच्छ्रित–विस्तृत-त्रिभूमिका ग्रह वेदी करे और उसमे शुक्ल ब्रीहि तण्डुलो से कर्णिका के सहित आठ दलो वाला अम्बुज (कमल) को उल्लिखित करके उसकी कर्णिका मे और दलो मे यथा स्नान ग्रहो के पीठो की स्थापना करनी चाहिए। उत्तर दिशा मे धान्य पीठ पर तैजस (धातु निर्मित) अथवा

मृत्तिका का नूतन अनुलिप्त-अलङ्कृत और शुभ अभिषेक का कुम्भ निधापित करके "प्रसुव आपो मह्मिानम्" इस ऋचा से जल से परिपूर्ण करे और उसमे पञ्चगव्य-पञ्चामृत-नव पर्वत धातुऐ-नव पवित्र मृत्तिकाएं-और नव रत्न प्रक्षिप्त करके दूर्वा तथा पल्लवो से उसके मुख को समाच्छादित करे। दो वस्त्रो से वेष्टित कर के समुद्र आदि पुण्य तीर्थो का उसमे आवाहन करे तथा कुम्भ का अभिमशण करके अब्लिङ्गा वारुणी और पवमानी ऋचाओ का जप करना चाहिए।२।

३ अर्चनाङ्गानि।

अथार्चनाङ्गानि ताम्र स्फाटिक रक्तचन्दन कुङ्कुम सुवर्ण तदेव रजत लोह सीसक कास्यमिति नव प्रतिमाद्रव्याणि सुवर्णमेकमेव वा सर्वेषा रक्तचन्दन मलयजो देवदारु कुङ्कुमो मन शिला शङ्खपिष्ट तिलपिष्ट केतकीरज कस्तूरीति नवानु लेपनानि मलयज एक एव वा सर्वेषा रक्तपद्म कुमुद रक्तकरवीर पाटल चम्पक कुन्दमिन्दीवर कृष्णधत्तूर तच्चित्रवर्णमिति नव पुष्पाणि रक्तकरवीरमेकमेव वा पुष्पवर्णा अक्षता अहतवस्त्रयुग्मानि च कन्दरमयूरशिखादशाङ्गसर्जरसा बिल्वफल निवास कृष्णागुरु जटामासी मधुकमिति नव धूपा गुग्गुलुरेक एव वा सर्पिषा दीपस्तिलतैलेन वा हविष्यान्न पायस पलान्न गुडान्न क्षीरोदनो दध्योदन कृसरान्नमामान्न चित्रान्नमिति नवोपहारास्त्रिवृदन्नमेकमेव वा माणिक्य मौक्तिक प्रवालो मरकत पुष्परागो वज्रो नीलो गोमेदिक वैदूर्यामिति नव रत्नान्येकमेव वा माणिक्यमर्क पालाश खदिरोऽपामार्गोऽश्वत्थ उदुम्बर शमी दूर्वा कुशा इति समिध सर्वेषा पालाश एक एव वा।३।

३—इसके उपरान्त अर्चना के अङ्गो को बतलाया जाता है—ताम्र, स्फटिक निर्मित-रक्त चन्दन-कुङकुम सुवण-रजत-लोह-सीसक-कॉस्य—ये नौ

प्रतिमा द्रव्यो को अथवा एक ही सुवर्ण को सबका रक्त चन्दन-मलयज-देव दारु कुङ्कुम-मैन सिल शखविष्ट-तिल पिष्ट केतकी का रुज-कस्तूरी—ये नौ अनुलेपन द्रव्य है अथवा इन सब मे एक ही होवे । रक्त कुमुद, रक्त पद्म, रक्त कर वीर, पारल, चम्पक, कुन्द, इन्द्री वर, कृष्ण धत्तूर, तच्चित्र वर्ण ये नौ पुष्प अथवा एक ही रक्त कर वीर से पुष्प वर्ण वाली—अक्षता और अहत दो वस्त्रो के युग्म, कन्दर मयूर शिखा दशाङ्ग सजरस, विल्व फल, निवास, कृष्णा गुरु, जटामासी मधु—ये नौ धूप अथवा एक ही गुग्गुलु, घृत से ही पक अथवा तिल तैल से दीपक-हविष्यान्न, पायस, पलान्न, गुअ न, क्षीरोदन, दध्योदन, कृसरान्न, आमान्न, चित्रान्न—ये नौ उपहार, त्रिनृद न्त अथवा एक ही अन्न हो । माणिका, मुक्ता, प्रवाल, मरकत, पुष्य, राग, वज्र, नील, गोमेदिक, वैदूर्य—ये नौ रत्न अथवा एक ही माणिक्य हो । अक, पलाश, खदिर, अपामार्ग, अश्वत्थ, उदुम्बर, शमी, दूर्वा, कुश—ये समिधाएं है अथवा सबमे स एक ही पलाश होवे ।३।

४ पूजाविधि ।

अथार्चनमाचार्य प्राङ्मुख उपविश्य समाहित पुण्याहादि वाचयित्वा कर्म सकल्प्य ग्रहवेदिपद्मीठेषु यथा स्थानमुखी ग्रह प्रति मा स्थापयित्वा दक्षिणवामयोरधिदेवताप्रत्यधिदेवते तदभिमुख्यौ स्थापयेत्तदभावे पुष्पाक्षतादिष्वावाहयेदग्निराप पृथिवी विष्णुरिन्द्र इन्द्राणी प्रजापति सर्पा ब्रह्मा च क्रमेण ग्रहाणामधिदेवता ईश्वर उमा स्कन्द पुरुषो ब्रह्मेन्द्रो यम कालश्चित्रगुप्त इति प्रत्यधिदेवता गणपति दुर्गा क्षेत्राधिपति वायुमाकाशमश्विनौ कमसादुण्यदेवता इमा यथाप्रत्यग् निवेश्य प्राच्यादिष्विन्द्रादिलोकपालान्क्षेत्रनुरक्षकानावाहयेत्पुष्पञ्जलिप्रयोगेणाऽऽवाहनमन्त्रैर्नमोन्तरावाह्य नामभि क्रमेण दीपान्तानुपचारानर्पयेत् ।४।

४---इसके अनन्तर अर्चन को बतलाते है---आचार्य पूर्व की ओर मुख वाला होकर परम समाहित होकर पुण्याह आदि का वाचन करके कर्म का सङ्कल्प करे। ग्रह वे ही पद्म पीठो पर यथास्थान मुख वाली ग्रह प्रतिमा को स्थापित करके दक्षिण वाम भागो मे अधि देवता--प्रत्यधि देवता उसके अभिमुख स्थापित करे। उनके अभाव मे पुष्याक्षतादि मे आवाहन करना चाहिए। अग्नि-आग (जल) पृथवी-विष्णु-इन्द्र-इन्द्राणी-प्रजापति सर्प ब्रह्मा—ये ग्रहो के अधि देवता है, गणपति-दुर्गा-क्षेत्राधिपति-वायु आकाश-अश्विनी कुमार दोनो कत साहुल्य देवता इनको यथा प्रत्यक् निवेशित् करके प्राच्यादि मे इन्द्रादि लोक पालो को क्रतु के रक्षको को आवाहित करे। पुष्पाञ्जलि प्रयोग के द्वारा आवाहन मन्त्रो से अन्त मे 'नम' यह शब्द लगाकर आवाहन करे। फिर नामो से क्रमश दीपान्त उपचारो से अर्चन करना चाहिए ॥१४॥

५ ग्रहावाहनमन्त्रा ।

अथाऽऽवाहनमन्त्रा प्रणवमुच्चार्य भगवन्नादित्य ग्रहाधिपते काश्यपगोत्र कलिङ्गदेशेश्वर जपापुष्पोपमाङ्गद्युते द्विभुज पद्माभयहस्त सिन्दूरवर्णाम्बरमाल्यानुलेपनज्वलन्माणिक्यखचितसर्वाङ्गाभरण भास्कर तेजोनिधे त्रिलोकप्रकाशक त्रिदवतामयमूर्ते नमस्ते सनद्धारुणध्वजपताकोपशोभितेन सप्ताश्वरथवाहनेन मेरु प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छाग्निरुद्राभ्या सह पद्मकर्णिकाथा ताम्रप्रतिमा प्राङ्मुखो वर्तुलपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थे त्वामावाहयामि । भगवन्सोम द्विजाधिपते सुधामयशरीराऽऽत्रेयगोत्र यामुनदेशेश्वर गोक्षीरधवलाङ्गकान्तु द्विभुज गदावरदानाङ्कित शुक्लाम्बरमाल्यानुलेपन सर्वाङ्गमुक्तमौक्तिकाभरणरमणीय सर्वलोकाप्यायक देवतास्वाद्यमूर्ते नमस्ते सनद्धपीतध्वजपताकोपशोभितेन दशश्वेताश्वरथवाहनेन मेरु प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छाद्भिरुमया च सह पद्माग्नेय-

दलमध्ये स्फटिकप्रतिमा प्रत्यङ्मुखी चतुरस्रपीठेऽधि तिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवन्नङ्गारकाग्न्याकृते भारद्वाजगोत्रावन्तिदेशेश्वर ज्वालापुञ्जोपमाङ्गद्युते चतुर्भुज शक्तिशूलगदाखड्गधारिन्रक्ताम्बरमाल्यानुलेपन प्रवालाभरणभूषितसर्वाङ्ग दुर्धरालोकदीप्ते नमस्ते सनद्धरक्तध्वजपताको शोभितेन रक्तमेषरथवाहनेन मेरु प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छ भूमिस्कन्दाभ्या सह पद्मदक्षिणदलमध्ये रक्तचन्दन प्रतिमा दक्षिणामुखी त्रिकोणपीटेऽधितिष्ठ पूजार्थ त्वामावाहयामि । भगवन्सौम्य सौम्याकृते सवज्ञानमयात्रिगोत्र मगधदेशेश्वर कुङ्कुमवर्णाङ्गद्युते चतुर्भुज खड्गखेटकगदावरदानाङ्कित पीताम्बरमाल्यनुलेपन मरकताभरणालकृतसर्वाङ्ग विवृद्धमते नमस्ते सनद्धपीतध्वजपताकोपशोभितेन चतु सिहरथवाहनेन मेरु प्रदक्षिणीकुवन्नागच्छ विष्णुपुरुषाभ्या सह पद्मेशानदलमध्ये सुवणप्रतिमामुदङ्मुखी बाणाकारपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थ त्वामावाहयामि । भगवन्बृहस्पते समस्तदेवताचार्याऽऽङ्गिरसगोत्र शेश्वरमिन्धुदे तप्तसुवर्णसदृशाङ्गदीप्ते चतुर्भुज कमण्डल्वक्षसूत्रवरदानाङ्कित पीताम्बरमाल्यानुलेपन पुष्परागमयाभरण रमणीय समस्तविद्याधिपते नमस्ते सनद्धपीतध्वजपताकोपशोभितेन पीताश्वरथवाहनेन मेरु प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छेन्द्रब्रह्मभ्या सह पद्मोत्तरदलमध्ये सुवर्णप्रतिमामुदङ्मुखी दीर्घचतुरस्रपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थ त्वामावाहयामि । भगवन् भार्गव समस्तदैत्यगुरो भार्गवगोत्र भोजकटदेशेश्वर रजतोज्ज्वलाङ्गकान्ते चतुर्भुज दण्डकमण्डल्वक्षसूत्रवरदानाङ्कि शुल्कमाल्याम्बरानुलेपन वज्राभरणभूषितसर्वाङ्ग समस्तनीतिशास्त्रनिपुणमते नमस्ते सनद्धशुल्कध्वजपताकोपशोभितेन

शुल्काश्वरथवाहनसहितेन मेरु प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छेन्द्राणीन्द्राभ्या सह पद्मपूर्वदलमध्ये रजतप्रतिमा प्राङ्मुखी पञ्चकोणपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवञ्शनैश्चर भास्करतनय काश्यपगोत्र सुराष्ट्रदेशेश्वर कज्जलनिभाङ्गकान्ते चतुर्भुज चापतूणीरकृपाणाभयाङ्कित नीलाम्बरमाल्यानुलेन नीलरत्नभूषणालङ्कृतसर्वाङ्ग समस्तभुवनभीषणामर्षमूर्ते नमस्ते सनद्धनीलध्वजपताकोपशभितेन नीलगृध्ररथवाहनेन मेरु प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छ प्रजापतियमाभ्या सह पश्चिमदलमध्ये कालायसप्रतिमा प्रत्तङ्मुखी चापाकारपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवन्राहो रविसोममर्दन सिंहिकानन्दन पैठीनसिगोत्र वर्बदेशेश्वर कालमेघसमद्युते व्याघ्रवदन चतुर्भुज खङ्गचर्मधर शूलवराङ्कित कृष्णाम्बरमाल्यानुलेपन गोमेदकाभरणभूषितसर्वाङ्ग शौर्यनिधे नमस्ते सनद्धकृष्णध्वजपताकोपशोभितेन कृष्णसिंहरथवाहनेन मेरु प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छ सर्पकालाभ्या पद्मनैर्ऋतदलमध्ये सीसकप्रतिमा दक्षिणामुखी शूर्पाकारपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवन्केतो कामरूप जैमिनिगोत्र मध्यदेशेश्वर धूम्रवर्णध्वजाकृते द्विभुज गदावरदाङ्कित चित्राम्बरमाल्यानुलेपन वैदूर्यमयाभरणभूषितसर्वाङ्ग चित्रशक्ते नमस्ते सनद्धचित्रध्वजपताकोपशोभितेन चित्रकपोतवाहनेन मेरु प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छब्रह्मचित्रगुप्ताभ्या सह पद्मवायव्यदलमध्ये कास्यप्रतिमा दक्षिणामुखी ध्वजाकारपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि ।५।

५—इसके अनन्तर आवाहन के मन्त्र बतलाये जाते है—प्रणव (ॐ) का उच्चारण करके हे भगवन् आदित्य ! ग्रहो के अधिपति ! कश्यप गोत्र

वाले ! कलिङ्ग देश के ईश्वर ! जपा के पुष्प के समान अङ्ग की द्युति वाले ! दो भुजाओ से युक्त ! पद्म और अभय दान हाथो मे धारण करने वाले ! सिन्दूर के वर्ण वाले वस्त्र-माल्य अनुलेपन से युक्त तथा उज्ज्वल माणिक्यो से स्वन्वित सम्पूर्ण आमरणो वाले ! तेज की खान ! त्रिलोकी को प्रकाश देने वाले ! त्रिदेवता मय मूर्त्ति वाले ! भास्कर ! आपको नमस्कार है। सन्नद्ध अरुण ध्वजा और पताका से उपशोभित सात अश्वो से युक्त रथ के वाहन के द्वारा मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए अग्नि और रुद्र के साथ आइये। पद्म की कर्णिका मे पूर्व की ओर मुख वाली ताम्र की प्रतिमा मे वर्त्तुल पीठ पर अधिष्ठित होइए पूजाके लिये तुम्हारा आवाहन करता हूँ।

हे भगवन् ! हे सोम ! द्विजो के अधिपति ! सुधामय शरीर ! आत्रेय गोत्र वाले ! यामुन के देश के ईश्वर हे गो क्षीर के समान धवल अङ्ग कान्ति वाले ! दो भुजाओ से युक्त गदा और वरदान से युक्त हाथो वाले ! शुक्ल माल्य, वस्त्र और अनुलेपन वाले ! सब अङ्गो मे भौतिक आभरणा से रमणीय ! सब लोको का आप्यायन करने वाले ! देवताओ के द्वारा आस्वादन करने योग्य मूर्त्ति वाले आपको नमस्कार है। सनद्ध पीत वर्ण की ध्वजा पताकाओ से उपशोभित दश श्वेत वण वाले अश्वोसे युक्त रथ क वाहन वाले ! मेरुपवत की प्रदक्षिणा करते हुए जलो और उमा के साथ आइये और पद्म के आग्नेय दिशा वाले दल के मध्य मे स्फटिक प्रतिमा जोकि प्रत्यङ्मुखी है चौकोर पीठ पर अधिष्ठित होइये। पूजा के लिये आपका आवाहन करता हू।

हे भगवन् ! अग्नि की आकृति वाले अङ्गारक ! भारद्वाज गोत्र वाले ! अवन्ति देश के ईश्वर ! ज्वालाओ के पुञ्ज के समान अङ्ग की द्युति वाले ! चार भुजाओ से युक्त ! चारो हाथो मे शक्ति-शूण गदा और खड्ग को धारण करने वाले ! रक्त वण के वस्त्र, माल्य और अनुलेपन वाले ! प्रवाल (मूगा) के आभरणो से भूषित समस्त अङ्गो वाले ! दुर्धर आलोक दीप्त वाले ! आपको नमस्कार है। सनद्ध रक्त ध्वजा और पता-

काओ मे उपशोभित ! रक्त वर्ण वाले मेषो से युक्त रथ के वाहन के द्वारा मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए भूमि और स्कन्द के सहित आइये और पद्म के दक्षिण दल के मध्य मे रक्त चन्द प्रतिमा जो दक्षिण मुख वाली है त्रिकोण पीठ पर अधिस्थित होइये । पूजा करने के लिये आपका आवाहन करता हूँ ।

हे भगवन् सौम्य ! सौम्य आकृति वाले ! सर्व ज्ञान से परिपूण अत्रि गोत्र वाले ! मगध देश के स्वामी ! कुङ्कुम के वर्ण के तुल्य अङ्ग की द्युति वाले ! चार भुजाओ वाले ! खङ्ग खेटक गदा और वरदानो को चारो हाथो मे रखने वाले ! पीले वर्ण का वस्त्र, माल्य अनुलेपन धारी ! मरकत मणि के आभूषणो से अलङ्कृत सब अङ्गो से युक्त ! विशेष रूप से वृद्ध मति से समन्वित ! आपके लिये प्रणाम है । सन्नद्ध पीत ध्वजा और पताकाओ से शोभा समन्वित चार सिहो से युक्त रथ के वाहन द्वारा मेरु गिरि की प्रदिक्षणा करते हुए विष्णु पुरुषो के साथ आइये और पद्म के ईषान दिशा की ओर के दल के मध्य मे उद्ङ्मुखी सुवर्ण प्रतिमा मे वाणाकार पीठ के मध्य मे अधिष्ठित होइए । अचन करने के लिये आपका आवाहन करता हूँ ।

हे भगवन् ! वृहस्पते ! सब देवो के आचार्य ! आङ्गिरस गोत्र युक्त ! सिन्धु देश के अधीश्वर ! तपे हुए सुवण के समान अङ्ग की दीप्ति वाले ! चार भुजाओ से सयुत ! कमण्डलु, अक्ष सूत्र और वरदान से अङ्कित हाथो वाले ! पीत वस्त्र, माल्य और अनुलेपन से समन्वित ! पुष्पराग मय आभरणो से रमणीय ! समस्त विद्याओ के अधिपति ! आपको अभिवादन है । सनद्ध पीत ध्वजा-पताकाओ से शोभा वाले और पीत अश्वो से युक्त रथ के वाहन के द्वारा मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए इन्द्र और ब्रह्मा के साथ आओ और पद्म के उत्तर दिशा वाले दल के मध्य मे उद्ङ्मुखी सुवण प्रतिमा मे दीघ चतुरस्र पीठ पर अधिष्ठित होइए । मै अभ्यर्चन के लिये आपका इस समय मे आवाहन करता हूँ ।

हे भगवन् भागव ! हे समस्त दैत्यो के गुरुवर ! भागव गोत्र वाले ! भोजकर देश के ईश्वर ! रजत के समान उज्वल अङ्ग की कान्ति वाले !

चार भुजाओ से युक्त ! वे चारो भुजाएं कमण्डलु अक्ष सूत्र और वरदान से समन्वित है, शुक्ल वस्त्र, माल्य और अनुलेपन वाले ! हीरो से जटित आभरणो से सब अङ्गो वाले ! सम्पूर्ण नीति शास्त्र मे निपुण मति मे सयुत ! आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम है। सनद्ध शुक्ल ध्वजा और पताकाओ से शोभा वाला, शुक्ल अश्व और रथ वाहन के द्वारा मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए इन्द्राणी और इन्द्र के सहित आइए और पद्म के पूर्व दल के मध्य मे रजत प्रतिमा मे जो प्राङ्मुखी है पश्चकोण के पीठ पर अधिष्ठित होइए। मैं पूजा के लिये आपका आवाहन करता हू।

हे भगवन् शनैश्चर ! हे भास्कर के पुत्र, काश्यप गोत्र वाले, सुराष्ट्र देश के अधीश्वर ! काजल के समान अङ्ग की कान्ति वाले ! हे चतुर्भुज ! चाप, तूणीर, कृपाण और अभय दान चारो हाथो मे ग्रहण करने वाले ! नीले वस्त्र, माल्य और अनुलेपन वाले ! नीलम रत्नो से जटित भूषणो से अलङ्कृत सब अङ्गो वाले ! समस्त भुवनो मे भीषण और अमर्ष की मूर्त्ति वाले ! आपको नमस्कार है सनद्ध नील ध्वजा और पताकाओ से उपशोभित नीले गिद्धो से युक्त रथ के वाहन के द्वारा मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए आइए प्रजापति और यम के सहित पश्चिम दल के मध्य मे काले लोहे की प्रत्यङ्मुखी प्रतिमा मे चाप के आकार वाले पीठ पर अधिष्ठित होइए। पूजा क लिये आपका आवाहन करता हूँ।

हे भगवन् हे राहो ! हे रवि और सोम के मदन करने वाले ! सिंहि के नन्दन ! पैठीनसि गोत्र वाले ! वर्बर देश के अधीश्वर ! काल मेघ के समान द्युति वाले ! व्याघ्र के समान मुख वाले ! हे चतुर्भुज ! खड्ग और चर्म (ढाल) को धारण करने वाले तथा शूल और वर से अङ्कित हाथो वाले ! कृष्णा वस्त्र, माल्य और अनुलेपन से समन्वित ! गोमेदक से जटित आभूषणो से विभूषित समस्त अङ्गो वाले ! हे शौर्य की निधि ! आपको नमस्कार है। बँधी हुई कृष्ण वर्ण की ध्वजा और पताकाओ से उपशोभित कृष्ण सिंहो से युक्त रथ के वाहन के द्वारा मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए सप और काल—इन दोनो के साथ यहा पर पधारिये

और पद्म के नैर्ऋत दिशा वाले दल के मध्य मे सीसा की प्रतिमा वाली दक्षिण मुखी मूर्त्ति मे शूर्प के आकार वाले पीठ पर अधिष्ठित होइए। अभ्यर्चन करने के लिये ही मै आपका यहाँ पर आवाहन करता हू।

हे भगवन्! हे केतो! काम से अर्थात् स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले! जमिनि गोत्र से युक्त! मध्य देश के स्वामिन! धूम्र वर्ण वाले ध्वज के तुल्य आकृति वाले! दो भुजाओ से सयुत! हाथो मे गदा और वर धारण करते हुए चित्र वस्त्र, विचित्र माल्य और अनुलेपन वाले! वैदय रत्न से परिपूर्ण भूषणो से अलङ्कृत अङ्गो वाले! हे विचित्र शक्ति शालिन्! आपको मेरा प्रणाम है। सनद्ध विचित्र ध्वजा और पताकाओ से शोभा युक्त चित्र कपान्तो के वाहन के द्वारा मेरु गिरि को प्रदक्षिणा करते हुए ब्रह्मा और चित्रगुप्त के साथ यहाँ आइये तथा पद्म के वायव्य कोण वाले दल के मध्य मे दक्षिण मुखी काँसे की प्रतिमा मे ध्वज के आकार वाले पीठपर अधिष्ठिता होइए। पूजा करने के लिये ही मै यहाँ पर आपका आवाहन करता हूँ।५।

६ ग्रहाणामधिदेवताप्रत्यधिदेवता ।

अथ ग्रहाणामधिदेवताप्रत्यधिदेवतावाहनपिगभ्रू श्मश्रुकेश पिङ्गाक्षत्रिनयनमरुणवर्गाङ्ग छागस्थ साक्षसूत्र सप्तार्चिष शक्तिधरवरदहस्तद्वयमादित्याधिदेवतामग्निमावाहयामि। अथ प्रत्यधिदेवता त्रिलोचनोपेत पञ्चवक्त्र वृषारूढ कपालशूलखड्गखट्वाङ्गधारिण चन्द्रमौलि सदा-शिवमादित्यप्रत्यधिदेव रुद्रमावाहयामि। स्त्रीरूप-धारिणी श्वेतवर्णा मकरवाहना पाशकलशधारिणी-मुक्ताभरणभूषिता सोमाधिदेवता अप आवाहयामि। अक्षसूत्रकमलदर्पणकमण्डलुधारिणी त्रिदशपूजिता सोमप्रत्यधिदेवतामुमामावाहयामि। शुक्लवर्णा दिव्या-भरणभूषिता चतुर्भुजा सौम्यवपुष चण्डाशुसदृशाम्बरा रत्नपात्रसस्यपात्रौषधिपात्रश्चोपेतकरा चतुर्दिङ्नग-भूषिता पृष्ठगतामङ्गारकाधिदेवता भूमिमावाहयामि।

षण्मुख शिखण्डकविभूषण रक्ताम्बरमयूरवाहन कुक्कुट-घण्टापताकाशक्त्युपेत चतुर्भुजमङ्गारकप्रत्यधिदेवता स्कन्दमावाहयामि। कौमोदकीपद्मशङ्खचक्रोपेत चतुर्भुज सौम्याधिदेवता विष्णुमावाहयामि सौम्यप्रत्यधिदेवता विष्णुवत्पुरुषमावाहयामि। चतुर्दन्तगजारूढ वज्राङ्कुशधर शचीपति नानाभरणभूषित बृहस्पत्याधिदेवतामिन्द्रमावाहयामि। पद्मासनस्थ जटिल चतुर्मुखमक्षमालास्रुवपुस्तककमण्डलुधारिण कृष्णाजिनवासस पार्श्वस्थितहस बृहस्पतिप्रत्यधिदेवता ब्रह्माणमावाहयामि। सतानमञ्जरीवरदानधरद्विभुजा शुक्राधिदेवतामिन्द्राणीमावाहयामि। चतुर्दन्तगजारूढ वज्राङ्कुशधर शचीपति नानाभरणभूषित भार्गवप्रत्यधिदेवता शक्रमावहयामि। यज्ञोपवितिन हंसस्थमेकवक्त्रमक्षमालास्रुवपुस्तककमण्डलुसहित चतुर्भुज शनैश्चराधिदेव प्रजापतिमावाहयामि। ईषत्पीन दण्डहस्त रक्तसदृश पाशधर कृष्णवर्ण महिषारुढ सर्वाभरण भूषित शनैश्चरप्रत्यधिदैवत यममावाहयामि। अत्रसूत्रधरान्कुण्डलाकारपुच्छयुक्तानेकभोगान्स्त्रीभोगन्भीषणाकारान्राह्वधिदैवतान्सर्पानावाहयामि। करालवदन नित्यभोषण पाशदण्डधर सपवृश्चिकरोमाण राहुप्रत्यधिदवता कालमावाहयामि। पद्मासनस्थ जटिल चतुर्मुखमक्षमाला स्रुवपुस्तकमण्डलुधर कृष्णाजिनवासस पार्श्वस्थितहस केत्वधिदेवता ब्रह्माणमावाहयामि। उदीच्यवेषधर सौम्यदर्शन लेखनोपत्रोपेत द्विभुज केतुप्रत्याधिदेवता चित्रगुप्तमावाहयामि।६।

६—इसके अनन्तर ग्रहो के अधिदेवता प्रत्यधि देवता वाहन को जो पिङ्ग वर्ण के भ्रू, श्मश्रु और केशो वाला है—पिङ्ग अक्ष और तीन नेत्रों वाला है—अरुण वर्ण के अङ्गो वाला—छाग पर स्थित—अक्ष सूत्र से

युक्त–सात अर्चियो वाला-शक्ति धारी—दोनो हाथो मे वरदान देते हुए आदित्य देव वाले अग्नि का आवाहन करता हूँ। इसके अनन्तर प्रत्यधि-देवता तीन लोचनो से युक्त पाँच वस्त्रो वाला–वृष पर समारूढ-कपाल, शूल, खङ्ग और खट्वाङ्ग को धारण करता–मस्तक मे चन्द्र को धारण करते हुए–सदाशिव आदित्य प्रत्यधिदेव रुद्र का आवाहन करता हूँ। स्त्री का स्वरूप धारण करने वाली–श्वेत वर्ण से युक्त–मकर के वाहन वाली–पाश और कलश को धारण करने वाली–मुक्ताओ के आभूषणोसे भूषित–सोमाधिदेवता अपो का आवाहन करता हूँ। अक्ष सूत्र, कमल, दर्पण और कमण्डलु को धारण करने वाली–देवो के द्वारा पूजित–सोम प्रत्यधिदेवता वाली उमा देवी का आवाहन करता हू। शुक्ल वर्ण वाली–दिव्य आभू-षणो से भूषित–चार भुजाओ वाली–सौम्य शरीर धारिणी–सूर्य के तुल्य वस्त्रो वाली–रत्न पात्र, सस्य पात्र, ओषधि पात्र और पद्म से सयुत करो वाली–चारो दिशाओ मे नगो से भूषित–पृष्ठगत अङ्गारक (मङ्गल) के अधि देवता वाली भूमि का आवाहन करता हू। छै मुखो वाले–शिखण्डक के भूषण वाले–रक्त वण के वस्त्र तथा मयूर के वाहन वाले, कुक्कुट, घण्टा, पताका और शक्ति से युक्त–चार भुजाओ वाले-अङ्गारक के प्रत्या-धिदेवता वाले स्कन्द का आवाहन करता हू।

कौमोदकी, शङ्ख, पद्म और चक्रसे उपेत–चार भुजा वाले–सौम्या-धिदेवता विष्णु का आवाहन करना हूँ। सौम्य प्रत्यधिदेवता-विष्णु वत्पु-रुष का आवाहन करता हूँ। चतुर्दन्त गज पर समारूढ–वज्र और अङ्कुश को धारण करने वाले–शची (इन्द्राणी) के स्वामी–अनेक आभरणो से भूषित–वृहस्पति प्रत्यधिदेव वाले इन्द्र का आवाहन करता हू। पद्म के आसन पर विराजमान–जटा धारी–चार मुखो वाले–अक्ष माला, स्रुक, पुस्तक और कमण्डलु के धारण करने वाले–कृष्ण अजिन के वस्त्र धारी–पार्श्व भाग मे स्थित हस वाले–वृहस्पति प्रत्यधिदेव वाले ब्रह्माजी का आवाहन करता हूँ। सन्तान मञ्जरी और वरदान को धारण करने वाली दो भुजाओ से युक्त–शुक्राधिदेवता वाली इन्द्राणी का मै आवाहन करता हू। चतुर्दन्त गज पर समारूढ़–वज्र और अङ्कुश को धारण करने वाले–

शची के पति—अनेक आभरणो से भूषित—भार्गव प्रत्यधिदेवता वाले शक्र का आवाहन करता हू।

यज्ञोपवीत धारी—हस पर स्थित—एक मुख वाले—अक्ष माला, स्रुक्, पुस्तक और कमण्डलु के सहित चतुर्भुज—शनैश्चर के अधिदेव वाले प्रजा पति का आवाहन करता हू। कुछ थोडे से पीन, दण्ड हस्त, रक्त के तुल्य पाश धारी कृष्ण वण से युक्त, महिष पर समारूढ—सब आभरणो से अलङ्कृत—शनैश्चर प्रत्यधिदेवता वाले यम का आवाहन करता हूँ। अक्ष सूत्र धारी—कुण्डल के आकार वाली पुच्छ से युक्त—एक भोग वाले—स्त्री भोग से सयुत—भीषण आकार वाले—राहु के अधिदेवता वाले सर्पो का आवाहन करता हू। कराल वदन वाले—नित्य ही भीषण—पाश और दण्ड के धारण करने वाले—सर्पो और वृश्चिको के रोमो वाले—राहु प्रत्यधिदेवता वाले काल का आवाहन करता हू। पद्म के आसन पर स्थित—जटाधारी—चतुर्मुख—अक्ष माला, स्रुक, पुस्तक और कमण्डलु के धारण करने वाले—कृष्ण अजिन के वस्त्र वाले—पार्श्व मे स्थित हस वाले—केतुके अधिदेवता वाले ब्रह्माजी का आवाहन करता हूँ। उदीच्य वेषधारी—सौम्य दर्शन से युक्त—लेखनी पत्र मे युक्त—दो भुजा वाले—केतु के प्रत्यधिदेवता वाले चित्रगुप्त का आवाहन करता हू।६।

७ क्रतुसाद्गुण्यदेवतावाहनादि

अथ सादुण्यदेवतावाहन वायुप्रदेशे सर्वत्र सप्रणवव्याहृतिपूर्वक त्रिनेत्र गजानन नागयज्ञोपवीतिन चन्द्रधर दन्ताक्षमाला परशु मोदकोपत चतुर्भुज विनायकमावाहयामि। तत उत्तरत शक्तिबाणशूलखड्गचक्रचन्द्रबिम्बखेटकपालपरशुकण्टकोपेतदशभुजा सिंहारूढा दुर्गाख्यदैत्यासुरहारिणी दुर्गामावाहयामि। श्यामवर्ण त्रिलोचनमूर्ध्वकेश सुदंष्ट्र भ्रुकुटीकुटिलानन नूपुरालकृताङ्घ्रि सर्पमेखलया युत सर्पाङ्गमतिक्रुद्ध क्षुद्रघण्टाबद्धगुल्फावलम्बिकरोटिकामालाधारिणमुरगकौ-

पीनचन्द्रामौलि दक्षिणहस्तै शूलवेतालखड्गदु दुमिदधान वामहस्तै कपालघण्टाचमचाप दधान भीम दिग्वाससम-मितद्यु ति क्षेत्रपालमावाहयाति। धावद्धरिणपृष्ठगत ध्वज वरदानधारिण धूमवर्ण वायुमावाहयामि। नोलोत्पलाभ-नीलाम्बरधारिणचन्द्राङ्कोपेत द्विभुज खेटमाकाशमावा-ह्यामिप्रत्येकमौषधिपुस्तकोपेतदक्षिणवामहस्तावन्योन्य-सयुक्त देहावेकस्य दक्षिणपार्श्वे परस्य वामपार्श्वे रत्नभा ण्डवरशुक्लाम्बरधारिनारीयुग्मोपेतौ देवौ भिषजावश्विना-वाहयामि। अथक्रनुसरक्षकेन्द्रादिलोकपालावाहनम् स्वण वर्ण सहस्राक्षमरावतवाहन वज्रपाणि शचीप्रियमिन्द्र-मावाहयामि। अरुणवर्ण त्रिनेत्र सप्तार्चिष शक्तिधर वर-दहस्तद्वययुग्ममग्निमावाहयामि। रक्तवर्ण दण्डधर पाश-हस्त महिषवाहन स्वाहाप्रिय यममावाहयामि। नील-वर्ण खड्गचमधरमूर्ध्वकेश नरवाहन कालिकाप्रिय निर्ऋतिमावाहयामि। रक्तभूषण नागपाशधर मकर-वाहन पद्मिनोप्रिय सुवर्णवर्ण वरुणमावाहयामि। स्वर्णवर्ण निधीश्वर कुन्तपाणिमश्ववाहन चित्रिणोपिय कुबेरमावाहयामि। शुद्धस्फटिकवर्ण वरदाभयशूलाक्ष-सूत्रधर वृषवाहन गौरीप्रियमीशानमावाहयामीति पूव-वत्पूजयेत् ।७।

७—इसके अनन्तर साद्गुण्य देवता वाहन आदि का वणन किया जाता है—वायु प्रदेश मे मवत्र प्रणव के सहित व्याहृतियो पूवक तीन नेत्रो वाले, गज के समान मुख वाले, नागो के यज्ञोपवीत धारी, चन्द्र को धारण करने वाले, दन्त, अक्ष माला, परशु और मोदक से युक्त, चार भुजाओ वाले भगवान् विनायक का मै आवाहन करता हू। इसके उप-रान्त उत्तर की ओर शक्ति, वाण, शूल, खड्ग, चक्र, चन्द्र बिम्ब, खेट, कपाल, परशु और कण्टक स उपत दश भुजाओ वाली, सिह पर समारूढ, दुर्गा नाम वाली दैत्यो और असुरो के सहार करने वाली दुर्गा देवी का

आवाहन करता हू । श्याम वर्ण वाले, त्रिलोचन, ऊपर की ओर केशो वाले, सुद्दष्ट्र, भृकुटियो के द्वारा कुटिल आनन वाले, नूपुरो से अलङ्कृत चरणो वाले, सर्पो की मेखला से युक्त, सर्पों से युक्त अङ्ग वाले, अत्यन्त क्रुद्ध, क्षुद्र घण्ट से वद्ध गुल्फो मे अवलम्बी करोटिका माला के धारण करने वाले, उरगो की कोपीन वाले, चन्द्रमौलि, दाहिने हाथो मे शूल, वेताल, खड्ग, दुदुभि धारण करने वाले, वाँये करो के द्वारा कपाल, घण्टा, चर्म और चाप को धारण करने वाले, भीम, दिग्वास के समित द्युति वाले क्षेत्रपाल का आवाहन करता हू ।

दौडते हुए हरिण की पीठ पर स्थित ध्वजा और वरदान के धारी, धूम्र वण वाले वायु का आवाहन करना हूँ । नील उत्पत के समान आभा वाले, नील वस्त्र के धारण करने वाले, चन्द्रमा के अङ्क से युक्त, दो भुजाओ वाले खेट आकाश का आवाहन करता हू । प्रत्येक मे ओपवि और पुस्तक से उपेत दक्षिण तथा वाम हाथो वाले, परस्पर मे सयुक्त देहो के धारण करने वाले, दक्षिण पार्श्व मे करके वाम पार्श्व मे रत्न भाण्डार, शुक्ल वस्त्र धारी नारी युग्म से युक्त देव भिषज अश्विनी कुमारो का आवाहन करता हू । इसके अनन्तर क्रतुओ के सरक्षक इन्द्रादि लोक-पाल वाहन-स्वर्ण के समान वर्ण वाले, सहस्र नेत्रो वाले, ऐरावत वाहन वाले, हाथ मे वज्र धारण करने वाले, शची के प्रिय इन्द्र का आवाहन करता हू । अरुण वर्ण से युक्त, तीन नेत्रो वाले, अक्ष सूत्र से युक्त, सात अचियो वाले, शक्ति धारी, दोनो हाथो मे वरदान देने वाले अग्नि का आवाहन करता हू । रक्त वण वाले, दण्डधारी, हाथ मे पाश ग्रहण करने वाले, महिष के वाहन के सहित और स्वाहा प्रिय यम का आवाहन करता हू । नील वण वाले, खड्ग और चम को धारण वाले, उध्व केशो वाले, नर के वाहन वाले, कालिका प्रिय निऋति का आवाहन करता हूँ । रक्त भूषण वाले,नाग की पाश के धारण करने वाले, मकर वाहन, पद्मिनी प्रिय, सुवर्ण के समान वर्ण से युक्त वरुण का आवाहन करता हू । स्वर्ण वर्ण वाले, निधियो के स्वामी, हाथ मे कुन्त धारण करने वाले, अश्व के वाहन मे सयुत, त्रिवेणी प्रिय कुवेर का आवाहन करता हूँ । शुद्ध स्फटिक

के वर्ण वाले वरदान, अभयदान, अक्ष सूत्र के धारण करने वाले, वृष वाहन, गौरी प्रिय, ईशान का आवाहन करता हूँ—इस प्रकार पूर्व रीति से पूजन करे ।७।

८ अग्न्युपधानादि ।

अथाग्निमुपसमाधायान्वाधानाद्याज्यभागन्तं कृत्वा सहर्त्विग्भिः समिच्चवर्ज्यानि प्रत्येकं शतैकावराभिः सहस्र पराभिराहुतिभिर्निमित्तशक्त्यपेक्षया जुहुयात्प्रधानदशांशेन पार्श्वदेवतयोस्तदर्धेनेतरेषां स्वाहान्तैर्नामभिर्होमस्तत्तल्लिङ्गमन्त्रैर्वा सकृदवदानेन चरुहोमं पाणिना प्रभूतास्तिलाश्च व्याहृतिभिर्हुत्वा प्राक् स्विष्टकृतो ग्रहाणां घण्टादिशब्दैरुपहारानुपगृह्य सपुष्पाणि रत्नानि निवेदयेदभावे सुवर्णपुष्पाणि वा । तान्नमस्कृत्य प्रसीदन्तु भवन्त इति प्रसाद्य होमं समापयेत्स यदि मन्त्रैरिष्टस्तदैते मन्त्रा भवन्त्याकृष्णेन रजसा वर्तमान, आप्यायस्व समेतु ते, अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्, उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः, बृहस्पते अतियदर्यो अर्हात्, शुक्रन्ते अन्यद्यजतन्ते अन्यत्, शमग्निरग्निभिः करत्, कयानश्चित्र आभुवत्, केतुं कृण्वन्नकेतव इति ग्रहाणाम् । अग्निं दूतं वृणीमहे, अप्सुमे सोमो अब्रवीत्, स्योना पृथिवि भवा, इदं विष्णुर्विचक्रमे, इन्द्रश्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि, इन्द्राणीमासु नारिषु, प्रजापतेन त्वदेतान्य०, आयङ्गौः पृश्निरक्रमीत्, ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तादित्यधिदेवतानाम् । त्र्यम्बकं यजामहे, गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती, कुमारश्चित्पितरं वन्दमानम् । सहस्रशीर्षा पुरुष, ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि, इन्द्रमिद्देवतातये, यमाय सोमं सुनुत, परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम् । सचित्रचित्रं चितयन्तमस्मै, इति

प्रत्यधिदेवतानाम् । आतून इन्द्र क्षुमन्तम्, जातवेदसे सुनवाम सोमम्, क्षेत्रस्य पतिना वयम्, काणाशिशु-महानाम्, आदित्प्रत्नस्य रेतस, अश्वितार्वतिरस्म-देतीत्येतत्सादृगुण्यदेवतानाम् । इन्द्र वो विश्वदम्परि, अग्निमीले पुरोहितम्, यमाय सोम सुनुत, मोषुण परापरा, उदुत्तम मुमुग्धिन, तव वायवृतस्पते, त्व न सोम विश्वत, कद्रुद्राय प्रचेतस इति लोकपा-लानाम् । ।

८—इसके अनन्तर अग्नि उपसमाधान करके अन्वाधानादि आज्य भाग के अन्त तक करके ऋत्विको के साथ समि आर्वाज्यो को प्रत्येक मे एक सौ से अवर और एक सहस्र से पर आहुतियो के द्वारा निमित्त शक्ति अपेक्षा से हवन करना चाहिए । प्रधान दशाश म पाश्व देवताओ का और उसमे आवे के द्वारा इनरो का स्वाहा अन्त मे लगाकर नामो से होम करे अथवा तल्लिङ्ग मन्त्रो से सकृद् अवदान के द्वारा चरु का होम करे । हाथ से बहुत से तिलो को व्याहृतियो से हवन करके स्विष्ट-कृत से पहिले ग्रहो का घण्टादि शब्दोमे उपहारो का उपग्रहण करके पुष्पो के सहित रत्नो को निवेदित करना चाहिए और । रत्नो का अभाव हो तो सुवर्ण पुष्पो का ही विकल्प मे निवेदन करना चाहिए । उसको नमस्कार करके "आप प्रसन्न होइए"—इस रीति से प्रसन्न करे और होम का समापन करना चाहिए । यदि वह मन्त्रो के द्वारा ही अभीष्ट हो तो दो मन्त्र होने है—"आकृष्णेन रजसा वर्त्तमान '— आप्यायस्व समेतु ते' — 'अग्निमूर्धादिव ककुत्'—'उद्बुध्यध्व समनस सखाय ,— बृहस्पते अति यदर्यो अर्हात्—शुक्रन्त अन्यद्यजतन्ते अव्यत्'—'शमग्नि रग्निनि करत्'—'कथानश्चित्र आभुवत्'—'केतु कृण्वन्नकेतव' ये यज्ञो के मन्त्र है । अधि देवताओ के मन्त्र ये है—"अग्नि दूत वृणीमहे—अप्सु मे सोमो अब्रवीत्—स्योना पृथिवि भव —इद विष्णुर्विचक्रमे—इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि—इन्द्राणीमासु नारीषु प्रजापतेन त्वदेतान्य आयङ्गौ पृश्निरक्र-

मोत्—ब्रह्म जज्ञान प्रथम पुरस्तात्'—इति । "त्र्यम्बक यजामहे —गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती—कुमारश्चित्पितर वन्दमानम्—सहस्रशीर्षा पुरुष —ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि—इन्द्रमिद्देवतातये यमायसोम सुनुत—पर मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम्—सचित्र चित्र चितयन्त मस्मै—ये प्रत्यधि देवताओ के है । "आतून इन्द्र क्षुमन्तम्—जातवेदसे सुनवाम सोमम्—क्षेत्रस्य पतिना वयम्—कृणा शिशु महीनाम्'—आदित्प्रत्नस्य रेतस—अश्विनावर्त्तिरस्मदेति—ये तत्साद्गुण्य देवताओ के मन्त्र हे ।" इन्द्र वो विश्वतस्परि—अग्निमीले पुरोहितम्—यमाय सोम सुनुत—मोषुण परापरा—उदुत्तम मुमुग्धिन —तववाय वृतस्पते—त्वन सोम विश्वत —कद्रुदाय प्रचेतस —ये लोकपालो के मन्त्र हे ।

६ यजमानाभिषेक ।

अथ यजमानाभिषेको ग्रहवेदे प्रागुदीच्या शुचौ देशे समृष्टालकृते प्राक्प्रवणे चतुष्पाद दीर्घ चतुरस्र सोत्तरच्छद पीठ निधाय तत्रोदगग्रानमूलान्हरितदर्भानास्तीय प्राङ्मुख कर्तार सामात्यमुपवेश्याऽऽवाय सहर्त्विग्भिरभिषेककुम्भमादाय प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठन्नौदुम्बर्याऽऽद्रया शाखया सपलाशया हिरण्मय्या सकुशदूर्वयाऽन्तर्धाय कुम्भोदकपृषद्भिरषिञ्चेत् । अब्लिङ्गाभिर्वारुणीभि पावमानीभि अन्याभिश्च शान्तिपवित्रलिङ्गाभिग्र हाभिषेकमन्त्रै समुद्रज्येष्ठा इति सूक्तेन सुरास्त्वामिति सूक्तेन (स्तोत्रेण) च श्रीसूक्तेनेमा आप शिवतमा इत्यृचेन देवस्य त्वेति च यजुषा भूर्भुव स्वरिति च व्याहृतिभिरषिक्तस्तेभ्यो ग्रहोक्ता दक्षिणा दद्यात्सा गौ शङ्खारक्तोऽनड्वान्हिरण्य पीत वास श्वेताश्व कृष्णा गौ कार्ष्णायस हस्ती छागो वेति हीना पुनर्हिरण्येन समिता कुर्यात् । अभावे सर्वेषा हिरण्यमेव वा तुष्टिकर दद्याद्द्विगुणमाचार्याय । अत्र

घृतान्नेन ब्राह्मणान्भोजयित्वा शान्ति पुष्टिस्तुष्टि श्चास्त्विति वाचयेत् । सबन्धिज्ञातिबान्धवाश्च तोषयेदेप ग्रहयज्ञ सर्वानिष्टशमन सर्वपुष्टिकर सर्वाभीष्टकरस्त स्मादेन विभववान्विशेषत कुर्यात् । अविभव शान्ति-पुष्टकामो यथोपपत्ति कुर्यात् ।६।

६—इसके अनन्तर यजमान का अभिषेक होता है । ग्रह वेदीके पूव-उत्तर मे शुचि देशमे जो कि भली-भाति मार्जित एव अलकृत हो और प्राक्प्रवण हो चतुष्पाद, दीघ चौकोर उत्तर छदके सहित पीठ पर रखकर उस पर उदग्र मूलरहित हरे दर्भों को बिछाकर पूव की ओर मुख वाले अमात्यो के सहित कर्त्ता को बिठाकर आचाय ऋत्विको के साथ अभिषेक करने का कुम्भ को लेकर पश्चिम की आर मुख करके स्थित होता हुआ गूलर की गीली शाखा से जिसमे पत्ते भी होगे और हिरण्यमयी कुश और दूर्वा के सहित अन्दर डालकर उदक कुम्भ की विन्दुओ से अभिषिञ्चन करना चाहिए । अब्लिङ्गा वारुणी पायमानी ऋचाओ से—और महाभिषेक के मन्त्रो से—'समुद्र ज्येष्ठा' इस सूक्त से—'सुरासनम्'—इस सूक्त से (स्तोत्र स) और श्रीसूक्त से—'इमा आप शिवतना" इस ऋचा से—'देवस्यत्व इस यजु मे–'भूभु व स्व इन व्याहृतियो से अभिषिक्त होता हुआ उन सबको ग्रहा के लिय कथित दक्षिणा देवे । वह गौ-शख-रक्त अनड्वान्–हिरण्य-पीत वस्त्र- श्वेत अश्व–कृष्ण गौ–काष्णायस–हस्ती अथवा छाग इनको पुन हिरण्य मे समित करना चाहिए । इन सब का यदि अभाव हो तो उस दशा मे सबको तुष्टि करने वाला हिरण्य ही देवे। आचाय को दुगुना देना चाहिए । यहा पर घृतान्न के द्वारा ब्राह्मणो को भोजन कराकर शान्ति–पुष्टि और तुष्टि होव–ऐसा वाचन करना चाहिए सम्बन्धी–ज्ञाति और वान्धवो को तुष्ट करना चाहिए । यह ग्रह यज्ञ है, समस्त अनिष्टो का शमन करने वाला होता है, सब प्रकार की पुष्टि के करने वाला है । सभी अभीष्टो को पूरा करने वाला है इस कारण से वैभव वाले पुरुष को यह विशेष रूप से करना चाहिए । जो विभव रहित

उमे शान्ति–पुष्टिका कामना वाला होकर उपपत्ति के अनुसार ही करना चाहिए ।६।

१० होमविधानादिप्रयोग ।

अथ होमोऽहरहश्चैत्ययज्ञो गृहस्थो ह्यहरहरिष्टान्देवा निष्ट्वाऽभीष्टार्थोश्चिनोति तस्य तेऽहरहश्चैत्यास्ते गण पतिर्वा स्कन्दो वा सूर्यो वा सरस्वती वा गौरी वा गौरीपतिर्वा श्रीपतिर्वा श्रीर्वाऽन्यो वा याऽभिमतम्त एव यथारुचि समस्ना वेज्यन्ते केचिद्गणपतिमादित्य शक्तिमच्युत शिव पञ्चकमेव वाऽहरहर्यजन्ते । तानप्सु वाऽग्नौ वा सूर्ये वा स्वहृदये वा स्थण्डिले वा प्रतिमासु वा यजेत प्रतिमास्वक्षणिकासु नाऽऽवाहनविसजन भवत स्वाकृतिषु हि शस्तासु देवता नित्य सनिहिता इत्यस्थिराया विकल्प स्थण्डिले तूभय भवतु प्रतिमा प्राङ्मुखीमुदङ्मुखो यजेतान्यत्र प्राङ्मुख सभृतसभारो यजनभवनमेत्य द्वारदेशे स्थित्वा हस्ततालत्रयेणापसर्पन्तु ये भूता ये भूताभूमिसस्थिता । येभूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञयेति विघ्नानुद्वास्य प्रविश्य येम्यो माता मधुमत्पिन्वते पय एवापित्रे विश्वदेवाय वृष्ण इति जपित्वा शुभावासने पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्व विष्णुना धृता । त्व च धारय मा देवि पवित्र कुरु चाऽऽसनमित्युपविश्याऽऽचम्याऽऽयतप्राण सकल्प्य शुविशङ्खादिपात्रमद्भि प्रणवेन पूरयित्वा गन्धाक्षतपुष्पाणि प्रक्षिप्य सावित्र्याऽभिमन्त्र्य तोर्थान्यावाह्याभ्यर्च्य पवित्रपुष्पाणि तदुदकेनाऽऽपोहिष्ठीयामिरात्मानमायतन यञ्जनाङ्गानि चाभ्युक्ष्य क्रियाङ्गोदककुम्भ गन्धादिभिरभ्यर्च्य, तेनोदकेनाबर्यान्कुर्वीत नमोन्तनाम्ना तल्लिङ्गमन्त्रेण वा क्रमेणोपचारान्दद्यात्पुष्पोदकेन पाद्यमर्घ्य च पात्रान्तरेण सगन्धाक्षतकुसुमा-

न्दद्यादावाहनमासन पाद्यमर्घ्यमाचमनीय स्नानमाच-
मन वस्त्रमाचमनमुपवतिमाचमन गन्धपुष्पाणि धूप
दीप नैवेद्य पानार्थ जलमुत्तरमाचमनीय मुखवास स्तोत्र
प्रणाम दक्षिणा विसर्जन च कुर्यात् । असपन्नो मनसा
सपादयेदाचमन न पृथगुपचार । प्रणामस्तोत्राङ्ग
दक्षिणादि विसर्जनाङ्गम् । अथ मन्त्रा । गणाना त्वा
गणपति हवामह इति गणपते, कुमारश्चित्पितर वन्द
मानमिति स्कन्दस्य, आकृष्णेन रजसा वर्तमान इत्या-
दित्यस्य, पावका न सरस्वतीति सरस्वत्या, जात-
वेदसे सुनवाम सोममिति शक्ते, त्र्यम्बक यजामह
इति रुद्रस्य, गन्धद्वारामिति श्रिय, इद विष्णुर्विचक्रम
इति विष्णो । एव षोडशेमानुपचारान्पौरुषेणैव
सूक्तेन प्रत्यृच सवत्रैव प्रयुज्यन्तेऽन्ये सावित्र्या वा जात-
वेदस्यया वा प्राजापत्या व्याहृत्या वा प्रणवेनैव वा
कुवन्ति स एप देवयज्ञोऽहर्गोदानसमित सर्वाभीष्टप्रद
स्वर्ग्योऽपवर्ग्यश्च तस्मादेवमहरह कुर्वीत तमेन वैश्व-
देव हुतशेषेण पृथगन्नेन वा कुर्यान्नास्य शेषेण वैश्वदेव
कुर्यात् । अथास्य शेपेण गृहदेवताना बलिर्द्वारे पिता-
महाय प्रक्रीडे रुद्राय, अथ गृहे प्राच्या दिशि प्रतिदिश
सनवग्रहायेन्द्राय बलभद्राय यमविष्णुभ्या स्कन्दवरुणा-
भ्या सोमसूर्याभ्यामश्विभ्या वसुभ्यो नक्षत्रेभ्योऽथ
मध्ये वास्तोष्पतये ब्रह्मणेऽथ प्रागादिभित्तिमूलेषु
सिद्ध्यै वृद्ध्यै कीर्त्यै वरुणायोदधानेऽश्विभ्या दृषदुप-
लयोर्द्यावापृथिवीभ्या मुलूखलमुसलयोरथ निष्क्रम्य
भूमावप आसिच्य श्वचाण्डालपतितवायसेभ्योऽन्न भूमौ
विकिरेत् । ये भूता प्रचरन्ति दिवा बलिमिच्छन्तो
वितुदस्य प्रेष्ठा । तेभ्यो बलिं पुष्टिकामो हरामि मयि
पुष्टि पुष्टिपतिर्ददात्विति रात्रौ चेन्नक्त वा बालमिति

ब्रूयादथ प्रक्षालितपादपाणिराचम्य गृह प्रविशेत्
' शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्ष द्यौर्नो देव्यभयनो अस्तु।
शिवा दिश प्रदिश उद्दिशो न आपो विद्युत परिपान्तु
विश्वत इति जपित्वाऽन्यानि च स्वस्त्ययनानि ततो
मनुष्ययज्ञपूवक भुञ्जीत । १० ।

१० इसके अनन्तर होम है । प्रतिदिन चैत्ययज्ञ वाला गृहस्थ प्रतिदिन इष्ट देवो का यजन करके अभीष्ट अथ का चयन करता है । उसके नित्य प्रति वे चैत्य है—गणपति–स्कन्द—सूय–सरस्वती–गौरी–गौरीपति–श्रीपति—श्री अथवा अन्य जो कोई भी देव अभिमत होवे यथारुचि अथवा सभी देवो का यजन किया जाता है । कुछ लोग गणपति, आदित्य, शक्ति, अच्युत और शिव-इन पॉच ही देवो का प्रतिदिन यजन किया करते है उन देवो को जल मे अथवा अग्नि मे सूय मे अपने हृदय मे-स्थण्डिल मे अथवा प्रतिमाओ मे यजन करे । अक्षणिका प्रतिमाओ मे आवाहन और विसजन नही होता है । अपनी आकृति वाली प्रशस्त प्रतिमाओ मे देवता नित्य ही से निहित रहा करते है । जो अस्थिरा है उनमे विकल्प होता है । स्थण्डिल मे तो दोनो ही बाते होती है । प्राङ्मुखी प्रतिमा को उत्तर की ओर मुख वाला होकर ही यजन करना चाहिए । अन्यत्र प्राङ्मुख होता हुआ सभी ससार से युक्त होकर यजन करने के भवन मे गमन करे । द्वार देश मे स्थित होकर हाथ की तीन तालिया बजावे और यह विद्वान् को वहा पर कहना चाहिए कि-जो प्राणी हो गये और जो भूमि मे सस्थित है तथा प्राणी विघ्नो के करने वाले है,वे सब भगवान् शिव की आज्ञासे अपसर्पण करे तथा नष्ट होजावे फिर अन्दर प्रवेश करे । "येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयएवापित्रे निम्न देवाय कृष्ण,-इसका जप करके शुचि आसन पर हे पृथ्वि! आपने लोको का धारण किया है और हे देवि ! आपको भगवान् विष्णु ने धारण किया था हे देवि ! अब आप मुझको धारण करो और आसन को पवित्र करो । यह कह कर आसन पर उपविष्ट हो जावे । आचमन करके आयत प्राण होता हुआ सङ्कल्प करके शुद्ध शख आदि पात्र को जल से प्रणव के द्वारा पूर्ण करके गन्ध अक्षत पुष्पो का प्रक्षेप करके सावित्री से

अभिमन्त्रित करना चाहिए। तीर्थों का आवाहन करके पवित्र पुष्पों से अभ्यचन करे और उस उदक से 'आपोहिष्टामय भुव "इन ऋचाओं से अपने आपका—आयतन का और यजनाङ्गो का अभ्युक्षण करना चाहिए क्रियाङ्गोदककुम्भ का गन्धादि के द्वारा अभ्यर्चन करके उस उदक से अवघ्य करे। अन्त मे 'नम'—यह लगा कर नामो से अथवा तल्लिङ्ग मन्त्र से क्रम से उपचारो को निवेदिन करना चाहिए। पुष्पोदक के द्वारा पाद्य और अघ्य देवे। अन्य पात्र से ग धाक्षत कुसुमो को निवेदित करे। आवाहन आसन-पाद्य अघ्य आचमनीय स्नान—आचमन—वस्त्र—आचमन—उपवीत आचमन—गन्ध ओर पुष्प-धूप-दीप नैवेद्य-पानार्थ जल उत्तर आचमनीय-मुखवास स्तोत्र-प्रणाम दक्षिणा और विमजन करे। जो सम्पन्न न हो उसे मन से ही सम्पादन करना चाहिये। आचमन पृथक उपचार नही है। प्रणाम स्तोत्राङ्ग दक्षिणादि विसजनाङ्ग है। इसके अनन्तर इनके मन्त्र बतलाय जाते है—"गणाना त्वा गणपति हवामहे"—यह गणपति का मन्त्र है। "कुमारश्चित्पितर व दमानम्" इति—यह स्कन्द का मन्त्र है।" "आकृष्णेन रजसा वत्त मान" इति—यह आदित्य का मन्त्र है। "पावकी न सरस्वती" इति—यह सरस्वती का मन्त्र है। "जातवेदसे सुनवाम् सोमम्" इति—यह शक्ति का मन्त्र है। त्र्यम्बक यजामहे' इति—यह रुद्र का मन्त्र है। 'गन्धद्वाराम्' इति यह श्री का मन्त्र है। 'इद विष्णुर्विचक्रमे' इति—यह भगवान् विष्णु का मन्त्र है। इस रीति से इन पोडश (सोलह) उपचारो को पौरुष सूक्त से ही प्रत्येक ऋचा से सर्वत्र ही प्रयुक्त किये जाते है। अन्य सावित्री मे—जातवेदस्या स-प्राजापत्या व्याहृति से अथवा प्रणव से करते है। वह यह देवयज्ञ प्रतिदिन गोदान के समान है, समस्त अभीष्ट मनोरथो का देने वाला, स्वग्य अर्थात् स्वग प्रदान करने और अपवग्य अर्थात् मोक्ष देने वाला होता है। इस कारण से नित्यप्रति करना चाहिए। उस इसको वैश्वदेव को हुत शेष अथवा पृथक् अन्न से करे। इसके शेष से वैश्वदेव को नही करना चाहिए। इसके अनन्तर इसक शेष से गृह देवताओ की बलि द्वार मे पितामह रुद्र के लिये देवे। इसके उपरान्त गृह मे, पूव दिशा मे, प्रति दिशा मे नवग्रहो के सहित

इन्द्र के लिये वलभद्र के लिये यम और विष्णु के लिये-स्कन्द वरुण के लिये सोम सूय के लिये-अश्विनीकुमारो के लिये वसुगण के लिये और नक्षत्रो के लिये देवे। इसके अनन्तर प्रागादिमिति मूलो मे सिद्धि के लिये वृद्धि के लिये, श्री के लिये, कीर्त्ति के लिये, वरुणायो दधामे अश्विनी कुमारो के लिये, दृषदुपलो के द्यावा पृथिवी का, उलूखल मुसलो का करे इसके उपरान्त निकलकर भूमि मे जल का आसेचन करके श्वान चाण्डाल पतित और कौओ के लिये अन्न को भूमि मे फैला देवे। जो भी भूत (प्राणी) बलि की इच्छा करते हुए दिवा प्रचरण करते है और वितुह के प्रेष्ठ है उन सबके लिये पुष्टि की कामना करने वाला मै बलि का आहरण करता हूँ। पुष्टि का स्वामी मुझ मे पुष्टि प्रदान करे। यदि रात्रि मे हो तो 'नक्त वा बलिम्'—यह बोलना चाहिये। इसके अनन्तर हाथ पैर धोकर आचमन करे और घर मे प्रवेश करना चाहिए। 'शान्ता पृथिवी शिव मन्तरिक्ष द्यौर्नो देव्यभय नो अस्तु शिवादिश प्रदिश उद्दिश्ये न आपो विद्युत परिपान्तु विश्वत' इति—इस का जप करके और अन्य स्वस्त्ययनो का जाप करना चाहिए। इसके उपरान्त मनुष्य यज्ञ पूवक भोजन करे।१०।

११ भोजनप्रकार ।

अथ भोजनविधिरार्द्रपादपाणिराचान्त शुचौ देशे प्राङ्मुख प्रत्यङ्मुखो वोपविश्य भस्मना वारिणा वा हस्तमात्रे चतुरस्रमण्डले पात्रस्थमन्न प्रणवव्याहृतिपूर्वया सावित्र्याऽभ्युक्ष्य स्वादोपितोमधोपितो इत्यभिमन्त्र्य स य त्वर्तेन परिषिञ्चामीति दिवा परिषिञ्चेदृत त्वा सत्येन परिषिञ्चामीति रात्रावथ दक्षिणतो भुवि भूपतये भुवनपतये भूताना पतय इति नमोन्तै प्राक्सस्थ प्रत्यक्सस्थ वा बलि विकीर्य हस्त प्रक्षाल्य समाहितोऽमृतोपस्तरणमसीत्यप प्राश्य सव्येन पाणिना पात्रमालभ्य, तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठ प्राधाय मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरपानाय कनिष्ठिकानामिकाङ्गुष्ठैर्व्यानाया कनिष्ठिकातर्जन्यङ्गुष्ठैरुदा-

नाय सर्वाङ्गुलीभि समानाय च मुखे जुहुयात्सर्वाभि-
रेव वा सर्वेभ्यो जुहुयादेव वाग्यतो भुक्त्वाऽमृतापिधान-
मसीत्यापिधान प्राश्य शोधितमुखपादपाणिर्द्विराचामेदेव
भुञ्जानोऽग्निहोत्रफलमश्नुते बलपुष्टिमान्भवति सर्वमा-
युरेति । ११ ।

११—इसके अनन्तर भोजन विधिका वर्णन किया जाता है। भीगे हुए हाथो वाला आचान्त होकर शुचि देश मे प्राङ्मुख अथवा प्रत्यङ्मुख होकर बैठकर भस्म से अथवा जल से एक हाथ भर के चतुरस्र मण्डल मे पात्र म स्थित अन्न को प्रणव और व्याहृतियो के सहित सावित्री से अभ्युक्षण करके "स्वाधीयितो मधोपितो" इससे अभिमन्त्रित करके "सत्यु त्वर्तेन परिषिञ्चामि" इससे दिन मे परिषिञ्चन करना चाहिए। "ऋत त्वा सत्येन परिषिञ्चामि" इससे रात्रि मे परिषिञ्चन करना चाहिए। इसके अनन्तर दक्षिण की ओर भूमि मे "भूपतये भुवन पतये भूताना पतये" इससे अन्त मे 'नम' यह लगाकर प्राक् सस्थ अथवा प्रत्यक् सस्थ बालिका विकिरण करके हाथ को धोकर समाहित होकर "अमृतोपस्तरणमसि" इस मन्त्र से जल का वाशन करके सव्य हाथ से जल का स्पर्श करके तर्जनी-मध्यमा और अङ्गुष्ठ से 'प्राणाय स्वाहा'—मध्यमा अनामिका और अङ्गुष्ठ स 'अपानाय स्वाहा'-कनिष्ठिका-अनामिका और अगुष्ठ से व्यानाय स्वाहा'—कनिष्ठिका तर्जनी और अगुष्ठ से 'उदानाय स्वाहा'—सब अगुलियो से 'समानाय स्वाहा' मुख मे हवन करे अथवा सबसे सबके लिये हवन करना चाहिए। इस प्रकार से वाग्यत (मौन) होकर भोजन करके अमृतापिधान मसि इससे अपिधान करके शोधित मुख और हाथो वाला होकर दो बार आचमन करना चाहिए इस प्रकार से भोजन करने वाला अग्नि होत्र का फल प्राप्त करता है—बल और पुष्टि वाला है पूरी आयु को पाता है ।११।

१२ शयनादिविधि ।

अथास्तमिते सायसध्यामुक्तवदुपास्य होमवैश्वदेवगृहब-
ल्यतिथ्यर्चनानि कृत्वा यदि देवादिकर्माण्यकृतानि

यावत्प्रहर यामिन्यास्तावत्क्रमेण सर्वाणि सौर वर्जयित्वा कुर्यादाकृष्णीययैवार्घ्यं दद्यादिति विशषोऽष्टमी चतुर्दशी भानुवार श्राद्धदिन तत्पूवदिन च वजयित्वाऽवशिष्टरात्रिषु नियमेनामात्यै परिवृतो लघु भोजन कृत्वा पत्न्या सह ताम्बूलादिसेवन कृत्वा सध्याया शून्यालये श्मशाने चकवृक्षे चतुष्पथे शिवमातृकायक्ष नागस्कन्दभैरवाद्युग्रदेवगृहेषु धान्यगोदेवविप्राग्निरूपाणामुपरि वाऽशुचौ देशऽशुचिराद्र वस्त्रादी न नग्न शयन कुर्यात् । रात्रीव्यख्यदायतीति सूक्त जपित्वा प्राक्शिरा दक्षिणत [शिरा वा] शिरो बर्ष्टायत्वा देवता नत्वा स्मरण च कृत्वा वैणवदण्डमुदक पात्र च शयनसमीपे निधाय प्रक्षालितपाद शयन कुर्यात्। प्रदोष परयामौ निद्रयाऽतिक्रम्याथ प्रभात इष्टदेवता मनसा नत्वा तदह कृत्य स्मृत्वा धर्मशास्त्रोक्तविधिना मूत्रपुरीषोत्स र्गादि कुर्यात् । १२ ।

१२—इसके अनन्तर सूय के अस्तगत होने के समय मे उक्त के समान साय सन्ध्या की उपासना करक होम वश्वदेव गृह बलि और अतिथियो का अभ्यर्चन करके निवृत्त हावे । यदि दिन मे बताये हुए कम न किये हुए होवे तो यामिनी क प्रहर तक क्रम से समस्त कर्मो को सौर कम को छोडकर करना चाहिए । आकृष्णीया से ही अघ्य देवे—यह विशेष है कि अष्टमी चतुदशी-रविवार श्राद्धका दिन तथा उससे पूर्वदिन को वर्जित करके अवशिष्ट रात्रियो मे नियम से अमात्या से परिवृत होता हुआ हल्का भोजन करके पत्नी के साथ ताम्बूल आदि का सेवन करके सन्ध्या मे शून्यालय मे श्मशान म—चैत्यवृक्ष मे चौराहो मे शिव, मातृका, यक्ष नाग, स्कन्द, भैरव आदि उग्रदेवो के गृहो मे-धान्य, गौ, विप्र देव और अग्नि रूप वालो के ऊपर अथवा अशुचि देश मे अपवित्र और गीले वस्त्र और पैरो वाला तथा नग्न होकर कभी शयन नही

करना चाहिए। "रात्रो व्यरुपहायनि" इस सूक्त का जप करके पूव की ओर गिर वाला होकर दक्षिण की ओर गिर को वेष्टित करके, देवता को नमस्कार करे और दव का स्मरण करे। वैणव दण्ड और जल का पात्र को शयन के समीप मे रखकर पैर धोकर शयन करना चाहिए। प्रदोप के वर यामो को निद्रा से अतिक्रमण करके प्रभात मे इष्ट दवता को मन से नमस्कार करके उमदिन मे किये जाने वाले कृत्यो का स्मरण करे और फिर कम शास्त्र म वर्णित विधि म मूत्र मल आदि का त्याग करे।

१३ श्राद्धविधि ।

अथ श्राद्धानि। तान्यष्टौ। पूर्वेद्यु पावणमष्टम्यन्वष्टक्य मासिमासि काम्यमाभ्युदयिकमेकोद्दिष्ट पावण चेति। पर्वामावास्या यत्र भव पावणम्। तदाहिताग्नि पिण्ड-पितृयज्ञो कृत्वा करीत्यनाहिताग्निस्तु तदितरेण व्यतिष-ज्यते यथाऽऽदा पिण्डपितृयज्ञो यावदि०माधानादथ पावण ब्राह्मणपच्छौच द्याच्छादनान्त पुन पितृयज्ञ आ मेक्षणानु०हरणात्पुन पार्वणमा तृप्तिज्ञानादथीभयशेष क्रमेण समापयेदित्येष व्यतिषङ्गस्तमिममुदाहरिष्याम पितृयज्ञऽपराह्णेऽग्निमुपसमाधाय, तस्यैकमुत्मुक प्राक्-दक्षिणा प्रणयेद्ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुरा सन्त स्वधया चरन्ति। परा पुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँ-ल्लोकात्प्रणुदात्वस्मादिति सोऽग्निरतिप्रणीतो भवति। तञ्चोपसमाधायोभौ ग्रादक्षिणा ग्रेर्दर्भै परिस्तृणीया त्सव कर्मा णाह्व प्राग्दक्षिण गमयेत्। अथौपास-नाग्ने प्रागुदक्प्रत्यग्वा प्राग्दक्षिणाग्नान्दर्भानास्तीर्यैकै-कश पात्राणि प्रयुनक्तिचरुस्थाली शूप रफ्यमुलूखल स्रुव ध्रुवा कृष्णाजिन सकृदाच्छिन्नामिध्म मेक्षण कम-ण्डलुमिति दक्षिणतो व्रीहिशकट भवति। शूर्पे स्थाली प्रगृह्य दक्षिणत शकटमारुह्य स्थाली व्रीहिभि पूर-

यित्वा, शूर्पे निमृज्य शूपपतिताञ्शकटे प्रास्य स्थालो-स्थान्कृष्णाजिन उलूखल कृत्वा षत्न्यवहन्यादविवेचम-वहतान्सकृत्प्रक्षाल्यौपासने श्रपयेत् । अर्वागतिप्रणीता-त्स्फ्येन प्राग्दक्षिणायता लेखामपहता असुरा रक्षासि वेदिषद इत्युल्लिख्य तामभ्युक्ष्य सकृदाच्छिन्न`न बर्हिषा-ऽवस्तीर्य बिलीनानुत्पूतमाज्य दक्षिणतो निधाय स्रुवेण स्थालीपाकमभिघार्योदगुद्वास्य प्रत्यगतिप्रणीतादासाद्य दक्षिणतोऽभ्यञ्जनाञ्जनकशिपूपबहृणानि चैतदन्त पिण्डपितृयज्ञ ॐ त्वा पावणमारमेत । १३ ।

१३—इसके अनन्तर श्राद्धो का वणन किया जाता है । श्राद्ध सख्या मे आठ होने है । पूर्वेद्यु—पार्वण—अष्टमी अन्वष्टका—मास मास मे काम्य—अभ्युदायिक एकोदिष्ट पावण है । पर्व आमावस्या, उसमे होने वाला पावण होता है । वह आहिताग्नि पिण्ड पितृयज्ञ करके किया करता है । अनाहिताग्नि तो उससे अतिरिक्त के द्वारा व्यतियक्त होता है । जिस तरह से आदि मे पिण्ड पितृयज्ञ जब तक इध्म का आधान होता है । इसके अनन्तर पार्वण ब्राह्मण यच्छोचाद्य से आछादन के अन्ततक और पुन रितृ यज्ञ मेक्षणानुप्रहरण से पुन पार्वण तृप्ति ज्ञान तक है इसके अनन्तर उभय शेष के क्रम से समाप्त करना चाहिए । यह व्यतिषङ्ग है । उस इसका उदाहरण देगे । पिता यज्ञ मे अपराह्न' मे अग्नि का उप समाधान करके उसके एक उलमुक को प्राक् दक्षिण मे प्रणयन करे—'ये रूपाणि प्रतिनुञ्चमाना असुरा सन्त स्वधया चरन्ति । परापुरो न्पुिरो ये परमयग्निष्टॉल्लोका त्प्रण्ड दात्व एतात् इससे वह अग्नि अति प्रणीत होना है । और उसका उपसमाधान करके दोनो प्राक् दक्षिणाग्रदर्भो से परिवरण करना चाहिए । यहा पर सब कर्मो को प्राग्दक्षिणा को ही समझना चाहिए ।

इसके अनन्तर औपासम अग्नि के प्राक उदक् प्रत्थक्त्वा प्रादक्षिणाग्र दर्भो को आस्तरण करके एक एक पात्रो का प्रयोग करता है । चरस्थाली-

शूर्प– स्फ्य्–उलूखल–मुसल–स्रुव–ध्रुवा–कृष्णाजिन सकृत् आच्छिन्न इध्म मेक्षण–कमण्डलु–इति । दक्षिणत व्रीहि शकट होता है । शूप मे स्थाली को प्रगृहीत करके दक्षिण मे शकट पर समारोहण करे । स्थाली को व्रीहियो से पूर्ण करके शूप मे निमार्जित करे और शूप मे पतितो को शकट मे रखकर स्थाली मे स्थितो को कृष्णाजिन म उलूखल को करे ओर पत्नी अवहनन करे। अविवेच अवहतो को एक बार प्रक्षालन करके ओषासन अग्नि मे श्रपण करना चाहिए "अर्वागति प्रणीता स्स्फ्येन प्रागुदक्षिणायतर लेखमयहता असुरा रक्षासिवेदिषद" इति— उल्लेखन करके उसका अभ्युक्षण करे और सकृदाच्छिन्न वर्हि से अवस्तरण करके विलीनानुसूत आज्य को दक्षिण की ओर रखकर स्रुव से स्थाली पाक का अवधारण करके उत्तर को उद्वासित करे । प्रत्यगति प्रणीता से प्राप्त कर दक्षिण की ओर अन्यज्जनाज्जन कशिपूप वर्हणो को चैतदन्त पिण्डपितृ यज्ञ को करके पार्वण का आरम्भ करे ।१३।

१४ ब्राह्मणसंख्यानियमादि ।

अथ हविरर्हान्ब्राह्मणान्दैवे द्वौ त्रीन्पित्र्या एकैक वोमयत्र शक्तावेकस्यानेकान्वा काले निमन्त्रितान्स्वागतेनाभि पूज्य प्राच्या शुचौ गृहाजिरे गोमयाम्भसा चतुरस्रमुत्तर वर्तुल दक्षिणे मण्डलद्वयमुल्लिख्य प्रागग्रान्दर्भान्यवा नुत्तरेणास्य दक्षिणाग्रान्सतिलानितरत्रोभे अभ्यर्च्य ब्राह्मणा यथोद्देश यथावाक्य पित्र्ये ज्यायासो दैवे कनीयास उभयत्र दक्षिणेन विनियुज्याथ प्रत्यङ्मुख उत्तरे मण्डले दैवनियुक्तयोर्यवाम्भसा पाद्य दत्त्वा शुद्धेन शनोदेव्या पादान्प्रक्षाल्य दक्षिणे चेतरेषा प्राची-नावीती तिलाम्भसा पाद्य दत्त्वा तथैव क्षालयेत् । अथ तानुदग्द्विराचान्तानुद्दिष्टरूपान्ध्यायन्परिश्रिते दक्षि-णप्रवण उपलिप्ते गृहे दैवे प्राङ्मुखावुदगपवर्ग दक्षिणत पित्र्य उदङ्मुखान्प्रागपवर्गानुपवेश्याऽऽचान्तो यज्ञोप-

वीती प्राणानायम्य कम सकल्प्य दैवे सर्वमुपचारमुदङ्-मुखो यज्ञोपवीती प्रदक्षिण कुर्यात्पित्र्ये प्राग्दक्षिणामुख प्राचीनावीती प्रसव्यमथ तिलहस्त 'अपहता असुरा रक्षासि पिशाचा ये क्षयन्ति पृथिवीमनु। अन्यत्रेतो गच्छन्तु यत्रैषा गत मन' इति सवतन्तिलरवकीर्योदीरतामवर उत्परास इति जपित्वा दर्भाम्भसाऽन्नान्यभ्युक्ष्य गयाया जनार्दन वस्वादिरूपान्पितॄश्च ध्यात्वाऽथ प्रथम दैवे ब्राह्मणहस्तयोरपो दत्त्वा युग्मानृजून्प्रागग्रान्दर्भान्विश्वेषा देवानामिदमासनमित्येकैकस्थाने दक्षिणत प्रदायार्ण्णे दद्यात्। एव सर्वोपचारेष्वाद्यन्तयोरपो दद्यात्। अथाभ्युक्षिताया भुवि प्रागग्रान्दर्भानास्तीय तेषु न्युग्बिल पात्रमासाद्योत्तानयित्वा तस्मिन्प्रागग्रे दर्भ युग्मान्तर्हिते अप आसिच्य श नो देव्या अनुमन्त्र्य 'यवोऽसि धान्यराजो वा वारुणो मधुसयुत। निर्णोद सर्वपापाना पवित्रमृषिभि स्मृतमिति' यवानोप्य गन्धादीनि च क्षिप्त्वा देवपात्र सपन्नमित्यभिमृश्य यव-हस्तो विश्वान्देवानावाहयिष्यामीत्युक्त्वा ताभ्यामावाहयेत्युक्ते 'विश्वे देवास आगतेति' पादादिमूर्धान्त सव्या-सस्थितयोयवानवकीय 'आगच्छन्तु महाभागा विश्वे देवा महाबला। ये अत्र विहिता श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते' इत्युपस्थाय स्वाहार्घ्या इत्यर्घ्यमुभया सकृन्निवेद्याथ प्रत्येक प्रथममन्या अपो दत्त्वाऽर्घ्यादर्घ्यमादायेद वो अर्घ्यमिति दत्त्वा 'या दिव्या आप पयसा सबभूवुर्या अन्तरिक्ष्या उत आर्थिवीर्या। हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आप शिवा श स्योना भवन्तु' इत्यनु-मन्त्र्यैव द्वितीयस्यापि शेष दत्त्वाऽनुमन्त्र्य गन्ध पुष्प-धूपदीपानुभयोर्द्विर्दत्त्वाऽऽच्छादन दद्यात्। अथार्चनविधे सम्पूर्णता वाचयित्वा पित्र्यर्चनायामनुज्ञात प्राचीना-

वीतो प्राग्दक्षिणाभिमुख पित्र्चर्न कुर्यात् । १८ ।

१८—इसके अनन्तर हवि के योग्य ब्राह्मणो को जो देव कार्य दो तीन और पित्र्य कम मे एक–एक अथवा दोनो जगह अथवा शक्ति होने पर एक के अनेको समय पर निमन्त्रितो को स्वागत के द्वारा अभिपूजन करके पूव दिशा मे पवित्र गृह के आगन मे गोमय जल से चतुरस्र उत्तर वर्त्तुल दक्षिण मे दो मण्डलो का उल्लेखन करे और प्रागग्र दर्भो को यवो के सहित उत्तर की ओर इसके दक्षिणाग्रो को तिलो के सहित इतरत्र दोनो को अभ्यर्चन करके ब्रह्मा के द्वारा उद्देश के अनुसार पित्र्य कम मे ज्यायान अर्थात् बडे दव कम मे और कनीयान अर्थात् छोटे दोनो कर्मो मे दक्षिण भाग मे विनियुक्त करके प्रत्यट्‌मुख होते हुए उत्तर मण्डल मे दैव नियुक्तो को यव सहित जल मे पाद्य समर्पित करके शुद्ध जल से "शन्नो देव्या" इस मन्त्र से पैरो को धोकर और दक्षिण मे इतरो का प्राचीनावीती होकर तिलो से युक्त जल मे पाद्य देकर उसी प्रकार से प्रक्षालन करना चाहिए । इसके अनन्तर उत्तर की ओर दो बार आचमन किये हुए उदिष्ट रूप वाले उनको ध्यान करते हुए परिश्रित–दक्षिण प्रवण–उपलिप्त गृह मे दव कम मे पूव की ओर मुखो वालो को उदगम वग और पित्र्य कम म दक्षिण मे उदङ्‌मुख प्राग पवर्गों को बिठाकर आचान्त, यज्ञोपवीती प्राणायाम कर करके तथा कम मे सम्पूण उपचार को उदङ्‌मुख और यज्ञोपवीती होकर प्रदक्षिण करना चाहिए । पित्र्य कर्म मे प्राग्दक्षिणा मुख होकर प्राचीनावीती हाथ मे तिल लेकर प्रसव्य हो "अपहता असुरा रक्षासि पिशाचा ये क्षयन्ति पृथिवी मनु । अन्यत्रे तो गच्छन्तु यत्रै तेषा गत मन" इस मन्त्र से सब ओर तिलो का अवकिरण कर 'उदीरता भवर उत्परास" इसको जप करे और दर्भ युक्त जल से अन्नो का अभ्युक्षण करना चाहिए । गया मे जनादन का और वसु आदि रूप पितृगण का ध्यान करे ।

इसके अनन्तर सव प्रथम दैव कम मे ब्राह्मणो के हाथ मे जल देकर दो ऋजु, प्रागग्र दर्भो को 'विश्वेषा देवानामिदमासनम्' यह कह

कर एक एक स्थान में दक्षिण की ओर देकर जल देवे। इस रीति से सभी उपचारों में आदि और अन्त में जल देना चाहिए। इसके उपरान्त अभ्युक्षित भूमि में पूर्व की ओर जिनके अग्रभाव होवें ऐसे दर्भों का आस्तरण करके उन पर त्यग्विल पात्र को रखकर उत्तान कराकर उस पर प्राजग्र दो कर्भों के अन्तर्हित में जलका आसेचन कर शन्नो देव्या" इस मन्त्र से अनुमन्त्रित करे। फिर "यवोऽसि धान्य राजो वा वारुणो मधुमयुत , निर्णोह सर्व पापानां पवित्र मृषिभि स्मृतम्" इस से यवों का वपन कर गन्धादिक का क्षेपण करे। देवपात्र सम्पन्न हो गया है—ऐसा अभिमर्शण करके यव हाथ में लेकर विश्वेदेवों का आवाहन करूंगा—यह कह कर उन दोनों से आवाहन करो—ऐसा कहने पर 'विश्वेदेवास आगता" इससे पाद से आदि लेकर मूर्धा के अन्त तक सव्य में को मस्थितो यवों का अवकिरण कर 'आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबला। ये अत्र विहिता श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते' इससे उपस्थान कर "स्वाहार्घ्या" इससे दोनों को अर्घ्य एक बार निवेदित करके प्रत्येक को अन्य जल देकर "अर्घ्यो दघ्य मादायेद वो अर्घ्यम्" इससे देकर "या दिव्या आप पयसा सबभूवुर्या अन्तरिक्ष्य उत पार्थिवीर्या। हिरण्य वर्णा यज्ञिया स्ता न आप शिवा शं स्योना भवन्तु" इससे अनुमन्त्रित करे इसी प्रकार से द्वितीय को भी शेष देकर अनुमन्त्रण कर गन्ध पुष्प धूप दीपों को दो बार देवे और आच्छादन देना चाहिए। इसके अनन्तर अर्चनविधि का सम्पूर्णता का वाचन कराकर पित्र्यर्चना में अनुज्ञात होता हुआ प्राचीनावीती प्राग्दक्षिणाभिमुख होकर पित्रर्चन करना चाहिए ॥१४॥

१५ गन्धाद्युपचारं पिण्डपितृयज्ञान्तं कर्म च।

पिता पितामहः प्रपितामह इति त्रयस्तेषां प्रत्येकमेक द्वौ बहुवद्वा निर्देश कुर्यात्। अपो दत्त्वा दर्भान्द्विगुणभुग्नानयुग्मान्दक्षिणाग्रानेवगोत्रनामरूपाणापितृणामिदमासनमित्येवमासनेषु सव्यतादद्यादुक्तमपोदानम्। अथभुवमभ्युक्ष्यदक्षिणाग्रान्दर्भानास्तीर्य त्रीणि तैजसाश्ममृन्मयानि

पात्राण्यभाव ए॰द्रव्याणि वा न्यग्दिलानि प्राग्दक्षिणापवग निधायोत्तानानि कृत्वा, तेषु तेष्वयुग्मद र्भान्तर्हितेष्वप आसिच्य त्रीण्यपि सकृच्छ नो देवीरित्यनुमन्त्र्य 'तिलाऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मित । प्रत्नवद्भि प्रत्त स्वधया पितृनिमाँल्लोकान्प्रीणयाहि न स्वधा नम ' इति पृथक्त्रिषु तिलानोप्य गन्धादीन्क्षिप्त्वा पितृपात्र सपन्नमित्येव तानि यथालङ्गमभिमृश्य तिलहस्तो यथालिङ्ग पितृन्पितामहान्प्रपितामहानावाहयिष्यमीत्युक्त्वा, तैराव हयेत्युक्ते मूर्धादिपादान्त दक्षिणाङ्गसस्थमेकैकस्मिन्नुशन्तस्त्वा निधीमहीति तिलानवकीय 'आयन्तु न पितर सोम्यास ' इत्युपस्थायाथोपवीनी स्वधा अर्घ्या इति पूवमर्घ्य निवेद्यान्या अपो दत्त्वा सशेषमघ्यमादाय दक्षिणेन पाणिना सव्योपगृहीतेन 'पितरिद ते अर्घ्य पितामहेद ते अघ्यम् ' इति पितृतीर्थेन दत्त्वा प्रत्येकम् ' या दिव्या आप इत्यनुमन्त्रयेत । उभयत्रैकैकब्राह्मणपक्षे दैवे सवमर्घ्यमेकस्मै दद्यादित्येकमेस्मै निवेद्य पुनरन्याब्दानपूर्व त्रीण्यपि तस्मा एव दद्यात् । अथैकस्यैकस्यानेकपक्षे यावन्त एकैकस्य तेभ्यस्तेभ्य एकक तत्पात्र सकृन्निवद्यार्घ्यमेकैक तावद्वा विगृह्य दद्यान्नतु प्रत्येक पात्राणि कुर्यात् । अथेतराघ्यशेषानाद्यपात्रार्घ्यशेषे च निनीय ताभिरद्भि पुत्र कामा मुखमनक्ति तत्पात्र शुचौ देशे ' पितृभ्य स्थानमसि ' इति निधाय पितामहाघ्यपात्रेण निदध्यात् । न्युब्ज वा तत्कुर्यात् । अथ प्राचीनावीती गन्धाद्याच्छादनान्त दत्त्वाऽर्चनविधे सपूणता वाचयेदेवमेतत्पार्वणस्य कृत्वा पुनरनन्तर पिण्डपितृयज्ञ कुर्यात् ।१५।

१५–पिता-पितामह-प्रपितामह-ये तीन है उनमे प्रत्येक को एक दो अथवा वहुवन् निर्देश करना चाहिए। जल देकर द्विगुण भुग्न, अयुग्म, दक्षिणाग्र दर्भो को इस प्रकार से गोत्र-नाम रूप वाले पितरो का 'इद मासनम्। ऐसा कहकर मध्य भाग मे आसनो पर देना चाहिए। अयोदान कह दिया गया है। इसके अनन्तर भूमि का अभ्युक्षण करके दक्षिण की ओर अग्रभाग वाले दर्भो को बिछाकर तीन तैजस, अश्ममय और मन्त्रिन पात्रा को अथवा अभाव होनेपर एक ही द्रव्य से निर्मित पात्रो को न्यायिक प्रसाद दक्षिणापवग रखकर उत्तान करे। उन उनमे अयुग्म दर्भोन्तर्हितो मे जल का आसेचन करके तीनो को एक वार "शनोदेवी" इसमे अनुमन्त्रित करके 'तिलोऽसि सोमदेत्यो भोजन देव निर्मित। प्रत्न वद्भि प्रत्त स्वधया पितृ निमाल्लोकान्प्राणया दि न स्वधा नम" इस मन्त्र से प्रथक तीनो मे तिलो का वपन कर ग धादिक का क्षेपण करे। पितृपात्र सम्पन्न हो गया—यह कहकर उनको यथा लिङ्ग अभिमर्शण करे और हाथ मे तिल लेकर लिङ्ग के अनुसार पिता—पितामह और प्रपिता-महो को आवाहन करूँगा यह कहकर उन ब्राह्मणो के द्वारा आवाहन करो—ऐसा कहने पर मूर्धा से आदि लेकर पादो के अन्त तक दक्षिणाङ्ग सस्थ को एक-एक मे 'उश तस्त्वा निधी मही' इससे तिलो को फैलाकर "आय तुन पितर सोभ्याम" इस मन्त्र से उपस्थान करे। फिर उप-वीती होकर 'स्वधा अर्घ्या' इससे पहिले अर्घ्य को निवेदित करके अन्य जल देकर सशेष अर्घ्य को लेकर दक्षिण हाथ से सव्योपगृहीत से "पित-रिद ते अर्घ्यं पितामह इद ते अर्घ्य प्रपितामहेद ते अर्घ्यम्" इस प्रकार से कहकर पितृतीर्थ के द्वारा देव और प्रत्येक को "या दिव्या आप" इसस अनुमन्त्रित करना चाहिए। दोनो जगह एक एक ब्राह्मण के पक्ष मे दैव कर्म मे सम्पूर्ण अर्घ्य एक के ही लिये देना चाहिए। पित्र्य कर्म मे तीनो पात्रो को एक को ही निवेदन करके पुन अन्य जलदान पूर्वक तीनो को उसी के लिये देना चाहिए।

इसके अनन्तर एक व अनेक पक्षमे जितने एक एक के है उनके उन-के लिये एक एक उस पात्र को एकवार निवेदन करके एक एक अर्घ्य या

तब तक निग्रहण करके देवे प्रत्येक पात्रो को न करे। इसके पश्चात इतर अर्घ्य शेषो को आद्यपात्राघ्य शेष मे निनयन करके उन जलो से पुत्र की कामना वाला मुख मे अनक्त करता है उस पात्र को शुचि देश मे "पितृम्य स्थानमसि" इसको कहकर निःावित करे और पितामह के अघ्य पात्र से निदध्यासन करे। अथवा न्युब्ज उसको करना चाहिए। इसके उपरान्त प्राचीनावीती गन्धाच्छादनान्त देकर अचन विधि की सम्पूणता का वाचन करावे। इस प्रकार मे यह पावण का करके फिर अनन्तर पिण्ड पितृ-यज्ञ करना चाहिए ॥१५॥

१६ अग्नौकरणादिकर्म।

अथ स्थालीपाकादन्नमुद्धृत्य घृतनाक्त्वाऽग्नौ करिष्यामीति पृष्ट्वा क्रियतामित्युक्तेऽतिप्रणीतेऽग्नाविध्ममुपसमाधाय मेक्षणनाऽऽदायादानसपदा जुहुयात्। 'सोमाय पितृमते स्वधा नमाऽग्नय कव्यवाहनाय स्वधा नम' इति स्वाहाकारेण वा पूवमग्नि यज्ञोपवीती मेक्षणमनुप्रहरेदित्येतावत्पिण्डपितृयज्ञस्याथ पुन पावणस्य भोजनाशयेषु दवे चतुरस्रे मण्डले पित्र्ये वृत्तानि गोमयेनोपलिप्य सयवान्सतिलाश्च दर्भान्न्यास्य तेषु दत्रे सौवर्ण पित्र्ये राजतान्यभावे तदवसृष्टानि तजमानि वा पात्राणि निधायाऽऽज्येनोपस्तीर्यान्नानि परिविष्य पितृपात्रान्नेषु हुतशेष दत्त्वा दर्भे पात्राण्युपर्यधश्चाभिगृह्याथ दैवेऽन्न सावित्र्याऽभ्युक्ष्य तूष्णी परिषिच्य 'पृथिवी ते पात्र द्यौरपिधान ब्राह्मणस्त्वा मुखेऽमृत जुहोमि। ब्राह्मणाना त्वा विद्यावना प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मामेक्षेष्टा अमुत्रामुष्मिल्लोके' इत्यभिमन्त्र्य, इद विष्णुर्विचक्रम इति ब्राह्मणपाण्यङ्गुष्ठ 'विष्णो हव्य रक्षस्वेति' निवेश्य यवोद-

कमादाय 'वेश्वे देवा देवता इदमन्न हविरय ब्राह्मण आहवनीयार्थे इय भूमिगयाऽय भोक्ता गदाधर इदमन्न ब्रह्मणे दत्त सौवणपात्रस्थमक्षय्यवटच्छायेयम्' इत्युक्त्वा 'विश्वभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतरूप परिविष्ट परिवेक्ष्यमाण चाऽऽतृप्ते स्वाहा' इत्युत्सृज्यव द्वितीयेऽपि दत्त्वा ये देवासो दिव्येकादशस्थेत्युपस्थायाथ पित्र्ये प्राचीनावीती राजते स्वधाशब्दविशेषणेन यथालिङ्गमुद्दिश्य 'ये चेह पितर' इत्युपपस्थायाथोपवीत्यन्नेषु मधु सर्पिर्वाऽऽसिच्य सप्रणव्याहृति सावित्री मधुमती च जपित्वा 'मध्विति' च त्रिरुक्त्वा पितॄननुस्मृत्यापोशन प्रदाय ब्राह्मणान्यथासुख जुषध्वमिति भोजनायामिसृजेत् । भु ानान्वैश्वदेवरक्षोघ्नपित्रादीनि च श्रावयेत् । अथ तृप्ताञ्ज्ञात्वा, 'मधुमतीरक्षन्नमीमदन्तेति' श्रावयित्वा सपन्न पृष्ट्वा सुसपन्नमित्युक्ते भुक्तशेषात्सावर्णिकमन्न पिण्डार्थ विकिरार्थं च पृथगुद्धृत्य शेष निवद्यानुमते गण्डूष दत्त्वा तेष्वाचान्तेष्वनाचान्तेषु वा तदन्नशेषेण पिण्डान्निपृणीयात् । यद्यनाचान्तेषु निपृणीयादचान्तानन्वन्न प्रकिरेत् । अथाऽऽचान्तषु निप णमनुप्रकिरेन्नतु पूर्व निपरणात्प्रकिरेत् ।१६।

१६—इसके अनन्तर स्थालीपाक से अन्न को उद्धृत करके घृत से अक्त करे। 'अग्नौ करिष्यामि" अर्थात् अग्नि मे करूगा यह पूछकर जब 'करो' यह कहा जावे तब अति प्रणीत अग्नि मे इध्म का उप समाधान करके मेक्षण से लाकर अवदान सम्पत से हवन करना चाहिए।"सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इति—इससे अथवा स्वाहाकार से यज्ञोपवीती पूव अग्नि को मेक्षण की अनुप्रहरण करे। यह इतना पिण्ड पितृयज्ञ का है। इसके अनन्तर पुन पार्वण के भोजनाशयो मे दैवकम मे चतुरस्र मण्डल मे पित्र्य कम मे वृत्तो को गोमय से उप

लेपन करके पत्रो के और तिलो के सहित दर्भो को प्रासित करके उन पर सुवण निर्मित को और पित्र्य कम मे चाँदी से निर्मितो को यदि इनका अभाव हो तो उस दशा मे तदवशिष्ट अथवा तैजस पात्रो को रखकर आज्य स उपस्तीण करके और अन्नो का परिवेषण करके पित्रपात्रान्नो मे हुत शेष देकर दर्भो स पात्रो को ऊपर नीचे अभिग्रहण करे। दैवकम मे सावित्री से अभ्युक्षण कर तूष्णी भाव स परिषिञ्चन करके 'पृथिवी ते पात्र द्योर पिधान ब्राह्मणस्त्वा मुखेऽमृत जुहोमि ब्राह्मणाना त्वा विद्या रता प्राणापानयो र्जुहोम्य क्षितिमसि मामे क्षेष्ठा अमत्रामुष्मिल्लोके 'इससे अभिमन्त्रित करके इद विष्णुर्विचक्रमे इमसे ब्राह्मण क पाणि—अगुष्ठ को' विष्णो हव्य रक्षस्व" इस मे निवेशित करे और फिर यवोदक लेकर "विश्वेदेवा देवता इदमन्न हविरय ब्राह्मण आहवनीयार्थे इय भूमिगयाऽय भोक्ता गदाधर इदमन्न ब्रह्मणे दत्त सौवण पात्रस्य मक्षय्य वटच्छायेयम्" यह कहकर 'विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृत रूप परिविष्ट परिवेक्ष्य माण चाऽऽतृप्ते स्वाहा' इससे उत्सजन करे। द्वितीय म भी देकर 'ये देवा सो दिव्ये का दशस्थ' इसस उपस्थान करके पित्र्यकम म प्राचीनावीती होना है।

स्वधा शब्द के विशेषण मे लिङ्ग क अनुसार उद्देश करके "ये चेह पितर ' इससे उपस्थान करके उपवीती होकर अन्नो मे मधु अथवा घृत का प्रासेचन करके प्रणव के सहित और व्याहृतियो के सहित सावित्री और मधुमती का जप करके "मध्विति" इस को तीन बार कहकर पितृगण का अनुस्मरण कर आपोशन देकर ब्राह्मणो को सुखपूवक सेवन कीजिए यह कहकर भोजन के लिये अति सृजन करना चाहिए। भोजन करते हुए ब्राह्मणो को और वैश्वदेव रक्षोघ्न पित्रादि को श्रावण करावे। इसके अनन्तर तृप्त हुओ को जानकर "मधुमती रक्षन्नमी मदन्तेति" श्रवण कराकर 'सभ्यन्नम्' अर्थात् सब ठीक है—यह पूछ कर 'सुसभ्यन्नम्'—ऐसा उत्तर कहने पर मुक्त से जो शेष रहे उस अन्न से सावर्णिक अन्न को पिण्ड के लिये और विकिरण के वास्ते पृथक् उद्धृत करके शेष को निवेदन करके अनुमत होने पर गण्डूष होकर अर्थात् कुल्ली

कराकर उनके आचान्त होने पर अथवा अनाचान्त रहने पर उस शेष अन्न मे पिण्डो का निपरण करना चाहिए। यदि अनाचान्तो मे निपरण करे तो आचान्तो को अन्यत्र प्रकिरण करना चाहिए। इसके अनन्तर आचान्तो के निपरण के पीछे प्रकिरण करे निपरण से पहिले प्रकिरण नही करना चाहिए ॥१६॥

१७ पिण्डदानादिश्राद्धशेषसमापनम् ।

अथ पिण्डार्थमुद्धृतमन्न स्थालीपाकेन सम्मिश्र प्राचीनावीतो सकृदाच्छिन्नास्तृताया लेखाया त्रिषु पिण्डदेशेषु प्राग्दक्षापवर्ग शुन्धन्ता पितर शुन्धन्ता पितामहा शुन्धता प्रपितामहा इति पितृतीर्थेन तिलाम्बु निनीय तेषु पिण्डान्पित्रादिभ्य एतत्ते विष्णो ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्च इति पराचीनेन पाणिना यथालिङ्ग दत्त्वा तान् 'अत्र पितरो मादयध्व यथाभागमावृषायध्वम्' इति सकृदनुमन्त्र्य सव्यावृदावृत्यादङ्मुखो यथाशक्त्यायतप्राण प्रत्यावृत्य 'अमीमदन्त पितर यथाभागमावृषायीषतेति' पुनरभिमन्त्र्य च तच्छेषमाघ्राय, पूर्ववत्पुनास्तिलाम्बुपिण्ड तेषु निनीय 'अमावभ्यङ्क्ष्वासावङ्क्ष्वेति' यथालिङ्ग पिण्डेष्वभ्यञ्जनाञ्जने दत्त्वा वासो दद्याद्दशामूर्णास्तुका वा वयस्युत्तरे स्वहृल्लोम 'एतद्व पितरो वासो मा नो तोऽन्यत्पितरो युङ्ग्ध्वम्' इति । अथैतान्गन्धादिभिरर्चयित्वा प्राञ्जलि —'नमो व पितर इषे नमो व पितर ऊर्जे नमो व पितर शुष्माय नमो व पितरो घोराय नमो व पितरो जीवाय नमो व पितरो रसाय। स्वधा व पितरा नमो व पितरो नमो एता युष्माक पितर इमा अस्माक जीवा वो जीवन्त इह सन्त स्याम' इति 'मनोऽन्वा हुवामहे' इति तिसृभिरुपस्थायाथ पिण्डस्थान्पितॄन्प्रवाहयेत् । 'परेतन

पितर सोम्यासो गम्भीरेभि पथिभि पूर्विणेभि । दत्त्वायास्मभ्य द्रविणेह भद्र रयि च न सर्ववीर नियच्छत ' इति । अग्ने तमद्ये त्यौपासनाग्नि प्रत्येन्य यदन्तरिक्ष पृथिवीमुत द्या यन्मातर पितर वा जिहिंसिम । अग्निर्मा तस्मादेनस प्रमुञ्चतु करातु ममानहसम् ' इति जपित्वा, अथ पिण्डान्नमस्कृत्य मध्यम ' वीर मे दत्त पितर ' इत्यादायाऽऽधत्त पितरो गर्भ कुमार पुष्कर स्रजम् । यथायमरपा असत् इतिपुत्रकाम पत्नी प्राशयेन्नँ तदशुभश्राद्धेषु कुर्यादप्स्व-नरावतिप्रणीतेऽग्नौ वा जुहुयात् । गव वा ब्राह्मणाय वा दद्यात् । अथ यज्ञपात्राणि द्विवदुत्सृजेत् । उद्रिक्त तृण द्वितीय कुर्यात् । एव पिण्डपितृयज्ञ समाप्याथ श्राद्धशेष समापयेत् ।१७।

१७ – इसके अनन्तर पिण्ड के लिए उद्धृत अन्न को स्थाली पाक मे समिश्रित करके प्राचीनावीती एक वार आच्छिन्नास्तृना शाखाये तीन दर्शाये प्रागदक्षिणा पवर्ग—'शुधन्ता पितर शुधन्ता पितामहा', शुन्धन्ता प्रपितामहा " यह पितृ तीर्थ से तिलाम्बु अर्थात् तिलमिश्रित जल का निनयन करके उन पर पिण्डो को पिता आदि के लिए— एतत्ते विष्णो ये चत्वामात्रानु तेभ्यश्च' इससे पराचीन पाणि के द्वारा लिङ्ग के अनुसार देकर उनको 'अत्र पितरो मादयध्व यथा भागमावृषायध्वम्" इससे एक बार अनुमन्त्रित करे सव्य वृत्ता वृति से उदङमुख होकर शक्ति के अनुसार आयत प्राण होवे ओर प्रत्यावृत्त होकर 'अमी मद त पितरो यथा भागमावृषा यीषत" इससे पुन अभिमन्त्रण करके और उसके शेष का आघ्रुरण करके पूर्व की ही भाति पुन तिलाम्बु पिण्ड को उनपर निनयन करे । "असावभ्यडक्ष्वा सा वड्क्ष्वेति" यथालिङ्ग पिण्डो पर अभ्यञ्जनाञ्जन देकर वस्त्र देना चाहिए अथवा दशा पूर्णास्तुका को अपर वय मे स्वहृल्लोम 'एतद्व पितरो वासो मानो तोऽन्यत् पितरो युङ्ध्वम्' इस मन्त्र से देना चाहिए ।

इमके अनन्तर इनका गन्धादि के द्वारा अर्चन करे और प्राञ्जलि होकर—"नमो व पितर इषे नमो व पितर ऊर्जे नमो व पितर शुष्माय नमो व पितरो घोराय नमो व पितरो जीवस्य नमो व पितरो रसाय। सधा व पितरो नमो व पितरो नम एता युष्माक पितर इमा अस्माक जीवा वो जीवन्त इह सन्त स्याम" इति "मनोऽ वा हुवा महे" इति— इन तीनो मे उपस्थान करके पिण्डा मे स्थित पितरो को प्रवाहित कर देना चाहिए। "परतेन ! पितर सोम्यासो गम्भीरेभि पथिभि पूर्वीणेभि। दत्वा यस्मभ्य द्रविणेह भद्र रयि च न सर्व वीर नियच्छत" इति हे अग्नि ! उसको आज यह कह कर औपासन अग्नि के समीप आकर 'यदन्तरिक्ष पृथिवीमुत द्या यन्मातर पितर वा जि हि सिम। अग्निर्मा तस्मादेनस प्रमुञ्चतु करोतु मामनेहमम्" इम मन्त्र का जप करके इसके उपरान्त पिण्डो को नमस्कार करके मध्यम पिण्ड को "वीर मे दत्त पितर" इममे लेकर आद्यव पितरो गर्भ कुमार पुष्कर स्रजम्। यथाय मरपा असत्' इससे पुत्र की कामना वाला पुरुष पत्नी को प्राशन करा देवे। यह दशम श्राद्धो मे नही करना चाहिए। दूसरो को जल मे अथवा अग्नि मे हवन कर देवे। गौ अथवा ब्राह्मण के लिये दे देना चाहिए। इमके उपरान्त यज्ञ पात्रो को द्विवत् उत्सृष्ट कर देवे। उद्रिक्त मे तृण को द्वितीय करे ? इम प्रकार से पितृ पिण्ड यज्ञ को समाप्त करके इसक अनन्तर श्राद्ध शेष का समापन करना चाहिए ॥१७॥

१८ प्रकिरविकिरादि।

अथ ब्राह्मणानाचमय्य यत्सार्ववर्णिक पृथगुद्धृत तत्प्रकेरान्नमम्भसा परिप्लाव्योच्छिष्टान्ते दर्भान्दक्षिणाग्रान्प्रकीर्य तेषु 'ये अग्निदग्धा ये अग्निदग्धा' इति तदन्न प्रकीर्य, 'येऽग्निदग्धा कुले जाता येऽप्यदग्धा कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परा गतिम्' इति तिलाम्बु च निनीयाऽऽचामेत्। अथ ब्राह्मणहस्तेष्वपो दर्भांश्च दद्यात्। यवास्तिलाश्चावधाय पुनरपो दद्यादेषा हस्तशुद्धि। अथ ब्राह्मणानभिवाद्योपवीयादस्मद्गोत्र

वर्धतामिति गोत्रवृद्धि वाचयित्वा पात्राणि चालयित्वा देवान्पितॄश्च यथालिङ्गमामन्त्र्य स्वस्तीति ब्रूतेत्यपो दद्यात्। अथ दैव दत्त श्राद्ध देवानामक्षय्यमस्त्विति ब्रूतेति पृथग् यवाम्बु दत्त्वा, पित्र्ये प्राचीनावीती दत्त श्राद्ध च पितृणामक्षय्यमस्त्विति ब्रूतेति यथा-लिङ्ग तिलाम्बु दत्त्वा न्युब्ज पात्र विवृत्योपवीती ब्राह्मणेभ्यो मुखवासताम्बूलादि दक्षिणा च दत्त्वा तान्या-दावभ्यङ्गादिभि प्रियोक्तिभिश्च परितोष्य कर्मसपूर्णता वाचयित्वा ॐ स्वधोच्यतामिति चास्तु स्वधेति चोक्त्वा पितृपूर्व विसर्जयेत्। तथा ॐ स्वधेति वाऽस्तु स्वधेति वा ब्रुवन्त उत्तिष्ठेयुर्विश्वे देवा प्रीयन्तामिति देवब्राह्मणौ विसृजेत्। प्रीयन्ता विश्वदेवा इति ताभ्या-मुक्ते पिण्डनिपरणदेश समृज्याक्षतान्प्रास्य तत्र शान्ति-रस्त्वित्युदकधारामासिच्य दक्षिणामुख प्राञ्जलि-स्तिष्ठन् ' दातारो नोऽभिवर्धन्ता वेदा सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु धेय च नोऽस्तु ' इत्यनेन वरान्याचेतेति पार्वणकल्प एष चास्य पिण्डपितृयज्ञेन व्यतिषङ्ग एवमेवान्वष्टक्य पूर्वेद्युर्मासिमासि श्राद्धानि नयेदस्ति हि तेषु पिण्डपितृयज्ञकल्प इति तत्र पूर्वेद्युरेक-कतन्त्रस्था होममन्त्रा एभ्योऽन्येषु चतुर्ष्वाहिताग्नि-पार्वणे च पिण्डपितृयज्ञकल्पाभावात्। अभ्यनुज्ञाया पाणिष्वेव इति ब्राह्मणाना पाणिहोमो भुक्तशेषेण वोच्छिष्टान्ते निपरण यथा ब्राह्मणानाच्छादनान्तैर-भ्यर्च्य भोजनार्थादन्नादुद्धृत्य सर्पिषाऽऽड्क्त्वा होमप्रश्न विनव ब्राह्मणपाणिषु दक्षिणाग्रान्दर्भानन्तर्धाय मेक्षणेन पाणिना वा ताभ्यामेव मन्त्राभ्या द्वे द्वे आहुती जुहोति सर्वेषु विगृह्य वैकैका नात्र मेक्षणानुप्रहरणम्।

यदि पाणिना जुहुयात्सव्येन चावदान सपादयेदथ भुक्तशेषेणोच्छिष्टान्ते पिण्डान्निपृणीयान्नेहाग्ने तमद्येति समानमन्यदेव प्रत्यब्दिकादीनि मासिश्राद्ध यदि पर्वणि स्यात्पार्वण तदा तेन विकल्पते काम्य चेत्क्रियते तदा पावण मासिश्राद्ध च तेनैव सिध्यत । ८।

१८—इसके अनन्तर ब्राह्मणो को आचमन कराकर जो सार्ववर्णिक पृथक् उद्धृत है उसको प्रकिरण करता हुआ जल से परिप्लावन करके उच्छिष्ट के अन्त मे दक्षिण की ओर अग्रभाग वाले दर्भो को प्रकीण करके उनपर"ये अग्निदग्धा ये अनग्नि दग्धा"उस अन्न का प्रकिरण करके 'येऽग्नि दग्धा 'कुले जासा यऽध्य दग्धा कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ताय तु परागतिम्"इससे तिल मिश्रित जल को निनयन कर आचमन करे । इसके अनन्तर ब्राह्मणो के हाथो मे जल और दर्भो को देदेना चाहिए। यवो और तिलो को अवधारण कर पुन जल देवे—यह हस्त शुद्धि है । इसके उपरान्त ब्राह्मणो का अभिवादन करके उपनीय हमारा गोत्र बढ़े—इससे गोत्र वृद्धि का वाचन कराकर पात्रो को चालित करा कर देवो को और पितरो को लिङ्गानुसार आमन्त्रित करके 'स्वस्ति' यह बोलो यह कह कर जल देवे। इसके अनन्तर दैव कर्म मे दिया हुआ श्राद्ध देवो को अक्षय्य होवे—यह बोलो यह कह कर पृथक् जल देकर पित्र्य कम मे प्राचीनावीती और दिया हुआ श्राद्ध पितरो को अक्षय्य होवे-यह बोलो-यह कहकर यथा लिङ्ग तिलाम्बु देकर पात्र को न्युब्ज, त्रिवृत्योपवीती होकर ब्राह्मणो के लिये मुख वास ताम्बूल आदि और दक्षिणा देकर उनको आदि मे अभ्यङ्ग आदि से और प्रिय उक्तियो से परितुष्ट करके कम की सम्पूर्णता का वाचन कराकर"ॐ स्वधोच्यताम्" इति और "अस्तु स्वधा" यह कहकर पितृ पूवक विसर्जित करना चाहिए।

"तथा ॐ स्वधा इति वा अस्तु स्वधा—इति वा" बोलते हुए उठें। "विश्वेदेवा प्रीयन्ताम्" इति यह कहकर देव और ब्राह्मण दोनो का विसर्जन करना चाहिए। "प्रीयन्ता विश्वदेवा" यह उन दोनो के द्वारा

कहने पर पिण्ड निपरण देश को भली भाँति समार्जित करके अक्षतो को डालकर वहा पर शान्ति होवे—यह कहकर उदक की धारा का आसेचन करे और दक्षिण दिशा की ओर मुख वाला होकर हाथ जोड कर स्थित होता हुआ "दातारोनोऽभि ववन्ता वदा सन्ततिरेव च । श्रद्धाच तोमा व्यगमद्बहुदेयच नोऽस्तु" इसके द्वारा वरो की याचना करे—यह पार्वण ।ल्प है और यह इसका पिण्ड पितृ यज्ञ से व्यतिषङ्ग है। इसी प्रकार म अन्वष्टक्य पूर्वेद्यु मास मास मे श्राद्धो को करे । उनमे पिण्ड पितृ यज्ञ कल्प है—इति । वहा पर पूर्वेद्यु म एक तन्त्रस्थ होम के मन्त्र हैं । इनसे अन्य चारो म और आहिताग्नि पावण मे पिण्ड पितृ यज्ञ कल्प का अभाव होता है ।

अभ्यनुज्ञा मे हाथो मे ही ब्राह्मणो का पाणि होम अथवा भुक्त शेष से उच्छिष्ट के अन्त मे निपरण यथा ब्राह्मणो को आच्छादनान्तो से अभ्यर्चित करके भोजनार्थ अन्न से लेकर घृत से अक्त करे और होम प्रश्न के बिना ही ब्राह्मणो के हाथ मे दक्षिणा प्रदर्भ्यो को रखकर मेक्षण से अथवा पाणि से उन्ही मन्त्रो से दो-दो आहुतियो के द्वारा हवन करता है। अथवा सब मे विग्रहण कर एक-एक का यहा पर प्रेक्षणानु प्रहरण नही होता है । यदि पाणि से ही हवन करे और सव्य से अवदान का सम्पादन करना चाहिए । इसके अनन्तर भुक्त शेष से उच्छिष्टान्त मे पिण्डो का निपरण करना चाहिए । यहाँ पर "अग्ने तमद्य" इति इसके समान नही है । इसी प्रकार स अन्यत् प्रत्यब्दिकादि मासि श्राद्ध है । यदि पर्व मे होवे तो पावण है, उस समय मे उससे विकल्प होता है । यदि काम्य किया जाता है तब पावण और मासि श्राद्ध भी उसी स ही सिद्ध होते है ।१८।।

१९ आभ्युदयिकश्राद्धे विशेष ।

अथाभ्युदयिके नान्दीमुखा पिरत एकैकस्य युग्मा ब्राह्मणा अमूलदर्भा प्रदक्षिणमुपचारो यवैस्तिलार्थ

प्राङ्मुखो यज्ञोपवीति कुर्यादृजून्दर्भानासन दक्षिणतो दद्यादर्घ्यपात्राणि प्राक्सस्थानि स्यु । ‘ यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मित । प्रत्नवद्भि प्रत्त पुष्ट्या नान्दीमुखान्पितृनमाँल्लोकान्प्रीणयाहि न स्वाहा ’ इति यवावपन नान्दीमुखा पितर प्रीयन्तामिति यथालिङ्ग सकृदर्घ्य निवेद्य नान्दीमुखा पितर इद वो अर्घ्यमिति प्रत्येक विगृह्य दत्त्वाऽनुमन्त्रण द्विर्द्विर्गन्धादि दद्यात् । अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेति पाणिपूक्तवद्धोमस्तृप्तेषूपास्मै गायता नर इति पञ्च मधूमतीरक्षन्नमीमदन्तेति श्रावयेदनाचान्तेषु भुक्ताशयानुपलिप्य, प्रागग्रान्दर्भानास्तीर्य पृषयाज्यमिश्रेण भुक्तशेषेणैकस्य द्वौ द्वौ पिण्डौ दद्यात्पूर्वेण मन्त्रेण नान्दीमुखेभ्य पितृभ्य स्वाहेति वा । यथालिङ्गमन्यदुदकेनानुमन्त्रणादीच्छन्ति नेह पिण्ड इत्यन्ये । सर्पिषि दध्यानयति, एवमेतत्पृषदाज्यमाह । सपन्नमिति विसृजेत्तदेतत्पुसवनादिष्वपत्यसस्कारेषु, अग्न्याधेयादिषु श्रौतेष च पूर्तेषु च क्रियते महत्सु पूर्वेद्युस्तदहरल्पेषु तदिदमेके मातृणा पृथक् कुर्वन्त्यथ पितृणा ततो तामामहानामिति त्रितयमिच्छन्ति तस्माज्जीवत्पिता सुतसस्कारेषु मातृमातामहयो कुर्यात्तस्या जीवत्या(न्त्या) पितृमातामहयो कुर्यात्पित्रोर्जीवतोर्मातामहस्यैव कुर्यात्त्रिषु जीवत्सु न कुर्यात्त्रिषु जीवत्सु न कुर्यात् ।१६।

इसके अनन्तर आभ्युदयिक मे नान्दीमुख पितर एक-एक के युग्म ब्राह्मण, अमूल दर्भ, प्रदक्षिण उपचार, यवो से तिलो का प्रयोजन, प्राङ्-मुख, यज्ञोपवीती–इति–यह करना चाहिए । ऋजु दर्भों को आसन दक्षिण से देवे । अर्घ्य पात्रो की स्थिति प्राक्सस्थ होनी चाहिए । “यवोऽसि सोम देवत्यो गोसवे देव निर्मित । प्रत्नवद्भि प्रत्त पुष्ट्या नान्दीमुखान्

पितृ निर्मांल्लोकान्प्रीणयादि न स्वाहा" इससे भत्रो का आवपन नान्दी-मुख पितर प्रसन्न होवे—यह कह कर यथालिङ्ग एक बार अर्घ्य का निवेदन करके "नान्दीमुखा पितर इद वो अर्घ्यम्' इसको कहकर प्रत्येक का विग्रहण कर अनुमत्रण कर दे और दो दो बार गन्धादि देना चाहिए। 'अग्नये कव्य वाहनाय स्वाहा—सोमाय पितृमते स्वाहा—इससे हाथो मे उक्तवत् होम करे। "तृप्त यूपा स्मै गायता नर" ये पाँच "मधुमखी रक्षन्नमी मदन्त" इसका श्रवण करावे। अनाचान्त होने पर मुक्ताशयो का का उपलेपन कर प्राग दर्भो को आस्तरण कर पृषदाज्य मिश्र के द्वारा भुक्त शेष मे एक-एक को दो-दो पिण्ड देवे। अथवा पूर्व मन्त्र से 'नान्दी-मुखेभ्य पितृभ्य स्वाहा' इससे देना चाहिए।

अन्य विद्वान् यथालिङ्ग अन्य उदक से अनुमन्त्रणादि की इच्छा करते है और यहाँ पिण्ड नही चाहते है। सर्पि (घृत) मे दधि का आनयम करना है। इस प्रकार से यत्र पृषदाज्य कहा है। सम्मान्नम्—इति—इससे विसजन करे। वह यह पुसवन आदि अपत्य सस्कारो मे और अग्न्याधेय आदि श्रौतो मे और मर्तो मे किया जाता है। महानो मे पूर्वेद्यु अल्पो मे वह दिन वह यह कतिपय लोग मातृगणो का पृथक् करते है। इसके उपरान्त पितृगणों का और फिर मातामहो का त्रितय चाहते है। इससे जीवत्पिता सुत के सस्कारो मे मातृमातामहादि दोनो का करे। माता के जीवित रहने पर पिता मातामह दोनो का करना चाहिए। माता-पिता दोनो के जीवित रहने पर केवल मातामह का ही करे। तीनो जीवित रहने पर नही करना चाहिए ॥१९॥

— ———

शांखायन गृह्यसूत्र

प्रथम अध्याय

॥ अथ आवसथ्याधानम् ॥

अथात पाकयज्ञान् व्याख्यास्याम ।१। अभिसमावर्त्स्य मानो यत्रान्त्या समिधमभ्यादध्यात् तमग्निमिन्धीत ।२। वैवाह्य वा ।३। दायाद्यकाल एके ।४। प्रेते वा गृहपतौ स्वय ज्यायान् ।५। वैशाख्याममावास्यायामन्यस्या वा ।६। कामनो नक्षत्र एके ।७। पुरु पशुविट्कुलाम्बरीषबहु याजिनामन्यतमस्मादग्निमिन्धीत ।८। सायप्रातरेके ।९। सायमाहुतिसस्कारोऽध्वर्यु प्रत्यय इत्याचार्या ।१०। प्रात पूर्णाहुति जुहुयाद्वैष्णव्यर्चा तूष्णी वा ।११। तस्य प्रादुष करणहवनकालावग्निहोत्रेण व्याख्यातौ ।१२। यज्ञोपवोतीत्यादि च सम्भवत्सर्व कल्पैकत्वात् ।१३। तदप्याहु ।१४
पाकसस्था हवि सस्था सोमसस्थास्तथापरा ।
एकविशतिरित्येता यज्ञसस्था प्रकीर्तिता ।१५।

इसके अनन्तर पाक यज्ञो की व्याख्या करेगे ॥१॥ अभिसमावर्त्तन किये जाने वाले पुरुष को चाहिए कि जिस अग्नि मे अन्तिम जो समिधा हो उस का ग्रहण करे और उस अग्नि को धारण करना चाहिए। इससे अन्तिम अग्निकाय लक्षित होता है ॥२॥ अथवा विवाह के समय मे होने वाली अग्नि को धारण करे ॥३॥ कुछ लोगो का मत है कि दायाद्य काल मे अग्नि को धारण करना चाहिए ॥४॥ गृहपति के प्रेत हो जाने पर जो भी सब से बडा हो वह स्वय करे तात्पय यह है कि पूर्वोक्त

काल मे अग्नि का यदि आधान नही किया गया हो और गृह का स्वामी पिता के द्वारा आधान नही किये जाने पर जो भी ज्येष्ठ हो वही अग्नि का आधान करे। ब्र ह्मण क्षत्रिय और वैश्यो मे ज्येष्ठ ब्राह्मण होता है। वह स्वय पाक यज्ञो को करता है और इतर वर्णो मे पुरोहित के द्वारा पाक यज्ञ करने चाहिए। इसी तात्पय के प्रकाशन के लिये यहाँ पर 'स्वय' शब्द को ग्रहण किया गया है। अर्थात् आभ्युदयिक पूवक उक्त योनि से अग्नि को लाकर चतुस्र मे सस्थापित करके सौ ब्राह्मणो के भोजन के साथ कर्म को समाप्त करना चाहिए ॥५॥ वैसाख मास की अमावस्या मे अथवा अन्य किसी मे आधान करे ॥६॥ कुछ मनीषियो का मत है कि स्वेच्छया नक्षत्र मे करे ॥७॥ वित्त वाले जो ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य हो उनके यहाँ से अग्नि का आहरण करना चाहिए ॥८॥ कुछ विद्वानो का कथन है कि सायङ्काल मे और प्रात काल के होने के समय मे करे ॥९॥ कुछ आचाय कहते है कि सायङ्काल मे समाहरण की हुई अग्नि का आहुतियो के द्वारा अध्वयु को करना चाहिए किन्तु इस प्रकार का आधान दो दिन मे होता है और अन्य आधान तुरन्त ही हो जाया करता है ॥१०॥ प्रात काल मे पूर्णाहुति का हवन करना चाहिए। अथवा चुप चाप तूष्णी भाव से वैष्णवी अर्चा करे ॥११॥ उसके प्रादुष्करण और हनन करने के काल अग्निहोत्र के द्वारा व्याख्यात कर दिये गये हैं ॥१२॥ और यज्ञोपवीती—इत्यादि सब सम्भव एव कल्प होने से ही होता है ॥१३॥ यह भी कहा गया है ॥१४॥ पाक सस्था—हवि सस्था सोम सस्था तथा दूसरी ये सब इक्कीस है जोकि यज्ञ सस्था कीर्त्तित की गया है ॥१५॥

॥ अथ ब्राह्मणभोजनम् ॥

कर्मापवर्गे ब्राह्मणभोजनम् ।१। वाग्रूपवय श्रुतशीलवृत्तानि गुणा ।२। श्रुत सर्वानत्येति ।३। न श्रुतमतीयात् ।४।
अधिदैवमथाध्यात्ममधियज्ञमिति त्रयम् ।
मन्त्रेषु ब्राह्मणे चैव श्रुतमित्यभिधीयते ।५।

क्रियावन्तमधीयान श्रुतवृद्ध तपस्विनम् ।
भोजयेत् त सकृद्यस्तु न त भूय क्षुदश्नुते ।६।
या तितर्पयिषेत् काञ्चिद्देवता सर्वकर्मसु ।
तस्या उद्दिश्य मनसा दद्यादेवविधाय वै ।७।
नैवविधे हविर्न्यस्त न गच्छेद्देवता क्वचित् ।
निधिरेष मनुष्याणा देवाना पात्रमुच्यते ।८।

कर्म के अपवर्ग मे अर्थात् अवसान मे ब्राह्मणो का भोजन होता है। अर्थात् जब कम ममाप्त हो तो विप्रो को अन्त मे भोजन कराना चाहिए ॥१॥ वाणी–रूप–पय–श्रुत–शील और वृत्त (चरित्र) ये गुण होते है। ॥२॥ इन उपर्युक्त गुणो मे श्रुत गुण ही आदर करने के योग्य होता है जो कोई श्रुतवान् हो उसी का आदर करना चाहिए क्योकि श्रुत सब अन्य गुणो का अतिक्रमण करके रहा करता है। आपस्तम्भ ने भी यही बतलाया है कि श्रुतवान् का अपक्रमण नही करना चाहिए। श्रुत का कभी अतिक्रमण न करे ॥३-४॥ अधिदैव–अध्यात्म और अधियज्ञ–ये तीन है। मन्त्रो मे और ब्राह्मण मे श्रुत–इस नाम से कहा जाता हैं ॥५॥ क्रियावान्–आधीयान–श्रुत मे वृद्ध–तपस्वी ब्राह्मण को ही भोजन कराना चाहिए। जिमको एक बार भोजन करा दिया है उमको पुन नही कराना चाहिए ॥६॥ जिस किसी देवता को समस्त कर्मो मे तृप्त करने की इच्छा रक्खे उसी देवता का मन से उद्देश्य करके इस उपर्युक्त गुण से सम्पन्न ब्राह्मण को देना चाहिए ॥७॥ यदि इस प्रकार के ब्राह्मण को हवि का निन्यास नही किया गया हो तो कही पर भी वह उस देवता को प्राप्त नही होता है। मनुष्यो की यह निधि है जो देवो का पात्र कहा जाया करता है॥८॥

॥ अथ दर्शपूर्णमासौ ॥

अथ दर्शपूर्णमासा उपोष्य ।१। प्रातर्यत्रतन्महावृक्षाऽग्राणि सूर्यं आतपति स होमकाल स्वस्त्ययनतम सर्वासामावृतामन्यत्र निर्देशात् ।२। सुमना शुचि शुचौ वरूथ्यदेशे

पूर्णविघन चरु श्रपयित्वा दर्शपूर्णमामदेवताभ्यो यथावि-
भाग स्थालीपाकस्य जुहोति ।३। स्थालीपाकेषु च ग्रहणा-
सादनप्रोक्षणानि मन्त्रदेवताभ्य ।४। अवदानधर्माश्च ।५।
पूर्व तु दर्शपूर्णमासाभ्यामन्वारम्भणीयदेवताभ्यो जुहुया-
त् ।६। आ पौर्णमासाद्दशस्यानतीत काल , आ दर्शात्पौर्ण-
मासस्य ।७। प्रातराहुति चके सायमाहुतिकालेऽन्ययान्म-
न्यन्ते ।८। नियतस्त्वेव कालोऽग्निहोत्रे प्रायश्चित्तदर्श-
नाद् भिन्नकालस्य ।९। नित्याहुत्योर्व्रीहियवतण्डुलानाम-
न्यतमद्धवि कुर्वीत ।१०। अभावेऽन्यदप्रतिषिद्धम् ।११।
तण्डुलाँश्चेत् प्रक्षाल्यैके ।१२। इतरेषामसस्कार ।१३।
सायमग्नये प्रातस्सूर्याय ।१४। प्रजापतये चानूभयौस्तू-
ष्णीम् ।१५। प्राक् प्रागाहुते समिधमेके ।१६। यथोक्त
पयु क्षणम् ।१७।

इसके अनन्तर दर्श और पूणमास को उपोषित करना चाहिए। प्रात काल के समय मे बडे वृक्षो के अग्रभागो पर जहाँ कि सूय देव की किरणे आकर पडा करती है वही होम का समय अधिक स्वस्त्ययन करने वाला होता है। सब का आवृत है ऐमा अन्यत्र निर्देश किया जाता है ॥१-२॥ सुन्दर मन वाला और शुचि होकर पवित्र वरुथ्य देश मे विधन चरु को श्रवण करके दर्श पूर्ण मास देवताओ के लिये स्थाली-पाक का विभाग के अनुमार हवन करता है ॥३॥ स्थालीव पाको मे मे ग्रहण—आमादन और प्रोक्षण मन्त्र देवताओ के लिये करे ॥४॥ और अवदान धर्म होते है ॥५॥ दश पूण मासो के पूर्व मे अन्वारम्भणीय देवताओ के लिये हवन करना चाहिए ॥६॥ पौणमास मे लेकर दश का अनतीत काल होना है और दर्श से लेकर पौण माम का काल अतीत नही होता है ॥७॥ कुछ मनीषीगण प्रात काल मे आहुति को सायकाल मे अत्यय से मानते है ॥८॥ अग्नि होत्र मे काल नियत ही होता है क्योकि भिन्न काल का प्रायश्चित्त देखा जाता है ॥९॥ नित्य आहुतियो मे व्रीहि-यव-तण्डुल-इनमे से अन्यतम हवि करनी चाहिए ॥१०॥

अभाव मे अन्य सिद्ध होती है ।।११।। यदि तण्डुल ही हवि हो तो उनका प्रक्षालन करके करे—ऐसा कुछ विद्वान मानते है । अन्यो के मत मे सस्कार नही होना है ।।१२-१३।। सायकाल मे अग्नि के लिए व प्रात काल मे सूर्य के लिये देनी चाहिए ।१४। प्रजापति के लिये दोनो मे तूष्णी भाव से देवे । कुछ विद्वानो का मत है कि पहिले प्राक् आहुति की समिधा देवे ।।१५-१६।। जैसा कि पर्युक्षण कहा गया है।।१७।।

।। अथ स्वाध्यायविधि ।।

उत्थात प्रातराचम्याहरह स्वाध्यायमधीयीत "अ द्या नो देव सवितरिति" द्वे "अपेहि मनसस्पत इति सूक्तम्, ऋत च सत्य चेति" सूक्तम्, आदित्या अव हि ख्यतेति" सूक्तशेष, "इन्द्र श्रेष्ठानीति" एका, "हस शुचिषदिति" एका, "नमो महद्भ्य इति" एका, "यत इन्द्र भयामह इति" एका, "अध स्वप्नस्येति" एका, "यो मे राजन्निति एका, "मयाग्ने वर्च इति" सूक्तम्, "स्वस्ति नो मिमीतामिति च पञ्च ।२।

प्रात काल मे उठकर आचमन करके दिन प्रति दिन स्वाध्याय का अध्ययन करना चाहिए ।।१।।"अद्यानो देव सवितरि''ति ये दो है । अपेहि मनस्यत'' इति—यह सूक्त है ।' ऋत च सत्य चेति" यह सूक्त है । "आदित्या अव हि ख्यतेति" यह सूक्त शेष है । "इन्द्र श्रेष्ठानीति"—यह एक ऋचा है । "हस शुचिप्रद् इति" यह एक ऋचा है "नमो महद्भ्य इति" यह एक ऋचा है । "यत इन्द्र भयामह इति" यह एक ऋचा है । "अध स्वप्नस्येति"- यह एक ऋचा है । "योमे राजन्निति" यह एक ऋचा है । "ममाग्ने वच इति"—यह सूक्त है । ' स्वस्तिनो मिमीताम् इति" ये पाँच है ।।२ ।

।। अथ कन्यालक्षणानि ।।

चत्वार पाकयज्ञा हुतोऽहुत प्रहुत प्राशित इति ।१। पञ्चसु बहि शालाया विवाहे चूडाकरण उपनयने केशान्ते

सीमन्तोन्नयन इति ।२। उपलिप्त उद्धतावोक्षितेऽग्नि प्रणीय ।३। निर्मथ्यैके विवाहे ।४। उद्गयन आपूयमाण-पक्षे पुण्याहे कुमार्यै पाणि गृह्णीयात् ।५। या लक्षणसपन्ना स्यात् ।६। यस्य अभ्यात्ममङ्गानी स्यु ।७। समा केशा-न्ता ।८। आवर्तावपि यस्यै स्याता प्रदक्षिणौ ग्रीवायान् ।९। षड् वीराञ्जनयिष्यतीति विद्यात् ।१०।

चार पाकयज्ञ होते है—हुत—आहुत—प्रहुत—प्राशित—ये चार प्रकार है ।।१।। विवाह मे—चूडाकरण मे—उपनयन मे—केशान्त मे—सीमन्तोपनयन मे पाँचो मे शाला के बाहिर करना चाहिए ।।२।। उपलिप्त मे—उद्धता वोक्षित मे अग्नि का प्रणयन करे । कुछ विद्वानो का मत है विवाह मे निमथन करके करे ।।३-४।। उदगयन मे आपूयमाण पक्ष मे पुण्यदिन मे कुमारी का पाणिग्रहण करना चाहिए ।।५।। उसी कुमारी का पाणिग्रहण करे जो कुमारी लक्षणो से सम्पन्न होवे ।।६।। जिस के अङ्ग अध्यात्म होवे । यहाँ पर आत्म शब्द से हृदय लिया गया है क्योकि उसमे ही अनुभव किया जाया करता है । कन्या के हृदय को अभिलक्षित करना चाहिए । हृदय के अभिमुख होने के ही समान जिस कन्या के अङ्ग होवे—वे अङ्ग भी कन्धरा—नाभि—अङ्गुष्ठ उत्तरोष्ठ और नासिका है ।।७।। जिस कन्या के केशो के अग्रभाग सम अर्थात् अकुटिल हो उसी के साथ उद्वाह करना चाहिए ।।८।। जिसकी ग्रीवा मे भ्रमर प्रदक्षिण हो अर्थात् दक्षिण की ओर जाने वाले हो उसका वरण करे । ऐसी कन्या छै वीरो का जनन करेगी—ऐसा ही जानना चाहिए ।।९-१०।।

।। अथ कन्यावरणम् ।।

जायामुपग्रहीष्यमाणोऽनृक्षरा इति वरकान् गच्छतोऽनु-मन्त्रयते ।१। अभिगमने पुष्पफलयवानादायोदकुम्भञ्च ।२। "अयमह भो इति त्रि प्रोच्य ।३। उदिते प्राङ्मुखा गृह्या प्रत्यङ्मुखा आवहमाना गोत्रनामान्य नुकीर्तयन्त

कन्या वरयन्ति।४। उभयतो रुचिते पूर्णपात्रीमभिमृशन्ति पुष्पाक्षतयवहिरण्यमिश्राम--

"अना धृष्टमस्यानाधृष्टच देवानामोजो ऽनभिशस्त्यभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यम् अञ्जसा सत्यमुप गेषम् सुविते मा धा इति" ।५। "आ न प्रजामिति त्वयि कन्याया आचार्य उत्थाय मूर्धनि करोति "प्रजा त्वयि दधामि, पशू स्त्वयि दधामि, तेजो ब्रह्मवचस त्वयि दधामीति" ।६।

जाया को ग्रहण करने वाले अनृक्षर है—यह गमन करते हुए वरणो को अनुमन्त्रित किया जाता है। कन्या के वरण करने के लिये गमन करने मे मल्लिका आदि के पुष्प—नारिकेल प्रभृति फल—यव और जल का कलश आदि ग्रहण करके वरके पिता आदि जाया करते है। फिर आचार्य के सहित वर के पिता आदि सब कन्या के दाता के घर मे पहुच कर मण्डप मे स्थित होकर तीन बार 'मै यहा पर उपस्थित हू'—ऐसा ऊँचे स्वर से कहता है। इसके पश्चात् कन्या के पक्ष वालो के द्वारा 'हमारी कन्या आप वर के लिये देनी है—ऐसा कहने पर कन्या के पक्ष वाले सब गृह्य अर्थात् घर मे रहने वाले बाल वृद्धो के सहित प्राङ्-मुख होकर वहाँ बैठ जाते है। वर के पक्ष वाले आचार्य प्रत्यङ्मुख होकर स्थित होते है। जो भी वहा पर आवहमान है वे अपने गोत्रो और नामो का अनुकीर्त्तन करते हुए ही कन्या का वरण किया करते है। दोनो ओर से रुचित होने पर पूर्वोक्त पूर्ण पात्रो को "आ न प्रज्याम्"इस मन्त्र के द्वारा स्थापित वर पक्ष का आचाय किया करता है। वह पूण पात्री पुष्प–अक्षत–यव और हिरण्य से मिश्रित होती है। कन्या का आचार्य उठकर मूर्धा मे करता है और यजुर्वेद के तीन मन्त्रो को पढ़ते ही कन्या के मूर्धा मे आचार्य किया करता है। उन तीन मन्त्रो का अर्थ है—तुझ कन्या मे प्रजा को—पशुओ को और ब्रह्मवचस को धारण करता हू।

।। अथ प्रतिश्रुते होम ।।

प्रतिश्रुते जुहोति ।१। चतुरस्र गोमयेन स्थण्डिलमुपलिप्य ।२। पूर्वयोर्विदिशोर्दक्षिणा प्राचो पित्र्ये ।३। उत्तरा दैवे ।४। प्राचीमेवैके ।५। उदक्सस्था मध्ये लेखा लखित्वा ।६। तस्यै दक्षिणत उपरिष्टादूर्ध्वामेका मध्य एकामुत्तरत एकाम् ।७। ता अभ्युक्ष्य ।८।
"अग्नि प्र णयामि मनसा शिवेनाऽयमस्तु सङ्गमनो वसूनाम् ।
मा नो हिसी स्थविर मा कुमार, शन्नो भव द्विपदे श चतुष्पदे"
इत्यग्नि प्रणीय ।९। तूष्णी वा ।१०। प्रदक्षिणमग्ने समन्तात्पाणिना सोदकेन त्रि प्रमार्ष्टि तत्समूहनमित्याचक्षते ।११। सकृदपसव्य पित्र्ये ।१२।

प्रतिश्रुत होने पर हवन करता है ।।१।। चौकोर स्थण्डिल को गोमय से उपलिप्त करे ।।२।। पूव मे जो आग्नयी और ऐशानी विदिशाऐ है उन दोनो मे जो दक्षिणा पूर्वाग्नेयी विदिशा है उसको पित्र्य कर्म मे मास-मास मे पितृगण को देवे—इत्यादि मे पूर्वा की कल्पना करे । आग्नेयी मे पित्र्यकम करने चाहिए दैव कम मे उत्तरा को ग्रहण करे ।।३-४।। कुछ विद्वानो का मत है कि दैव कम मे प्राची को ही ग्रहण करना चाहिए ।।५।। स्थण्डिल के मध्य मे उदक् सस्था लेखा को लिखे । जो साग्निक हो वे खड्ग से और जो निराग्नि हो उनको स्रुव से लिखना चाहिए ।।६।। उनके मध्य म दक्षिण से उदीची को कुश के मूल आदि से एक सरल लेखा को लिखता है । उसके दक्षिण भाग से उसका निन्दन करते हुए ही उसके ऊपर प्राची मे तीन रेखाऐ लिखता है । एक ऊपर को—एक मध्य मे और एक उत्तर को लिखे । उन रेखाओ का अभ्युक्षण करे ।।७ ८।। फिर— 'अग्नि प्रणयानि मनसा शवेनायमस्तु सङ्गमनो वसूनाम् । मा नो हिंसी स्थविर मा कुमार शन्नो भव द्वियदे शसचतुष्पदे" —इस मन्त्र का उच्चारण करके अग्नि का प्रणयन करे ।।९।। अथवा चुपचाप करे । अग्नि के प्रदक्षिण मे चारो ओर जल के सहित हाथ से

तोन बार प्रमार्जन करता है उसको समूहन कहते है । पित्र्य कर्म मे एक बार अपसव्य करे ॥१२॥

॥ अथ परिस्तरणम् ॥

अथ परिस्तरणम् ।१। प्रागग्र कुशै परिस्तृणाति त्रिवृत् पञ्चवृद्वा ।२। पुरस्तात् प्रथममथ पश्चाद् अथ पश्चात् ।३। मूलान्यग्रै प्रच्छादयति ।४। सर्वाश्चावृतो दक्षिणन प्रवृत्तय उदक्सस्था भवन्ति ।५। दक्षिणतो ब्रह्माण प्रति ष्ठाप्य "भूर्भुव स्वरिति" ।६। सुमनोभिरलकृत्य ।७ उत्तरत प्रणीता प्रणीय "को व प्रणयती" ति ।८। सव्येन कुशानादाय दक्षिणेनापनौति ।९। दक्षिण जान्वाच्य ।१०। सव्य पित्र्ये ।११। नाज्याहुतिषु नित्य परिस्तरणम् ।१२। नित्याहुतिषु चेति माण्डूकेय ।१३। कुशतरुणे अविषमे अविच्छिन्नाग्रे अनन्तर्गर्भे प्रादेशेन मापयित्वा कुशेन छिनत्ति "पवित्रे स्थ इति" ।१४। द्वे त्रीणि वा भवन्ति ।१५। प्रागग्रे धारयन् "वैष्णव्याविति" अभ्युक्ष्य ।१६। कुशतरुणाभ्या प्रदक्षिणमग्नि त्रि पर्युक्ष्य ।१७। "महीना पयोऽसीति आज्यस्थालीमादाय"।१८। इषे त्वेति" अधिश्रित्य ।१९। "ऊर्जे त्वेति" उदगुद्वास्य ।२०। उदगग्रे पवित्रे धारयन्नङ्गुष्ठाभ्या चोपकनिष्ठिकाभ्या चोभयत प्रतिगृह्योर्ध्वाग्रे प्रह्वे कृत्वाज्ये प्रत्यस्यति । "सवितुष्ट्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रे ण पवित्रेण वसो सूर्यस्य रश्मिभिरिति ।२१। आज्यसस्कार सर्वत्र ।२२। नासस्कृतेन जुहुयात् ।२३। स्रुवे चाप "सवितुर्व इति" ।२४। ता प्रणीता प्रोक्षणीश्च ।२५।

पहिले अग्र कुशाओ से त्रिवृत अथवा पञ्चवृतपरिस्तरण करता है।१-२। पहिले प्रथम को ओर इसके अनन्तर पीछे करे ।३। अग्रभागो से मूलो का प्रच्छादन करता है ।४। सब आवृत्त दक्षिण प्रवृत्तियाँ उदक सस्था

होती है। इसके अनन्तर दक्षिण मे ब्रह्मासन और कुशोत्तर उत्तर मे प्रणीतार्थ आसन कुशोत्तर देवे। इसके पश्चात् कुशमय ब्रह्माको 'भूर्भुव स्व" इसमे प्रतिष्ठापित करना चाहिए और उसको पुष्पो से अलकृत करे ।५-७। उत्तर की ओर प्रणीताओ का प्रणयन करे अर्थात् प्रणीता पात्र को सोदक करके दर्भासन पर 'को न प्रणयति" इस मन्त्र से प्रणयन करना चाहिए। इनके पश्चात् परिस्तरण होना है। सव्य प्राणि मे स्तरण योग्य पृथक्कृत पत्र कुशलादि को लेकर दक्षिण को जान्वाच्य करे। दैव और पित्र्य मे वाम को करे। दक्षिण कर से कुशाओ का आकर्षण करता हुआ प्रागग्र उनमे अपवर्गतया अग्नि के आगे स्तरण करता है। फिर आगे विस्तृत कुश मूलो को आच्छादित करते हुए उसक पीछे स्तरण करता है ।८।११। आज्याहुतियो मे नित्य परिस्तरण नही होता है ।१२। माण्डूकेम कहता है। नित्याहुतियो मे होता है ।१३। जिसका अग्र भाग अविछिन्न हो ऐसे अविषमकुशतरुण मे प्रादेश के द्वारा अन्तगर्भ मे माप करके "पवित्रेस्थ" इस मन्त्र से कुशा से छेदन करता है ।१४। दो अथवा तीन होते है। प्राक् अग्र मे धारण करते हुए "वैष्णव्याविति" इस मन्त्र से अभ्युक्षण करे ।१५-१६। कुश तरुणो से प्रदक्षिण अग्नि को तीन पर्युक्षण करे। "महाना पयोमीति" इस मन्त्र से आज्य (घृत) की स्थाली का ग्रहण करे ।१७ १८। "ऊर्जे त्वेति" इस मन्त्र से चरु का उद्वास न करे ।१९-२०। उदगग्र पवित्री धारण करते हुए अगूँठो से और उर कनिष्ठकाओ से दोनो से प्रतिग्रहण करके ऊर्ध्वाग्र प्रह्न मे करके आज्य मे प्रत्यसन करता है। "सवितुष्टा प्रसव उत्पन्नाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण वसो सूर्यस्य रश्मिभिस्ति" यह मन्त्र है। आज्य (घृत) का सस्कार सर्वत्र होता है ।२१-२२। कभी भी जिसका सस्कार नही हुआ है उस घृत से हवन नही करना चाहिए ।२३। सवितुर्वेति"– इस मन्त्र से स्रुव मे आग लगावे ।२४। ये प्रणीता और प्रोक्षणी पात्र हैं ।२५।

।। अथ आज्यहोम ।।

स्रुव पात्रम् ।१। अर्थलक्षणग्रहणम् ।२। सव्येन कुशानादाय दक्षिणेन मूले स्रुव "विष्णो हस्तोऽसीति ।३। स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहोति ।४। उत्तरपश्चार्धादग्नेरारभ्याविच्छिन्न दक्षिणतो जुहोति "त्वमग्ने प्रमतिरिति" ।५। दक्षिपश्चार्धादग्नेरारभ्याविच्छिन्नमुत्तरतो जुहोति "यस येमे हिमवन्त इति ।६। आग्नेयमुत्तरमाज्यभाग सौम्य दक्षिणम् ।७। मध्येऽन्या आहुतय ।८। अग्निजनिता स मेऽमू जाया ददातु स्वाहा ।। सोमो जनिमान्त्स माऽमुया जनिमन्त करोतु स्वाहा । पूषा ज्ञातिमानन्त्स माऽमुष्यै पित्रा मात्रा भ्रातृभिर्ज्ञातिमन्त करोतु स्वाहेति ।९। नाज्याहुतिश्च नित्यावाज्यभागौ स्विष्टकृच्च ।१०। नित्याहुतिषु चेति माण्डूकेय ।११। महाव्याहृतिसर्वप्रायश्चित्त प्राजापत्यान्तरमेतदावापस्थानम् ।१२।आज्येहविषि सव्ये पाणौयेकुशास्तानृदक्षिणेनाग्रे सगृह्यमूले सव्येन तेषामग्र स्रुवे समनक्ति मध्यमाज्यस्थाल्याम् मूल च ।१३। अथ चेत् स्थालीपाकेषु स्रुच्यग्र मध्यस्रुवेमूलमाज्य स्थाल्याम् ।१४।ताननुप्रहृत्य अग्नेर्वासोऽसीति।१५।तस्र समिधोऽभ्याधाय।१६। यथोक्त पर्युक्षणम् ।१७। अनाम्नातमन्त्रास्वादिष्टदेवतासु अमुष्यै स्वाहाऽमुष्यै स्वाहेति जुहुयात् स्वाहाकारेणशुद्धेन ।१८। व्याख्यात प्रतिश्रुते होमकल्प ।१९।

स्रुव पात्र है ।१। स्रुवादिक के जो लक्षण चिह्न परिमाण आदि हैं तथा जैसा जिस पद का अथ अर्थात् प्रयोजन है उसका ग्रहण है अर्थात् जानना चाहिए । जिसका जहा पर जैसा भी अर्थ हो उसका वैसा ही परिणाम आदि करना चाहिए ।२। हाथ से कुशाओ को लेकर दक्षिण मे "विष्णोर्हस्तो सीति" इस मन्त्र से मूल मे स्रुव को ग्रहण करे ।३। स्रुव से आज्याहुतियो का हवन करता है ।४। उत्तर पक्षाध अग्नि के अभ्याविच्छिन्न दक्षिण से "त्वमग्ने प्रमतिरिति" —इस

मन्त्र हवन करता है ।५। दक्षिण पक्षार्ध अग्नि के अभ्याविच्छिन्न उत्तर से "यस्येमे हिमवन्त इति " इस मन्त्र से हवन करता है ।६। आग्नेय उत्तर आज्य भाग सोम्य दक्षिण है ।७। मध्य मे अन्य आहुतिया होती हैं ।८। "अग्निजनिता समेऽमू जाया ददातु स्वाहा"—"सोमो जमियान्त्स माऽमुया जनियन्त करोतु स्वाहा"—"पूषा ज्ञातिमानन्त्स मा मुष्यै पित्रा मात्रा भ्रातृभिर्ज्ञातिमन्त करोतु स्वाहा" इन मन्त्रो मे आहुतिया होती है । अन्याहुतियो मे अन्य आहुतिया नही होनी है । नित्य आज्य भाग और स्विष्टकृत् है ।९।१०। माण्डूकेम कहता है—और नित्याहुतियो मे होता है ।११। महाव्याहृतिया चार है—यथा भू स्वाहा—भुव स्वाहा स्व स्वाहा—भूर्भुव स्व स्वाहा"। महाव्याहृति प्रायश्चित प्राजापत्यान्तर यह आवाप स्थान है ।१२। आज्य मे—हवि मे—सव्य पाणि मे जो कुशा हैं उन को दक्षिण से आगे सग्रह करके मूल मे सव्य से उनके अग्र को स्रुव मे समनक्त करता है और मध्यमाश्रयस्थालो मे मूल को करता है ।१३। इसके अनन्तर यदि स्थाली पाको मे सूच्यग्र मध्य स्रुव मे आज्यस्थाली मे मूल होवे ।१४। उनको "अग्नेर्वासोसीति"—इस मन्त्र से अनुप्रहरण करे ।१५। तीन समिधाओ का अभ्याधान करे ।१६। जैसा भी पहिले कहा गया है वैसे ही पयुक्षण करे ।१७। अनाम्नात मन्त्रो वाले आदिष्ट देवताओ मे "अमुष्यै स्वाहा—अमुष्यै स्वाहा " इस क्रम से शुद्ध स्वाहाकार से हवन करना चाहिए ।१८। प्रति श्रुत मे होम कल्प व्याख्यात है ।१९।

।। अथ पाकयज्ञभेदा ।।

प्रकृतिर्भूतिकर्मणाम् ।१। सर्वासा चाज्याहुतीनाम् ।२। शाखापशुनाम् ।३। चरुपाकयज्ञाना च ।४। त एते प्रजाया अननुयाजा अनिला अनिगदा आसामिधेनीकाश्च सर्वे पाकयज्ञा भवन्ति ।५। तदपि श्लोका ।६।

हुतोऽग्निहोत्रहोमेनाऽहुतो बलिकर्मण ।
प्रहुत पितृकर्मणा प्राशितो ब्राह्मणे हुत ।७।

अनूर्ध्वज्ञु व्युं लजानुर्जुहुयात् सर्वदा हवि ।
न हि बाह्यहुत देवा प्रतिगृह्णन्ति कर्हिचित् ।८।
रौद्र तुराक्षस पित्र्यमासुर चाऽऽभिचारिकम् ।
उक्त्वा मन्त्र स्पृशेदप आलभ्यात्मानमेव च ।९।

भूति कर्मों की प्रकृति है । आचार्य के लिये, अग्नि के लिये, ऋत्विक के लिए और बार्हस्पति के लिये एवमादिको की यह प्रकृत्ति होती है ।१। और सब आज्याहुतियो की भी होती है ।२। शाखा पशुओ की होती है ।३। और चरु पाक् यज्ञो की होती हैं । वे ये प्रयाज—अननुयाज अनिल अभिगह और असामधेनीक सब पाकयज्ञ होते है । वे श्लोक भी है ।४-६। अग्निहोत्र होम के द्वारा हुत बलि कर्म के द्वारा अहुत पितृ कर्म के द्वारा प्रहुत-ब्राह्मण मे प्राशित हुत होता है।७। अनूर्ध्वज्ञु व्यूल जानु सर्वदा हवि का हवन करे । देवगण बाह्य हुत को कभी भी ग्रहण नही किया करते है ।८। रौद्र राक्षस पित्र्य असुर और आभिचारिक के मन्त्र का उच्चारण करके जल का स्पर्श करो और आत्मा का आलभन करके करे ।९।

॥ अथ इन्द्राणीकर्म ॥

अथैता रात्री श्वस्तृतीया वा कन्या वक्ष्यन्तीति ।१। तस्या रात्र्यामतीते निशाकाले सर्वौषधिफलोत्तमै सुरभिमिश्रै सशिरस्का कन्यामाप्लाव्य ।२। रक्तमहत वास परिधाय ।३। पश्चादग्ने कन्यामुपवेश्यान्वारब्धाया महाव्याहृतिभिर्हुत्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति—

अग्नयेसोमायप्रजापतयेमित्रायवरुणायेन्द्रायेन्द्राण्यैगन्धर्वाय भगाय पूष्णे त्वष्ट्रे बृहस्पतये राज्ञे प्रत्यानीकायेति ।४। चतस्रोऽष्टौ वाऽविधवा शाकपिण्डीभि सुरयाऽन्नेन च तर्पयित्वा चतुर् आनर्तन कुर्यु ।५। एना एवदेवतापु स ।६। वैश्रवणमीशान च ।७। अतो ब्राह्मणभोजनम् ।८।

इसके अनन्तर विवाह के अङ्ग इन्द्राणी कर्म बतलाया जाता है स्त्रियो का मन्त्र मे अनाधिकार होने से आचार्य करता है । इसके अनन्तर इस रात्रि को अथवा श्वस्तृतीया को कन्या को बोलेगे । उस रात्रि मे निशा काल के अतीत हो जाने पर सुगन्ध से मिश्रित सर्वोषधि फलोत्तमो से शिरके सहित कन्या को आप्लावित करे ।१ २। रक्त वर्ण का जो हवन हो ऐसा वस्त्र का परिधान करे ।३। अग्नि के पीछे कन्या को बिठाकर अन्यारब्धा मे महा आहुतियो से हवन करके फिर आज्य की आहुतियो का हवन करना है । अग्नि के लिये सोम के लिये प्रजापति के लिये मित्र के लिये वरुण के लिये, इन्द्र के लिये, इन्द्राणी के लिये, गन्धव के लिये, भग के लिये, पूषा के लिये, त्वष्टा के लिये, बृहस्पति के लिये और प्रत्यानीक गुणविशिष्ट राजा के लिये आहुतियाँ देता है ।४। चार अथवा आठ अविधवा शाक पिण्डीयो से, सुरा से और अन्न से तर्पण करके चार आवर्तन करे । पुरुष के ये ही देवता हैं ।५-६। और वैश्रवण ईशान को करे । अत ब्राह्मण भोजन है ।७-८।

।। अथ विवाहकर्म ।।

स्नात कृतमङ्गल वरमविधवा सुभगा युवत्य कुमार्यै वेश्म प्रपादयन्ति ।१। तासामप्रतिकूल स्यादन्यत्राभक्ष्यपातकेभ्य ।२। ताभिरनुज्ञातोऽथास्यै वास प्रयच्छति रैभ्यासीदिति ।३। चित्तिरा उपवर्हणमिति आञ्जनकोशमादत्ते ।४। समञ्जतु विश्वे देवा इति समञ्जनीया ।५। दक्षिणे पाणौ शलली त्रिवृत ददाति ।६। रूप रूपमिति आदर्श सव्ये ।७। रक्तकृष्णमाविक क्षौम वा त्रिमणि प्रतिसर ज्ञातयोऽस्या बध्नान्ति नीललोहितमिति ।८।मधुमतीरोषधीरिति मधूकानि बध्नाति।९। विवाहे गामर्हयित्वा गृहेषु गा ते माधुपर्किक्यौ ।१०। पश्चादग्ने कन्यामुपवेश्यान्वारब्धाया महाव्याहृतिभिस्तिस्रो जुहोति।११। सम॰ स्ताभिश्चतुर्थी प्रतोयेतैतस्या चोदनायाम् ।१२। एवमना-

देशे सर्वेषु भूतिकर्मसु पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चैताभिरेव जुहुयात् ।१३।

स्नान किये हुए तथा मङ्गल कृत्य किये जाने वाले वर को सौभाग्यवती सुभगा युवतिया कुमारी के लिये वेश्म (गृह) का प्रपादन करती है ।१। अन्यत्र अभक्ष्य पातको से उन के अप्रतिकूल होवे ।२। उनके द्वारा अनुज्ञा प्राप्त किया हुआ इसके अनन्तर उसके लिये वस्त्र प्रदान किया करता है और "रैभ्यासीद्" इस मन्त्र का उच्चारण करके ही वस्त्र देता है ।३। चीत्तरा उपवर्हणम्" इस मन्त्र के द्वारा आञ्जन कोश का दान करता है ।४। "समञ्जन्तु विश्वे देवा" इत्यादि मन्त्र के द्वारा भली भाँति अञ्जन करने के योग्य होती है । वर के कौतुकागार गमन से पहिले कन्या का दान करने वाला मधुपर्क करता है । कौतुक गृह से निकले हुए जामात का श्वशुर के द्वारा अर्घ करना चाहिए । जिस प्रकार से इसने शची की तथा सुपुत्रो वाली अदिति की रक्षा की उसी प्रकार से अविधवा तुम्हारी रक्षा की है, यहा पर इसकी रक्षा करो । दक्षिण हाथ मे शलली को त्रिवृत करके देता है ।५-६। 'रूप रूपम्" इस मन्त्र से सव्य हाथ मे आदर्श (शीशा) देना है । ।७। रक्तकृष्ण आविक अपना क्षौम और त्रिमणि प्रति सर इसके ज्ञाति वाले "नील लोहितम्" इस मन्त्र से बाँधते है ।८। "मधुमती शेषधी" इस मन्त्र से मधुको को बाँधती है ९। विवाह मे गौ की पूजा करके और "माता रुद्राणाम्" इस ऋचा का जाप करके गृहो का परिणाम करके आगात के द्वारा मधुपर्क से सम्बन्ध रखने वाली गौ का पूजन करता है । वहाँ पर आचार्य मधुपर्क से इस वर का अर्घ करता है । तुम्हारे लिये ये गौऐ मधुपर्क सम्बन्धिनी होवे ।१०। पीछे अग्नि के समीप मे कन्या को बिठा कर अन्वारब्धा मे महाव्याहृतियो से तीन आहुतियाँ देता है ।११। इस प्रेरणा मे समस्तो से चतुर्थी का प्रत्यय करना चाहिए ।१२। इसी प्रकार से अनादेश मे सम्पूर्ण भूतिकर्मों मे पहिले से और ऊपर से इन्ही से हवन करना चाहिए ।१३।

।। अथ पाणिग्रहणम् ।।

सम्राज्ञी श्वशुरे भवेति पिता भ्राता वाऽस्यग्रे ण मूर्धनि जुहतिस्त्र्वे णवातिष्ठन्नासीनाया प्राङ्मुख्या प्रत्यङ्मुख।१। गृभ्णामि ते सौभगात्वायु हस्तमिति दक्षिणेन पाणिना दक्षिण पाणि गृह्णाति साङ्गुष्ठमुत्तानेनोत्तान तिष्ठन्नासीनाया प्राङ्मुख्या प्रत्यङ्मुख । । पञ्च चोत्तरा जपित्वा ।३।

अमोहमस्मि सा त्व सा त्वमस्यमोह द्यौरह पृथिवी त्वम् ऋक्त्वममि सामह सा मामनुतव्राभव ।
तावेह वि वहाव है, प्रजा प्र जनयावहे, पुत्रान्विन्दावहै बहून्, ते सन्तु जरदष्टय इति ।४। उदकुम्भन्नव भू र्भुव स्वरिति पूरयित्व। ।५। पुन्नाम्मो वृक्षस्य सक्षीरान्त्सपलाशात्सकुशानोप्य ।६। हिरण्यमिनि चैके ।७। त ब्रह्मचारिणे वाग्यताय प्रदाय ।८। प्रागुदीच्या दिशि ता स्थेया प्रदक्षिणा भवन्ति ।९। अश्मान चोत्तरत उपस्थाप्य ।१०। एहि सूनरीति उत्थाप्य ।११।
एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मेव त्व स्थिरा भव ।
अभि तिष्ठ पृतन्यत सहस्व पृननायत इति ।।"
दक्षिणेन प्रपदेनाश्मानमाक्रमय्य ।१२। प्रदक्षिणमग्नि पर्याणीय ।१३। तेनैव मन्त्रेण द्वितीय वसन प्रदाय ।१४। लाजाञ्छमीपलाशमिश्रान् पिताभ्राता वा स्य।दञ्जलावावपति ।१५।उपस्तरणाभिघारणप्रत्यभिघारण चाज्येन ।१६। ताञ्जुहोति ।१७।

पिता अथवा भ्राता "साम्राज्ञी श्वशुरेभव" इस मन्त्र से अस्यग्रभाग से मूर्धा मे हवन करता है अथवा स्त्रु व से हवन करता है । स्वय प्रत्यङ् मुख हो कर खडे होते हुए पूर्व की ओर मुख करके बैठी हुई के मूर्धा मे आहुतियाँ दी जाती है ।।१।। "गृभ्णामि ते सौभगात्वायु हस्तम्"

इत्यादि म त्र का उच्चारण करते हुए वर अपने दाहिने हाथ से कन्या के दक्षिण करको ग्रहण करता है अ गुष्ठ के सहित उत्तान से प्रत्यङ्मुख वाला हो कर खडे होते हुए पूर्व की ओर मुख वाली बैठी हुई कन्या का कर ग्रहण करना चाहिए ॥२॥ पाँच उत्तराओ का जाप करे । वे पाँच ये हैं—"अमोहमस्मि सात्व सा त्वस्य मोहम्—द्यौरह पृथिवी त्वम्—ऋक् त्वमसि सामह सा—मामनुव्रताभव तावेह विवहावहै प्रजा प्रजनयावहै पुत्रन्विन्दावहै वहून ते सन्तु जरदष्टय" ॥४॥ जल के कुम्भ को "भू -भुव -स्व" इन महा व्याहृतियो से पूरित करके पुन्नाम वाले उदुम्बर आदि वृक्ष के क्षीर सहित नवीन पल्लवो को कुशाओ के साथ प्रक्षप करे ॥५ ६॥ कुछ विद्वानो का मत है कि हिरण्य भी लावे ॥७॥ उसको वाग्यत ब्रह्मचारी के लिये प्रदान करे ॥८॥ प्राग् उदीची दिशा मे वे प्रदक्षिणाऐ स्थेय होती है । आचाय का कर्त्तव्य है कि उत्तर की ओर पाषाण को उपस्थापित करे ॥९-१०॥ "एहि सूनरिति"—इत्यादि मन्त्र से उत्थापित करे । यहा आओ और इस पाषाण पर स्थित हो और इसी पाषाण की ही भाँति तुम स्थिरा हो जाओ । पृतन्य के समक्ष स्थित होओ और पृथनायत सहन करो । अश्म पर पदाक्रमण का कार्य कराना चाहिए । दक्षिण प्रपद से अश्म पर आक्रमण करे ॥११ १२॥ प्रदक्षिण अग्नि का पर्याणयन करके उसी म न्त्र से द्वितीय वस्त्र का प्रदान करना चाहिए ॥१३-१४॥ पिता अथवा भ्राता लाजाओ को जो शमी और पलाश के मिश्रित होवें अपनी अञ्जुति मे वपन करता है ॥१५॥ आज्य से उपस्तरण धारण तथा प्रत्यभिधारण करे ॥१६॥ उनका फिर हवन करता है ॥१७॥

॥ अथ सप्तपदक्रमणम् ॥

"इयन्नर्य्युप ब्रूते लाजानावपन्तिका ।
शिवा ज्ञातिभ्यो भूयास चिर जीवतुमेपतिस्वाहेति॥"
तिष्ठन्ती जुहोति पतिमन्त्र जपति ।१। अश्मक्रमणद्येव
द्वितीयम् ।२। एव तृतीयम्।३।तूष्णीकामेनचतुर्थम् ।४।

प्रागुदीच्या दिशि सप्तपदानि प्रक्रमयति ।५। इष एकपदी ऊर्जे द्विपदी रायस्पोषाय त्रिपदी, आयोभव्याय चतुष्पदी पशुभ्य पञ्चपदी, ऋतुभ्य षट्पदी, सखा सप्तपदी भवेति" ।६। तान्यद्भि शमयति ।७। आपोहिष्ठीया-भिस्तिसृभि स्थेयाभिरद्भिर्माजयित्वा ।८। मूर्धन्यभि-षिच्य ।९। गा ददानीत्याह ।१०। ब्राह्मणेभ्य किञ्चि-द्द्यात्सवत्र स्थालीपाकादिषु कर्मसु ।११। सूर्यां विदुषे वाधूयम् ।१२। गौर्ब्राह्मणस्य वर ।१३। ग्रामो राजन्यस्य ।१४। अश्वो वैश्यस्य ।१५। अधिरथ शत दुहितृमते ।१६। याज्ञिकेभ्योऽश्व ददाति ।१७।

लाजाओ का आगमन करने वाली नारी बोलती है ज्ञाति वालो को शिवा नारी कहती है मेरा पति बहुत अधिक काल तक जीवित रहे स्वाहा । वह खडी होती हुई हवन करती है और पति मन्त्र का जाप करता है ॥१॥ इस प्रकार से अश्म क्रमण आदि द्वितीय है ॥२॥ इसी प्रकार से तृतीय ॥३॥ तूष्णी काम वाले के द्वारा चतुर्थ है ॥४॥ प्राक् उदीची दिशा मे सप्तपदो का प्रक्रम होता है ॥५॥ वे सप्त पदियाँ निम्न भाँति से हैं—"इष"—यह एक पदी है। "ऊर्जे" यह द्विपदी है। "रायस्वोषाय" यह त्रिपदी है । "आयोभव्याय"—यह चतुष्पदी है । "पशुभ्य"—यह पञ्चपदी है । "सखा सप्त पदी भव"—यह षट्पदी है ॥६॥ उनका जलो से शमन करता है ॥७॥ आपोहिष्ठीय तीन स्थेयाओ से जल से माजन करके मूर्धा मे अभिषेचन करे ॥८ ९॥ फिर 'गाददाति"—यह कहे ॥१०॥ सर्वत्र स्थाली पाकादिक कर्मो मे ब्राह्मणो को कुछ देना चाहिए ॥११॥ विद्वान् के लिये सूर्या वाधूय है ॥१२॥ ब्राह्मण का वर गौ है ॥१२॥ क्षत्रिय का ग्राम है । वैश्य का अश्व है । दुहिता वाले के लिये शत अधिरथ है । याज्ञिको के लिये अश्व देना है ॥१३-१७॥

अथ वरगृहप्रस्थानम् ॥

"प्र त्वा मुञ्चामीति" तृच गृहात् प्रतिष्ठमानायाम् ।१। जीव रुदन्तीति प्ररुदन्त्याम् ।२। अथ रथाक्षस्योपाञ्जन पत्नी कुरुते अक्षन्नमीमदन्तेति एतया सर्पिषा ।३। शुची ते चक्रे द्वे ते चक्रे इति चैताभ्या चक्र्यो पूर्वया पूर्वमुत्तरयोत्तरम् ।४। उस्रौ च ।५। खे रथस्येति एतया फलवतो वृक्षस्य शम्यागर्तेष्वेकैका वयान्निखाय ।६। नित्या वाऽभिमन्त्र्य ।७। अथोस्रौ युञ्जन्ति युक्तस्ते अस्तु दक्षिण इति द्वाभ्याम्, शुक्रावनड्वाहाविति एतेनार्द्धर्चेन युक्तावभिमन्त्र्य ।८। अथ यदि रथाङ्ग विशीर्येत छिद्येत वाऽऽहिताग्न गृहान् कन्या प्रपाद्य ।९। अभि व्ययस्व खदिरस्येति एतया प्रतिदध्यात् ।१०। त्य चिदश्वमिति ग्रन्थिम् ।११। स्वस्ति नो मिमीतामिति पञ्चर्च जपति ।१२। सुकिशुकमिति रथमारोहन्त्याम् ।१३। मा विदन् परिपन्थिन इति चतुष्पथे ।१४। ये वध्व इति श्मशाने ।१५। वनस्पते शतवल्श इति वनस्पत।वर्द्धर्च जपति ।१६। सुत्रामाणमिति नावमारोहन्त्याम् ।१७। अश्मन्वतीति नदी तरन्त्याम् ।१८। अपि वा युक्तेनैव ।१९। उद्व ऊर्मिरिति अगाधे ।२०। प्रेक्षण च ।२१। इह प्रियमिति सप्त गृहान् प्राप्ताया कृता परिहाप्य ।२२।

गृह से प्रतिष्ठमान होने के समय मे "प्रत्वामुञ्चामि" इस तृच को पढे । प्ररुदन कपने वाली मे "जीव रुदन्तीति"—इसको पढे ।.१-२॥ इसके अनन्तर "अक्षन्नमी मदन्त" इससे सर्पि के द्वारा पत्नी रथ के अक्ष का उपाञ्जन करती है ॥३॥ "शुची ते चक्रे—द्वे ते चक्रे" इत्यादि दो मन्त्रो से चक्रो का करे । पहिली ऋचा से प्रथम का और दूसरी से दूसरे का करे। दोनो उस्रो का भी करे ॥४-५॥ "खे रथस्य"–इत्यादि ऋचा से फल वाले वृक्ष के शम्य र्थ कृत गर्त्तो मे

वय से निखनन करे ॥६॥ अथवा नित्या अति मन्त्रण करके कम करे। नित्या युगस्था ही होती है जो पुरातना है वह शम्या है उस रथाङ्ग सस्कार के अन तर 'स्वस्ति न'–इस स्वस्त्ययन को माग मे कल्याण के सम्पादन के लिये जाप करता है ॥७॥ इसके पश्चात् दोनो उस्रो का योग करते हैं। "युक्त स्ने अस्तु दक्षिणा" इन दो से योजन करे। "शुक्रावनड्वाहौ"––इस अध ऋचा से युक्त हुए द नो को अभिमन्त्रित करना चाहिए ॥८॥ इसके उपरान्त यदि रथ का अङ्ग विशीर्ण हो जावे अथवा छिन्न हो जावे तो आहिताग्नि वाले के गृहो मे कन्या को प्रपन्न करा देवे ॥६॥ "अभिव्ययस्व खदिरस्य" इम ऋचा से प्रतिधान करना चाहिए। "१व चिदम्वम्"–इससे ग्रन्थिका करे ॥१०-११॥ "स्वस्ति नो मिमिताम्" इत्यादि पाँच ऋचाओ का जाय करता है। ॥१२॥ जब रथ पर आरोहण करे उस समर्थ मे 'सुकिंशुकम्" इसका जाप करे ॥१३॥ "माविदन् परिपन्थिन" इसका चतुष्पथ मे जप करता है। "ये वध्व"–इससे श्मशान मे–"वनस्पते शतवल्श" इसका वनस्पति मे आधी ऋचा को जपता है ॥१४-१६॥ जब वह नाव मे आरोहण करती है उस समय मे "सुत्रामाणम्"—इसको जपता है ॥१७॥ जिस सनय मे नदी मे तरण करे उस समय मे "अश्मन्वतीति" इसको जपना चाहिए ॥१८॥ अथवा युक्त से भी करे ॥१६॥ अगाध में जब हो तो "उद्व ऊर्मि" इस को जपे ॥२०॥ और प्रेक्षण करे ॥२१॥ "इह प्रियम्" इससे सात गृहो मे प्राप्त का कृत पर्िह प्यन करे ॥२२॥

॥ अथ गृहप्रपादनम् ॥

आनडुहमित्युक्तम् ।१। तस्मिन्नुपवेश्यान्वारब्धाया पतिश्चतस्रो जुहोति । । अग्निना देवेन पृथिवीलोकेन लोकानामृग्वेदेन वेदाना तेन त्वा शमयाम्सौ स्वाहा । वायुना देवेनान्तरिक्षलोकेन लोकाना यजुर्वदेन वदाना तेन त्वा शमयाम्यसौ स्वाहा । सूर्येण देवेन द्यौर्लोकेन लोकाना सामवेदेन वेदाना तेनत्वाशमयाम्यसौ स्वाहा चन्देणदेवेन

दिशा लोकेन लोकाना ब्रह्मवेदेन वेदाना तेन त्वा शमया-म्यसौस्वाहा।३। भूर्यातिपत्तिघ्न्यलक्ष्मीदेवरघ्नीजारघ्नीता करोम्यसौ स्वावेति वा प्रथमया तहाव्याहृत्या प्रथमो-पहिता द्विनीयया द्वितीया तृतीयय ातृतीयासमाभिश्चतु-र्थी।४। अघोरचक्षुरितिआज्यलेपेनचक्षुषीविमृजीत५।कया-नश्चित्र इति तिसृभि केशान्तानभिमृश्य ।६। उतत्या दैव्याभिषजेतिचतस्रोऽनुद्रुत्यान्तेस्वाहाकारेण मूधनिस-स्रावम्।७। अत्रहैके कुमारमुत्सङ्गमानयन्त्युभयत सुजान-मुआतेयोनिमिति एतया ।८। अपि वा तूष्णीम्।९।तस्याऽ ञ्जलौ फलानिदत्त्वावाचयति।१०।पु सवतीह भवति।११। इहैव स्तमिति सूक्तशेषेण गृहान् प्रपादयन्ति ।१२।

आनडुहम्—यह कह दिया गया है। उस पर अर्थात् जुते हुए बैलो वाले रथ पर उसको बिठाकर अन्वारब्धा मे पति चार आहुतियो का हवन करता है ॥१-२॥ "अग्निना देवेन पृथिवी लोकेन लोकानाम्—ऋग्वेद के द्वारा—"वेदाना तेनत्वा शमयाम्यसौ स्वाहा। वायुना देवेनान्तरिक्ष लोकेन लोकाना यजुर्वेद के द्वारा— 'वेदाना तेनत्वा शमया म्यसौ स्वाहा। सूर्येण देवेन द्यौर्लोकेन लोकाना सामवेद से "वेदाना तेनत्वा शमयाम्यसौ स्वाहा।चद्रेण देवेन दिशा लाकेन लोकाना ब्रह्म वेद के द्वारा अथवा"वेदाना तेनत्वा शमयाम्यसौ स्वाहा ॥३॥ भूयति पतिध्न्य लक्ष्मी देवराघ्नी आरघ्नी ता करोम्यसौ स्वाहा" इससे प्रथमा महा व्याहृति से प्रथमा उपहिता है—द्वितीय व्याहृति से द्वितीया—तृतीय व्याहृति से तृतीया और समस्त व्याहृतियो से चतुर्थी उपहिता होती है ॥४॥ "अघोर चक्षु" द्वारा आज्य के लेपन से दोनो नेत्रो का विमृजन करना चाहिए ॥५॥ "कयानश्चित्र" इससे तीनो स केशा तो का अभिमृशन करे ॥६॥ उतन्या दैव्या मिषजा" इत्यादि चार ऋचाऐ है। अनुद्रुति के अन्त मे स्वाहाकार से मूर्धा मे सस्राव करे ॥७॥ यहा पर कुछ मनीषियो का मत है कि कुमार को उत्सङ्ग मे आननयन करने वाली दोनो ओर से सुजात से "आते योनिम्" इसमे करना चाहिए ॥८॥ या तूष्णी भाव से

ही करे ॥९॥ उसकी अञ्जलि मे फलो को देकर पुण्याह वाचन बाचना है ॥१०॥ यहाँ पर पु सवती होती है ॥११॥ "इदत्र स्तम्" इस सूक्त शेष से गृहो को प्रतिपादन करते है ॥१२॥

॥ अथ ध्रुवदर्शनम् ॥

दधिक्राव्णो अकारिषमिति दधि सपिवेयाताम् ।१। वाग्य तावासीयातामाध्रुवदशनात्।२। अस्तमिते ध्रुव दशयति ध्रुवैधिपोष्या मयीति ।३। ध्रुव पश्यामि प्रजा त्रिन्दयेनि ब्रूयात् ।४। त्रिरात्र ब्रह्मचर्य चरेयाताम् ।५।अध शयीयाताम् ।६। दध्योदन सभुञ्जोयाताम् पिबतञ्च तृष्णुत चेति तृचेन ।७। सायप्रातर्वैवाह्यमग्नि परिचरेयाताम् अग्नये स्वाहाऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति ।८।
पुमासौ मित्रावरुणौ पुमासाश्विनामुभौ ।
पुमानिन्द्रश्चाग्निश्च पुमास वधना माय स्वाहेति ॥
पूर्वा गभकामा ।९। दशरात्रमविप्रवास ।१०।

"दधि क्राव्णो अकारिषम्"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा दधि का पान करे। ध्रुव दशन से वाग्यत अवास करे ॥१-२॥ सूय के अस्तमिन हो जाने पर "ध्रुवैधिपोष्या मयी" इससे ध्रुव को दिखाता है ॥३॥ "ध्रुव पश्यामि प्रजा निन्दय"—यह बोलना चाहिए ॥४॥ तीन रात्रि तक ब्रह्मचय व्रत का समाचरण करना चाहिए। ॥५॥ नीचे भूमि पर शयन करे ॥६॥ दध्योदन का भोजन करे। और वह भोजन भी "पिवतञ्च तृणुतच" इस तृच से करना चाहिए ॥७॥ सायङ्काल और प्रात काल दोनो समयो मे ववाह्य अग्नि का परिचरण करना चाहिए ।"अग्नये स्वाहा अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इम मन्त्र का पढ कर करना चाहिए। ॥८॥ मित्रावरुण दोनो पुमान् है-दोनो अश्विनी कुमार पुमान् है—इन्द्र और अग्नि पुमान् हैं—मुझमे पुमास का वृद्धि होवे। पूर्वा गर्भ की कामना वाली है। दश रात्रि तक विप्रवास नही हाना चाहिए ॥९ १०॥

।। अथ चतुर्थीकर्म ।।

अथ चतुर्थीकर्म ।१। त्रिरात्रे निवृत्ते स्थालीपाकस्य जुहोति ।२।

अग्ने प्रायश्चित्तिरसि त्व देवाना प्रायश्चित्तिरसि ।
याऽस्या पतिघ्नी तनूस्तामस्या अप जहि ।।
वायो प्रायश्चित्तिरसि त्व देवाना प्रायश्चित्तिरसि ।
याऽस्या अपुत्रिया तनूस्तामस्या अप जहि ।।
सूर्य प्रायश्चित्तिरसि त्व देवाना प्रायश्चित्तिरसि ।
यास्या अपशव्मस्या तनूस्तामस्या अप जहि ।।
अर्यमणनुदेव कन्या अग्निमयक्षत सेमा देवो अय्यमा प्रेतो मुञ्चातु मामुत । वरुण नु देव कन्या अग्निमयक्षत सेमा देव पूषा प्रेतो मुञ्चातु मामुत ।३। प्रजापत इति सप्तमी ।४। सौविष्टकृत्यष्टमी ।५।

इसके अनन्तर चतुर्थी होता है ।।१।। तीन रात्रि व्यतीत हो जाने पर स्थाली पाक का हवन करता है ।।२।। हे अग्ने ! आप प्रायश्चित्ति है। आप देवो के प्रायश्चित्ति है। जो इसकी पत्नि का हनन करने वाली तनू है इसके उसका आप अपत्याग करदे अर्थात् उसे हरा देवे ! हे वायुदेव ? आप प्रायश्चित्ति है और देवो के प्रायश्चित्ति होते है जो इसकी अपुत्रिया तनू है। इसके उसका आप अपहरण करे। हे सूर्य ! आप प्रायश्चित्ति हैं और आप देवो के प्रायश्चित्ति है। जो इसका अपसव्या तनू है इसके उसको आप अपत्याग करे। कन्या ने अयमा देव का और अग्नि का यजन किया वह यह है अयमा देव प्रेत इसको छोड देवे मेरे लिये। कन्या ने वरुण देव अग्नि का यजन किया है वह देव पूषा प्रेत इसको मेरे लिये मुक्त कर देवे। "प्रजायत"–यह सप्तमी है । सौविष्टकृती अष्टमी है ।।३-५।।

।। अथ गर्भाधानम् ।।

अध्याण्डामूल पेषयित्वर्तु वेलायाम् उदीर्ष्वात पतिवतीति

द्वाभ्यामन्तेस्वाहाकाराभ्या नस्तो दक्षिणतो निषिञ्चेत्
।१। गन्धर्वस्य विश्वावसोर्मुखममीति उपस्थ प्रजनयिष्य-
माणोऽभिमृशेत् ।२। समाप्ते अर्थे जपेत् ।३। प्राणे ते रेतो
दधाम्यसाविति अनुप्राण्यात् ।४।
यथा भूमिरग्निगर्भा यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी ।
वायुर्यथा दिशा गभ एव गर्भ दधामि तेऽसाविति वा।५।
आ ते योनि गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरो अत्र जायता पुत्रस्ते दशमास्य ।६।
पुमास पुत्र जनय त पुमाननु जायताम् ।
तेषा माना भविष्यसि जाताना जनयामि च ।७।
पुंसि वै पुरुषे रेतस्तत्स्त्रियामनु षिञ्चतु ।
तथा तदब्रवीद्धाता तत्प्रजापतिरब्रवीत् ।८।
प्रजापतिर्व्यदधात् सविता व्यकल्पयत् ।
स्त्रीषूयमन्यात् स्वादधत्पुमासमा दधादिह ।९।
यानि भद्राणि बीजानि पुरुषा जनयन्ति न ।
तेभिष्ट्व पुत्र जनय सुप्रसूर्धेनुका भव ।१०।
अभिक्रन्द वीलयस्व गर्भमा धेहि साधय ।
वृषाण वृषन्ना धेहि प्रजायै त्वा हवामहे ।११।
यस्य योनि पतिरेतो गृभाय पुमान् पुत्रो धीयता गर्भे अन्त ।
तपिपृहिदशमास्योऽन्तरुदरेसजायताश्रेष्ठयनम स्वानामितिवा।।

अध्याण्डर पण फलिनी है—इस कर्म को भर्त्ता ही करता है क्योकि पुंस संस्कार का जनन होता है अत अन्य नही किया करता है। अध्याण्डा के मूल को ऋतु के समय मे पेषण करे"नदीष्वनि पतीवतीति" इस मन्त्र से अ त मे स्वाहाकार वाले दोनो से दक्षिण से निषिञ्चन करे ।।१।। गन्धर्वस्य विश्वावसोर्मुखमस्तीति" इस मन्त्र से उपस्थ को प्रजन मिष्यमाण अभिमर्शित करना चाहिए ।।३।। अथ के समाप्त होजाने पर जाप करे। अनुप्राण्य होने से "प्राणे ते रेतो दधाम्यसाविति"—इस मन्त्र से जाप करे ।।३-४।। जिस प्रकार से यह भूमि अग्नि को गर्भ मे

धारण करने वाली है और यह इद्र के द्वारा गर्भ वाली है। जिस तरह से वायु दिशाओ का गर्भ होता है। इसी प्रकार से तुझको इस गर्भ को धारण करता हूँ ।।५।। तेरी योनि मे गर्भ मे पुमान् आवे जैसे धनुष मे बाण आया करता है इसमे दशम मास मे होने वाला वीर पुत्र जन्म ग्रहण करे ।।६।। पुमान् पुत्र को जन्म दे। उसके पीछे पुमान् ही उत्पन्न होवे। उन जन्म ग्रहण करने वालो की माता हो जायगी और जन्म देगी ।।७।। पुरुष पुमान् मे वह रेत (वीर्य्य) स्त्री मे पीछे सिञ्चन करे। उस प्रकार से धाता यह बोला और प्रजापति ने यह कहा ।।८।। पति ने किया था और सविता ने विशेष रूप से कल्पित किया था। स्त्रियो मे उप मनन करे। पुमान् को धारण किया है और इसमे यह धारण हुआ है ।।६।। जिन भद्र बीजो को पुरुष जनन करते है तुझे अभीष्ट पुत्र को जन्म दे और सुदर प्रसव करने वाली धेनुका होवे अभिक्रन्दन और वीलन करो गभ को धारण करो और उसको साधो। वृषन्ना वृषाण को धारण करो। प्रजा के लिये तुझको हवन करते है। ।।११।। अर्थात् प्रजा की उत्पत्ति के लिये ही तेरी योनि मे वीर्य का सिचन करते है जिसकी योनि मे पुमान् पति रेतस् को धारण करता है गर्भ मे अन्दर पुत्र धारण करे। उसको दशमास तक परिपालन करो और अन्दर उदर मे दशमास तक रखे जब दशम मास का हो जावे तो उस श्रेष्ठतम का जनन करे जो अपनो मे परम श्रेष्ठ होवे।

।। अथ पुसवनम् ।।

तृतीये मासि पुसवनम् ।१। पुष्येणश्रवणेनवा।२।सोमाशु पेषयित्वा कुशकण्टक वा न्यग्रोधस्य वा स्कन्धस्यान्त्या शुङ्गा यूपस्य वाऽग्निष्ठाम् ।३। सस्थिते वा यज्ञे जुह्व सस्रावम् ।४। अग्निना रयिमृतन्नस्तुरीपम् सामिद्धाग्निर्वनवत् पिशङ्गरूप इति चतसृभिरन्तेस्वाहाकाराभिनस्तो दक्षिणतो निषिञ्चेत् ।५।

गर्भ के धारण करने के तीसरे मास मे पु सवन नाम वाला सस्कार होता है अर्थात् किया जाता है। यह संस्कार पुष्य नक्षत्र मे अथवा श्रवण नक्षत्र मे करना चाहिये। ॥१-२॥ सोमाशु का अथवा कुश कण्टक को या न्यग्रोध के स्कन्ध की अन्त मे होने वाली शुङ्गा को अथवा भूप की अग्निष्ठा को पेषण करे ॥३॥ अथवा यज्ञ के सस्थित होने पर सस्राव का जुहव करे ॥३-४॥ "अग्निनारयिम्"—"तन्न स्तुरीयम्"—समिद्धा-ग्निर्वनवत्"—"पिशङ्ग रूप इति"—इन चार ऋचाओ से अन्त मे स्वाहाकार वाली करके निषिञ्चन करना चाहिए ॥५॥

॥ अथ गर्भरक्षणम् ॥

चतुर्थे मासि गर्भरक्षणम् ।१। ब्रह्मणाऽग्नि सविदान इति षट् स्थालीपाकस्य हुत्वा ।२। अक्षीभ्या ते न सिकाभ्या-मिति प्रत्यृचमाज्यलेपेनाङ्गान्यनुविमृज्य ।३।

चौथे मास मे गर्भ का रक्षण होता है ॥१॥ "ब्रह्मणाग्नि सविदान इति" इससे वह स्थालीपाक का हवन करे ॥२॥ "अक्षीभ्या तेनासिकाभ्यामिति", प्रत्येक ऋचा के द्वारा आज्य (घृत) लेपन से अङ्गो का अनुमृजन करे ॥३॥

॥ अथ सीमन्तोन्नयनम् ॥

सप्तमे मासि प्रथमगर्भे सीमन्तोन्नयनम् ।१। स्नातामहत-वासस पश्चादग्नेरुपवेश्य ।२। अन्वारब्धाया महाव्याहृ-तिभिर्हुत्वा ।३। स्थालीपाक श्रपयित्वा ।४। मुग्दौदनमि-त्येके ।५। पु वदुपकरणानि स्युनक्षत्र च ।६।
धाता ददातु दाशुषे प्राची जीवातुमक्षितिम् ।
वय देवस्य धीमहि सुमति सत्यधर्मण ॥
धाता प्रजाया उतराय ईशे धातेद विश्व भुवन जजान ।
धाता पुत्र यजमानाय दाता तस्मा उ हव्य घृतवज्जुहोतेति ।
नेजमेष परा पतेति तिस्र प्रजापत इति षष्ठी।७। त्रि श्वे-तया शलल्या दर्भसूच्या वोदुम्बरशलाटुभि सह मध्या-

दूर्ध्वं सीमन्तमुन्नयति भूर्भुव स्वरिति ।८। उत्सङ्गे नि-
धाय ।६। त्रिवृति प्रतिमुच्य कण्ठे बध्नाति अयमूर्जावतो
वृक्ष ऊर्जीव फलिनी भवेति ।१०। अथाऽऽह वीणा गाथि-
न राजान सगायतेति यो वाप्यन्यो वीरतर इति ।११।
उदपात्रेऽक्षतानवनिनीय विष्णुर्योनि कल्पयतु राकामह
मिति ।१२। षड्ऋचेन पाययेत् ।१३। अथास्या उदरम-
भिमृशेत् ।१४।
सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्र चक्षु ।
छन्दास्यङ्गानि यजूषि नाम साम ते तनू ।१५।
मोदमानी गापयेत् ।१६। महाहेमवती वा ।१७। ऋषभो
दक्षिणा ।१८।

प्रथम गर्भ मे सात मास मे सीमन्तोन्नयन सस्कार होता है ।१। स्नान की हुई अहत वस्त्र धारिणी महाव्याहृतियो से हवन करे ।२-३। स्थाली पाक का हवन करना चाहिए। कुछ विद्वानो का मत है कि मुग्दौदन का हवन करना चाहिए ।४-५। पु वत उपकरण होने चाहिए और नक्षत्र भी होना चाहिए । धाता अशुष मे प्राची का देवे और अक्षिति जीवातु को प्रदान करे। हम सत्य धर्म वाले देव की सुमति को ध्यान मे लाते है। धाता प्रजा का और राय का ईश है। धाता ने इस विश्व भुवन को जन्म दिया है। अर्थात् धाता जी ने इस सम्पूर्ण विश्व एव भुवन को समुत्पन्न किया है। धाता यजमान के लिये पुत्र का प्रदान करने वाला है। उसी के लिये हव्य को घृत की भाँति हवन करो। "नेजमेष परा वर्तेति" ये तीन है। "प्रजापत" यह षष्ठी है ।७। तीन श्वेत वाली शलसी से अथवा दर्भ (कुश) की सूची से उदुम्बर शलादुओ के साथ मध्य से ऊध्व को "भुर्व स्व" इनसे सीमन्त का उन्नयन करता है। ।८। उत्सङ्ग मे रखे ।६। त्रिवृत् मे प्रतिमोचन करके कण्ठ मे बाधता है। "आयुमृ जायतो वृक्ष ऊर्जीविकलिनी भवेति'—इस ऋचा से बाधना चाहिए ।१०। इसके अनन्तर वीणागाथियो को कहता है। और "राजान सगामतेति यो वाप्यन्यो वीरतर इति"—इस मन्त्र का उच्चारण करके ही

कहना चाहिए ।११। जल के पात्र मे अक्षतो को अव विनयय करके इस निम्न ऋचाओ का उस समय मे उच्चारण करे—"विष्णुर्योनि कल्प मनु" "राकामहामोति" ।१२। षट् ऋच से पायन करना चाहिए ।१३। इसके अनन्तर उदर त्रिवृत्त मे शिर और चक्षु का गाने वाले का त्राण करन बाले है । यजुर्वेद के छन्द अङ्गो की रक्षा करे और साम तुम्हारे तनू की रक्षा करे ।१५। मोदमानी का गान करावे ।१६। अथवा महा हेमवनी का कराना चाहिए ।१७। ऋष मे दक्षिणा से है ।१८।

।। अथ सूतिकागृहोपलेपनम् ।।

काकातन्या मचकचातन्या कोशातक्या वृहत्या कालक्लीतकस्येति मूलानि पेषयित्वोपलेपयेद्देश यस्मिन् प्रजायेत रक्षसामपहत्यं ।१।

राक्षसो के विनाश के लिये जो सूतिका गृह हो अर्थात् जिसमे जनम होवे उस घर का काकातनी मचक चातनी कोशातकी-कालकीलक और वृहती इस पाचो वनस्पतियो के मूलो को पीसकर उस भाग का उप लेपन करना चाहिए । इन उक्त वनस्पतियो को लोक मे काककदली पयोटी धोषावती काली घेरु और वृहती इन नामो से प्रसिद्धि है । यह गभ का सस्कार नही है केवल राक्षसो के विनाशार्थ ही प्रिय लेपन होता है ।

।। अथ जातकर्म ।।

अथ जातकर्म ।१। जात कुमार त्रिर् अभ्यवान्यानुप्राण्यात् ऋचा प्राणिहि यजुषा समनिहि, साम्नोदनिहीति ।२। सर्पिमधुनी दध्युदके च सन्निनीय व्रीहियवौ वा सन्निघृष्य त्रि प्राशयेज्जातरूपेण ।३।

प्र ते यच्छामि मधुमन्मखाय वेद प्रसूत सवित्रा मघोना ।
आयुष्मानृगुपितोदेवताभि शतजीवशरदोलोकेअस्मिन्निनि ।।
असाविति नामास्य दधाति घाषवदाद्यन्तरन्तस्थ द्व्यक्षर चतुरक्षर वाऽपि वा षडक्षर कृत कुर्यान्नत द्धितत् ।४।

तदस्य पिता माता च विद्याताम् ।५। दशम्या व्यावहारिक ब्राह्मणजुष्टम् ।६। गो कृष्णस्य शुक्लकृष्णानि लोहित।नि च रोमाणि मष कारयित्वैतस्मिन्नेव चतुष्टये सन्निनीय चतु प्राशयेदिति माण्डूकेय ।७। भूर्ऋग्वेद त्वयि दधाम्यसौ स्वाहा, भुवो यजुर्वेद त्वयि दधाम्यसौ स्वाहा, स्व सामवेद त्वयि दधाम्यसौ स्वाहा, भूर्भुव स्ववर्की वाक्यमितिहाम्पुराणमो सर्वान् वेदॉस्त्वयि दधाम्यसौ स्वाहेति वा ।८। मेधाजनन दक्षिणे कर्ण वागिति त्रि ।९। वाग्देवी मनसा सविदाना प्राणेन वत्सेन सहेन्द्रप्रोक्ता। जुषतात्वा सौ मनसाय देवी महोमन्द्रा वाणी वाणीची सलिला स्वयम्भूरिति। चानुमन्त्रयेत।१०। शणसूत्रेण विग्रन्थ्य जातरूपम् ।११। दक्षिणे पाणावपिनह्य आ उत्थानात् ।१२। ऊर्ध्व दशम्या ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् ।१३। अमा वा कुर्वीत ।१४।

इसके अनन्तर प्रसूत हुए शिशु का कर्म बतलाया जाता है।१। जो कुमार जन्म ग्रहण करके माता के उदर दरी से बाहिर आया है उसको अनुप्राणित करने के लिये "ऋच, प्राणीहि यजुषा ममनिहि साम्नो दनिहि इति" इसका उच्चारण करे ।२। घृत मधु दधि-उदक मे भली भाति निनयन करके अथवा व्रीहि और यवो को सन्निघषण करके जातरूपसे तीन बार प्राशन कराना चाहिए ।३। मख के लिये तुझको सविता मघवान के द्वारा प्रसूत मधुमत् वेदको देता हूँ । तू देवताओ के द्वारा आयुष्मान और सुरक्षित किया हुआ हे इस लोक मे सौ वरस तक जीवित रहो। यह हैं—ऐमा इसका नाम धारण कराता है। घोष वाला आद्यन्तस्थ दो अक्षरो वाला—अथवा चार अक्षरो वाला नाम किया जाना चाहिए। षडक्षर भी नाम करे किन्तु वह हित कर नही होता है ।४। वह इसके माता और पिता जाने ।५। दशमी मे व्यवहार सम्बन्धी हे जो ब्राह्मणो से जुष्ट होता है ।६। कृष्ण गौ के शुक्ल कृष्ण हित रोमो का भ्रष्ट

करा कर इसी चतुष्टय मे भली भांति निनयन करके प्राशन कराना चाहिए—यह माण्डूकेय प्रतिपादित है ।७। भू ऋग्वेद को तुझ मे धारण करता हूं यह स्वाहा है—भुव यजुर्वेद को तेरे अन्दर रखता हूँ—यह स्वाहा है—स्व सामवेद को तुझ मे धारण करता हू यह स्वाहा है—भूर्भुव स्वः वाक्ये वाक्य इतिहास पुराण समस्त वेदो को तुझ मे धारण करता हूँ—यह स्वाहा है अथवा यहकरे।८। मेधा के जनन को दक्षिण कर्ण मे "वाणीति" इसको तीन वार करे ।९। वाग्देवी मन से सविधाना होती हुई प्राण के वत्स के साथ इन्द्र प्रोक्ता है । देवी मही मन्द्रा वाणी वाणीची सलिला स्वयम्भू तेरा सेवन करे । और अनुमन्त्रित करे ।१०। शणा सूत्र से जातरूप को विग्रथित करे ।११। जब तक सूतिका उत्थान हो दक्षिण हाथ मे बांधे ।१२। दशमी के ऊपर ब्राह्मणो को दे देना चाहिए ।१३। अथवा अमा करे ।१४।

।। अथ नामकर्म ।।

दशरात्रे चोत्थानम् ।१। मातापितरौ शिर स्नातावहतवाससौ ।२। कुमारश्च ।३। एतस्मिन्नेव सूतिकाग्नौ स्थालीपाक श्रपयित्वा ।४। जन्मतिथि हुत्वा त्रीणि च भानि सदैवतानि ।५।तन्मध्ये जुहुयाद्यस्मिन् जात स्यात् पूर्व तु दैवत सवत्र ।६।

आयुष्टे अद्य गीर्भिरयमग्निवरेण्य ।
आयुर्नो दहि जीवसे आयुर्दा अग्ने हविषा वृधानो ।
घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि घृत पीत्वा मधु चारु गव्यम् ।
पितेवपुत्रमिहरक्षतादिममिति।। त्वसोममहेभगमिति ।

दशमो स्थालीपाकस्य ।७। नामधेय प्रकाश कृत्वा ।८। ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य ।९। एवमेव मासि-मासि जन्मतिथि हुत्वा ।१०। ऊर्ध्व सवत्सराद् गृह्येऽग्नौ जुहोति।११।

दश रात्रियो के समाप्त होने पर सूतिका का उत्थान होता है ।१। शिशु के माता-पिता दोनो शिर से स्नान किये हुए अहत धारण करे ।२। और उद्भव जात कुमार को भी स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र धारण कराना चाहिए ।३। इसी दिन मे—इसी सायक से ऐसा स्पष्ट होता है कि पहिले सूतिक गृह मे रक्षण के लिये अग्नि को धारण रखना चाहिए और उसीमे जातकर्म करना चाहिए । इसी सूतिकाग्नि मे स्थालीपाक का श्रवण करे अर्थात् हवन करना चाहिए ।४। जन्म तिथि को हवन करके और तीन सदेवतो को करे ।५। जिसमे जात होवे उसके मध्य मे हवन करना चाहिए । पूर्व मे तो सर्वत्र दैवत करे ।६। हे आयुषे! आज वाणियो के द्वारा यह अग्नि वरेण्य है । हे अग्ने ! हवि के द्वारा वर्धमान होते हुए आयु के देने वाले हमको आयु दो जिसमे जीवित रहता है घृत प्रतीक घृतयोनि घृत-मधु और चारुगव्य को पीकर वृद्धि को प्राप्त होवे । पिता की ही भाति इस पुत्र की यहाँ पर रक्षा करो । आप सोम है भग का यजन करे । दशमी स्थाली पाक का है ।७। नामधेय को प्रकाशित करे ।८। ब्राह्मणो से स्वस्ति वाचन कराना चाहिए ।९। इस तरह से मास मास मे अर्थात् प्रत्येक मास मे जन्म तिथि को हवन करे ।१०। एक वर्ष के ऊपर गुह्य अग्नि मे करता है ।११।

।। अथ होम ।।

अग्नये कृत्तिकाभ्य ।१। प्रजापतये रोहिण्यै ।२। सोमाय मृगशिरसे । । रुद्रायाऽऽर्द्राभ्य ।४। अदितये पुनर्वसुभ्याम् ।५। बृहस्पतये पुष्याय ।६। सर्प्पेभ्यो ऽश्लेषाभ्य ।८। पित्र्येभ्यो मघाभ्य ।८। भगाय फल्गुनीभ्याम् ।९। अर्यम्ण फल्गुनीभ्याम् ।१०। सवित्रे हस्ताय ।११। त्वष्ट्रे चित्रायै ।१२। वायवे स्वातये १३। इन्द्राग्निभ्याविशाखाभ्याम् ।१४। मित्राय।ऽनुराधायै ।१५। इन्द्राय ज्येष्ठाय ।१६। निर्ऋत्यै मूलाय ।१७। अद्भ्योऽषाढाभ्य ।१८।

विश्वेभ्यो देवेभ्योऽषाढाभ्य ।१६। ब्रह्मणेऽभिजिते ।२०।
विष्णवे श्रवणाय ।२१। वसुभ्यो धनिष्ठाभ्य ।२२। वरु-
णाय शतभिषजे ।२३। अजायैकपदे प्रोष्ठपदाभ्य ।२४।
अहिर्बुध्न्याय प्रोष्ठपदाभ्य ।२५। पूषणरेवत्यै ।२६।
अश्विभ्यामश्विनीभ्याम् ।२७। यमाय भरणीभ्य ।२८।

'अग्नये'—इत्यादि प्रक्षिप्त खण्ड है तथापि देवताओ के ज्ञानके लिये इसकी व्याख्या की जाती है—अग्नि देवता के लिये कृत्तिकाओ को आहुति देवे ।१। रोहिणी का देवता प्रजापति है अत एव प्रजापति के लिये रोहिणी के देवे ।२। सोम देवता को लिये मृग शिरा को देवे ।३। रुद्र के लिए आर्द्राओ को देवे ।४। अदिति के लिए पुनर्वसुओ को देवे ।५। बृह-स्पति देव के लिये पुरुष को देवे ।६। सर्पों के लिये अश्लेषाओ को देवे ।७। पितृगण के लिये मघाओ को देवे ।८। भगदेव के लिये दोनो पूर्वोत्तरा फाल्गुनियो को देवे ।६। अयमा के लिये फाल्गुनियो को देवे ।१०। सविता के लिये हस्त को देवे ।११। त्वष्टा के लिये चित्रा को देवे ।१२। वायुदेव के लिये स्वाति को देवे ।१३। इन्द्र और अग्नि दोनो देवो के लिये विशाखाओ को देना चाहिए ।१४। मित्र के लिये अनुराधा को-देवे ।१५। इन्द्र के लिये ज्येष्ठा को देवे ।१६। निर्ऋति के लिये मूल को देवे ।१७। जलो के लिये अषाढाओ को देव ।१८। विश्वेदेवो के लिये अषाढाओ को देवे ।१६। ब्रह्मा के लिये अभिजित को देवे ।२०। विष्णु के लिये श्रवण को देवे ।२१। वसुगण के लिये धनिष्ठाओ को देना चाहिए ।२२। वरुण के लिये शतभिषा को देवे ।२३। अज एक पद के लिये प्रोष्ठ-पदाओ को देवे ।२४।अहिर्बुध्न्य के लिये प्रोष्ठपदाओ को देवे ।२५। पूषा के लिये रेवती को देवे ।२६। अश्विनीकुमारो के लिये आश्विनियो को देवे ।२७। यम के लिये भरणियो को देवे ।२८।

॥ अथ अन्नप्राशनम् ॥

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् ।१। आजमन्नाद्यकाम ।२। तैत्तिर
ब्रह्मवर्चसकाम ।३। मात्स्य जवनकाम ।४। घृतौदन

तेजस्काम ।५। दधिमधुघृतमिश्रमन्न प्राशयेत् ।६।
अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिण ।
प्र-प्र दातार तारिष ऊर्ज्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥
यच्छिद्धि महश्चित्
इममग्न आयुषे वर्चसे तिग्ममोजो वरुण सोम राजन् ।
मातेवास्मा अदिति शर्मयसद्विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासदिति ॥
हुत्वा ।७। अग्न आयू षीति अभिमन्त्र्य ।८। उदगग्रेषु
केशेषु स्योना पृथिवि भवेति उपवेश्य ।६। महाव्याहृति-
भि प्राशनम् ।१०। शेष माता प्राश्नीयात् ।११।

छटवें मास मे अन्न का प्राशन करावे ।।१।। अन्नाद्य की कामना वाला अजा के शरीर से समुत्पन्न को प्राशन करावे ।२। ब्रह्मवर्चस् की कामना वाला तीतर का प्राशन करावे ।३। जनन की कामना वाला मात्स्य आमिष का प्राशन करावे ।४। तेज की कामना वाला घृतोदन का प्राशन करावे ।५। दधि–घृत–मधु से मिश्रित अन्न का प्राशन कराना चाहिए ।६। "अन्नयतेऽन्नस्य नो देह्यनमी वस्य शुष्मिण । प्र-प्रदातार तारिष ऊर्ज्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।"–'यच्चिद्धी"– "महश्चित्"–"इममग्न आयुषे वर्चसे तिग्म मो जो वरुण सोम राजन् । मातेवाम्मा अदिति शर्म य स विश्वेदेवा जरदष्टि र्यथासदिति"– इन ऋचाओ से हवन करे ।७। "अग्नि आयू षि" इससे अभिमन्त्रित करे । ।८। उदग्र कुशाओ पर "स्योना पृथिवि भवेति"–इस मन्त्र से बिठा देवे ।६। महा व्याहृतियो से प्राशन कराव ।१०। शेष जो रह जावे उसको माता को खा लेना चाहिए ।११।

॥ अथ चूडाकर्म ॥

सवत्सरे चूडाकर्म ।१। तृतीये वा वर्षे ।२। पञ्चमे क्षत्रिय-
स्य ।३। सप्तमे वैश्यस्य ।४। अग्निमुपसमाधाय ।५।व्रीहि-
यवाना तिलमाषाणामिति पात्राणि च पूरयित्वा ।६।

आनडुह च गोमय कुशभित्त च केशप्रतिग्रहणायादशन्न-
वनीत लोहक्षुर चोत्तरत उपस्थाप्य ।७।
सपृच्यध्व ऋतावरीरूर्मिणा मधुमत्तमा ।
पृञ्चतीर्मधुना पयो मन्द्रा धनस्य सातय इति ।।
उष्णास्वप्सु शीता आसिञ्चति ।८।
आप उन्दन्तु जीवसे दीर्घायुत्वाय वचसे ।
त्र्यायुष जमदग्ने कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
अगस्त्यस्य त्र्यायुष यद्देवाना त्र्यायुषम् ।
तत्ते करोमि त्र्यायुषमिति ।।"
असाविति शीतोष्णाभिरद्भिर्दक्षिण केशपक्ष त्रिरभ्यनक्ति
।९। शलल्यैके विजटान् कृत्वा ।१०। नवनीतेनाभ्यज्य
।११। ओषधे त्रायस्वैनमिति कुशतरुणमन्तर्दधाति ।१२।
केशान् कुशतरुण चाऽऽदर्शेन सस्पृश्य ।१३। तेजोऽसि,
स्वधितिष्टे पिता मैन हिसीरिति लोहक्षुरमादत्ते ।१४।
येनावपत् सविता श्मश्र्वग्रे क्षुरेण राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
येन धाता बृहस्पतिरिन्द्रस्य चावपच्छिर ।
तेनब्रह्माणोवपतेदमद्याऽऽयुष्मान्दीर्घायुरयमस्तुवीरोऽसाविति।।
केशाग्राणि छिनत्ति कुशतरुण च ।१५। एव द्वितीयमेव
तृतीयम् ।१६। एव द्विरुत्तरत ।१७। निकक्षयो षष्ठसप्तमे
गोदानकर्मणि ।१८। एतदेव गोदानकर्म यच्चूडाकर्म ।१९।
षोडशे वर्षेऽष्टादशे वा ।२०। तृतीये तु प्रवपने गा ददा
त्यहत च वास ।२१। तूष्णीमावृत कन्यानाम् ।२२।
प्रागुदीच्या दिशि बह्लौषधिके देशेऽपा वा समीपे केशा-
न्निखनन्ति ।२३। नापिताय धान्यपात्राणि नापिताय
धान्यपात्राणि ।२४।

सम्वत्सर मे चूडाकर्म होना चाहिए। अर्थात् एक वर्ष के अन्दर ही चूडा सस्कार कर देवे ।१। अथवा यदि किसी अडचन के कारण प्रथम

वर्ष मे चूडाकर्म न हो सके तो तृतीय वर्ष मे करे। तात्पर्य यह है कि द्वितीय वष मे इस कम को नही करना चाहिए ।२। यह नियम विप्र के लिये है । क्षत्रिय का चूडाकर्म पाँचवे वष होता है ।३। वैश्य का चूडाकम सातवे वर्ष मे हुआ करता है ।४। अग्नि का उप समाधान करे। ।५। व्रीहियवो के और तिलमाषो के पात्रों को पूरित करके ।६। आनडुह और गोमय तथा मूल सहित कुशा को केशो के प्रति ग्रहग के लिये आदश—नवनीत और लोहे के क्षुरा को उत्तर की ओर उपस्थापित करना चाहिए ।७। 'सपृच्छध्व ऋता नदी र्ऊमिणा मधुमत्तमा पृञ्जती-मधुना पयोम द्रा धनस्य सातय' इस मन्त्र का उच्चारण करके उष्ण जलो मे शीतलजल का आसिञ्चन करता है ।८। "आप उन्दन्तु जीव से दीर्घायुत्वाय वचसे । त्र्यायुष जमदग्ने कश्यपस्य त्र्यायुषम् । अगस्त्यस्य त्र्यायुष यद्देवाना त्र्यायुषम् । तत्तोकरोमि त्र्यायुषम्" यह इस मन्त्र से शीतल और उष्ण जलो से दक्षिण केशो के पक्ष को तीन बार अभ्यनक्त करता है ।९। कुछ विद्वानो का मत है कि शलली से विजटा करे ।१०। नवनीत से अभ्यक्त करे ।११। "ओषधे त्रायस्वैनम्" इस मन्त्र से कुशतरुण की अन्तर्धान करता है ।१२। केशो को और कुशतरुणो को आदश (दपण) से सम्पशन करे ।१३। तेजोऽसि स्वाधितिष्ठे पिता, मैन हिंसी"—इस मन्त्र से लौह के क्षुर का ग्रहण करता है ।१४। "येनाव-पत्सविता श्मश्वग्रे क्षुरेण राज्ञो वरुणस्य विद्वान् । येनधाता बृहस्पति इन्द्रस्य चावपच्छिर तेन ब्रह्माणो वपते दमद्याऽऽयुष्मान् दीर्घायुरय-मस्तु वीरोऽसाविति'—इस मन्त्र से केशो के अग्र भागो को और कुश-तरुण को छेदन करता है ।१५। इसी प्रकार से द्वितीय, तृतीय को करे। ।१६। इसी रीति से दो उत्तर की ओर मे करे ।१७। निकक्षो मे षष्ठ सप्तम गोदान कर्म मे होता है ।१८। यह ही गोदान कर्म है जो कि चूडा कर्म होता है ।१९। सोलहवे वष मे अथवा अठारहवे वष मे होता है ।२०। तृतीय वपन मे तो गौ को देता है । और अहत अर्थात् नूतन वस्त्र होता है ।२१। चुपचाप आवृत होता हुआ कन्याओ का करे ।२२। प्राकुउदीची दिशा मे—बहुत औषधियो वाले देश मे अथवा जलो के

समीप मे केशो को निखनन किया करते हैं ।२३। नापित के लिये धान्य पात्रो को देना चाहिए । नाई को जो क्षुरा से वपन करता है उसको धान्य पात्रो को देवे ।२४।

इति शाङ्खायनगृह्यसूत्रे प्रथमोऽध्याय

द्वितीय अध्याय

॥ अथ उपनयनम् ॥

गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेत ।१। ऐणेयेनाऽजिनेन ।२। गर्भदशमेषु वा ।३। गर्भैकादशेषु क्षत्रिय रौरवेण ।४। गर्भद्वादशेषु वैश्य गव्येन ।५। आ षोडशाद् वर्षाद् ब्राह्मणस्याऽनतीत काल ।६। आ द्वाविंशात् क्षत्रियस्य ।७। आ चतुर्विंशाद् वश्यस्य ।८। अत ऊर्ध्व पतितसावित्रीका भवन्ति ।९। नैनानुपनयेयु ।१०। नाऽध्यापयेयु ।११। न याजयेयु ।१२। नैभिर्व्यवहरेयु ।१३। अहनेन वा सर्वान्मेखलिन ।१४। मौञ्जी मेखला ब्राह्मणस्य ।१५। धनुर्ज्या क्षत्रियस्य ।१६। ऊर्णासूत्री वश्यस्य ।१७। पालाशो बैल्वो वा दण्डो ब्राह्मणस्य ।१८। नैयग्रोधः क्षत्रियस्य ।१९। औदुम्बरो वैश्यस्य ।२०। प्राणसमितो ब्राह्मणस्य ।२१। ललाटसमित क्षत्रियस्य ।२२। केशसमितो वैश्यस्य ।२३। सर्वे वा सर्वेषाम् ।२४। येनाऽऽबद्धे नोपनयेताऽऽचार्याधीन

तत् ।२५। परिवाप्योपनेय स्यात् ।२६। आप्लुत्याऽलङ्-
कृत्य ।२७। हुत्वा जघनेनाऽग्नि तिष्ठत प्राङ्मुख आचा-
र्य प्रत्यङ्मुख इतर ।२८।तिष्ठँस्तिष्ठन्तमुपनयेत् ।२९।
मित्रस्य चक्षुर्धरुण बलीयस्तेजो यशस्वि स्थविर समृद्धम् ।
अनाहनस्य वसन चरिष्णु परीद वाज्यजिन दधेऽहम् ।३०॥

गर्भ धारण जब करे उससे आठवे वष मे ब्राह्मण का उपनयन करा देना चाहिए ।१। ऐणेय अजिन अर्थात् मृग चम के द्वारा उपनयन ब्राह्मण का करे ।२। अथवा गर्भ काल से दशम वर्ष मे करना चाहिए ।३। गर्भ से ग्यारहवे वर्ष मे रौरव अर्थात् रुरु के चर्म के द्वारा क्षत्रिय का उपनयन करे ।४। गभ काल से बारहवे वर्ष मे वैश्य का उपनयन सस्कार गव्य चम के द्वारा करे ।५। सोलह वष तक ब्राह्मण का काल अतीत नही होता है ।६। बाईस वर्ष तक क्षत्रिय का उपनयन काल अतीत नही होता है ।७। चौबीस वर्ष की आयु तक वैश्य के उपनयन सस्कार का समय अनतीत रहा करता है ।८। इन बतायी हुई तीनो वर्णो की अवस्थाओ से ऊपर ये सब सावित्री के अधिकार से पतित हो जाया करते हैं ।९। सावित्री से पतित हो जाने वाले इन लोगो का फिर उपनयन नही करना चाहिए ।१०। न इन लोगो का अध्यापन ही करना चाहिए ।११। इन पतितो से याजन कर्म भी न करावे ।१२। इन पतित दशा मे पहुच जाने वालो के साथ कोई व्यवहार भी नही रखना चाहिए । ।१३। जिनका उपनयन कराना हो और जो इस सस्कार के योग्य पात्र हो उनको अहत के द्वारा सबको मेखला वाले बनावे ।१४। मूञ्ज की बनी हुई मखला ब्राह्मण वर्ण वाले की होती है । क्षत्रिय वण वाले बालक की मेखला धनुष की प्रत्यञ्चा की बनवानी चाहिए ।१६। वैश्य वण के बालक की मेखला ऊन सूत की होनी चाहिए ।१७। ढाक वृक्ष का अथवा विल्व वृक्ष का दण्ड ब्राह्मण का होता है ।१८। क्षत्रिय वर्ण के बालक का दण्ड वट वृक्ष का होता है । वैश्य का दण्ड गूलर वृक्ष का हुआ करता है ।१९-२०। ब्राह्मण

का प्राण समित होता है अर्थात् प्राण वायु जहाँ रहता है वहाँ तक लम्बाई मे परिमाण वाला दण्ड होना चाहिए ।२१। क्षत्रिय वण का दण्ड ललाट के बराबर पहुचने वाला होना चाहिए ।२२। वैश्य का दण्ड माथे के केशो के बराबर पहुचने वाला होना है । ।२३। अथवा सब के दड सभी होते हैं ।२४। जिस आवबद्ध स द्वारा उपनयन क्रिया जावे वह आचार्य के अधीन होता है ।२५। परिवायन करके ही उपनयन करने के योग्य होता है । ।२६। आप्लवन करके अलकृत करे ।२७। हवन करके जघन के द्वारा अग्नि के समीप स्थित हुए के प्राट्मुख आचार्य रहते हैं और इतर प्रत्यड्मुख होकर स्थित रहा करता है ।२८। खडे होते हुए को खडा होते हुए ही उपनयन करना चाहिए ।२९। मित्र का चक्षु वरुण वल्लीय-तेज यशस्वी–स्थावर और समृद्ध है । अनाहृनस्य वसन का चरिष्णु मैं वाजि का अजिन धारण करता हूँ ।३०।

इय दुरुक्तात् परिबाधमाना वर्णं पवित्र पुनती न आगात् ।
प्राणापानाभ्या बलमाविशन्ती सखा देवी सुभगा मेखलेयमिति॥

त्रिर्मेखला प्रदक्षिणा त्रि परिवेष्टच ।१। ग्रन्थिरेकस्त्रयोऽपि वाऽपि वा पञ्च ।२। यज्ञोपवात कृत्वा यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वोपवीतेनोप नह्यामीति ।३। अञ्जली पूरयित्वाऽथैनमाह को नामासीति ।४। असावह भो इतीतर ।५। समानाऽऽर्षेय इत्याचार्य ।६। समानार्षेयोऽह भो इतीतर ।७। ब्रह्मचारी भवान ब्रहीति ।८। ब्रह्मचाय ह भो इतीतर ।९। भूर्भुव स्वरिति अस्याऽञ्जलीस्त्रीन् आसिच्य।१०। दक्षिणोत्तराभ्या पाणिभ्या पाणी सगृह्य जपति ।११। देदस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्यामुपनयाम्यसाविति ।१२। गणानान्त्वेति गणकामान्।१३। आ गन्ता मा रिषण्यतेति योधान् ।१४। महाव्याहृतिभिर्व्याधितान् ।१५।

"यह दुरुक्त से परिवाधामाना होती हुई पवित्र वर्ण की पावन बनाती हुई नही गयी। प्राणापान से बल मे प्रवेश करती हुई यह सखा-देवी सुभगा मेखला है। त्रिगुणित मेखला को प्रदक्षिण तीन वार परि-वेष्टन करे।१। उस मेखला मे ग्रन्थि एक हो तीन होवे अथवा पाँच होसकती है।२। यज्ञोपवीत बनाकर यह निम्न मन्त्र पढे—"आप यज्ञो पवीत हो, यज्ञ के उपवीत के द्वारा उपनद्ध करता हूं।" ।३। दोनो हाथो की अञ्जलियो को पूरित करके इसके उपरान्त इससे कहे—"क्या नाम वाले हो?' ।४। दूसरा कहता है—,भो! मै यह हूँ अर्थात् मैं अमुक नाम वाला हू।५। फिर आचार्य कहता है—"समानार्षेय" है। दूसरा कहता है—"भो! मैं ममानार्षेय हू" ।६-७। फिर आचार्य कहता है—"आप कहो मैं ब्रह्मचारी हू" ।८। दूसरा उत्तर देता है—'भो! मै ब्रह्मचारी हूँ" ।९। फिर "भूर्भुव स्व" इससे इसकी अञ्जलि मे तीन अञ्जलियो का आसेचन करके दक्षिण-उत्तर हाथो से दोनो हाथो को सग्रहण करके जाप करता है।१०। वह जप यह है—"देवस्य त्वा सवितु प्रसवेश्विनोबाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्या मुप नयाभ्यसौ-इति" ।११-१२। गण कामो को "गणाना-त्वेति"—योधाओ को—" आ गन्ता मा रिषण्येतेति"—व्याधितो को महा व्याहृतियो से करे।१३-१५।

भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत् ।
पूषा ते हस्तमग्रभीदयमा हस्तमग्रभीत् ।
मित्रस्त्वमसि धर्म्मणाऽग्निराचार्य्यस्तव ॥

असावह चोभौ अग्न एत ते ब्रह्मचारिण परि ददामि, इन्द्रैत ते ब्रह्मचारिण परि ददामि, आदित्यैत ते ब्रह्म-चारिण परि ददामि, विश्वेदेवा एत वो ब्रह्मचारिण परि-ददामि दीर्घायुत्वाय सुप्रजास्त्वाय सुवीयाय रायस्पोषाय सर्वेषा वेदानामाधिपत्याय सुश्लोक्याय स्वस्तये ।१। ऐन्द्रीमावृतमावर्त आदित्यस्याऽऽवृतमन्वावर्त इति दक्षिण

बाहुमन्वावृत्य ।२। दक्षिणेन प्रादेशेन दक्षिणमसमन्वव हृत्य अरिष्यतस्ते हृदयस्य प्रियो भूयासमिति हृदयदेश-मभिमृशति ।३। तूष्णी प्रसव्य पर्यावृत्य ।४। अथास्योर्ध्वा-ङ्गुलि पाणि हृदये निधाय जपति ।५।

भग ने तेरे हाथ को गृम्णित किया है, सविता न हाथ को गृम्णित किया है--पूषा ने तेरे हाथ को गृम्णित किया है--अर्यमा ने हस्त को गृम्णित किया है। तू मित्र है धम्म से तेरा अग्नि आचार्य है। "यह मै और दोनो हे अग्ने! तुम्हारे इस ब्रह्मचारी को परिदान करता हूँ--हे इन्द्र! इस तुम्हारे ब्रह्मचारी को देता हूँ--हे आदित्य! तुम्हारे इस ब्रह्मचारी को परिदान करता हूँ--विश्वेदेवा! इस आपमे ब्रह्मचारी को दीर्घ आयुष्य के लिये, सुन्दर प्रजास्त्व के लिये, सुन्दर वीर्य के लिये, रायस्पोष के लिये अर्थात् धन के पोषण के लिये, सम्पूर्ण वेदो के आधिपत्य के लिये, सुश्लोक्य और स्वस्ति के लिये परिदान करता हू ।१। "ऐन्द्रीमावृतयावत' आदित्यस्याऽऽवृतमन्ववत इति" इस मन्त्र का उच्चारण करके दक्षिण बाहु का अन्वावर्तन करे ।२। दाहिने प्रादेश से दक्षिण अंस को अन्वहरण करके "अरिष्यतस्ते हृदयस्य प्रियो भूयासमिति" इस मन्त्र से हृदय देश का अभिमृष्ट करता है ।३। मौनभाव से प्रसव्य का पर्यावर्तन करे ।४। इसके अनन्तर ऊर्ध्व की ओर अङ्गुलि वाले पाणि को हृदय पर रखकर जाप करता है ॥५॥

मम व्रते हृदय ते दधामि मम चित्तमनु चित्त ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यमिति ।१। कामस्य ब्रह्मचर्यस्यासाविति।२। तेनैव मन्त्रेण तथैव प-र्यावृत्य ।३। दक्षिणेन प्रादेशेन दक्षिणमसमन्वारभ्य जपति ।४। ब्रह्मचार्यसि समिध मा धेहि अपोऽशान कर्म कुरु मा दिवा सुषुप्था वाच यच्छ आ समिदाधानात् ।५। एषा ते अग्ने समिदिति अस्यादधाति समिध तूष्णी वा ।६।

"तुम्हारे व्रत मे मेरे हृदय को धारण करता हू मेरा चित्त तेरे चित्त के पीछे होवे मेरे वचन को एक मन वाला होकर सेवन करो अर्थात् एकाग्र मनसे मेरे वचनो का परिपालन करो। बृहस्पति तुमको मेरे लिय नियुक्त करे" ।१। काम का ब्रह्मचर्य का यह है इति ।२। उस ही मन्त्र के द्वारा उसी भाति या वर्त्तन करे ।३। दाहिने प्रादेश से दक्षिण अस को अन्वारब्ध करके जप करता है ।४। ब्रह्मचारी हो, समिधाओ को मत धारण करो, अपोऽशान कर्म करो । दिन के समय मे शयन मत करो । समिधादान से लेकर वाणी को दो ।५। हे अग्ने ! "यह तुम्हारी समिधा है" इति--इससे समिधा को कहना है अथवा तूष्णीभाव से करता है ।६।

।। अथ सावित्रानुवाचनम् ।।

सवत्सरे सावित्रीमन्वाह ।१। त्रिरात्रे ।२। अन्वक्ष वा ।३। गायत्री ब्राह्मणायानुब्रू यात् ।४। त्रिष्टुभ क्षत्रियाय ।५। जगतो वैश्याय ।६। सावित्री त्वेव ।७। उत्तरेणाग्निमुपविशत ।८।प्राङ्मुख आचार्य प्रत्यङ्मुखइतर ।९। अधीहि भो इति उक्त्वा ।१०। आचार्य ओंकार प्रयुज्याथेतर वाचयनि सावित्री भो अनुब्रूहीति ।११। अथास्मै सावित्रीमन्वाह तत्सवितुवरेण्यमिति एता पच्छोऽर्द्धर्चशोऽनवानम् ।१२।

सम्वत्सर मे सावित्री का अनुकथन करे । तीन व्रत है जिनके काल वक्ष्यमाण है--सावत्सरिक है । यहा पर तीन विकल्प है—सम्वत्सर मे—त्रिरात्र मे और अन्वक्ष । उसी के लिए यह कहा गया है—कामस्य अर्थात् ब्रह्मचर्यस्य । यह तात्पर्य है कि हे अमुक शर्मन् ! मेरे लिये सावित्र साम्वत्सरिक, त्रैरात्रिक अथवा आन्वक्षिक ब्रह्मचर्य का नियुक्त करो ।१-३। गायत्री छन्द ब्राह्मण के लिये बोलना चाहिए ।४। क्षत्रिय के लिये त्रिष्टुप कहे—।५। वैश्य वर्ण वाले के लिये जगती छन्द का कथन

करना चाहिए ।६। सावित्री को ही कहे ।७। अग्नि के उत्तर मे उपविष्ट होवे ।८। आचार्य जो हो उसे पूव की ओर मुख करके बैठना चाहिए और इतर को प्रत्यङ मुख होकर रहना चाहिए ।६। "भो ! अध्ययन करो" यह कहे ।१०। आचार्य 'ॐकार' का प्रयोग करके इतर से सावित्री वँचाता है और कहता है—'भो ! सावित्री को पीछे मे बोलो" ।११। इसके अनन्तर इसको सावित्री "तत्सवितुवरेण्यम्" यह बोलना है । इसको पच्छ आधी ऋचा का अववान है ।।१२।।

।। अथ व्रतानि ।।

आपो नाम स्थ शिवा नाम स्थ ।
ऊर्जा नाम स्थाऽजरा नाम स्थ ।
अभया नाम स्थऽमृता नाम स्थ ।

तासा वोऽशीय सुमतौ मा धत्तेति एव त्रिरप आचमय्य ।१। स्वस्ति नो मिमीतामिति पञ्चर्चेन दण्ड ।२। वरो दक्षिणा ।३। प्रदक्षिणमग्नि पर्याणीय भिक्षते ग्रामम् ।४। मातर त्वेव प्रथमाम् ।५। या वैन न प्रत्याचक्षीत ।६। आचार्याय भैक्ष्य निवेदयित्वाऽनुज्ञातो गुरुणा भुञ्जीत ।७। अहरह समिदाधान भिक्षाचरणमध शय्या गुरुशुश्रूषेति ब्रह्मचारिणो नित्यानि ।८।

"आपो नाम स्थ, शिवा नामस्थ, ऊर्जा नामस्थ, अजय नाम स्थ ! अभया नाम स्थ अमृता नाम स्थ" । तासा केशीय सुमतौ मा धत्तेति"—इन पाच ऋचाओ से दण्ड को देता है ।१-२। वर दक्षिणा है ।३। प्रदक्षिण अग्नि को पर्याणयन करके ग्राम मे भिक्षाटन करता है ।४ सबसे प्रथम माता से ही भिक्षा माँगे ।५। जो कि उसका प्रत्याख्यान करेगी । अर्थात् माताओ को अवश्य ही अपन ब्रह्मचारी पुत्र को भिक्षा देनी होगी।६।जो भी भिक्षा से प्राप्त हो उस सब को लाकर अपने आचाय की सेवा मे सर्व प्रथम ब्रह्मचारी को निवेदित कर दना चाहिए । जब आचार्य अनुज्ञा प्रदान कर देवे तो अपने गुरुदेव के ही साथ उसका खाना चाहिए ।७।

नित्य प्रति नियम से समिधाओं का लाना—प्रतिदिन भिक्षाचरण करना—भूमिपर नीचे शयन करना और रोज ही अपने श्री गुरुदेव की सेवा—शुश्रूषा करना ये सभी ब्रह्मचारी के लिये नैत्यिक व्रत हुआ करते है ।८।

॥ अथ अनुवाचनम् ॥

अथाऽनुवाचनस्य ।१। अग्नेरुत्तरत उपविशत ।२। प्राङ्मुख आचाय प्रत्यङ मुख इतर ।३। अभिवाद्य पादावाचार्यस्य पाणी प्रक्षाल्य ।४। दक्षिणेन जानुनाऽऽक्रम्य मूले कुशतरुणान् ।५। दक्षिणोत्तराभ्या पाणिभ्या मध्ये परिगृह्य ।६। तान्त् सव्येनाऽऽचार्योऽग्रे सग्रह्य दक्षिणनाऽद्भि परिषिञ्चन्नथेतर वाचयति ।७। सावित्री भो अनु ब्रूहीति इतर ।८। सावित्री ते अनु ब्रवीमीति आचाय ।९। गायत्री भो अनु ब्रूहीति इतर, गायत्री ते अनु ब्रवीमीति आचार्य ।१०। वैश्वामित्री भो३अनु ब्र हीति इतर वैश्वानगी ते अनु ब्रवीमीति आचार्य ।११। ऋषीन् भो३अनु ब्रूहीनि इतर ऋषीस्ते अनु ब्रवीमीनि आचार्य ।१२। देवता भो३अनु ब्रूहीति इतर देवतास्ते अनु ब्रवीमीति आचार्य ।१-। छन्दासि भो३ अनु ब्रूहीति इतर, छन्दासि श्रुति ते अनु ब्रवीमीति आचाय ।१४। श्रुति भो३ अनु ब्रूहीति इतर श्रुति ते अनु ब्रवीमीति आचार्य ।१५। स्मृति भो३ अनु ब्रूहीति इतर स्मृति ते अनु ब्रवीमीति आचार्य ।१६। श्रद्धा-मेधे भो३-अनु ब्रूहीति इतर श्रद्धा मेधे अनु ब्रवीमीति आचार्य ।१७। एवमेवमूपेयस्य-यस्य यो-यो मन्त्रो यद्देवत्यो यच्छन्दाश्च तथा-तथा त त मन्त्रमनुब्रूयात् ।१८। अपि वाऽविन्दन्नृषिदवतच्छन्दासि तत्सावितुवरेण्यमिति एता पच्छाऽर्द्धचशोऽनवानमित्येपेति समाप्त अाहाऽऽचाय्य ।१९। एवमेकैकमृषिमनुवाक वाऽनुब्रूयात्,।२०। क्षुद्रसूक्तेष्वनुवा कम्।२१। यावद्वा गुरुमन्येत ।२२। आद्योत्तमे काम

सूक्ते वाऽनुब्रूयादृषे ।२३। अनुवाकस्य वा ।२४। एकैका सूक्तादाविति ।२५। एषा प्रभृतिरिति काम सूक्तादावाचार्य इति ।२६। एतदृषिस्वाध्याये व्याख्यातम् ।२७। समाप्ते कुशतरुणानादायाऽऽनडुहेन मूले कुण्ड कृत्वा यथासूक्त कुशेष्वपो निषिञ्चति ।२८। अहःशेष स्थानमुपवासश्च ।२९।

इसके अनन्तर अनुवाचन के विषय मे वर्णन किया जाता है ।१। गुरु और शिष्य दोनो अग्नि के उत्तर भाग मे उपविष्ट हो जाते हैं ।२। आचार्य को पूर्व की ओर मुख वाला होकर स्थित रहना चाहिए और इतर को प्रत्यमुख होकर बैठना चाहिए ।३। अपने आचाय देव के चरणो मे अभिवादन करके दोनो हाथो का प्रक्षालन करना चाहिए ।४। दक्षिण जानु (घुटना) से तरुण कुशाओ के मूल मे आक्रमण करे ।५। दहिने और वाये हाथो से मध्य मे परिग्रहण करे ।६। उनको आचार्य आगे [illegible] स सग्रहण करके दाहिने से जल के द्वारा परिपिञ्चन करता हुआ शिष्य ब्रह्मचारी को बँचवाता है ।७। शिष्य कहता है—"भो ! आचायवर ! सावित्री का वाचन करिए" ।८। आचाय कहता है—मैं तुझको सावित्री बतलाता हूँ ।९। फिर शिष्य कहता है "भो ! आचाय वर ! गायत्री बतलाइये" आचाय कहत हैं—मैं तुमको गायत्री बतलाता हूँ ।१०। ब्रह्मचारी कहता है—"भो गुरुवर ! वैश्वामित्री मुझे बतलाइये ।" आचार्य कहते हे 'वैश्वानरी तुमको वतलाता हू ।११। इतर अर्थात् शिष्य कहता—'भो ! मुझको ऋषियो को बतलाइये"। आचाय वर कहते है—मैं तुमको ऋषियो को बतलाता हू" ।१२। शिष्य कहता है —"भो गुरुवर ! देवताओ के विषय मे बतलाइए"। आचार्य कहते है—"मै तुमको देवताओ के विषय मे स्पष्ट रूप से बोलता हूँ ।१३। ब्रह्मचारी कहता है भो आचार्य ! मुझको छन्दो के विषय मेबतलाइये। आचार्यकहतेहे-बतलाताहूँ इतर कहता है-भो आचार्यवर ! मुझे आप श्रुति बतलाइये"। आचाय कहते हे—"मैं तुमको श्रुति के विषय मे बतलाता हूँ" ।१५। शिष्य कहता है—"भो गुरुदेव ! आप मुझ को स्मृति

बतलाइए आचार्य कहते हैं—"मैं तुझको स्मृतियों के विषय मे बतलाता हू"।१६। शिष्य निवेदन करता है—"हे गुरुदेव! आप मुझ को श्रद्धा और मेध बतलाइए। आचार्य कहते है- 'मै तुमको श्रद्धा मे बतलाता है।१७। इसी प्रकार से जिस-जिस ऋषि का जो जो मन्त्र है और जो देवता वाला और जिस छन्द वाला है उस-उस मन्त्र को उसी प्रकार बोलना चाहिए।१८।ऋषि देवत छन्दो को न प्राप्त करते हुए तत्सवितुर्वरेण्यम् इति—इसका आधी ऋचा के पच्छ को अनवान् कर यह समाप्त हो गया है ऐसा आचार्य बोलता है।१६। इस प्रकार से एक—एक ऋषि अथवा अनुवाक को बोलना चाहिए।२०। क्षुद्र सूक्तो मे अनुवाक होता है।२१। अथवा जितना गुरु मानता हो।२२। अथवा आद्योत्तम मे इच्छा पूर्वक सूक्त को बोले।२३। अथवा अनुवाक का बोले।२४। एक एक को सूक्त आदि मे बोले।२५। 'एषा आदि'—यह इच्छापूर्वक सूक्त के आदि मे आचार्य कहे।२६। यह ऋषि स्वाध्याय मे व्याख्या करदी गयी है।२७। समाप्त हो जाने पर कुश तृणों को लाकर अङ्कुर के द्वारा सूत्र मे कुण्ड करके सूक्त के अनुसार कुशाओं मे जल का निषिञ्चन करता है।२८। अह शेष—स्थान और उपवास है।२६।

अपराह्णेऽक्षतधाना भिरक्षिवाऽऽज्याहुतिधर्म्मेणाऽग्नौ पाणिना जुहुयात् सदसस्पतिमद्भुतमिति प्रत्यृच सूक्तशेषेण।१। भक्षैराचार्य स्वस्तिवाच्य।२।

अपराह्न मे अर्थात् दोपहर के बाद समय मे अक्षत धान वाला भिक्षा करके घृत की आहुति के धर्म से हाथ से "सद सस्पति मद्भुतम्" इस प्रत्येक ऋचा को सूक्त शेष से हवन करना चाहिए।१। भक्षो से आचार्य को 'स्वस्ति' वाचन कराना चाहिए।२।

॥ अथ सन्ध्योपासनकर्म ॥

अरण्ये समित्पाणि सन्ध्यामास्ते नित्य वाग्यत उत्तरापराभिमुखोऽन्वष्टमदेशमा नक्षत्राणा दर्शनात्।१। अ-

तिक्रान्तायां महाव्याहृती सावित्री स्वस्त्ययनानि च जपित्वा ।२। एव प्रात प्राङ्मुखस्तिष्ठन्ना मण्डलदर्शनात् ।३। उदिते प्राध्ययनम् ।४।

अरण्य मे हाथ मे समिधा ग्रहण करने वाला होता हुआ नित्य मौन होकर उत्तर की ओर मुख करता हुआ अन्वष्ट देश मे नक्षत्रो के दर्शन से पूर्व मे सन्ध्या करता है ।१। अतिक्रान्ता मे महाव्याहृतियो को–सावित्री को और स्वस्त्ययनो का जाप करे ।२। इसी प्रकार से प्रात काल मे मण्डल के दर्शन से पूर्व ही पूर्व की ओर मुख करने हुए स्थित होकर करता है । सूर्य देव के समुदित हो जाने पर प्राध्ययन करना चाहिए ।३-४।

॥ अथ अग्निकार्यम् ॥

अहरह साय प्रात ।१। अग्निमुपसमाधाय परिसमुह्य पर्युक्ष्य दक्षिण जान्वाच्य ।२।

अग्नये समिधमहार्ष बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धा च मेधा च जातवेदा प्रयच्छतु स्वाहा ॥
एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि स्वाहा ।
समिद्धो मा समर्धय प्रजया च धनेन च स्वाहा ॥
एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व ।
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि स्वाहेति ।३।
अथ पर्युक्ष्य ।४।

अग्नि श्रद्धा च मेधा चाऽविनिपात स्मृति च मे ।
ईडितो जातवेदा अय शुनन्न सप्र यच्छत्त्विति ॥
अग्निमुपतिष्ठते ।५। सौपर्णाव्रतभाषित दृष्ट वृद्धसम्प्रदायानुष्ठित त्र्यायुष पञ्चभिर्मन्त्रै प्रतिमन्त्र ललाटे हृदये दक्षिणस्कन्धे वामे च तत पृष्ठे च पञ्चसु भस्माना त्रिपुण्ड्

करोति ।६। म एतेपा वेदनामेक द्वौ त्रीन् सर्वान् वाऽश्नीते य एव हुत्वाग्निमुपष्ठिने ।७।

प्रतिदिन नित्य ही सायङ्काल और प्रात काल दोनो समयो मे अग्नि कम करना चाहिए ।१। अग्नि का उपसमाधान करे–परिसमूहन करे और प्रयुक्षण करे दक्षिण मे अन्वाचन करे ।२। 'अग्नि के लिय जो वृहन और जात वेदा है समिधा लाया हूँ। वह जातवेदा मेरी श्रद्धा और मेधा को मुझे प्रदान करे, उसके लिये स्वाहा है। यह एध इसका वचन करता है। यह समिधा है तेज है। मुझमे तेज धारण करे। उसके लिये स्वाहा है। यह समिद्ध अग्नि मेरा समवधन करे प्रजा से और धन से मेरी वृद्धि करे। उसके लिये स्वाहा है। ह अग्न ! यह समिधा से तुमको समर्वधित करे और तृप्त करे, हम बढाते है और हम आशीष दते है। उसके लिये स्वाहा है ।३। इसके अनन्तर पर्युक्षण करे ।४। यह अग्नि श्रद्धा–मेधा–अविनिपात और स्मृति को ईडित उन्नत जात वेदा सम्प्रदान करे।' अग्नि का उपस्थान करता है ।५। सौपण व्रत भाषित –दृष्ट–वृद्ध सम्प्रदायानुष्ठित–त्र्यायुष–इन पाँच मन्त्रो मे प्रति मन्त्र से ललाट म–हृदय मे–दक्षिण स्कन्ध मे और वाम स्कन्ध मे और इसके पश्चात् पृष्ठ मे इन पाचो स्थानो मे भस्म मे त्रिपुण्ड करता है ।६। वह इन वेदो को–एक–दो–तीन अथवा सबको अधीन करता है जो इस प्रकार मे हवन करके उपस्थान किया करता है ।७।

।। अथ शक्रियव्रतकर्म ।।

अथ व्रतादेशनम् ।१। तस्योपनयनेन कल्पो व्याख्यात ।२। न मावित्रीमन्वाह ।३। दण्डप्रदानान्तमित्येके ।४। उदगयने शुक्लपक्षे ।५। अहोरात्र ब्रह्मचर्यमुपेत्याऽऽचार्यो -ऽमासाशी ब्रह्मचारी।६। चतुर्दशी परिहाप्याष्टमी च ।७। आद्योत्तमे चके ।८। या वान्या भप्रशस्ता मन्येत तस्या शुक्रिये ब्रह्मचयमादिशेत् ।९। त्रिरात्र ब्रह्मचय चरेद्द्वाद-

शरात्र सवत्सर वा यावद् वा गुरुर्मन्येत ।१०। शाक्वर तु सवत्सरम् ।११। व्रातिकमौपनिषद च ।१२। पूर्णे काले चरिते ब्रह्मचर्ये शयोर्बार्हस्पत्यान्ते वेदेऽनूक्ते रहस्य श्रावयिष्यनकालनियम चाऽऽदेशेन प्रतीयेत ।१३।

इसके अनन्तर व्रतादेशन है । आचाय एक अहोरात्र ब्रह्मचय को प्राप्त करके माम के प्राशन मे रहित होवे । पूव दिन मे और कम के दिन मे एक दिन रात्रि मे आचाय को अमासाशी होना चाहिए । वहाँ पर व्रतादेशन करता है । उसका उपनयन स कल्प की व्याख्या कर दी गयी है । साबित्री को नही कहता है । कुछ विद्वानो का मत है कि दण्ड प्रदान के अन्त तक करे ।१-४। उदयन मे शुक्लपक्ष मे ।५। शुक्रिय शब्द यहाँ पर अध्ययन वाची है । उसके सम्बन्ध से यह व्रत भी शुक्रिय कहा जाता है। चतुदशी और अष्टमी को परिहापित कर देवे । कतिपय मनीषियो का कथन है कि आद्योत्तम मे करे ।६-८। जिसको अथवा अन्य प्रशस्ता को मानना चाहिए उसमे शुक्रिय मे ब्रह्मचर्य का आदेश करे ।९। तीन रात्रि तक ब्रह्मचर्य का समाचरण करे अथवा बारह रात्रि तक या सम्वत्सर तक अथवा जितना भी गुरु माने करे ।१०। शाक्वर तो सम्वत्सर है ।११। और व्रातिक एव औपनिषद है।१२। पूण काल मे ब्रह्मचर्य व्रत के सञ्चरण करने पर शयो बाहस्पत्यान्त मे वेद के आनूक्त होने पर रहस्य का श्रावण कराते हुए और अकाल नियम की आदेश से प्रतीति करनी चाहिए ।१३।

।। अथ उद्दीक्षणिका ।।

कृतप्रातराशस्याऽपराह्णेऽपराजिताया दिशि ।१। हुत्वाऽऽचार्योऽथैन यास्वेव देवतासु परीत्तो भवति तास्वेवैन पृच्छति अग्नाविन्द्र आदित्ये विश्वेषु च देवेषु चरित ते ब्रह्मचर्य्यम् ।२। चरित भो ३ इति प्रयुक्ते ।३। पश्चादग्ने पुरस्तादाचार्यस्य प्राङ्मुखे स्थितेऽहतेनवाससाऽऽचा-

र्य्यं प्रदक्षिण मुख त्रि परिवेष्टय ।४। उपरिष्टाद्दशा कृत्वा यथा न समश्येत ।५। त्रिरात्र समिदाधान भिक्षाचरणमध शय्या गुरुशुश्रूषा चाऽकुर्वन्वाग्यतो ऽप्रमत्तोऽरण्य देवकुलेऽग्निहोत्रे वोपवमस्वेति ।६। अत्र हैके तानेव नियमाँस्तिष्ठतो रात्र्यामेवोंदिशन्ति ।७। आचार्य्योऽमास्याची ब्रह्मचारी ।८। त्रिरात्रे निवृ त्ते रात्र्या वा ग्रामान्निष्कान्तै तानीक्षेतानध्यायान् ।६। पिशिताम चण्डाल सूतिका रजस्वला तेदनिमपहस्तकाँ श्मशान सर्वाणि च शवरूपाणि यान्यास्ये न प्रविशेयु स्वस्य वासान् निरसन् ।१ । प्रागुदीची दिशमुपनिष्क्रम्य शुचौ देशे म्प्राङ् मुख आचार्य उपविशति ।११। उदित आदित्येऽनुवाचनधर्म्मेण वाग्यतायोष्णीषिणेऽन्वाह ।१२। महानाम्नीष्वेवैष नियम ।१३। अथोत्तरेषु प्रकरणेषु स्वाध्ययमेव कुर्वत आचार्यस्येतर श्रृणोति ।१४। उष्णीष भाजन दक्षिणा गा ददाति ।१५। त्व तमिति उच्चा दिवीति च प्रणवेन वा सर्वम् ।१६। अत्र हैके वैश्वदेव चरु कुवते सर्वेषु प्रकरणेषु ।१७। यथापरीत्ततिति माण्डूकेय ।१८।

प्रातराशन किये हुये हुए का अपराह्नी अपराजित दिशा मे स्थित होवे ।१। इसके अनन्तर आचाय हवन करके इसको जिन देवो मे निष्ठा वाला होता है उन्ही मे इसमे पृछता है—'अग्नि मे—आदित्य में—इन्द्र मे—विश्वो मे देवताओ मे आपका ब्रह्मचर्य चरित हुआ है ?" ।२। "भो ! चरित हो गया है"—ऐसा उसका प्रत्युत्तर होता है ।३। यह उत्तर प्राप्त हो जाने पर पीछे अग्नि के आगे आचार्य को पूर्व की ओर मुख वाला होकर स्थित हो जाने पर अहत अर्थात् नूतन वस्त्र से आचार्य प्रदक्षिण मुख को तीन बार घोषित करे ।४। ऊपर से दशा करे । जिस से सम्प्रशन न होवे।५। तीन रात्रि तक समिधाओ का लाना—भिक्षा का-माचरण करना अध भूमि पर शयन करना, गुरु की सेवा करना—इन कार्यो को न करता हुआ मौनवृत रखने

वाला—अप्रमत्त अर्थात् प्रमाद मे रहित होकर अरण्य मे देवकुल मे अथवा अग्निहोत्र मे उपवास करो " इति ।६। यहाँ पर कुछ विद्वानो का मत है कि उन्ही नियमो मे स्थित रहते हुए को रात्रि मे ही उपदेश देते हैं ।७। आचार्य को मास का अशन करने वाला ब्रह्मचारी होना चाहिए ।८। त्रिरात्र के अर्थात् तीन रात्रियो के निवृत्त होने पर अथवा रात्रि मे ग्राम से निकलता हुआ इन अनध्यायो को देखे ।९। पिशिनाम—चण्डाल—सूतिका—रजस्वला – तेदनिमय इस्तका—श्मशान और शव रूपो को जो मुख मे प्रवेश न करे । अपने श्वासो का निरशन करता हुआ ।१०। प्रागुदीची दिशा मे उप निष्क्रमण करके किसी पवित्र देश मे प्राङ्मुख होकर आचार्य उपविष्ट हो जाता है । ।११। सूर्य देव के उदित होने पर अनुवाचन धर्म से वाग्यत अर्थात् मौन उष्णीषी के लिये बोलता है ।१२। महा नाम्नियो मे ही यह नियम है ।१ । इसके अनन्तर उत्तर प्रकरणो मे स्वाध्याय करते हुए ही आचार्य को इतर अर्थात् ब्रह्मचारी श्रवण करता है ।१४। उष्णीप–भाजन और गौ दक्षिणा देता है ।१५। 'स्वतामिति'–'उष्यादिविति और प्रणव के द्वारा ही सब देवे ।१६। यहाँ पर कुछ का मत है कि सब प्रकरणो मे देवे ।१७। माण्डूकेय यह कहता है जैसा परीत्त हो ।१८।

।। अथ दण्डनियमा ।।

अथातो दण्डनियमा ।१। न अन्तरा गमन कुर्यादात्मनो दण्डस्य ।२। अथ चेद्दण्डमेखलोपवीतानामन्यतमद्विशीर्येत छिद्येत वा तस्यतत्प्रायश्चित्त यदुद्वाहे रथस्य ।३। मेखला चेदसन्धेया भवत्यन्या कृत्वानुमन्त्रयते ।४।

मेध्यामेध्यविभागज्ञे देवि गोप्त्रि सरस्वति ।
मेखलेऽस्कन्नतच्छिन्न सतनुष्व व्रत मम ।।
त्वमग्ने व्रतभृच्छुचिरग्ने देवाँ इहाऽऽवह ।
उप यज्ञ हविश्च न ।।

व्रतानि बिभ्रद् व्रतपा अदाभ्यो भवा नो दूतो अजर सुवीर ।
दधद्रत्नानि सुमृडीको अग्ने गोपाय नो जीवसे जातवेद इति ।५।
उपवीत च दण्डे बध्नाति ।६। तदप्येतत् ।७।
यज्ञोपवीत दण्ड च मेखलामजिन तथा ।
जुहुयादप्सु व्रते पूर्णे वारुण्यर्चा रसेन वा ।।८।।

इसके अनन्तर दण्ड के विषय मे कुछ नियम बतलाये जाते हैं ।१। ब्रह्मचारी को दण्ड के बीच मे कभी गमन नही करना चाहिए ।२। इस के अनन्तर यह बतलाया जाता है कि यदि ब्रह्मचारी के दण्ड मेखला और उपवीत इनमे से कोई भी एक विशीर्ण हो जावे अथवा छिन्न हो जावे तो उसका वह प्रायश्चित्त है जो उद्वाह मे रथ का होता है ।३। यदि मेखला असन्धेय हो अर्थात् जो उनके योग्य न होवे तो अन्य मेखला बनाकर अनुमन्त्रित करता है ।४। वह मन्त्र यह है— मेध्या मेध्य विभावज्ञे देवि गोप्त्रि सरस्वति । मेखले ऽस्कन्नमच्छिन्न सतनुष्व व्रत मम । त्वमग्ने व्रतमृच्छु चिरग्ने देवा इहावह । उप यज्ञ हविश्च न । व्रतानि बिभ्रद् व्रतपा अदाभ्यो भवा नो दूतो अजर सुवीर दधद्रत्नानि सुमृडीको अग्ने गोपाय नो जीवसे जातवेद इति । अर्थात् पवित्र और अपवित्र के विभाग के जानने वाली हे देवि ! हे रक्षा करने वाली ! हे सरस्वति । हे मेखले ! मेरे इस व्रत को अस्कन्ध और आच्छिन्न पूर्ण करो । हे अग्ने ! आप अन्य व्रत धारण करने वाले एव शुचि हो । सब देवो को इसमे आवहन करो । इत्यादि ।५। और उपवीत को दण्ड मे बाँधता है ।६। वह भी यह है ।७। यज्ञोपवीत–दण्ड–मेखला अजिन को व्रत के पूर्ण हो जाने पर हवन कर देना चाहिए । अथवा वारुण मे रस के द्वारा अर्चा करे ।८।

।। अथ वैश्वदेवकर्म ।।

अथ वैश्वदेव ।१। व्याख्यातो होमकल्प ।२। वैश्वदेवस्य सिद्धस्य सायप्रातर्गृह्येऽग्नौ जुहुयात् ।३।

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा इन्द्राग्निभ्या स्वाहा विष्णवे स्वाहाभरद्वाजधन्वन्तरये स्वाहा विश्वेभ्योदेवेभ्य स्वाहा प्रजापतये स्वाहा अदितये स्वाहा अनुमतयेस्वाहा अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति हुत्वैनामा देवतानाम् ।४। अथ वास्तुमध्ये बलि हरेद् एनाभ्यश्चैव देवनाभ्य नमो ब्रह्मणे ब्राह्मणेभ्यश्च वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मानिति वास्तुमध्ये वास्तोष्पतये च ।५। अथ दिशा प्रदक्षिण यथारूप बलि हरति ।६।

नम इन्द्रायेन्द्रेभ्यश्च नमो यमाय याम्येभ्यश्च नमो वरुणाय वारुणेभ्यश्च नम सोमाय सौम्येभ्यश्च नमो बृहस्पतये बार्हस्पत्येभ्यश्च ।७। अथाऽऽदित्यमण्डले नमोऽदितय आदित्येभ्यश्च नमो नक्षत्रेभ्य ऋतुभ्यो मासेभ्योऽर्द्धमासेभ्योऽहोरात्रेभ्य सवत्सरेभ्य ।८। पूष्णे पथिकृते धात्रे विधात्रे मरुद्भ्यश्चेति देहलीषु ।९। विष्णवे दृषदि ।१०। वनस्पतय इति उलूखले ।११। ओषधोभ्य इति ओषधीना स्थाने ।१२। पर्ज्जन्यायाद्भ्य इति मणिके ।१३। नम श्रियै शय्याया शिरसि पादत भद्रकाल्यै ।१४। अनुगुप्ते देशे नम सर्वान्नभूतये ।१५। अथान्तरिक्षे नक्तञ्चरेभ्य इति सायम् अहश्चरेभ्य इति प्रात ये देवास इति च ।१६। अविज्ञाताभ्यो देवताभ्य उत्तरतो धनपतये च ।१७। प्राचीनावीती दक्षिणत शेषन्निनयति ये अग्निदग्धा इति ।१८। देवपितृनरेभ्यो दत्त्वा श्रोत्रिय भोजयेत् ।१९। ब्रह्मचारिणे वा भिक्षा दद्यात् ।२०। अनन्तर सोत्रासिनी गर्भिणी कुमारान् स्थविरॉश्च भोजयेत् ।२१। श्वभ्य श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चाऽऽवपेद् भूमौ ।२२। इति नाऽनवत्तमश्नीयात् ।२३। नैक ।२४। न पूवम् ।२५। तदप्येद्दचोक्तम् मोघमन्न विन्दते अप्रचेता इति ।२६।

इसके अनन्तर वैश्वदेव कर्म के विषय मे बतलाया जाता है ।१। होम कल्प की व्याख्या करदी गयी है ।।२। सिद्ध वैश्वदेव का साय काल और प्रात काल म गृह्य अग्नि मे हवन करना चाहिए ।३। आहुतिया इस निम्न क्रम म देनी चाहिए—अग्नि के लिये स्वाहा—सोमाय स्वाहा इन्द्राग्निभ्या स्वाहा—विष्णवे स्वाहा-भरद्वाज धन्वन्तर ये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यो स्वाहा प्रजापतये स्वाहा-अदितये स्वाहा अनुमतयेस्वाहा अग्नय स्विष्टकृते स्वाहा इन मन्त्रो के द्वारा इस प्रकार से इन उ युक्त देवो के लिये आहुतियाँ दकर हवन करे ।४। इसके उपरान्त वास्तु के मध्य मे इन देवताओ के लिये बलि का हरण करे। नमो ब्रह्मणे ब्राह्मणेभ्यश्च वास्तोष्पते प्रतिजानी ह्यस्मान् इति'' अर्थात् देवास्तोष्पते ब्रह्मा केलिये और मध्य मे ब्राह्मणो के लिये नमस्कार है-इसको जानो। इस रीति से वास्तु के मध्य मे और वास्तोष्पति के लिए करे।५।इसके अनन्तर दिशाओ के प्रदिक्षण मे यथा रूप बलि का हरण करता है ।६। ''नम इन्द्रायैन्द्रेभ्यश्च, नमो यमाय याम्येभ्यश्च नमो वरुणाय वारुणेभ्यश्च नमो सोमाय सौम्यभ्यश्च, नमो बृहस्पतये वाहपत्येभ्यश्च' अर्थात् इन्द्र के लिये और ऐन्द्रीयो के लिये नमस्कार है, यम के लिये और याम्यो के लिये नमस्कार है—वरुण के लिये और वारुणो के लिये नमस्कार है—सोम देवता के लिये और सौम्यो के लिये नमस्कार है-बृहस्पति के लिये वाहस्पत्यो के लिये नमस्कार है ।७। इसके अनन्तर फिर आदित्य मण्डल मे—अदित के लिये और आदित के पुत्र आदित्यो के लिये नमस्कार है—नक्षत्रो के लिये, ऋतुओ के लिये, मासो के लिये, अर्घ-मासो अर्थात् पक्षो के लिये, अहोरात्रो के लिये अर्थात् दिनो और रात्रियो के लिये तथा सम्वत्सरो के लिये नमस्कार है ।८। फिर देहलियो मे पूषा के लिये, पथिकृत् के लिये, धाता के लिये, विधाता के लिये और मरुद्गणो के लिये नमस्कार है ।९। दृशद (पाषाण) पर विष्णु के लिये नमस्कार है ।१०। उलूखल मे ''वनस्पति के लिये'' इस से नमस्कार है ।११। ओषधियो के स्थल मे ''ओषधीभ्य'' इस मन्त्र से नमस्कार है ।१२। मणिक पर ''पर्जन्यायभ्द्व'' इस से

पर्जन्य के लिये नमस्कार है ।१३। "नम श्रियै"–इत्यादि मन्त्र मे शय्या मे, शिर मे "भद्रकाल्यै"—इस से पाद मे करे ।१४। अनुगुप्त देश मे नम सर्वान्नभूतये—इत्यादि मन्त्र स करे ।१५। अथान्तरिक्षे इस मन्त्र के द्वारा साय काल मे अन्तरिक्ष मे और प्रात काल अहश्चरेभ्य इस मन्त्र से रात्रिचरो और दिनचरो के लिये नमस्कार करे । ये देवास और इस मन्त्र से करना चाहिए ।१६। जो देवता अविज्ञाय हो उनके लिये और धनपति के लिय उत्तर मे करे ।१७। ये अग्निदग्धा इसमे प्राचीनावीती होकर दक्षिण मे शेष को निनयन करताहै ।१८। देवो—पितृगणो को तथा नरो को इस प्रकार से बलि देकर श्रोत्रिय ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए । ।१९। अथवा किसी ब्रह्मचारी के लिये भिक्षा दे देनी चाहिए ।२०। इसके उपरान्त सौवासिनी को जो विवाहित हो और पति के घर मे पति के सयोग को प्राप्त न हुई हो उसे सौवासिनी कहते है । गर्भिणी को, कुमारो को और स्थविरो अर्थात् वृद्धो को भोजन करावे ।२१। कुत्तो के लिये श्वपचो के लिये और पदार्थों के लिये भूमि मे आनयन करे ।२२। इस प्रकार से अनवक्त का अशन नही करना चाहिए ।२३। एक अर्थात् अकेला भी अशन न करे । ।२४। पहिले भी अशन नही करना चाहिए ।२५। तो भी इस ऋचा ने कहा है—मोघ मन्न विन्दते अप्रचेता इति ।२६।

।। अथ षडर्घणकर्म ।।

षण्णा चेदर्घ्याणामन्यतम आगच्छेद्गोपशुमजमन्न वा यत् सामान्यतम मन्येत तत्कुर्यात् ।१। नामासोऽर्घ स्यात् ।२। अधियज्ञमधिविवाह कुरुतेत्येव ब्रूयात् ।३। आचार्या-याऽऽग्नेय ।४। ऋत्विजे बार्हस्पत्य ।५। वैवाह्याय प्राजा-पत्य ।६। राज्ञ ऐन्द्र ।७। प्रियाय मैत्र ।८। स्नातकायैन्द्रा-ग्न ।९। यद्यप्यसकृत् सवत्सरस्य सोमेन यजेत कृतार्घ्या एवैन याजयेयुर्नाऽकृतार्घ्या ।१०। तदपि भवति ।११।

छे अर्घ्यों मे यदि अन्यतम आवे तो गौ, पशु, अज अथवा अन्न को सामान्यतम है ऐसा मग्ने और उसे करना चाहिए।१। असाम अघ नहीं होना चाहिए।२। अवियज्ञ अविविवाह करे,यही बोलना चाहिए।३।आचाय के लिये आग्नेय होना है।४। ऋत्विक् के लिये बाहस्पत्य है।५। वैवाह्य के लिये प्राजापत्य है।६। राजा के लिये ऐन्द्र होता है।७। प्रिय के लिये मैत्र है।८। स्नातक के लिये ऐन्द्राग्न होता है।६। यद्यपि कई बार सोम से सम्वत्सर का यजन करना चाहिए। कृत अर्घ्य वाले ही इसका याजन करे। और जो और कृताघ्य है उनको नहीं करना चाहिए।१०। वह भी होता है।११।

॥ अथ अतिथिकर्म ॥

तृणान्यप्युञ्छतो नित्यमग्निहोत्र च जुह्वत ।
सर्व सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥१॥
ओदपात्रात्त् दातव्यमा काष्ठाज्ज हुयादपि ।
आ सूक्तादाऽनुवाकाद्वा ब्रह्मयज्ञो विधीयते॥२॥
नोपवास प्रवासे स्यात् पत्नी धारयते व्रतम् ।
पुत्रो भ्राताऽथवा पत्नी शिष्योवाऽस्य बलि हरेत् ॥३॥
वैश्वदेवमिम ये तु साय प्रात प्रकुवते ।
ते अर्थैरायुपा कीर्त्या प्रजाभिश्च समृध्नुयुरिति ॥४॥

(एक ही ग्राम मे निवास करने वाला कभी भी अतिथि नहीं होता है किन्तु एक ही ग्राम का निवासी भी अन्य देश मे जाकर समागत हुआ हो तो वह भी अतिथि माना जाता है। आतिथेय वहाँ पर ही होता है जहाँ पर घर मे भार्य्या होवे तथा जहाँ पर अग्नि होवे। ऐसे ही स्थान पर आतिथ्य का परिपालन किया जाता है। प्रवास आदि मे आतिथ्य का पालन नहीं किया जाता है। आतिथ्य की बडी महिमा है। अतिथि सत्कार का न करना बहुत अनिष्टकर हुआ करता है। आतिथ्य गृह मे समागत का ही होता है। यदि कोई मार्ग मे ही मिल जावे तो नहीं

किया जाता है। जो तृणो को भी उञ्छ से नित्य ही अग्निहोत्र करके आहुतियाँ देने वाला है उसका भी सम्पूण सुकृत वह ब्राह्मण ले जाया करता है जो घर मे तो रहे किन्तु उसका कुछ भी अभ्यचन न किया गया होव ।१। उदक पात्र आरम्भ करके देना चाहिए और काष्ठ मे लेकर हवन भी करना चाहिए । सूक्त से अथवा अनुवाक से लेकर ब्रह्म यज्ञ किया जाता है ।२। प्रवास मे उपवास नही करे। उस व्रत को पत्नी धारण किया करती है । पुत्र—भ्राता—अथवा पत्नी या शिष्य इसकी बलि का हरण करता है ।३। जो लोग इस बलि वैश्वदेव को सायङ्काल मे तथा प्रात काल मे किया करते है वे पुरुष धन से आयु से कीर्त्ति से और प्रजाओ से समृद्ध हुआ करते है ।४।

।। अथ प्रवत्स्यद्ब्रह्मचारिकर्म ।।

ब्रह्मचारी प्रवत्स्यन्नाचार्य्यमामन्त्रयते ।१। प्राणापान योरिति उपाशु । ओमह वत्स्यामि भो३ इति उच्चै ।२। प्राणापाना उरुव्यचास्त्वया प्रपद्ये देवाय त्वा गोप्त्रे परि ददामि देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी त ते परि ददामि त गोपायस्व त मा मृधस्वेति । उपाशु ।३। ॐ स्वस्ती त्युच्चरचैराचाय्य -स्वस्तीत्युच्चैराचाय ।४।

प्रवास मे निवास करने वाला ब्रह्मचारी आचार्य को आमन्त्रित करता है ।१। "प्राणापानयो" इत्यादि मन्त्र को उपाशु जाप करे "ओमह वत्स्यामि भो३ इति" इमका उच्च स्वर से उच्चारण करे ।२। फिर "प्राणापाना उरुव्यचास्त्वया प्रपद्ये दे वाय त्वा गोप्त्रे परिददामि, देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी त ते परिददामि, त गोपायस्व त मामृधस्वेति इसका उपाशु जाप करे ।३। ॐ स्वस्ति इति उच्च स्वर से स्वस्ती अर्घ्यं आचार्य —स्वस्ती त्युच्चै आचाय कहे ।४।

इति शाखायनगृह्यसूत्रे द्वितीयोऽध्याय ।।

तीसरा अध्याय

॥ अथ समावर्तनम् ॥

स्नान समावत्स्यमानस्य ।१। आनडुहमित्युक्त तस्मिन्नु-पवेश्य केशश्मश्रूणि वापयति लोमनखानि च ।२। व्रीहि-यवैस्तिलसर्षपैरपामार्ग मदापुष्पीभिरित्युद्वाप्य ।३। आपोहिष्ठीयेनाऽभिषिच्य ।४। अलकृत्य ।५। युव वस्त्राणीति वानसी परिधाय ।६। अथाऽस्मै निष्क बध्नाति आयुष्य वचस्यम् ।७। ममाग्ने वच इति वेष्टनम् ।८। गृह गृहमहनेति छत्रम् ।९। आ रोहनेति उपानहौ ।१०। दीघस्ने अस्त्वङ्कुश इति वैष्णव दण्डमादत्ते ।११। प्रतिलीनस्तदहरासीन ।१२। वनस्पते वीड्वङ्ग शास इत्येति रथमारोहेत् ।१३। यत्रैन गवा वा पशुना वा अर्हयेयुस्त त्पूवमुपतिष्ठेन ।१४। गोभ्यो व समावर्तेत फलवतो वा वृक्षात् ।१५। इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि स्योनापृथिवि भवेति अवरोहति ।१६। ईप्सितमन्न तदहर्भुञ्जीत ।१७। आचार्याय वस्त्रयुग दद्यादुष्णीष मणिकुण्डल दण्डोपानह छत्र च ।१८।

जिसका समापवर्त्तन किया जाने वाला हो अर्थात् जो ब्रह्मचर्यावस्था को समाप्त करके गृहस्थ्य मे प्रवेश करने वाला पुरुष हो उसका स्नान होता हे अर्थात् सताण्वर्त्तन काल मे स्नान कराया जाना चाहिए ।१। आनडुहम् – यह पहिले कहा जा चुका है। उस पर बिठाकर ब्रह्मचारी अपने केशो को श्मश्रु को वपन कराता है और लोमो को तथा नखो को को भी कटवा देता है । तात्पय यह है कि ब्रह्मचर्य दशा मे जो केश—

श्मश्रु—नख—लोम धारण किये हुए था उन सब को समापवर्त्तन काल मे कटवा देना चाहिए क्योंकि अब उसको दूसरे गार्हस्थ्य आश्रम मे प्रवेश करना है ।२। व्रीहि–यव–तिल–सरसो–अपामार्ग–सदा पुष्पी–इन से उद्वयन कराकर ।३। "आपोहिष्ठा मयोभुव"—इत्यादि से अभिषिञ्चन करे ।४। फिर अलङ्कारो से समलङ्कृत करना चाहिए ।५। "युवं वस्त्राणि" इति—इस मन्त्र के द्वारा वस्त्रो का परिधान करे ।६। "आयुष्य वर्चस्यम्" इससे इसके उपरान्त इसके लिये निष्क बाधता है ।७। "ममाग्ने वर्च" इत्यादि से वेष्टन करे ।८। "गृह गृहमहनेति" इस मन्त्र से छत्र धारण करना चाहिए ।९। "आरोहतेति"—इस मन्त्र से उपानह (जूते) पहिने ।१०। "दीघस्ते अस्त्वङ्कुश इति" इत्यादि ऋचा से वैष्णव दण्ड का ग्रहण करता है ।११। उस दिन प्रतिलीन रहे ।१२। 'वनस्पते वीड्वङ्ग शासइत्येति" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए रथ पर समारोहण करना चाहिए ।१३। जहाँ पर इसको गाय से अथवा पशु से अर्हित करे उसके पूर्व मे उपस्थित होना चाहिए ।१४। गायो से समापवर्त्तन करे अथवा फल वाले वृक्ष से करे ।१५। "इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानिधेहि" 'स्योना पृथिवी भवेति'–इन मन्त्रो से अवरोहण करता है ।१६। उस दिन ईप्सित अन्न का भोजन करना चाहिए ।१७। आचार्य के लिये दो वस्त्र देना चाहिए और वस्त्र के जोडे के साथ उष्णीष—मणियो का कुण्डल—दण्डोपानह और छत्र भी देना चाहिए ।१८।

॥ अथ गृहकर्म ॥

अगार कारयिष्यन् इहाऽन्नाय विश परिगृह्णामीति उदुम्बरशाखया त्रि परिलिख्य मध्ये स्थण्डिले जुहोति ।१। कोऽसि कस्याऽसि काय ते ग्रामकामो जुहोमि स्वाहा, अस्या देवानामति भागधेयमित प्रजाता पितर परेता, विराडजुह्वद् ग्रामकामो न देवानाकिञ्चानान्तरेण स्वाहेति।२।स्थूणागर्तान् खानयित्वा ।३।उदमन्यानासिच्य।४।

इमा वि मिन्वे अमृतत्य शाखा मधोर्धारा प्रतरणी वसूनाम् ।
एना शिशु क्रन्दत्या कुमार एना धेनु क्रन्दतु नित्यवत्सेति ॥
उदुम्बरशाखा घृतेनाऽक्ता दक्षिणे द्वार्य्ये गत निदधाति ।५
इमामुच्छ्रयामि भुवनस्यशाखा मधोर्धारा प्रतरणी वसूनाम्
एना शिशु क्रन्दत्या कुमार एना धेनु क्रन्दतु पाकवत्सेत ।
उत्तरत ।६। एव द्वया-द्वयोर्दक्षिणत पश्चादुत्तरतश्च ।७।
इमामहमस्य वृक्षस्य शाखा घृतमुक्षन्तामृते मिनोमि ।
एना शिशु क्रन्दत्याकुमारआस्यन्दन्तान्धेनवोनित्यवत्सा इति ॥
स्थूणाराजमुच्छ्रयति ।८।
एन कुमारस्तरुण आ वत्सो भुवनस्परि ।
एन परिस्रुत कुम्भ्या आ दध्न कलशगमन् ।९।
इहैव स्थूण प्रति तिष्ठ ध्रुवाऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
क्षमेतिष्ठघृतमुक्षमाणेहैवतिष्ठनिमितातिल्विलास्याजिरावती ।
मध्य पोषस्य तृम्पता मा त्वा प्रापन्नघायव ॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावय
अथा अन्नस्य की लाल उपहूतो गृहेषु न ।
रथन्तरे प्रति तिष्ठ वामदेव्य श्रयस्व बृहति स्तभायेति ॥
स्थूणाराजमभिमृशति समितस्य स्थूणा समृशति। सत्य
च श्रद्धा चेति पूर्वे । यज्ञश्च दक्षिणा चेति दक्षिणे । बल
चौजश्चेति अपरे । ब्रह्म चनक्षत्रञ्चेति उत्तरे । श्री स्तूप
धमस्थूणाराज । अहोरात्रे द्वारफलके। सवत्सरोऽपिधा-
नम् । उक्षा समुद्र इति अभ्यक्तमश्मान स्तूपस्याधस्तान्नि-
खनेत् ।१०।

अगार को कराने वाला होता हुआ "इहान्नाद्याय त्रिश परिगृह्णा मीति" उदुम्बर (गूलर वृक्ष) की शाखा से परिलेखन करके मध्य मे स्थण्डिल मे होम करना चाहिए ।"कोऽसि कस्यासि कायते ग्राम कामो जुहोमिस्वाहा, अस्या देवनामासि भागधेयमित प्रजाता

पितर परेता विराडजुहत् ग्राम कामो न देवाना किञ्चनान्तरेण स्वाहेति" इसमे स्थूणागर्त्तो का खुदवा कर ।३। उदमन्थान का आसेचन करे ।४। "इमा वि मित्वे अमृतस्य शाखा माधोर्धारा प्रतरणी वसूनाम् । एना शिशु क्रन्दन्त्या कुमार एना धेनु क्रन्दन्तु नित्य वत्सेति"—इस मन्त्र के द्वारा घृत से अक्त उदुम्बर की शाखा को दक्षिण द्वार मे होने वाले गर्त्त मे रख देता है ।५। "इमा मुच्छयामि भुवनस्थ शाखा मधोर्धारॉ प्रतरणी वसूनाम् । एना शिशु क्रन्दत्या कुमार एना धेनु क्रन्दतु पाक वत्सेति इसम उत्तर की ओर से ।६। इस प्रकार से दो–दो का दक्षिण से और पीछे उत्तर से "इमामह मस्य वृक्षस्य शाखा घृत मुक्षन्ती ममृने मिनोमि । एना शिशु क्रन्दत्या कुमार आस्यन्दतान्धेनवो नित्य वत्सा इति इस मत्र से स्थूणा राज को उच्छ्रित करता है । ।७ ८। 'एन कुमार स्तरुण आ वत्सो भुवनस्परि । एन परिस्रुत कुम्भ्या आहृघ्न कलशै गमन् ।९। मध्ये पोषस्य तृम्पता यात्वा प्रापन्न वायव । उपहूत्य इहगाव उपहूता अजावय अथो अस्य की लात्म उपहूतो गृहेषुन । रथन्तरे प्रति तिष्ठ वाम देव्ये श्रमस्व वृहति स्तमायेति इससे स्थूणाराज को अभिमृष्ट करता है । सम्मित के स्थूणाओ का सस्पर्श करता है । सत्य च श्रद्धाचेति इससे पूव मे यज्ञश्च दक्षिणा चेति इससे दक्षिण मे । बल चौजश्चेति इससे अपर मे ब्रह्म च नक्षत्र श्चेति इमसे उत्तर मे श्री स्तूप धर्म स्थूणाराज । अहोरात्रे द्वार फलके । सम्वत्सरोऽपिधानम् । उक्षा समुद्र इति इससे अभ्यक्त अश्म (पाषाण) को स्तूप के नीचे के भाग मे निखनन करना चाहिए ।१०।

।। अथ गृहप्रवेशकर्म ।।

वास्तोष्पतीये कर्मणि ।१। अग्नि दधामि
मनसा शिवेनाऽयमस्तु सगमनो वसूनाम् । मा नो
हिसी स्थविरमाकुमारशन्नोभव द्विपदेशचतुष्पदइति ।।

गृह्यमग्नि बाह्यत उपसमादाय ।२। प्रागग्रेषु नवेषु कुशेषूदम्भ नव प्रतिष्ठाप्य ।३। अरष्टा अस्माक वीरा मा परा सेचि नो धनमिति अभिमन्त्र्य ।४। रथन्तरस्य स्तोत्रियेण पुनरादाय ककुप्कार तिस्र पूर्वाह्ने जुहोति ।५। वामदेव्यस्य मध्यन्दिने ।६। बृहतोऽपराह्ने ।७। महाव्याहृतयश्चतस्र वास्तष्पत इति तिस्र अमीवहा वास्तोष्पते वास्तोष्पते ध्रुवास्थूणा सोविष्टकृतीदशमीस्थालीपाकस्य रात्रौ ।८। ज्येष्ठ पुत्रमादाय जाया च सहधान्य प्रपद्येत ।९। इन्द्रस्य गृहा शिवा वसुमन्तो वरूथिनस्तानह प्रपद्ये सह जायया सह प्रजया सह पशुभि सह रायस्पोषेणसह यन्मे किञ्चास्ति तेन ।१०।

वास्तोष्पतीय गृह प्रवेश नाम वाले कर्म मे जो विधि है उसकी व्याख्या करते है ।१। अग्नि दधामि मनसा शिवेनायमस्तु सगमनो वसूनाम् । मानो हिंसी मजविर मा कुमार शन्नो भव द्विपदे शबतुष्पद इति इस मन्त्र से गृह्य अग्नि को बाह्य से उपसमाहित करे ।२। प्राकअग्र नवीन कुशाओ मे नूतन जल के कुम्भ को प्रतिष्ठापित करे। ।३। अरष्टा अस्माक वीरा, मा परा सेनि नो धनमिति इससे अभिमन्त्रित करे ।४। रथन्तर के स्तोत्रिय के द्वारा पुन ककुष्कार को आदान करके तीन आहुतियो का पूर्वाह्न मे हवन करता है ।५। मध्य दिन मे वामदेव्य का करना चाहिए ।६। अपराह्न मे बृहत् का करे ।७। महाव्याहृतिया चार है अर्थात् महाव्याहृतियो की चार आहुतियाँ देता है। "वास्तोष्पते इति इसकी तीन आहुतिया देवे। "अमी बहावास्तोष्पते, वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणा इससे सोविष्ट कृती दशमी स्थाली पाक की रात्रि मे देवे ।८। ज्येष्ठ पुत्र को लेकर और जाया को लेकर धान्य प्रपन्न हो जाना चाहिए ।९। मन्त्र यह है— इन्द्रस्य गृहा शिव वसुवरुथिनस्तानह प्रमद्ये सह जायया प्रजया सह पशुभि सह रायस्पोषेण सह यन्मे कि क्चिास्ति तेन ।१०।

॥ गृह प्रवेशकर्म (२) ॥

शग्म शग्म शिवशिव क्षेमाय व शान्त्यै प्रपद्ये, अभय नो अस्तु । ग्रामो महाऽरण्याय परि ददातु विश्व महाय मा परि देहीति ॥
ग्रामान्निष्क्रामन् ।१। 'अरण्य मा ग्रामाय परि ददातु, मह विश्वाय मा परि देहीति" ग्राम प्रविशन्नरिक्त ।२।
''गृहान् भन्द्रान्सुमनस प्रपद्ये वीरघ्नोवीरतर सुवीरान् । इरा वहन्तो घृतमुक्षमाणा अन्येष्वह सुमना सविशेयमिति ॥ सदा प्रवचनीय ।३।

'शग्म शग्म शिव शिव क्षेमाय व शात्यै प्रपद्ये अभये नो अस्तु । ग्रामो महारण्याय परिददातु विश्वमहाय मा परिदेहीति' इस मन्त्र से ग्राम से निष्क्रमण करता हुआ ।१। ''अरण्य मा ग्रामाय परिददातु मह विश्वाय मा परिदेहीति इस मन्त्र के द्वारा समित्पुष्प कुशादि के सहित ही ग्राम मे प्रवेश करता हुआ होवे ।२। "गृहान् भन्द्रासुमनस प्रपद्ये वीरघ्नो वीरतर सुवीरान् । इरा वहन्तो घृतमुक्षमाणा अन्येष्वह सुमना सविशेयमिति इसको सदा प्रवचन करना चाहिए ।३।

॥ अथ प्रवसद्यजनम् ॥

अनाहिताग्नि प्रवत्स्यन् गृहान् समीक्षते ।१। "इमान् मे मित्रावरुणौ गृहान् गोपायत युवम् । अविनष्टानविह्लतान् पूषैनानभि रक्षतु । आऽस्माक पुनरागमात्" ।२। अपि पन्थामगन्महीति च जपति ।३।

जिसने अग्नि को आहित नही किया है वह प्रवास मे रहने वाला होता हुआ गृहो की समीक्षा करता है ॥१॥ "इमान् मे मित्रावरुणौ (तुम दोनो) गृहान् गोपायतम् । अर्थात् मित्रावरुण दोनो मेरे इन गृहो की रक्षा करो । "अविनष्टानविह्लतान् पूषैनानभि रक्षतु' अर्थात् अविह्वत और

न विनष्ट हुए इनको (गृहो को) पूषा देवता अभिरक्षित करे। "आस्माक पुनरागमनात्" अर्थात् हमारे पुन गृह मे आने के समय तक इनकी रक्षा करे। "अपिपन्था मगन्महीति"—इसका जाप करता है ॥२-३॥

॥ प्रवसद्यजनम् (२) ॥

अथ प्रोष्याऽऽयन् गृहान् समीक्षते ॥१॥
गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज विभ्रत एमसि।
ऊर्ज विभ्रद्व सुमना सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमान ॥
येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहु।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्तु जानत ॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावय।
अथाऽन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु न ॥२॥
अय नो अग्निभगवानय नो भगवत्तर।
अस्योपसद्ये मा रिषामाऽय श्रेष्ठये दधातु न इति।
गृह्यमग्निमुपस्थाय ॥३॥ कल्याणी वाच प्रब्रूयात् ॥४॥
विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय।
मयि पद्यायै विराजो दोह इति ॥ पाद्यप्रतिग्रहण ॥५॥

इसके अनन्तर प्रवास मे रहकर आगमन करता हुआ गृहो को समीक्षित करता हे ॥१॥ "गृहा मा विभीत मा वेपध्व मूर्ज विभ्रत एमसि। अर्थात् हे गृहो! मत डरो, कम्पित मत होओ, ऊर्ज को भरण करो। "ऊर्ज विभ्रद्व सुमना सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमान" अर्थात् ऊर्ज को धारणा करते हुए आप सब हैं। सुन्दर मन वाला, सुन्दर मेधावाला गृहो को आता हूँ, मन से मुदित होता हुआहू। 'येषा मध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहु। गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानत। उपहूता इहगाव उपहूता अजावय। अथोऽन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु न ॥२॥ 'अय नो अग्निभगवानय नो भगवत्तर। अस्योप सद्ये मा रिषामाय श्रेष्ठये दधातु न इति" इस मन्त्र से गृह्य

अग्नि का उपस्थान करे ॥३॥ कल्याणी वाणी को बोलना चाहिए ॥४॥ 'विराजो दोहोऽसि विरजो दोहमशीय ' मयिपद्याय' विराजो दोह इति" इस मन्त्र के द्वारा पाद्य का प्रति ग्रहण करे ॥५॥

॥ अथ आग्रयणम् ॥

अनाहिताग्निन्नव प्राशिष्यन्नाग्रयणदेवताभ्य स्विष्टकृच्चतुर्थीभ्य स्वाहाकारेण गृह्येऽग्नौ जुहुयात् ।१। प्रजापतये त्वा ग्रह गृह्णामि मह्य श्रियै मह्य यशसे मह्यमन्नाद्यायेति प्राशनार्थीग्रमभिमन्त्र्य ।२। भद्रान्न श्रेय समनैष्ट देवास्त्वया ज्वसेन समशीमहि त्वा। स नो मयोभू पितवा विशस्व शन्नो भवद्विपदे शचतुष्पदइति अद्भिरभ्युत्षिच्य त्रि प्राश्नाति ।३। अमोऽसि प्राण तद्दत ब्रवीम्यमोऽसि सर्वाडसि प्रविष्ट । स मेजरा रोगमपनुद्य शरीरादमा म एधि मृधा न इन्द्रेति ॥ हृदयदेशमभिमृशति ।४। नाभिरसि, मा विभीथा, प्राणाना ग्रन्थिरसि, मा विस्रस इति नाभिम् ।५। भद्र कर्णेभिरिति यथालिङ्गम् ।६। तच्चक्षुरिति आदित्यमुपस्थाय ।७।

जो आहिताग्नि न हो वह नवीन का प्राशन करता हुआ आग्रयण देवताओ के लिये स्विष्टकृत् चतुर्थियो के लिये स्वाहाकार के द्वारा ग्रह्य अग्नि मे हवन करना चाहिए ॥१॥ "प्रजापत ये त्वाग्रहगृह्णामि मह्य श्रियै मह्य यश से मह्यमन्नाद्यायेति इस मन्त्र से प्राशनार्थीय को अभिमन्त्रित करे ॥२॥ "तद्रान्न श्रेय समनैष्ट देवास्त्वयाज्वसेन समशीमहि त्वा। सनोमयोभू पितवा विशस्वशन्नोभव द्विपदे शचतुष्पद इति" इस मन्त्र से जलो के द्वारा अभ्युत्षिञ्चन करते हुए तीन वार प्राशन करता है ॥३॥ "अमोऽसि प्राण तद्दत ब्रवीम्यमोऽसि सर्वाडसि प्रविष्ट समेजरा रोगमपनुद्य शरीरादमा मएधि मृधा न इन्द्रेति" इससे हृदय

दश का अभिमृष्ट करता है ।।४।। नाभिरसि मा विभीथा प्राणान्
ग्रन्थिरसि, मा विस्रस इति इस मन्त्र से नाभि को अभिमृष्ट करता है
।।५।। "भद्र कर्णेभिरिति इसमे यथा लिङ्ग को करे ।।६।। "तच्चक्षु
रिति इस मन्त्र से आदित्य देव का उपस्थान करे ।।७।।

।। अथ गोष्ठकर्म ।।

परि व मन्याद्वधाद्वया वृञ्जन्तु घोषिण्य । समानस्तस्य
गोपतेर्गावो अशो न वो रिषन् ।। पूषा गा अन्वेतुन इति
गा प्रतिष्ठमाना अनुमन्त्रयेत ।१। परि पूषेति परिक्रा-
न्तासु ।२। यासामूवश्चतुर्बिल मधो पूर्ण घृतस्य च ।
ता न सन्तु पयस्वतीबह्वीर्गोष्ठे घृताच्य इति ।।
आ गावो अग्मन्निति च प्रत्यागतासु ।३। उत्तमामसमा
कुर्वन् ।४। मयोभूर्वात इति सूक्तेन गता ।५।

"परिव सन्याद्वधाद्वया वृञ्जन्तु घाषिण्य । समानस्तस्य गोपतेर्गावो अशोनवोरिषन । पूषा अन्वेतुन इति" इसमे प्रतिष्ठमान गौओ को अनुमन्त्रित करना चाहिए । "परिपूषेति" इससे परिक्रमण करने वालियो मे करे ।।१-२।। "यासामवश्चतुर्बिल मधो पूर्ण घृतस्य च । ता न सन्तु पयस्वतीबह्वीर्गोष्ठे घृताच्य इति"—"आगावो अग्मन्निति" इन दोनो से अरण्य मे परिक्रमणकर के जो प्रत्यागता हो उनमे करे अर्थात् अनुमन्त्रण करे ।।३ । उत्तमा को असमा करते हुए ।।४।। "मयोभूर्वात इति—इसके द्वारा गोष्ठ चली गयी ।।५।।

।। अथ गवामङ्कनकर्म ।।

या फाल्गुन्या उत्तराऽमावास्या सा रेवत्या सम्पद्यते तस्या-
मङ्कलक्षणानि कारयेत् ।१।
भुवनमसि सहस्रपोषमिन्द्राय त्वा श्रमो ददत् ।
अक्षतमस्यरिष्टमिडाऽन्न गोपायन यावतीनामिद करिष्यामि
भूयसीनामुत्तमा समा क्रियासमिति २।
या प्रथमा प्रयायेत तस्या पीयूष जुहुयात् संवत्सरीण

पय उस्रियाया इति एताभ्यामृग्भ्याम् ।३। यदि यमौ प्रजायेत महाव्याहृतिभिर्हुत्वा यममू दद्यात् ।४।

जो फाल्गुनी की उत्तरा अमावस्या हो और वह रेवती से सम्पन्न होती है तो उसमे अ कलक्षणो को करावे ॥१। "भुवनमसि सहस्रपोष-मिन्द्रायत्वा श्रमोददत् । अक्षतमस्थरिष्ठमिडाऽन्न गोपायन यावतीनामिद करिष्यामि भूयसीनामुत्तमा समा क्रिया समिति" ॥२॥ इस मन्त्र के द्वारा अ कलक्षणो को कराना चाहिए । जो प्रथमा प्रजनन करे उसका पीयूष का हवन करना चाहिए । "सम्वत्सरीण पय उस्रियाया इति— इन दो ऋचाओ से हवन करे ।।३।। यदि यमल (जोड ले) प्रजनन करे तो महाव्याहृतियो से हनन करके यमलो के प्रसून करने वाली को देदेना चाहिए ॥४॥

॥ अथ वृषोत्सर्गकर्म ॥

अथ वृषोत्सर्ग ।१। कार्त्तिक्या पौर्णमास्या रेवत्या वाऽऽश्वयुज्यस्य ।२। गवा मध्ये सुसमिद्धमग्नि कृत्वाऽऽ-ज्याहुतीर्जुहोति ।३। इह रतिरिह रमध्व स्वाहा, इह धृतिरिह स्वधृति स्वाहा, उप सृज धरुण मात्रे, धरुणो मातर धयन् रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ।४। पूषा गा अन्वेतु न इति पौष्णस्य जुहोति ।५। रुद्रान् जपित्वा ।६। एकवर्ण द्विवर्ण वा ।७। यो वा यूथ छादयति ।८। यो वा यूथेन छाद्यते ।९। रोहितो वैव स्यात् ।१०। सर्वाङ्गैरुपेतो यूथे वर्चस्वितम स्यात् ।११। तमलङ्कृत्य ।१२। यूथे मुख्याश्चतस्रो वत्सतयरताश्चा-ऽलङ्कृत्य ।१३। एत युवान पति वो ददामि तेन क्रीड-न्तीश्चरथ प्रियेण । मावश्वात्र जनुषा सविदाना रायस-पोपेण समिषा मदेम स्वाहेति ।१४। नभ्यस्थेऽनुमन्त्रयते मयोभूरिति अनुवाकशेषेण ।१५। सर्वासा पयसि पायस ब्राह्मणान् भोजयेत् ।१६।

इसके अनन्तर बृष के उत्सग करने के कम के विषय मे बतलाया जाता है ॥१॥ यह कम कार्त्तिक मास की पूणमासी मे अथवा आश्विन मास की रेवती मे करना चाहिए ।।२।। गौओ के मध्य मे अग्नि को अच्छी तरह से समिद्ध करके वहा पर घृत की आहुतियो का हवन करता है ।३। "इह रतिरिह रमध्व स्वाहा इह धृतिरिह स्वधृति स्वाहा उपसृज धरुण मात्रे, धरुणो मातर धयन् रायस्पोष मस्मासु दीधरत् स्वाहा" ॥४॥ इन मन्त्रो के द्वारा आहुतिया देवे । "पूषा ग। अन्वेतुन इति"—इससे पौष्णका हवन करता है ।५। फिर रुद्र मन्त्रो का जाप करे ।६। एक वण वाला – दो वण वाला अथवा तीन वर्ण वाला हो ।७। अथवा जो यूथ को छादन करता है ।८। अथवा जो यूथ के द्वारा छादन किया जाता है ।९। अथवा रोहित ही होवे ।१०। समस्त अङ्गो से युक्त यूथ मे वचस्वियो मे श्रेष्ठतम होवे ।११। उसी को समलङ्कृत करे ।१२। यूथ मे मुख्य चार वत्सतयरत हो उसको अलकृत करना चाहिए ।१३। "एव युवान पति वो दहामि तेन क्रीडन्तीश्चरथ प्रियेण । मावश्वात्र जनुषा सविदाना रायस्पोषेण समिषा मदेम स्वाहेति" इस मन्त्र को पढकर ही करना चाहिए ।१४। नभ्यस्थ मे "मयो भूरिति" अनुवाक शेष के द्वारा अनुमन्त्रित करता है ।१५। सभी के दूध मे पायस बनाकर उससे ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए ॥१६॥

॥ अथ अष्टका ॥

ऊर्ध्वमाग्रहायण्यास्तिस्रोष्टका अपरपक्षेषु ।१। तासा प्रथमाया शाक जुहोति ।२।

इयमेव सा या प्रथमा व्युच्छदन्तरस्या चरति प्रविष्ट ।
वधूजजाननवकृज्जनित्रीत्रयएनामहिमान सचन्तास्वाहेति।३।
अथ स्विष्टकृत ।४।
यस्या वैवस्वतो यम सर्वे देवा समाहिता. ।
अष्टका सवतोमुखी सा मे कामनतीतृपत् ।
आहुस्ते ग्रावाणो दन्तानूध पवमान ।

मासाश्चाऽर्धमासाश्च नमस्ते सुमनामुखि स्वाहेति ।५।

आग्रहायणी से ऊर्ध्व मे तीन अष्टका हैं जो अपर पक्षो में हैं ।१। उनमे जो प्रथमा अष्टका है उसमे शाक का हवन करता है ।२। मन्त्र यह है—"इययेवसा या प्रथमा व्युच्छदन्तरस्या चरित प्रविष्ठा । वधूजजान नव क्रन्जनित्रीत्रय एना महिमान सचन्ता स्वाहेति" ।३। इसके अनन्तर स्विष्टकृत है ।४। स्विष्टकृत का मन्त्र निम्नाङ्कित है—"यस्या वैवस्पनो- यम' सर्वदेवा समाहिता । अष्ट का सव तो मुखी सामे कामानतोतृपत् । आहुस्ते ग्रावाणो दन्तानूध पवमान । मासाश्चार्धमासाश्च नमस्ते सुमनामुखिस्वाहेति" ।।५।।

मध्यमाया मध्यावर्षे च ।१। महाव्याहृतयश्चतस्र- 'ये तातृषुरिति चतस्रोऽनुद्रुत्य वपा जुहुयात् ।२। वह वपा जातवेद यनात्रैन् वेत्थ सुकृतस्य लोके । मेदस कुल्या उप तान्स्रवन्तु सत्या सन्तु यजमानस्य काम स्वाहेति । वा ।३। महाव्याहृतयश्चतस्र ये तातृषुरिति चतस्रोऽष्टाहुति स्थालीपाकोऽवदानमिश्र ।४। "अन्तर्हिता गिरयोऽन्तर्हितापृथिवी महीमे।दिवा दिग्भिश्च सर्वाभिरन्यमन्त पितुर्द्‌ऽन्तर्हिता धेऽमुष्ये स्वाहा ।। अन्तर्हिता मन्त्रतवोअहोरात्राश्च सन्धिजा । मासाश्चाऽधमासाश्चान्यमन्त पितुर्द्धेऽमुष्यै स्वाहेति ।। यास्तिष्ठन्तिया स्रवन्तियादभ्रा परिसस्रुषी । अद्भि सर्वस्य भर्तृभिरन्यमन्त पितुर्द्धेऽमुष्यै स्वाहा ।। यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता । रेतस्तन्मे पिता वृङ्क्ता मातुरन्योऽत्र पद्यतामुष्यै स्वाहेति ।। वा महाव्याहृतीना स्थाने चतस्रोऽन्यत्रकरणस्य ।५। पायसो वा चरु ।६। श्वोऽन्वष्टक्य पिण्डपितृयज्ञावृता ।७।

और मध्यमा मे मध्यायवर्ष मे करे ।१। महाव्याहृतिया चार होती है—यथा 'भू -भुव -स्व -भूर्भुव स्व" "येतातृषुरिति" इससे चारो महा-

व्याहृतियो को अनुद्रुत करके वपा का हवन करना चाहिए ।२। मन्त्र यह है— 'वह वपा जात वेद पितृभ्यो यत्रैनान् वेत्थ सुकृतस्यलोके । भदस कुल्या उप तान्स्रवन्तुसत्या सन्तु यजमावस्य कामा स्वाहेति" । अथवा ।३। चार महाव्याहृतियाँ है "ये तातृपुरिति" चार अष्टाहुति स्थाली पाक अवदान मिश्र हैं ।४। चार मन्त्र निम्न लिखित है—"अन्तर्हिता गिरयोऽन्तर्हिता पृथिवी महीमे । दिवादिग्भिश्च सर्वाभिरन्यमन्त पितुद्दधेऽमुष्यै स्वाहा" । 'अन्तर्हितम ऋतवो अहोरात्राश्च सन्धिजा । मासाश्चाधऽमासाश्चान्वम त पितुर्द्दधेऽमुष्यै स्वाहेति" । 'यास्तिष्ठन्ति या स्रवन्ति या दभ्रा परिसस्रुषी अद्भि सवस्य भतृभिरन्यमन्त पितुदधेऽमुष्यै स्वाहा" ॥ 'यन्येमाता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता । रेतस्तन्मे पिता वृङ्क्ता मातुरन्योऽव पद्यतामुष्यै स्वाहेति" ॥ अथवा महाव्याहृतियो के स्थान मे अन्यत्र करण की चार है ।५। अथवा पायस चरु होता है ।६। श्वोऽन्वष्टक्य पिण्ड पितृयज्ञावृत्ता है ॥७॥

उत्तमायामपूपाञ्जुहोति ।१। "उक्थ्यश्चाऽतिरात्रश्च सद्य क्रीश्छन्दसा सह । अपूपकृदष्टके नमस्ते सुमनामुखि स्वाहेति" ।२। गोपशुरजपशु स्थालीपाको वा ।३। अपि वा गोग्रासमाहरेत् ।४। अपि वाऽरण्ये कक्षमपादहेत् एषा मेऽष्टकेति ।५। नत्वेव न कुर्वीत न त्वेव न कुर्वीत ।६।

उत्तमा मे अपूपाओ का हवन करता है ।१। उस का मन्त्र यह है- "उक्थ्यश्चाति रात्रश्चसद्य क्रीश्छन्दसासह । अपूप कृदष्ट के नमस्ते सुमनामुखिस्वाहेति" ।२। गो–पशुरज पशु अथवा स्थालीपाक ।३। अथवा गो ग्रास का भी आहरण करना चाहिए ।४। अथवा अरण्य मे भी कक्ष का आदहन करे । मन्त्र– "एषामेऽष्टकेति" इत्यादि है ।५। नत्वेव नहीं करे–नत्वेव नही करना चाहिए ।।६।।

———

चतुर्थोऽध्याय

अथ श्राद्धकर्म

मासि-मासि पितृभ्यो दद्यात् ।१। ब्राह्मणान् वेदविदो-ऽयुग्मांस्त्र्यवरार्धान् पितृवदुपवेश्य ।२। अयुग्मान्युदपात्राणि तिलैरवकीर्य ।३। असावेतत्त इत्यनुदिश्य ब्राह्मणाना पाणिषु निनयेत् ।४। अत ऊर्ध्वमलङ्कृतान् ।५। आमन्त्र्याऽग्नौकृत्वाऽन्न च ।६। असावेतत्त इत्यनुदिश्य भोजयेत्।७।भुञ्जानेषुमहाव्याहृती सावित्रीमधुवर्तीयापितृदेवत्या पावमानीश्च जपेत् ।८।भुक्तवत्सु पिण्डान्दद्यात् ।९। पुरस्तादेके ।१०। पिण्डान् पश्चिमेन तत्पत्नीना किञ्चिदन्तर्धाय ।११। ब्राह्मणेभ्य शेष निवेदयेत् ।१२। अग्नौकरणादि पिण्डपितृयज्ञेन कल्पो व्याख्यात ।१३।

मास—मास मे अर्थात् प्रत्यक मास म पितृगण के लिये श्राद्ध देना चाहिए ।१। वेदो के ज्ञाता ब्राह्मणो को पितृगण के ही समान समझकर उपविष्ट कराना चाहिए । वे ब्राह्मण अयुग्म और त्र्यवराध होने चाहिए ।२। अयुग्म उदक पात्रो को तिलो से अववीण करे ।३। "असावेतत्ते"-इस प्रकार से अनुदिष्ट करके ब्राह्मणो के हाथो मे निनयन करना चाहिए ।४। इससे आगे उनको अलकृत करे ।५। आमन्त्रण करके और अग्नि मे अन्न की आहुति देवे ।६। 'असावेतत्ते" अर्थात् यह आपके लिये है—इस प्रकार से अनुदिष्ट करके ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए ।७। जिस समय मे ब्राह्मण भोजन कर रहे हो उस अवसर पर महाव्याहृतियो को सावित्री को और मधुवातीय, पितृ जिनके देवता हैं उन पवमानी ऋचाओ का जाप करना चाहिए ।८। जब वे भुक्तवान् हो जावें उस समय पर पिण्डो को देवे ।९। कुछ विद्वानो का मत है—आगे पिण्डो को देवे ।१०। कुछ अन्तर्धान करके पश्चिम मे उनकी पत्नियो को पिण्डो को

देवे ।११। शेष ब्राह्मणो के लिये निवेदन कर देना चाहिए । ।१२। अग्नि मे करणादि पिण्ड पितृयज्ञ के द्वारा कल्प की व्याख्या करदी गयी है ।।१३।।

अथ एकोद्दिष्टश्राद्धकर्म

अथात एकोद्दिष्टम् ।१। एकपवित्रम् ।२। एकार्घ्यम् ।३। एकपिण्डम् ।४। नाऽऽवाहन नाऽग्नौकरण नात्र विश्वेदेवा "स्वदितमिति" तृप्तिप्रश्ने "उप तिष्ठतामिति" अक्षय्य-स्थाने ।५। "अभि रम्यतामिति" विसर्ग ।६। सवत्सर-मेव प्रेते ।७। चतुर्थविसर्गश्च ।८।

इसके अनन्तर इसी लिये एकोद्दिष्ट श्राद्ध बतलाया जाता है ।१। इसमे एक ही पवित्री होती ।२। एक ही अर्घ्य होता है ।३। एक ही पिण्ड हुआ करता है ।४। इसमे आवाहन नही होता है और इस एकोद्दिष्ट मे विश्वेदेवा नही है ।"स्वदितमिति" यह तृप्ति के प्रश्न मे बोला जाता है । "उपतिष्ठताम्" यह अक्षय्य स्थान मे होता है ।५। 'अभिरम्यताम्"— इससे विसर्ग (विदाई) होता है ।६। इसी प्रकार से प्रेत मे सम्वत्सर तक करे ।७। और चतुर्थ विसर्ग करे ।।८।।

अथ सपिण्डीकरणम्

अथ सपिण्डीकरणम् ।१। सवत्सरे पूर्णे त्रिपक्षे वा ।२। यदहर्वा वृद्धिरापद्येत ।३। चत्वार्युदपात्राणि सतिलग-न्धोदकानि कृत्वा ।४। त्रीणि पितृणामेक प्रेतस्य ।५। प्रेतपात्र पितृपात्रेष्नासिञ्चति "ये समाना इति" द्वाभ्याम् ।६। एव पिण्डमपि ।७। एतत्सपिण्डीकरणम् ।८।

इसके अनन्तर सपिण्डी करण कर्म के विषय मे बतलाया जाता है ।१। एक वर्ष के पूर्ण हो जाने पर अथवा त्रिपक्ष मे करना चाहिए ।२। जो दिन अथवा वृद्धि को प्राप्त होवे ।३। चार नलके पात्रो को तिल गन्ध और जल से युद्ध करना चाहिए ।४। तीन पात्र तो पितृगण

के लिये रक्खे और एक पात्र प्रेत के लिये रखना चाहिए ।५। प्रेत के पात्र को पितृगण के लिये रक्खे हुए पात्रो मे आसिञ्चन करता है। और उस आसिञ्चन के समय मे निम्न दो ऋचाओ को पढ़े—येसामाना इत्यादि ।६। इमी प्रकार से पिण्ड को भी करे ।७। यदि सपिण्डी करण कर्म्म होता है ।८।

अथ आभ्युदयिकश्राद्धकर्म

अथात आभ्युदयिकम् ।१। आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे ।२। मातृयाग कृत्वा ।३। युग्मान् वेदविदो ब्राह्मणनुपवेश्य ।४। पूर्वाह्णे ।५। प्रदक्षिणमुपचार ।६। पितृमन्त्रवर्ज जप ।७। ऋजवो दर्भा ।८। यवैस्तिलार्थ ।९। दधिबदराक्षतमिश्रा पिण्डा ।१०। "नान्दीमुखान् पितृना वाहयिष्य इति" आवाहने ।११। "नान्दीमुखा पितर प्रीयन्तामिति" अक्षय्यस्थाने ।१२। "नान्दीमुखान् पितृन् वाचयिष्य इति" वाचने ।१३। "सपन्नमिति" तृप्तिप्रश्ने ।१४। समानमन्यदविरुद्धमिति ।१५।

इसके अनन्तर इसीलिये आभ्युदयिक श्राद्धकर्म बतलाया जाता है ।१। इसको आपूर्यमाण पक्ष मे और पुण्य दिन मे करना चाहिए। ।२। मातृ याग को करके इसे करे ।३। युग्म सख्या वाले वेदो पर ज्ञाता ब्राह्मणो को बिठाना चाहिए। ।४। पूर्वाह्न मे इसको करे ।५। प्रदक्षिण उपचार होता है ।६। पितृगण के मन्त्रो से वर्जित जाप होता है ।७। इसमे जो दर्भ होते है वे ऋजु ही होते है ।८। यवो के द्वारा तिलो का अर्थ निष्पन्न किया जाता है।९।पिण्ड दधि, बदर अक्षतो के होते है। आवाहन करने मे नान्दी मुखान् पितृ ना वाहदिष्ये इत्यादि मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। ।१०-११। अक्षय स्थान मे नान्दी मुखा पितर प्रीयन्ताम् इति—इस मन्त्र का प्रयोग करे। वाचन मे-नान्दी मुखान् पितृन् वाचायिष्ये इति—इस मन्त्र को पढे ।१२-१३। सम्पन्नमिति इस को तप्ति प्रश्न मे करे ।१४। अन्य सब अविरुद्ध एव समान है ।१५।

॥ अथ उपाकरणम् ॥

अथोपाकरणम् ।१। ओषधीना प्रादुर्भावे हस्तेन श्रवरोन वा ।२। अक्षतसक्तूना धानानां च दधिघृतमिश्राणा प्रत्यृच वेदेन जुहुयादिति हैक आहु ।३। सूक्तानुवाकाद्याभिरिति वा।४। अध्यायर्षेपाद्याभिरिति माण्डूकेय ।५। अथ ह स्माऽऽह कौषीतकि ।६। "अग्निमीले पुरोहितमिति" एका ।७। कुषुम्भकतदब्रवीत् आवदस्त्व शकुने भद्रमा वद, गृणाना जमदग्निना, धामन्ते विश्व भुवनमधि श्रित, गन्ता नो यज्ञ यज्ञिया सुशमि यो न स्वो अरण , प्रति चक्ष्व वि चक्ष्व, आऽग्ने याहि मरुत्सखा, यत्त राजञ्छत हविरति"। द्वृचा ।८। तच्छंयोग्वृणीमह इति एका ।९। हुतशेषाद्दवि प्राश्नन्ति दधिक्राव्णो अकारिषमिति एतया ।१०। आचम्योपविश्य ।११। महाव्याहृती सावित्री वेदादिप्रभृतीनि स्वस्त्ययनानि च जपित्वा ।१२। आचार्य स्वस्तिवाच्य ।१३। तदपि भवति ।१४। अयातयामता पूजा साग्त्व छन्दसा तथा। इच्छन्त ऋषयोऽपश्यन्नुपाकम तपोबलात् ।१५। तस्मात् षट्कर्म नित्योनाऽऽत्मनो मन्त्रसिद्धये। उपाकर्तव्यमित्याहु कर्मणा सिद्धिमिच्छता ।१६। उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्र क्षपण भवेत्। अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्त्यासु च रात्रिषु ।।१७।।

इसके अनन्तर उपकरण बतलाया जाता है ।१। ओषधियो के प्रादुर्भाव मे हस्त नक्षत्र अथवा श्रवण से करे ।२। अक्षत-सत्तू और धानो का जो दधि और घृत से मिले हुए हो प्रत्येक ऋचा मे वेद स हवन करना चाहिए-ऐसा कुछ मनीषियो का मत हैं ।३। अथवा सूक्त–अनुवादि से करे ।४। माण्डूकेय कहता है—अध्यायर्षेयाद्यो

से करे ।५। इसके उपरान्त कौषीतकि ने कहा था ।६। अग्निमीले पुरोहितमिति—यह एक है ।७। कुषुम्भकतदब्रवीत आवदस्त्व शकुने भद्रमा वह गृणाना जमदग्निना धामन्ते विश्व भुवनमधि श्रित गन्ता नो यज्ञ यज्ञिया सुशमि, यो न स्वो अरण, प्रतिचक्ष्व विचक्ष्व, आग्ने याहि मरुत्सखा यत्ते राजज् छृत हविरिति द्वृचा ।८। तच्छयोए वृणीमहे इति एका ।९। दधि क्राव्णो अकारिषम् इति इस ऋचा से हुत के शेष हवि का प्राशन करते है ।१०। आचमन करके और उपविष्ट होवे ।११। महा व्याहृती—सावित्री—वेदादि प्रभृतियो को और स्वस्त्ययनो को जप करे ।१२। आचाय को स्वस्ति वाचन करना चाहिए । वह भी होता है । ।१३-१४। अयात यामता पूजा को तथा छन्दो के सारत्व की इच्छा रखते हुए ऋषिगण तप के बल से उपकर्म को देखते थे ।१५। इस कारण से अपने मन्त्र की सिद्धि के लिये नित्य ही षट् कर्म और कर्मों की सिद्धि को चाहने वाले के द्वारा उपाकम्म करना चाहिए—ऐसा कहते है ।१६। उपाकम मे और उत्सर्ग मे तीन रात्रि तक क्षपण हो जाना चाहिए । अष्टकाओ मे और ऋत्वन्त्या रात्रियो मे एक अहोरात्र तक होवे ।१७।

।। अथ उत्सर्गकर्म ।।

माघशुक्लप्रतिपदि ।१। अपराजिताया दिशि ।२। बह्वौषधिके देशे ।३। उदु त्य जातवेदसम् चित्र देवानाम् नमो मित्रस्य सूर्यो नो दिवस्पात्विति सौर्याणि जपित्वा ।४। शास इत्था महाँ असीति प्रदक्षण प्रत्यृच प्रतिदिश प्रत्यस्य लोष्टान् ।५। ऋषीश्छन्दासि देवता श्रद्धामेधे च तर्पयित्वा प्रतिपुरुष च पितृन् ।६। छन्दासि विश्रामयन्त्य्-र्धसप्तमान्मासान् ।७। अधषष्ठान् वा ।८। अधीयीरश्चेद-होरात्रमुपरम्य प्राध्ययनम् ।९।

उत्सर्ग कर्म माघ शुक्ला प्रतिपदा मे करे ।१। अपराजित दिशा मे करे ।२। बहुत ओषधियो वाले देश मे करना चाहिए ।३। उदुत्य जात वेदसम्, चित्र देवानाम्, नमोमित्रस्य, सूर्य्यो नो दिवस्पत्विति' इन सौर्य्य मन्त्रो को जपे ।४। 'शास इत्था महा असीति' इस मन्त्र से प्रत्येक ऋचा-प्रत्येक दिशा और प्रत्येक इसके लोष्टो के प्रदक्षिण करे ।५। ऋषियो को छन्दो को–देवताओ को और श्रद्धा–मेधा को तृप्त करके और प्रति पुरुष तथा पितृगण को तृप्त करे ।६। छन्दो को अर्द्ध सप्तम मासो तक विश्राम देते है ।७। अथवा अर्थषष्ठ मासो को विश्रान्त करते है ।८। यदि अहोरात्र तक अध्ययन करे तो प्राध्ययन को उपराम देना चाहिए ।९।

॥ अथ उपरमकर्म ॥

अथोपरमम् ।१। उत्पातेष्वाकालम् ।२। अन्येष्वद्भुतेषु च ।३। विद्युत्स्तनयित्नु-वर्षासु त्रिसध्यम् ।४। एकाह श्राद्धभोजने ।५। दशाहमघसूतकेषु च ।६। चतुर्दश्यमावास्ययोरष्टकासु च ।७। वासरेषु नभ्येषु च ।८। आचार्ये चोपरते दशाहम् ।९। श्रुत्वा त्रिरात्रम् ।१०। तत्पूर्वाणा च ।११। प्रतिग्रहे श्राद्धवत् ।१२। सब्रह्मचारिणि ।१३। प्रेतमनु गत्वा ।१४। पितृभ्यश्च निधाय पिण्डान् ।१५। निशाम् ।१६। सध्याम् ।१७। पर्वसु ।१८। अस्तमिते ।१९। शूद्रसन्निकर्षे ।२०। सामशब्दे ।२१। श्मशाने ।२२। ग्रामारण्ये ।२३। अन्तःशवे ग्रामे ।२४। अदर्शनीयात् ।२५। अश्रवणीयात् ।२६। अनिष्टघ्राणे ।२७। अतिवाते ।२८। अभ्रे प्रावर्षिणि ।२९। रथ्यायाम् ।३०।वीणाशब्दे च।३१। रथस्थ ।३२। शूद्रश्चकुनि ।३३। वृक्षारोहणे ।३४। अवटारोहणे ।३५। अप्सु ।३६। क्रन्दति ।३७। आर्त्याम् ।३८। नग्ने ।३९। उच्छिष्ट ।४०। सक्रमे ।४१। केशश्मश्रूणि वापन आ स्नानात् ।४२। उत्पादने ।४३। स्नाने ।४४। सवेशने ।४५। अभ्यञ्जने ।४६। प्रेतस्पर्शिनि सूतिकोदक्य-

योश्च शूद्रवत् ।४७। अपिहितपाणि ।४८। सेनायाम् ।४६।
अभुञ्जाने ब्राह्मणे गोषु च ।५०। अतिक्रान्तेष्वधीयीरन्
।५१। एतेषा यदि किञ्चिदकामोत्पातो भवेत्प्राणानाय-
म्याऽऽदित्यमोक्षित्वाऽधीयीत ।५२। विद्युत्स्तनयित्नुवर्ष
वर्जकल्पे वर्षवदर्धषष्ठेषु ।५३। तदप्येतत् ।५४।
अन्नमापो मूलफल यच्चान्यच्छाद्धिक भवेत् ।
प्रतिगृह्याप्यनध्याय पाण्यास्यो ब्राह्मण स्मृत इति ।।५५।।

इसके अनन्तर उपरम के विषय मे बतलाया जाता है ।१। उत्पात धूलि वर्षण आदि जितने समय तक रहें तब तक अनध्याय होता है अर्थात् जिस समय से आरम्भ करे उस समय को अपरेद्यु कहते हैं ।२। अन्य अद्भुत कर्मों मे भी अनध्याय होता है ।३। वियुत्स्तनयित्नु वर्षाओ मे तीन सन्ध्याओ तक एक अहोरात्र तक अनध्याय होता है ।४। श्राद्ध के भोजन करने पर एक दिन का होता है ।५। दशाह मे और अध सूतको में मे भी भोजन करने पर एकाह अनध्याय होता है ।६। चतुदशी मे—अमाव-स्या मे और अष्टकाओ मे भी अनध्याय होता है मध्य मे रहने वाले दिनो मे भी होता है ।७-८। आचार्य के उपरत हो जाने पर दश दिन पर्यन्त अनध्याय होना चाहिए ।६। श्रवण करके तीन रात्रि तक अनध्याय मानना चाहिए ।१०। उनके पूर्वो का भी तीन रात्रितक ही होता है।११। प्रतिग्रह लेने पर भी श्राद्ध के ही समान ही अनध्याय मानना चाहिए ।१२। साथी ब्रह्मचारी के उपरत होने पर भी इसी भाँति अनध्याय होना चाहिए ।१३। किसी पुत्र के पीछे जाने पर भी उस दिन अनध्याय होता है ।१४। अपने पितृगणो के लिये पिण्डो के देने पर भी अनध्याय मानना चाहिए ।१५। निशाकाल मे—सन्ध्या के काल मे—पर्वों मे—सूर्य के अस्तमन वेला मे—किसी शूद्र के सन्निकर्ष हो जाने पर अनध्याय होना है अर्थात् उपर्युक्त समयो मे स्वाध्याय नही करना चाहिए ।१६ २०। साम शब्द मे—श्मशान मे—ग्राम के अरण्य मे—जिस ग्राम मे मध्य मे शव हो उस समय मे अनध्याय होना चाहिए ।२१-२४। जो श्रवण करने के और जो

दशन करने के अयोग्य हो उनके देखने और श्रवण करने से भी अनध्याय होना चाहिए ।२५-२६। जो अभीष्ट न हो उसके घ्राण कर लेने पर भी अनध्याय होता है ।२७। अत्यधिक वात के वहन करने पर भी स्वाध्याय का अभाव होता है ।२८। अभ्र के प्रावर्षित होने पर अनध्याय होता है ।२९। रथ्या मे—वीणा शब्द के होने पर भी स्वाध्याय नही होना चाहिए ।३०-३१। रथ मे स्थित होकर स्वाध्याय न करे ।३२। शूद्र के ही समान कुत्ते के सन्निकर्ष होने पर अनध्याय मानना चाहिए ।३३। वृक्ष के आरोहण मे—अवरारोहण मे –जल के मध्य मे क्रन्दन करने पर—आर्त्ति (पीडा) मे—नग्न होने पर–उच्छिष्ट हो उस समय मे और सक्राम काल मे स्वाध्याय नही होता है ।३४-४१। अपने केशो और श्मश्रु के वपन पर जब तक स्नान न करे अनध्याय मानना चाहिए ।४२। उत्पादन मे—स्नान के समय मे–सवेशन मे–अभ्यञ्जन मे अनध्याय होता है ।४३-४६।। प्रेत के स्पर्श करने पर और सूतिका तथा उदकी (रजस्वला) के स्पर्श होने पर शूद्र के ही समान अनध्याय होता है ।४७। अविहितपाणि—सेना मे और ब्राह्मणो तथा गौओ के भुज्जान न होने पर भी अनध्याय होता है ।४८-५०। अतिक्रान्त हो जाने पर अध्ययन करना चाहिए । ।५१। इनका यदि कुछ अकामोत्पात हो जावे तो प्राणायाम करके सूर्य देवका दर्शन करके अध्ययन करना चाहिए ।५२। कल्प के अध्ययन करने मे तथा सूत्र के अध्ययन मे उपा कमकरण से ऊपर वर्षवत् सार्ध पञ्चपासो मे अनध्याय होता है परन्नु विद्युत्स्तनयित्वु वर्ष से रहित ही होना चाहिए । वह भी यही है ।५३ ५४। अन्न-जल्प–मूल फल और जो अन्य श्राद्धा आदि होवे—इनका प्रतिग्रहण करके भी अनध्याय होता है ब्राह्मण पाण्यास्य कहा गया है ।५५।

।। उपरमकर्म (२) ।।

न्यायोपेतेभ्यश्च वर्तयेत्।१।प्राङ्वोदङ्वाऽऽसीन आचार्यो दक्षिणत उदङ्मुख इतर, ।२।द्वौ वा ।३। भूयासस्तु यथा-

वकाशम् ।४। नोऽच्छ्रितासनोपविष्टो गुरूसमीपे ।५। नैकासनस्थ ।६। न प्रसारितपाद ।७। न बाहुभ्या जानू-पसगृह्य ।८। नोपाश्रितशरीर ।९। नोपस्थकृत्तपाद ।१०। न पाद कुठारिका कृत्वा ।११। अधीहि भो३ इति उक्त्वा-ऽऽचार्य ॐङ्कार प्रचोदयेत् ।१२। ॐइतीतर प्रतिपद्यते ।१३। तत्सन्ततमधीयीत ।१४। अधीत्योपसगृह्य ।१५। विरता स्म भो३ इति उक्त्वा यथार्थम् ।१६। विसृष्ट विरामस्तावदिति एके ।१७। नाऽधीयतामन्तरा गच्छेत् ।१८। नाऽऽत्मान विपरिहरेदधीयान ।१९। यदि चेद्दोष स्यात्त्रिरात्रमुपोष्याऽहोरात्र वा सावित्रीमभ्यावर्तयेद्याव-च्छक्नुयाद् ब्राह्मणेभ्य किञ्चिद्यादहोरात्रमुमरम्य प्राध्य यनम् ।।२०।।

जो न्याय से उपेत हो उनके साथ ही व्यवहार करना चाहिए ।१। आचार्य पूर्व की अथवा उत्तर की ओर मुख वाला होकर आसीन होवे। दक्षिण की ओर अथवा उत्तर की ओर मुख वाला होकर इतर अर्थात् शिष्य आसीन होना चाहिए ।२। अथवा दोनो ही ।३। अधिकतर तो अवकाश के अनुसार ही आसीन होते हैं ।४। अपने गुरु के समीप मे उच्छ्रित (ऊचे) आसन पर कभी भी उपविष्ट नही होना चाहिए ।५। गुरु के बैठने वाले एक ही आसन पर भी कभी उपविष्ठ नही होना चाहिए ।६। शिष्य (ब्रह्मचारी) को कभी आसन पर पैरो को फैलाकर नही बैठना चाहिए ।७। अपनी बाहुओ से घुटनो का उपसग्रह करके भी नही बैठना चाहिए ।८। उप श्रित शरीर वाला अर्थात् किसी का सहारा को देने वाला होकर गुरु के समीप मे नही बैठना चाहिए ।९। उपस्थ पर चरण रख कर भी नही आसीन होवे। १०।पैर पर कुठारिका सो करके भी न बैठे ।११। "अधीहि भो३"—अर्थात् अध्ययन करो—यह कह कर आचार्य ॐकार को प्रेरित करे ।१२। इतर अर्थात् शिष्य "ॐ इति"—इसका प्रतिपादन करे ।१३। ऐसा होते हुए अध्ययन करना चाहिए ।१४।

अध्ययन करके उपसग्रह करे—"विरता स्मभो३" इति—यह यथार्थ मे कहकर ही विराम ग्रहण करना चाहिए ।१५-१६। "विसृष्ट विरमस्तावत्-इति" यह कहकर विराम ग्रहण करे—ऐसा कतिपय विद्वानो का कथन है ।१७। अध्ययन करने वाले के बीच से कभी गमन न करे ।१८। अध्ययन करता हुआ शिष्य अपने आपको विपरिह्वत न करे अर्थात् शिष्य के द्वारा अध्ययन को अन्तरित नही करना चाहिए ।१९। यदि आचार्य और शिष्य के बीच मे किसी समय मे मार्जार आदि के गमन का दोष हो जावे तो तीन रात्रि तक उपवास करके अथवा एक अहोरात्र सावित्री का अभ्यावर्त्तन करे और जितनी भी शक्ति होवे ब्राह्मणो को कुछ खिलावे फिर एक अहोरात्र पयन्त उपराम ग्रहण करके पुन प्राध्ययन करे ॥२०॥

॥[२] अथ तर्पणम् ॥

स्नात ।१। उपस्पर्शनकालेऽवगाह्य देवतास्तर्पयति ।२। अग्निस्तृप्यतु वायुस्तृप्यतु सूर्यस्तृप्यतु विष्णुस्तृप्यतु प्रजापतिस्तृप्यतु विरूपाक्षस्तृप्यतु सहस्राक्षस्तृप्यतु सोम ब्रह्मा वेदा देवा ऋषय. सर्वाणि च छन्दासि ॐकार वषट्कार महाव्याहृतय सावित्री यज्ञा' द्यावापृथिवी नक्षत्राणि अन्तरिक्षम् अहोरात्राणि सख्या सध्या समुद्रा नद्य गिरय. क्षेत्रौषधिवनस्पतिगन्धर्वाप्सरस नागा. वयासि सिद्धा साध्या विप्रा. यक्षा रक्षासि भूतान्येवमन्तानितृप्यन्तु श्रुति तर्पयामि धृति तर्पयामि रति तर्पयामि गति तर्पयामि मति तर्पयामि श्रद्धामेधे धारणा च गोब्राह्मण स्थावरजङ्गमानि सवभूतानि तृप्यन्त्विति यज्ञोपवीती ।३।

———

सर्व प्रथम स्नान करे ॥१॥ उपस्पर्शन काल मे अवगाहन करके देवो का तर्पण यज्ञोपवीती करता है ॥२॥ तर्पण निम्न क्रम से करना चाहिए—"अग्नि तृप्त होवे–वायु तृप्त होवे–सूर्य तृप्त होवे–विष्णु तृप्त हो–प्रजापति तृप्त होवे–विरुपाक्ष प्रभु तृप्त होवे–सहस्राक्ष तृप्त हो–इसी प्रकार से सोम–ब्रह्मा–वेद–देव–ऋषिगण और समस्त छन्द–ॐकार–वषट्कार–महाव्याहृतिया–सावित्री–यज्ञ–द्यावा पृथिवी–नक्षत्र–अन्तरिक्ष–अहोरात्र–सख्या–सन्ध्या समुद्र–नदियाँ–पर्वत–क्षेत्र, औषधियाँ वनस्पतियाँ, गन्धर्व, अप्सराऐ, नाग, पक्षी, सिद्ध, साध्य–विप्र, यक्ष, राक्षस, भूत और इसी प्रकार स अन्य सब तृप्त होवे। मै श्रुति को तृप्त करता हू, स्मृति को, धृति को, रति को, गति को, मति को श्रद्धा को, मेधा को, धारणा को, तृप्त करता हू। गौ और ब्राह्मणो को, तृप्त करता हू, स्थावर और जङ्गमो को समस्त भूतो को तृप्त करता हूँ और ये सभी तृप्त होवे, इति।३।

॥ अथ तर्पणम् (२) ॥

अथ प्राचीनावीती ।१। पित्र्या दिशमीक्षमाण ।२। शतर्चिन माध्यमा' गृत्समद विश्वामित्र जमदग्नि वामदेव् अत्रि भारद्वाज वसिष्ठ, प्रगाथा पावमाना क्षुद्रसूक्तमहासूक्ता सुमन्तु जैमिनि वैशम्पायन पैलसूत्र भाष्य गार्ग्य-बिभ्रु-बाभ्रव्य-मण्डु-माण्डव्या गार्गी वाचक्नवी वडवा प्रातिथेयी सुलभा मैत्रेयीकहोल कौषीतकि महाकौषीतकि सुयज्ञ शाङ्खायनम् आश्वालयनम् ऐतरेयम् महैतरेयम् भारद्वाजम् जातूकर्ण्यम्,पैंग्यम् महापैङ्ग्यम् बाष्कलम् गार्ग्यम्'शाकल्यम् माडूकेयम् महादमत्रम्औदवाहिम् महौदवाहिम् शौनकिम् शाकपूणिम् गौतमिम् ये चाऽन्ये आचार्यास्ते सर्वे तृप्यत्विति ।३। प्रतिपुरुषपितर ।४।पितृवशस्तृप्यतु।५। मातृवशस्तृप्यतु ।६।

इससे अनन्तर प्राचीनावीती हो जावे ।१। पित्र्य अर्थात् पितरों की दिशा की ओर देखता हुआ होवे ।२। शतर्चिन, माध्यमा, गृत्समद, विश्वामित्र, जमदग्नि, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, प्रगाथा, पावमाना, क्षुद्रसूक्त, महासूक्त, सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल,सूत्र, भाष्य,गार्ग्य, बभ्रु,वाभ्रव्य, मण्डु, माण्डव्य, गार्गी, वाचक्नवी, वडवा, प्रातिथयी, सुलभा, मैत्रेयी, कहोल, कौषीतिकी, महाकौषीतकि, सुयज्ञ, शाखयन, आश्वालयन, ऐतरेय, महैतरेय, भारद्वाज, जातूकर्ण्य, पैङ्ग्य, महापैङ्ग्य, वाष्कल, गार्ग्य, शाकल्य, माण्डूकेय, महादमत्र, औदवाहि, महौदवाहि, सौयामि शौनकि, शाकपूणि, गौतमि, और जो अन्य आचार्य है वे सब तृप्त होवें ।३। प्रति पुरुष पितर होवें ।४। पितृगण का वंश तृप्त होवे ।५। मातृ वंश तृप्त होवे ।६।

॥ अथ स्नातकधर्मा ॥

न नग्ना स्त्रियमीक्षेताऽन्यत्र मेथुनाद् ।१। नाऽऽदित्य सधिवेलयो ।२। अनाप्तम् ।३। अकायकारिणम् । । प्रेत-स्पर्शिनम् ।५। सूतिकोदक्याभ्या न सवदेत्।६।एतैश्च ।७। उद्धृततेजासि न भुञ्जीत ।८। न यातयामे कार्यं कुर्यात् ।९। न सह भुञ्जीत ।१०। न शेषम्।११। पितृदेवतातिथि-भृत्याना शेष भुञ्जीत ।१२। उच्छशिलमयाचितप्रतिग्रह-साधुभ्यो याचितो वा याजन वृत्ति ।१३। पूर्वं पूर्व गरीय ।१४। असंसिध्यमानाया वैश्यवृत्तिर्वा ।१५। अप्रमत्त-पितृदैवतकार्येषु ।१६। ऋतौ स्वदारगामी ।१७। न दिवा शयीत ।१८। न पूर्वापररात्रौ ।१९। न भूमावनन्तर्हिताया-मासीत ।२०। नित्योदकी ।२१। यज्ञोपवीती ।२२। न विग्-हृयेदाचार्य्यम् ।२३। अन्यत्र नियोगात् ।२४। अनुज्ञातो वा ।२५।

स्नातक जो हो उसको चाहिए कि मैथुन के अतिरिक्त स्त्री को कभी भी दूसरे समय मे नग्न नही देखना चाहिए ।१। जब सन्धि का

समय हो अर्थात् उदय काल और सूर्य का अस्तमन काल हो तो उस समय मे आदित्य को नही देखना चाहिए ।२। जो अनाप्त हो, अकायकारी हो, प्रेत का स्पर्श करने वाला हो तथा सूतिका और उदकी से भाषण नही करना चाहिए ।३-६। और इनके साथ तथा उद्धृत तेजो को न खावे ।७ ८। यातयामो के साथ कार्य नही करना चाहिए ।६। इनके साथ भोजन भी न करे ।१०। जो शेष रहे उसे भी न खावे ।११। पितृगण, देवता, अतिथि और भृत्यो को पहिले भोजन करके जो शेष रहे उसे ही खाना चाहिए ।१२। एक स्नातक की वृत्ति उज्छशिला, प्रतिग्रह का ग्रहण न करते हुए साधु पुरुषो से याचित हो अथवा याजन वृत्ति होनी चाहिए ।१३। इन बतायी हुई वृत्तियो मे जो-जो पूर्व मे है वही वृत्ति विशेष गौरवपूण होती है ।१४। यदि वृत्ति ससिध्य माना न हो तो उस अवसर मे विकल्प मे वैश्यो की वृत्ति को भी ग्रहण कर सकता है ।१५। एक स्नातक को चाहिए कि पितृगण, देवत के कार्यो मे कभी प्रमत्त नही होना चाहिए ।१६। ऋतु काल मे ही अपनी दारा के साथ अभिगमन करना चाहिए।१७।दिन के समय मे कभी शयन नही करे। ।१८। पूर्व रात्रि मे और पिछली रात मे भी सोना नही चाहिए ।१६। जो किसी आस्तरण से अन्तर्हित न हो ऐसी भूमि पर कभी नही बैठना चाहिए ।२०। नित्य ही उदकी होवे ।२१। नित्य यज्ञोपवीत के धारण करने वाला होना चाहिए ।२२। अपने आचार्य से कभी विरहित नही होना चाहिए ।२३। नियोग के अन्य मे ऐसा न करे। अथवा अनुज्ञा प्राप्त करने वाला होवे तब करे ।२४।

॥ अथ स्नातकधर्म ॥

अहरहराचार्याया ऽभिवादयेत ।१। गुरुभ्यश्च ।२। स-समेत्य श्रोत्रियस्य।३।प्रोष्य प्रत्येत्याऽश्रोत्रियस्य ।४।"असा-वह भो३,, इत्यात्मनो नामाऽऽदिश्य व्यत्यस्य पाणी ।५। असौ इत्यस्य पाणी सगृह्याऽऽशिषमाशास्ते ।६। नाऽवृतो

यज्ञ गच्छेत् ।७। अधर्माच्च जुगुप्सेत ।८। न जनसमवाय गच्छेत् ।९। नोपर्यु द्दिशेत्समेत्य ।१०। अनाक्रोशकोऽपिशुन कुलकुलो नेतिहेति स्यात् ।११। नैकश्चरेत् ।१२। न नग्न ।१३। नाऽपिहितपाणि ।१४। देवायतनानि प्रदक्षिणम् ।१५। न धावेत् ।१६। न निष्ठीवेत् ।१७। न कण्डूयेत ।१८। मूत्रपुरीषे नाऽवेक्षेत ।१९। अवगुण्ठयाऽऽसीत ।२०। नाऽन्तर्हितायाम् ।२१। यद्येकवस्त्रो यज्ञोपवीत कर्णे धृत्वा ।२२। नाऽऽदित्यमभिमुख ।२३। न जघनेन ।२४। अहरुदङ्-मुखो नक्त दक्षिणामुख ।२५। न चाऽप्सु श्लेष्म न च समीपे ।२६। न वृक्षमारोहेत् ।२७। न कूपमवेक्षेत ।२८। न ध्रुवन गच्छेत् ।२९। नत्वेव तु श्मशानम् ।३०। सवस्त्रोऽहरहराप्लवेत् ।३१। आप्लुत्याऽभ्युदकोऽन्यद्वस्त्रमाच्छादयेत् ।।३२।।

नित्य प्रति अपने आचार्य्यों को अभिवादन करना चाहिए ।१। अपने जो दीक्षा गुरुवर्ग हो उनके लिये भी अभिवादन करे ।२। भली भाँति आकर श्रोत्रिय को अभिवादन करे ।३। प्रवास मे रहकर वापिस आकर जो अश्रोत्रिय हो उसको भी करे ।४। अभिवादन करने का विधान यह है कि जिसको करे उसके आगे दोनो हाथ जोडकर—भो ! मैं यह हू—इस तरह से अपना नाम आदिष्ट करके ही अभिवादन करना चाहिए ।५। असौ इसका प्राणी हाथो को जोडकर आशीष की आशा करता है ।६। अवृत यज्ञ मे नही गमन करे ।७। और अधर्म की जुगुप्सा करे, अर्थात् अधर्म से दूर ही रहे ।८। जहाँ पर बहुत से जनो का समवाय हो वहाँ पर गमन न करे ।९। समेत हो कर ऊपर मे उपदेश नही करना चाहिए ।१०। निन्दा न करने वाला अपिशुन होवे एव घर घर मे गमन करने वाला न होवे अथवा सकुल पुत्र कलत्रादि सहित या कुल नीडाश्रय जर्जरी भूत कुल मे वृक्ष मे गमन न करे। इस प्रकार से इस पुरुष या स्त्री की श्रेष्ठता है इसका व्यापक नही

होना चाहिए ।११। अकेला कभी विचरण न करे ।१२। नग्न होकर कभी न रहे ।१३। अपिहित पाणि न रहे ।१४। देवताओ के आयतनो को प्रदक्षिण करे ।१५। दौड न लगावे ।१६। भूकना नही चाहिए ।१७। खुजावे नही।१८।मूत्र और मल को न देखे।१९।अवगुण्ठन करके रहे ।२०। अन्तर्हित मे न रहे । अर्थात् मल मूत्र के त्याग करने के समय मे अवगुण्ठन करे और इनका उत्सर्ग अन्तर्हित मे न करे यदि एक वस्त्र वाला हो तो यज्ञोपवीत को कान पर रख कर ही मलादि का उत्सग करना चाहिए ।२१-२२। आदित्य देव के सम्मुख मे त्याग न करना चाहिए। जघन के द्वारा न करे ।२३-२४। दिनमे उत्तर की ओर मुख-करके और रात्रि मे दक्षिण मुख होकर ही मलादि का त्याग करना चाहिए ।२५। जल मे और समीप मे कफ न डाले । वृक्ष पर आरोहण नही करना चाहिए । कूए को झुक कर न देखे । ध्रुवन मे गमन न करे ।२६-२९। श्मशान मे गमन नही करे । यदि जावे भी तो वस्त्र सहित प्रतिदिन स्नान करना चाहिए ।३०-३१। आप्लुत होकर अन्युदक हो अ[illegible] वस्त्र धारण करे ।३२।

।। अथ कृषिकर्म ।।

रोहिण्या कृषिकर्माणि कारयेत् ।१। पुरस्तात्कर्मणा प्राच्या क्षेत्रमर्यादाया द्यावापृथिवोबलि हरेत् ।२। दयवा -पृथिवीययर्चा नमो द्यावापृथिवीभ्यामिति चोपस्थानम् ।३। प्रथमप्रयोगे सीरस्य ब्राह्मण सीरस्पृशेत् शुन न फाला इति एतामनुब्रुवन् ।४। क्षेत्रस्य पतिनेति प्रक्षिण प्रत्यृच प्रतिदिशमुपस्थानम् ।५।

रोहिणी मे कृषि के कर्म्मो को करना चाहिए । ।१। कर्म्मो के पहिले अर्थात् कृषि कर्मों के आरम्भ करने के पूर्व मे पूर्व दिशा मे क्षेत्र की मर्य्यादा मे द्यावा पृथिवी की बलि का हरण करे ।२। द्यावा पृथिवी की अर्चा करे और नमो द्यावा पृथिवीभ्याम्—इस मन्त्र से उपस्थान करना चाहिए ।३। प्रथम प्रयोग मे अर्थात् सीर(हल)के प्रथम

प्रयोग मे ब्राह्मण सीर का स्पर्श करे और शुन न फाला इति इसको बोलते हुए करे।४। क्षेत्रस्य पति नेति इस के द्वारा प्रत्येक ऋचा के प्रदक्षिण और प्रत्येक दिशा मे उपस्थान करे।५।

।। अथ प्लवकर्म ।।

उदक तरिष्यन् स्वस्त्ययन करोति ।१। उदकाञ्जलीस्त्रीनप्सु जुहोति। समुद्राय वैणवे नम वरुथाय धर्मपतये नम नम सर्वाभ्यो नदीभ्य ।२। सर्वासा पित्रे विश्वकमर्णे दत्त हविजु षतामिति जपित्व ।३। प्रतीप स्रवन्तीभ्य उन्नेय स्थावराभ्य ।४। तरँश्चेद्भय शङ्केद्वाशिष्ठ सूक्त जपेत् समुद्रज्येष्ठा इति एतत्प्लम् ।५।

उदक मे तरते हुए स्वस्त्ययन करता है।१। तीन जल की अञ्जलियो का जल मे हवन करता है। समुद्राय वैष्णवे नम, वरुणाय धर्म पतये नम, नम सर्वाभ्यो नदीभ्य ।२। सर्वासा पित्रे विश्व कर्मणे दत्त हविर्जुषताम् इति इसका जाप करे।३। स्रवण करती हुई स्थावराओ से प्रतीप को उन्नयन करे ।४। यदि तैरते हुए भय हो तो वासिष्ठ सूक्त का जाप करना चाहिए। समुद्र ज्येष्ठा इति यह प्लव है ।५।

।। अथ श्रवण कर्म ।।

श्रवण श्रविष्ठीयाया पौर्णमास्यामक्षतसक्तूना स्थालीपाकस्य वा जुहोति ।१। विष्णवे स्वाह श्रवणाय स्वाहा श्रावण्यै पौर्णमास्ते स्वाहा वर्षाभ्य स्वाहेति ।२। गृह्याग्नि बाह्यत उपसमाधाय लाजानक्षतसक्तूँश्च सर्पिषा सन्निनीय जुहोति ।३। दिव्याना सर्पाणामधिपतये स्वाहा, दिव्येभ्य हर्पेभ्य स्वाहेति ।४। उत्तरेणाऽग्नि प्रागग्रेषु नवेषु कुशेषूदकुम्भ नव प्रतिष्ठाप्य ।५। दिव्याना सर्पाणामधिपतिरव नेनिक्ता दिव्या: सर्पा अव नेनिजतामिति अपो

निनयति ।६। दिव्यानां सर्पाणामधिपति प्र लिखताम् सर्पा प्र लिखन्तामिति फणेन चेष्टयति ।७। दिव्याना सर्पाणामधिपति प्र लिम्पताम् दिव्या सर्पा प्रलिम्पन्तामिति वर्णकस्य मात्रा निनयति ।८। दिव्याना सर्पाणामधिपतिरा बध्नीताम् दिव्या सर्पा आ बध्नन्तामिति सुमनस उपहरति।९।दिव्याना सर्पाणामधिपतरा च्छादयताम् दिव्याना सर्पा आच्छादयन्तामिति सूत्रतन्तुमुपहरति ।१०।दिव्याना सर्पाणामधिपतिच्छादयताम् दिव्या सर्पा आऽञ्जतामिति कुशतरुणेनोपघातमा नस्य करोति ।११। दिव्याना सर्पाणासधिपतिरीक्षताम् दिव्या सर्पाईक्षन्तामिति आदर्शे-नेक्षयति ।१२। दिव्याना सर्पाणामधिपात एषते बलि दिव्या सर्पा एष वो बलिरिति बलिमुपहरति ।१३। एवम् आन्तरिक्षाणाम् ।१४। दिश्यानाम् ।१५। पार्थिवानामिति ।१६। त्रिस्त्रिरुच्चैस्तरामुच्चैस्तरापूर्वम् ।१७। नीचैस्तरा न्नीचैस्तरामुत्तम् ।१८। एवमहरहरक्षतसक्तूना दर्वेणोपघातमा प्रत्यवरोहणाद्रात्रौ वाग्यत सोदक बलि हरेत् ।१९। वाग्यता चैमुपसादयेत् ।२०। य उपक्रम सउत्सग ।२१। सुत्रामाणमिति शय्यामारोहेत् ।।२२।।

श्रवण को श्रविष्ठीय पौर्णमासी मे अक्षत सक्तुओ का अथवा स्थालीपाक का हवन करता है । ।१। विष्णवे स्वाहा, श्रवणाय स्वाहा, श्रावण्यै पौर्णमास्यै स्वाहा, वर्षाभ्य स्वाहा—इन मन्त्रो के द्वारा आहुतिया देवे ।२। गृह्य अग्नि को बाहिर से उपसमाधान करके लाजाओ को और अक्षत सक्तुओ को घृत के साथ सन्निनयन करके आहुतियाँ देता है ।३। दिव्यना सर्पाणामधि पतये स्वाहा, दिव्येभ्य सर्पेभ्य स्वाहा—ये मन्त्र आहुतियाँ देने के हैं ।४। उत्तर मे अग्नि को प्रागग्र नूतन कुशाओ मे नवीन उदकुम्भ को प्रतिष्ठापित करे ।५। फिर दिव्यानां सर्पाणामधिपतिरव नेनिक्ता दिव्या सर्पा अवने निज ताम् इति

इससे जलका निनयन करता है ।६। दिव्याना सर्पायामधिपति प्रलिखताम्, दिव्या सर्पा प्रलिखन्ना मिति फण के द्वारा चेष्टा करता है ।७। दिव्याना सर्पाणमधिपति प्रनिम्यताम्, दिव्या सर्पा प्रलिम्यन्ताम्—इति इससे वर्णक की मात्रा का निनयन करता है ।८। दिव्यानां सर्पाणामधिपति रावध्नीताम्, दिव्या सर्पा आवध्नन्ता इति इस मन्त्र के द्वारा सुमनस (पुष्प) का उपहार देता है ।९। दिव्याना सर्पाणामधिपति–राच्छादयताम्, दिव्या सर्पा आच्छादयन्ताम् इससे सूत्र के तन्तु का उपहार देता है ।१०। दिव्याना सर्पाणामधिपति राड्क्ताम्, दिव्या सर्पा आन्त्रताम्—इति इस मन्त्र से तरुण कुशा से अञ्जन का उपधात करता है। ।११। दिव्याना सर्पाधिपति रीक्षताम्, दिव्या सर्पा ईक्षन्ताम् इससे दर्पण के द्वारा ईक्षण करता है। ।१२। दिव्यानां सर्पाणामधिपति एषते बलि, दिव्या सर्पा एष वो बलिरति–इससे बलि का उपहरण करता है ।१३। इसी प्रकार से आन्तरिक्षो का—दिव्यो का—पार्थिवो का तीन-तीन उच्च और अधिक उच्च पूर्व मे करे ।१४-१६। नीचैस्तर-नीचैस्तर उत्तर मे करे ।१७-१८। इस प्रकार से दिन प्रति दिन अक्षत सक्तुओ का दर्भ से उपधात आप्रत्यवरोहण से रात्रि में वाग्यत होते हुए जल सहित बलि का आहरण करे ।१९। वाग्यता इसको उपसादित करे ।२०। जो उपक्रम है वह उत्सर्ग है ।२१। सुत्रामाणमिति—इससे शय्या पर आरोहण करे ।२२।

॥ अथ आश्वयुजीकर्म ॥

आश्वयुज्या पौर्णमास्यामैन्द्र पायस ।१। अश्विभ्या स्वाहा अश्वयुग्भ्या स्वाहा आश्वयुज्यै पौर्णमास्यै स्वाहा शरदे स्वाहा पशुपतये स्वाहा पिङ्गलाय स्वाहेति आज्यस्य हुत्वा ।२। अथ पृषातकस्य आ गावो अग्मन्निति एतेन सूक्तेन प्रत्यृच जुहुयात् ।३। मातृभिर्वत्सा ससृजन्ति ता रात्रीम् ।४। अथ ब्राह्मणभोजनम् ।५।

आश्विवयुजी पौर्णमासी मे इन्द्र से सम्बन्ध रखने वाला "ऐन्द्र पायस होता है ।१। निम्न लिखित मन्त्रो के द्वारा घृत का हवन करे, "आश्वि भ्या स्वाहा', "आश्वयुग्भ्या स्वाहा", आश्वयुज्यै पौणमास्यै स्वाहा" शरदे स्वाहा" "पाशुपतये स्वाहा", "पिङ्गलाय स्वाहा" ।२। इसके अनन्तर पृषातक के "आ गावो अग्मन्निति", इस सूक्त के द्वारा प्रत्येक ऋचा से हवन करना चाहिए ।३। उस रात्रि मे वत्सो का माताओ के साथ ससृजन कर देते है ।४। इसके उपरान्त ब्राह्मणो का भोजन होता है ।५।

॥ अथ आग्रहायणीकर्म ॥

आग्रहायण्या प्रत्यवरोहेत् ।१। रोहिण्या प्रोष्ठपदासु वा ।२। प्रात शमीपलाशमधूकेषीकापामार्गाणा शिरीषोदुम्ब-रकुशतरुणबदरीणा च पूर्ण मुष्टिमादाय सीतालोष्ठ च ।३। उदपात्रे ऽवधाय ।४। महाव्याहृती सावित्री चोद्रुत्य अप न शोशुचदधमिति एतेन सूक्तेन तस्मिन्निमज्जयनिम ज्जय प्रदक्षिण शरण्येभ्य पाप्मानमपहृत्य उत्तरतो निनयेत् ।५। मधुपर्को दक्षिणा ।६।

आग्रहायणी मे प्रत्यव रोहण करना चाहिए ।१। रोहिणी नक्षत्र मे अथवा प्रोष्ठ पदाओ मे करे ।२। प्रात काल में शमी (छौकरा वृक्ष), पलाश (ढाक), मधूक, इषीका, अपामार्ग और शिरीष (सिरस), उदुम्बर (गूलर), कुशतरुण, वदरियो की पूर्ण मुष्टि लेकर और सीता लोष्ठ को ग्रहण करे ।३। जल के पात्र मे अवधारण करे ।४। महाव्याहृतियाँ और सावित्री को उद्रुत करके "अप न शोशुच दधमिति" इस सूक्त से उसमे निमज्जन कर करके प्रदक्षिण शरण्यो के लिये पाप्मा को अपहृत करके उत्तर की ओर निनयन करना चाहिए ।५। मधुपर्क दक्षिणा है ।६।

॥ अथ सर्पबलिकर्म ॥

ग्रीष्मो हेमन्त उत वा वसन्त शरद् वर्षा सुकृतन्नो अस्तु ।
तेषामृतूना शतशारदानानिवात एषामभयेस्याम स्वाहा ॥

अप श्वेत पदा जहि पूर्वेण चाऽपरेण च ।
सप्त च वारुणीरिमा सर्वाश्च राजबान्धवैः स्वाहा ॥

श्वेताय वैदार्वाय स्वाहा विदर्वाय स्वाहा तक्षकाय वैशालेयाय स्वाहा विशालाय स्वाहेति आज्यस्य हुत्वा ।१। सुहेमन्त सुवसन्त सुग्रीष्म प्रति धीयताम् सुवर्षा सन्तु नो वर्षा शरद शम्भवन्तु न इति ।२। शन्नो मित्र इति पलाशशाखया विमृज्य ।३। समुद्रादूर्मिरिमि अभ्युक्ष्य ।४। स्योना पृथिवी भवेति स्रस्तरमास्तीर्य ।५। ज्येष्ठदक्षिणा पार्श्वैः संविशन्ति ।६। प्रति ब्रह्मन् प्रति तिष्ठामि क्षत्र इति दक्षिणैः ।७। प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोष्वित्ति सव्यैः ।८। प्रति पशुष प्रति तिष्ठामि पुष्ठाविति दक्षिणैः ।९। प्रति प्रजाया प्रति तिष्ठाम्यन्न इति सव्यैः ।१०। उदीर्ष्व जीव इति उत्थानम् ।११। स्रस्तरे ता रात्रीं शेरते ।१२। यथासुखमत ऊर्ध्वम् ॥१३॥

"ग्रीष्मो हेमन्त उतवा वसन्त शरद् वर्षा सुकृतन्नो अस्तु । तेषां ऋतूना शतशारदाना निवात एषामभये स्याम स्वाहा" अपश्वेत पदाजहि पूर्वेण चापरेण च सप्त च वारुणी हिमा सर्वाश्च राजवान्धवै स्वाहा" "श्वेताय वैदार्वाय स्वाहा विदर्वाय स्वाहा तक्षकाय वै शालेयाय स्वाहा, विशालाय स्वाहा, इति" इन मन्त्रो के द्वारा घृत का हवन करे ।१। "सुहेमन्त सुवसन्त सुग्रीष्म प्रतिधीयताम्, सुवर्षा सन्तु नो वर्षा, शरद शम्भयन्तु म इति" ।२। "शन्नो मित्र इति" पलाश की शाखा से इन मन्त्रो के द्वारा निमाजन करे ।३।"समुद्रादूर्मिरिति" इमसे अभ्युक्षण करे ।४। "स्योना पृथिवी भवेति", इस मन्त्र से स्रस्तर का आस्तरण करे ।५। ज्येष्ठ दक्षिणा पार्श्वों के साथ संवेश करती है ।६। "प्रति ब्रह्मन् प्रतितिष्ठामि क्षत्र इति" दक्षिणो से करे ।७। "प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोष्विति"—इससे सव्यो से करे ।८। "प्रतिपशुषु प्रतिति ष्ठामि पुष्पाविति" इससे दक्षिणो से करे ।९। प्रति प्रजाया प्रतितिष्ठाम्यन्न इति" इससे

सव्यो से करे ।१०। "उदीर्ध्व जीव इति"—इससे उत्थान करे ।११। उस रात्रि मे स्नस्तर पर शयन करते है ।१२। यथा सुख इसमे ऊर्ध्व करे ।१३।

॥ अथ चैत्रीकर्म ॥

चैत्र्या पौर्णमास्याम् ।१। कर्कन्धुपर्णानि मिथुनाना च यथोपषाद पिष्टस्य कृत्वा ।२। ऐन्द्राग्नस्तुण्डिल ।३। रौद्रा गोलका ।४। लोकतो नक्षत्राण्यन्वाकृतयश्च-लोकतो नक्षत्राण्यन्वाकृतयश्च ॥५॥

चैत्रमास की पौणमासी मे करना चाहिए ।१। ककन्धु के पर्णो को और मिथुनो का यथोपपाद प्रेषण करके ।२। ऐन्द्राग्न तुण्डिल करे ।३। रौद्र गोलक करे ।४। लोक से नक्षत्रो को और अन्वाकृतिवाला करे—लोक से नक्षत्रो को और अन्वाकृतिक करे ।५।

अथ पंचमोऽध्यायः (परिशिष्टम्)

॥ अथ समारोहणम् ॥

अथ प्रवत्स्यन्नात्मन्नरण्यो समिधि वाऽग्नि समारोहयति ।१। एहि मे प्राणान् रोहेति सकृत्सकृन्मन्त्रेण द्विर् द्विस्तूष्णीम् ।२। अय ते योनरिति वाऽरणी प्रतितपति ।३। समिध वा ।४। अनस्तमिते च मन्थनम् ।५। वैश्वदेवकाले च ।६। उपलिप्त उद्धतावोक्षिते लौकिकम ग्निमाहृत्य उपावरोहेति उपावरोहणम् ।७। अनुगतेऽग्नौ सवप्रायश्चित्ताहुती हुत्वा पाहि नो अग्न एधसे स्वाहा पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा

यज्ञ पाहि विभावसो स्वाहा सर्व पाहि शतक्रतो स्वाहेति ।८। व्रतहाना उपोष्याऽऽज्यस्य हुत्वा त्वमग्ने व्रतपा इति ।६।

इसके अनन्तर प्रवास मे रहता हुआ आत्मन्नरण्यो मे अथवा समिधा मे अग्नि का समारोहण करता है ।१। एहि मे प्राणान्तरो हेति इससे एक-एक वार मन्त्र के द्वारा और दो-दो बार तूष्णी भाव से करे ।२। अय ते योनि रिति इसमे अथवा अरणी प्रतितप्त करता है ।३। अथवा समिधा को करता है ।४। असनामित न होने पर मन्थन होता है ।५। और वैश्वदेव काल मे होता है ।६। उपलिप्त मे उद्धतावाक्षित मे लौकिक अग्नि को आहृत करके 'उपावरोहेति' इससे उपावरोहण करे ।७।अग्नि के अनुगत हा जाने पर सब प्रायश्चित्तो की आहुतियो का हवन करके 'पाहि नो अग्न एधसे स्वाहा, पाहि नो विश्व वेद से स्वाहा, यज्ञ पाहि विभावसो स्वाहा, सर्व पाहि शतक्रतो स्वाहा-इति' इन मन्त्रो से आहुतिया देनी चाहिए ।८। व्रत हान उपवास करके घृत का होम करे । 'त्वमग्ने व्रतपा' इस मन्त्र से आहुति देनी चाहिए ।६।

।। अथ उत्सर्ग ।।

अथ पुष्करिणीकूपतडागानाम् ।१। शुद्धपक्षे पुण्ये वा तिथौ ।२। पयसा यवमय चरु श्रपयित्वा ।३। त्व नो अग्न इति द्वाभ्याम् अव ते हेल इम मे वरुण उदुत्तम वरुण इमा धिय शिक्षमाणस्य ।४। गृह्योऽप-गृह्यो मयोभू आखरो निखरो नि सरो निकाम सपत्नदूषण इति वारुण्या दिक्प्रभृति प्रदक्षिण जुहु-यात् ।५। मध्ये पयसा जुहोति विश्वतश्चक्षु इद विष्णुरिति ।६। यत् किञ्चेदमिति मज्जयित्वा ।७। धेनुर्दक्षिणा वस्त्रयुग्मञ्च ।८। अतो ब्राह्मणभोजनम् ।६।

इसके अनन्तर पुष्करिणी-कूप और तडाग आदि जलाशयो का उत्सर्ग कर्म बतलाया जाता है । । इस उत्सग कर्म को शुक्ल पक्ष मे

अथवा किसी पुण्य तिथि मे करना चाहिए ।२। पय से यवो से परिपूर्ण चरु का हवन करे ।३। 'त्व नो अग्ने इति' इन दो मन्त्रो से 'अव ते हेत्व इम मे वरुण, उदुत्तम वरुण, इमा धिय शिक्षमाणस्य ' ।४। गृह्योऽय गृह्यो भयो भू आख तिखरो नि सरो निकाम सयत्न दूषण इति' इनसे वारुणी दिक् प्रभृति का प्रदक्षिण हवन करे ।५। 'विश्वतश्चक्षु ' इससे मध्य मे पय से होम करता है । 'इद विष्णुरिति ' ।६। 'यत् किञ्चेहा मिति' इनसे मज्जन करके ।७। धेनुकी दक्षिणा और दो वस्त्र देवे ।८। अत ब्राह्मण भोजन करावे ।९।

।। अथ आरामप्रतिष्ठा कर्म ।।

अथाऽऽरामेऽग्निमुपसमाधाय ।१। स्थालीपाक श्रपयित्वा ।२। विष्णवे स्वाहा, इन्द्राग्निभ्या स्वाहा, विश्वकर्म्मणे स्वाहेति, यान् वो नर इति प्रत्यृच जुहुयात् ।३।वनस्पते शतवल्श इति अभिमन्त्र्य ।४। हिरण्य दक्षिणा ।५।

इसके अनन्तर आराम मे अग्नि का उप समाधान करे ।१। स्थाली पाक का हवन करे ।२। 'विष्णवे स्वाहा, इन्द्राग्नीभ्या स्वाहा, विश्वकर्मणे स्वाहेति, यान् वो नर ' इति–इन मन्त्रो से प्रत्येक ऋचा का हवन करे ।३। 'वनस्पते शतवल्श' इति इमसे अभिमन्त्रण करे ।४। सुवर्ण की दक्षिणा देवे ।५।

।। अथ प्रायश्चित्तय ।।

यदि पार्वणस्त्वकृतोऽन्यतरस्ततश्चरु ।१। अग्नये वैश्वानराय स्वाहा अग्नयेतन्तुमते स्वाहा।२। होमातिक्रमे।३। साय दोषावस्तर्नम स्वाहा।४।प्रात र्वस्तर्नम स्वाहेति।५। यावन्तो होमास्तावतीर्हुत्वा पूर्ववद्धोम ।६।

यदि पार्वण अकृत हो तो फिर अन्यतर चरु ग्रहण करे ।१। 'अग्नये वैश्वनराय स्वाहा अग्नये तन्तुमते स्वाहेति ।२। इन मन्त्रो से होम करे ।

होम के अतिक्रम मे ।३। सायकाल मे दोषा वस्तर्नम स्वाहा–प्रात काल मे प्रातर्वस्त नम स्वाहेति–इन से आहुतियाँ देवे और पूव की ही भाति होम करना चाहिए ।५-६।

कपोतोलूकाभ्यामुपवेशने ।१। देवा कपोत इति प्रत्यृच जुहुयात् ।२। दु स्वप्नदर्शने चाऽरिष्टदर्शने च ।३। नि ाया क्राकशब्दक्रान्ते च ।४ अन्येषु चाऽद्भु तेषु च ।५। पयसा चरु श्रपयित्वा ।६। सरूपवत्साया गो पयसि ।७। नत्वेव तु कृष्णाया ।८। रात्रीसूक्तेन प्रत्यृच जुहुशेष ।९। हुतशेष महाव्याहृतिभि प्राश्य ।१०। भद्र कर्णेभि-रित कर्णौ ।११। शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा इति आत्मानमभिमन्त्र्य ।१२। ब्राह्मणेभ्य किञ्चिद्दद्यात् ।१३।

कपोत और उलूको के लिए उपवेशन मे करे ।१। देवा कपोत इति इस प्रतिऋचा की आहुतिया देवे ।२। बुरे स्वप्नो के देखने मे और किसी अरिष्ट के दर्शन करने मे भी करना चाहिए। रात्रि के समय मे कौए के शब्द के क्रान्त होने पर भी आहुतियाँ देवे ।३-४। और अन्य कोई अद्भुत बाते हो तो उनमे भी हवन करना चाहिए ।५। पय से चरु का हवन करे ।६। सरूप वत्सा गौ के दूध मे करे ।७। या दिन हो तो कृष्णा गौ के दूध मे करे ।८। रात्री सूक्त मे प्रत्येक ऋचा की आहुतियाँ देनी चाहिए ।९। जो हवन करने से शेष रहे उसको महा व्याहृतियो से प्राशन करे ।१०। भद्र कर्णेभिरिनि इस सकानो को ।११। शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा इति इमसे आत्मा को अर्थात् अपने आपको आभिमन्त्रित करे ।१२। ब्राह्मणो के लिये कुछ देना चाहिए ।१३।

व्याधौ समुत्थिते ।१। इमा रुद्राय तवसे कपर्दिन इति प्रत्यृच गावधुक चरु जुहुयात् ।२।

व्याधि के समुत्थित होने पर ।१। "इमारुद्राय तव से कपर्दिने इति" इससे प्रतिऋचा के गावेधुक चरु का हवन करना चाहिए ।।२।।

अकृतसीमन्तोन्नयने चेत् प्रजायेत् ।२। अकृतजातकर्मा

ऽऽसीत् ।२। ततोऽतोते दशाह उत्सङ्गे मातु कुमारक
स्थापयित्वा ।३। महाव्याहृतिभिर्हुत्वा पूर्ववद्धोम ।४।

यदि सोमन्तोन्नयन के न किये जाने पर प्रजनन हो जावे ।१। अकृत जान कर्म वाला था ।२। इसके उपरान्त दश दिन व्यतीत हो जाने पर माता के गोद मे कुमार को स्थापित करना चाहिए ।३। फिर महा-व्याहृतियो मे आहुतियाँ देकर पूर्व की ही भाँति होम करे ।।४।।

स्थूणारोहणे ।१। स्थालीपाक श्रपयित्वा अया विष्ठा
जनयन् कर्वराणि पिशङ्गरूप सुभरो वयोधा इति द्वाभ्या
चरु जुहुयात् ।२। यदि प्रणीताचरुराज्यस्थाल्यन्यदपि
मृन्मय भिन्न स्रवत् । । सव प्रायश्चित्ताहुतीर्हुत्वा "य
ऋते चिदिति तृचेन भिन्नमन्त्रयते ।४। यदि असमाप्ते
होमे पवित्रे नश्येते ।५। सर्वप्रायश्चित्त हुत्वा अप्स्वग्न
इति पुनरुत्पादयेत् ।६।

स्थूण के आरोहण मे ।१। स्थालीपाक का हवन करके "अयाविष्ठा जनयन् कवराणि पिशङ्ग रूप सुभरोवयोधा इति" इन दो से चरु का हवन करना चाहिए ।२। यदि प्रणीता चरु राज्य स्थाली अन्य भी मृन्मय भिन्न हुआ स्रवण करे ।३। तो सर्व प्रायश्चित्त आहुतियो से हवन करके "य ऋतेचिदिति" इस तृच से भिन्न मन्त्रित करता है ।४। यदि होम के असमाप्त होने पर पवित्रा नष्ट हो जाते है ।५। सर्व प्रायश्चित्त का हवन करके "अस्वग्न" इति–इससे पुन उत्पादन करना चाहिए ।६।

।। अथ सपिण्डीकरणम् ।।

अथ सपिण्डोकरणम् । । चत्वार्युदपात्राणि पूरयित्वा
पितृ प्रभृति ।२। तद्वत् पिण्डान् कल्पयित्वा ।३।
"ये समाना समनस पितरो यमराज्ये ।
तेषा लोक स्वधा नमो यज्ञो देवेसु कल्पताम् ।।
ये समाना समनसो जीवा जीवेषु मामका ।
तेषा श्रीमयि कल्पतामस्मिल्लोके शत समा ।।"

इसके अनन्तर अतएव ब्रह्माजी को—ब्रह्म ऋषि—ब्रह्म-योनि—इन्द्र—प्रजापति—वसिष्ठ—वामदेव— कहोल—कौषीतकि —महा कौषीतकि सुयज्ञ शाङ्खायन—आश्वलायन —ऐतरेय— महैतरेय—कात्यायन—शास्यायन—शाकल्य बभ्रु—बाभ्रव्य—मण्डुमाण्डव्य —इन सब पूर्वाचार्यों को नमस्कार करके स्वाध्यायारण्यक के नियमो को उदाहृत करेंगे ।१। एक अहोरात्र ब्रह्मचर्य व्रत का परिपालन करके आचार्य को अमानाशी होना चाहिए ।२। आमविशित (कच्चा मास)-चण्डाल—सूतिका-रजस्वला और तेदन्यय हस्तक के दर्शन अनध्याय करने वाले होते है। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्तो के दर्शन करने से अनध्याय होना है ।३। शवरूपो के भी दशन से अनध्याय होता है ।४। जो मुख मे प्रवेश न करे ।५। व्यन्तकृत श्मश्रुकर्म भी अनध्याय करने वाला होता है ।६। मास का अशन करना—श्राद्ध भोजन और सूतक भोजन मे भी अनध्याय होता है ।७।ग्रामाध्ययन के अन्तर्हित दिन मे भी अनध्याय होते है ।८। तीन रात्रि तक अनवल्कृप्त रहे ।९। पराभिमृष्ट होवे ।१०। जो उपपव है उनके दिन के उत्तराध अनध्याय करने वाले होते है ।११। अग्नि-विद्युत् स्तना-यित्नु वर्षा और महाभ्र के प्रादुर्भाव से भी अनध्याय हाता है ।१२। शकरा (धूलि) के आकषण करने वाले बाल के वहन करने पर भी जब तक वह रहे अनध्याय माना जाता है ।१३।

।। स्वाध्यायारण्यक नियमा (२) ।।

ऊर्ध्वमाषाढयाश्चतुरो मासान्नाऽधीयीत ।१। अत्यन्त शक्वर्य इति नियमा ।२। प्राग्ज्योतिषमपराजितायां दिशि पुण्यमुपगम्य देशम् ।३। अनुदित उदकग्रहणम् ।४। मण्डलप्रवेशश्च आञ्जनगन्धिमिति एतयर्चा ।५। मण्डल तु प्राग्द्वारमुदग्द्वार वा जनाग्रीयमसम्प्रमाणमसबाधम् ।६। आवामदेव्यमुत्तरशान्ति ।७। पुन प्राध्येषण च ।८। बहिर्मण्डलस्थाभिराचम्य ।९। प्राधीयीरन् कृतशान्तय

।१। शान्तिपात्रोपघाते प्रोक्षण प्रायश्चित्ति ।११। प्रोक्षण तु हिरण्यवता पाणिना दर्भपिञ्जूलवता वा ।१२। इति भाषिकम् ।१३।

आषाढी पूर्णिमा से ऊपर चार मास तक अध्ययन अर्थात् वेदो का स्वाध्याय नही करना चाहिए ।१। अत्यन्त शक्वर्य है—ये नियम हैं। शक्वरादि पूर्वोक्त तीन व्रतो के विशेष विधान के लिये षष्ठाध्याय के करने की इच्छा रखता हुए आचार्य पुन प्रारम्भ करते है ।२। अपराजित दिशा मे पुण्य प्राग्ज्योतिष देश को प्राप्त होवे ।३। जब तक सूर्य उदित न हो, उसी समय मे उदक का ग्रहण करे ।४। "आज्जनगन्धिमिति" इस ऋचा के द्वारा मण्डल प्रवेश करना चाहिए ।५। मण्डल तो प्राग्द्वार उदग्द्वार अथवा जनाग्रीव असम्प्रयाण और असम्वाध होता है ।६। यहा पर जनाग्रीय शब्द का अथ है जनो के द्वारा स्तुत्य । वामदेव्य कथा नश्चित्र उसको अभिव्याह्य करके उत्तराशान्ति होती है ।७। पुन अर्थात् इन समयो के पश्चात् फिर प्रकर्ष रूप से अध्ययन करना चाहिए ।८। इसका अभिप्राय यह है कि पुन प्रश्नोत्तर करे शरीर के वश होने से मूत्र पुरीषादि के उत्सर्ग करने पर मण्डल से बाहिर लौकिक जल से शुद्धि करके कर्म की शुद्धि के लिये शान्तिपात्र के जल से आचमन करे फिर शेष अध्ययन करना चाहिए ।९। शान्ति किये हुओ को प्रकृष्ट रूप से अध्ययन करना चाहिए ।१०। शान्ति पात्र के उपरान्त होने पर प्रोक्षण ही प्रायश्चित्ति है ॥११॥ प्रोक्षण जब करे तो हाथ मे सुवर्ण होना चाहिए अथवा दर्भों का पिञ्जूल हाथ मे रखना चाहिए ।१२। यह पूर्वोक्त सब अनाध्याय के विषय के आरम्भ करके मण्डल आदि का प्रकरण परिभाषित है ।१३।

स्वाध्यायारण्यक नियमा [३] ॥

अथ प्रविश्य मण्डलम् ।१। प्राङ्मुख आचार्य उपविश त्युदङ्मुखा दक्षिणत इतरे यथाप्रधानम् ।२। असम्भवे

सर्वतोमुखा ।३। प्रतीक्षेरन्नुदयमादित्यस्य ।४। विज्ञाय चैन दीधितिमन्तम् ।५। अधीहि भो इति दक्षिणर्दक्षिण सव्यै सव्य दक्षिणोत्तरै पाणिभिरुपसगृह्य पादावाचार्यस्यनिर्णिक्तौ ।६। अथाऽऽधाय शान्तिपात्रे दूर्वाकाण्डवतीष्वप्स्वपिन्वमानै पाणिभि प्राधीयीरन् ।७।एष विधिर्यदि तु ग्लायेरन्नेक एषामशून्य शान्तिभाजन कुर्यात् ।८। अध्यायाद्यन्तयोश्च सर्वे ।९। तत्सन्ततमव्यवच्छिन्न भवति ।१०।

इसके उपरान्त मण्डल मे प्रवेश करे ।१। जो आचार्य्य हो उनको पूर्व कीओर मुख करते बैठना है अर्थात् आचाय प्राङ मुख बैठते है। दूसरे उत्तर की ओर मुखो वाले दक्षिण से प्रधान के अनुसार बैठते है ।२। यदि स्थान की असुविधा आदि से ऐसा सम्भव न हो सके तो सभी ओर मुख किये हुए बैठ जावे ।३। आदित्य देव के उदित काल की सबको प्रतीक्षा करनी चाहिए ।४। सूर्य नारायण को जब पूण किरणो से समुदित हुए जान लेना चाहिए ।५। अधीहिभो ३ इति—यह कहकर दक्षिणो के द्वारा दक्षिणा को और सव्यो से सव्य को ऐसे दक्षिणोत्तरो हाथो से आचार्यदेव के चरणो को उपसगृहीत करके निर्णीक्त करे। ।६। इसके अनन्तर शान्ति पात्र ये करके दूर्वा कण्डवती जल मे अपिन्यमान प्राणियो से प्रकर्षतया अध्ययन करे ।७। यदि यह विधि पसन्द न करे तो इनमे से एक शान्ति पात्र को अशून्य कर देवे ।८। अध्ययन के आदि अन्त मे सब करे ।९। वह सन्तत अव्यवच्छिन्न होता है ।१०।

॥ अथ शान्ति ॥

अथ शान्ति ।१। ॐङ्कारो महाव्याहृतय सावित्री रथन्तर बृहद्वामदेव्य, पुनरादाय कुकुष्कारमिति बृहद्रथ-

न्तरे ।२। दशैता सम्पादिता भवन्ति ।३। दशदशिनी विरालिति एतद् ब्राह्मणम् ।४।

इसके अनन्तर शान्ति कर्म करे ।१। ऊँकार-महा व्याहृतियाँ— रथन्तर वृहाद्वमदेव्य और बृहद्रथन्तर मे पुनरादाय बहुधा यह है ।२। ये दश सम्पादित होती है ।३। 'दशदशिनी विराजिति'–यह ब्राह्मण है ।४।

।। अथ शान्ति कर्म [५] ।।

अदब्ध मन इषिर चक्षु सूर्यो ज्योतिषा श्रेष्टो दीक्षे मा मा हिसीरिति सवितारमीक्षन्ते ।१। युव सुराममिति एका स्वस्ति न पथ्यास्विति च तिस्र इति महाव्रतस्य ।२। शक्करीणा तु पूर्वम् ।३। प्रत्यस्मै पिपीषते, योरयिवो रयिन्तम, त्यमु वो अप्रहणमिति त्रयस्तृचा अस्मा अस्मा इदन्धस इति, एवा ह्यसि वीरयुरिति अभित शक्करीणाम् ।४। अथोपनिषदाम् ।५। यैव महाव्रतस्य ।६। सहिताना तु पूवम् ऋत वदिष्यामि सत्य वदिष्यामीति विशेष ।७। मन्थस्य तत्सवितुर्वृणीमहे, तत्सवितुर्वरेण्यमिति पूर्व च ।८। अदब्ध मन इति अधिकारिका शान्तयस्तत ।६। इत्याह्निकम् ।१०। अथोत्थानकालेऽप कृष्य पापम् ।११। नित्या शान्ति कृत्वा ।१२। उदित शुक्रिय दध इति आदित्यमीक्षन्ते ।१३।

'अदग्ध मन इषिर चक्षु सूर्यो ज्योतिष श्रेष्ठो दीक्षे मा मा हिंसीरिति'–– इससे सविता देव को ईक्षण करते है ।१। 'युव सुराममिति यह एक है'स्वस्ति न पथ्या स्विति ये तीन महाव्रत भी है ।२। शक्वरियो की पूर्व मे कथित है ।३। प्रत्यस्मै पिपीष मे, योरयिवो रयिन्नम्, व्यमु वो अप्रहण मिति – ये तीन ऋचाऐ हैं । 'अस्मा-अस्मा इदन्धस इति एवा असि वीरयुरिति' ये दोनो ओर शक्वरियो के है ।४। इसके अनन्तर उप-

निषदो के हैं ।५। या एव महाव्रत की है ।६। सहिताओ का पूव मे कहा गया है 'ऋत वदिष्यामि सत्य ब देष्यामि इति यह विशेष है ।७। इसके उपरान्त मन्थ का 'तत्सवितुव्रृणीमहे तत्सविनुत्ररण्यमिति और यह पूर्व मे है ।८। अग्ब्र मन इति' ये आधिकारिका शान्तिया है । इसके पश्चात् इत्याह्निका है ।६ १०। इसके अनन्तर उत्थान काल मे पाप का अपकर्षण करे ।११। फिर नित्या शान्ति करे ।१२। 'उदित शु क्रय दव इति' इससे आदित्य देव को देखते है ।१३।

।। अथ कान्ति कर्म (२) ।।

तमहमात्मनी त्यात्मानमभि निहित त्रिर्हितम् ।१। उप मा श्रीजु षतामुप यशोऽनु मा श्रीर्जुषतामनु यश ।२। सेन्द्र सगण सबल सयशा सवोर्य उत्तिष्ठानीत्युत्तिष्ठति ।३। श्रीर्मा उत्तिष्ठतु यशो मा उत्तिष्ठत्विति उत्थाय ।४। इदमह द्विषन्त भ्रातृव्य पाप्मानलक्ष्मी चाऽप धनोमीति वस्त्रान्तमवधूय ।५। अप प्राच इति सूक्तम् इन्द्रश्च मृलयाति न इति द्वे यत् इन्द्र भयामह इति एका शास इत्था महॉ असीति प्राचीम् स्वस्तिदा इति दक्षिणा दक्षिणावृतो वि रक्ष इति प्रतीचीम् वि न इन्द्रेति उदीची सव्यावृत अपेन्द्रेति दक्षिणावृतो दिवमुदीक्षन्ते ।६।

तमहमात्मनीति-इससे अपने आप को अभिनिहित त्रिर्हित करे ।१। उपमा श्रीर्जुषता यशोनमा श्रीर्जुषता मनुयश ।२। सेन्द्र सगण सबल सयशा इससे उत्थित होता है ।३। श्रीर्मा उत्तिष्ठ सवीर्य्य उत्तिष्ठानि-इति नु यशो भा उत्तिष्ठतु इति-इससे उठकर ।४। इदमह द्विषन्त भ्रातृव्य पाप्मान अलक्ष्मी चतुय धुनोमीति इससे वस्त्र के छोर को अवधूनित करे।५। अपप्रस्य इति यह सूक्त है । इन्द्रश्च मृलयाति न इति ये दो है—यत इन्द्र भयामह इति यह एका है—शास इत्था महाँ असीति इससे प्राची को—स्वस्तिदा इति—इससे दक्षिण को दक्षिणा वृत हो—विरक्ष इति

इससे प्रतीची को—वि न इन्द्रेति इससे सव्यावृत होकर उदीची को अपेन्द्रेति इससे दक्षिणावृत होकर दिव को देखते है ।९।

सविता पश्चात्तात् तच्चक्षुरिति आदित्यमुपस्थाय ।१। व्यावर्तमानश्च प्रत्यायन्त्युपविशन्ति ।२। यथाऽऽप शान्ता इति शान्तिपात्रादप आदाय ।३। पृथिव्यामवनिनीय ।४। यथा पृथवीति अस्याऽभिकषन्ति ।५।एवमयिशाम्यत्विति दक्षिणेऽशे निलिम्पति ।६। एव द्वितीयम् ।७। एव तृतीयम् ।८। काण्डात्–काण्डात्सम्भवसि काण्डात्-काण्डात्प्ररोहसि शिवा न शाले भवेति दूर्वाकाण्डमादाय मूर्धनि कृत्वा ।९। अग्निस्तृप्यतु । वायुस्तृप्यतु । सूर्यस्तृप्यतु । विष्णुस्तृप्यतु । प्रजापतिस्तृप्यतु । विरूपाक्षस्तृप्यतु । सहस्राक्षस्तृप्यतु । सवभूतानि तृप्यन्त्विति । ०। सुमन्तु जैमिनि वैशम्पायन पैलाद्याचर्या ।११।पितृन्प्रत्यात्मिकान् ।१२। समुद्र व इति अपो निनीय।१३। वामदेव्य जपित्वा ।१४। यथाकाम विप्रतिष्ठन्ते ।१५।

यथाऽऽगमप्रज्ञाश्रुतिस्मृतिविभवादनुक्रान्तमानाद् अविवादप्रतिष्ठादभय शभवे नो अस्तु नमोऽस्तु देव ऋषिपितृमनुष्येभ्य शिवमायुर्वपुरनामय शान्तिमरिष्टिमक्षितिमोजस्तेजो यशो बल ब्रह्मवचस कीर्तिमायु प्रजा पशून्नमो नमस्कृता वधयन्तु ।।दुष्टुताद् दुरुपयुक्तान्न्यूनाधिकाच्च सवस्मात्स्वस्ति देवऋषिभ्यश्च ब्रह्म सत्य च पातु मामिति ब्रह्म सत्य च पातु मामीति ।१६।

"सविता पश्चात्तात तच्चक्षुरिति" इससे आदित्य देव का उपस्थान करे ।१। और व्यावर्त्तमान होकर प्रत्यागमन करते है और उपविष्ट हो जाते है ।२। "यथाऽऽप शान्ता इति" इसको पढकर शान्ति पात्र से जल ग्रहण करे ।३। फिर उसे पृथिवी मे अवनिनयन करे ।४। "यथा पृथिवीति" इससे इसका अभिकषण करते है ।५। "एव मयिशाम्यत्विति"

—इस से दक्षिण अ श मे निलिम्पन करता है ।६। इसी प्रकार से द्वितीय को करे और इसी रीति से तृतीय को करना चाहिए ।७-८। "काण्डात् काण्डात् सम्भवसि'—"काण्डात् काण्डात् प्ररोहसि"—"शिवान शाल भवेति" इनसे पूर्वा के काण्ड को लेकर मूर्धा मे करे ।९। और दूर्वा काण्ड से मस्तक पर मार्जन करते हुए निम्न पदो का उच्चारण करे—"अग्निस्तृप्यतु" अर्थात् अग्निदेव तृप्त होवे । "वायु स्तृप्यतु"—"सूर्य्यस्तृप्यतु" —"विष्गुरतृप्यतु"—"प्रजापति स्तृप्यतु' —"विरूपाक्षस्तृप्यतु" "सहस्राक्षस्तृप्यतु"—"सर्वभूतानितृप्य तु—इति ।१०। सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्यामन और पैल आदि आचार्य है ।११। प्रत्यात्मिक पितृगणो को भी कहे ।१२। "समुद्र व इति" इसको पढकर जल का निनयन करे ।१३। फिर वामदेव्य का जाप करना चाहिए ।१४। इच्छा के अनुसार विशेष रूप से प्रतिष्ठित होते है ।१५।

जिस प्रकार से आगम, प्रज्ञा, श्रुति, स्मृति के विभव से जो कि अनुक्रान्तमान है और अविवाद प्रतिष्ठा से अभयश हमारा भव मे होवे । सब देव, ऋषि, पितृ और मनुष्यो के लिये नमस्कार है । शिव, आयु, आमयरहित वपु, शान्ति, अरिष्टि, अक्षिति, ओज, तेज, यश, बल, ब्रह्म-वचस्, कीर्त्ति, आयु, प्रजा, और पशुओ को नमस्कार है । ये सब नमस्कृत होते हुए वर्धित होवे । दुष्टुत, दुरुपयुक्त, न्यून, अधिक सबसे स्वस्ति होवे । देव ऋषियो से ब्रह्म और सत्य मेरी रक्षा करे, ब्रह्म और सत्य मेरा परित्राण करे ।१६।

इति शाङ्खायनगृह्यसूत्रे षष्ठोऽध्याय

समाप्तञ्चेद शाखायन ग्रह्यसूत्रम्

———

अथ गोभिल गृह्यसूत्रम्

अथातो गृह्याकर्म्माण्युपदेक्ष्याम । यज्ञोपवीतिनाऽऽचान्तोदकेनकृत्यम् । उदगयन पूवपक्षे पुण्येऽहनि प्रागावर्त्तनादन्ह कालविद्यात् । यथादेशञ्च ।१-४। सर्वाण्येवान्वाहार्य्यवन्ति । अपवर्गेऽभिरूपभोजनयथाशक्ति । ब्रह्मचारी वदमधीत्यान्त्याँ समिधमभ्याधास्यन् । जायाया वा पाणि जिघृक्षन्' अनुगुप्ता अग्आहृत्य प्रागुदक्प्रवण देशँ सम वा परिसमूह्योपलिप्य मध्यत प्राची लेखामुल्लिख्योदीचीश्चसँ हृता पश्चात् मध्ये प्राचीस्तिस्रउल्लिख्याभ्युक्षेत् । लक्षणावृदेषा सवत्र ।५-१०।

अथ—यह ग्रन्थ के आरम्भ करने को प्रकट करने वाला निपात है। अत --यह शब्द उस ग्रन्थारम्भ काल मे होने वाले आचार्यों की वाचनावली की विचित्रता के लिये ही प्रयुक्त किया गया है इसका अन्य कोई विशेष तात्पर्य नही है। गृह के लिये हित कर होने से योगरूढि से गृह्य अग्नि का बोधक है। उस अग्नि से सम्बन्धित अग्निहोत्र आदि नित्य कर्त्तव्य कर्म और उसके अङ्ग स्वरूप अग्नि के आधान आदि कर्मों का उपदेश करेगे। गृह्य मे दीर्घ आकार का प्रयोग छान्दस है। सभी इसमे बतलाये जाने वाले कर्त्तव्य कर्मो का यज्ञोपवीत धारी पुरुष को ही आचमन करके करना चाहिए। जो भी कम इसमे कहे जायँगे उनका कोई समय निर्दिष्ट नही भी किया।

गया हो तो उन सबको सूर्यदेव के उत्तरायण होने पर शुक्ल पक्ष मे किसी भी पुण्यमय दिन मे जबकि मेघावरण आदि कोई दोष न हो दोपहर के पूर्व ही करना चाहिए क्योंकि मध्याह्न के पूर्व ही प्रशस्त काल माना गया है। जिस किसी कर्म मे विशेष रूप से समय का निर्देश किया जाता है उसको उसी समय मे करना आवश्यक है। उसमे साधारणतया पूर्वाह्न काल ग्रहण नही करना चाहिए।१-४।

सभी गृह्य कर्मों मे कुशा आदि उपकरणो की आवश्यकता अनिवार्य रूप से हुआ करती है अत सम्पूर्ण सामग्री को सञ्चित कर लेना चाहिए। कर्म की समाप्ति होजाने पर चाहे कोई भी किसी प्रकार का कर्म हो सभी मे शास्त्र के अनुसार और अपनी शक्ति के अनुरूप एक-दो या अधिक विप्रो को भोजन कराना चाहिए यह सब कर्मो का साधारण विषय है। गृह कर्म जो कहा गया है उसमे यह प्रश्न होता है वह गृह्य अग्नि कौन सी है—इसी को स्पष्ट किया जाता है—ब्रह्मचारी गुरुकुल मे वेदाध्ययन को समाप्त कर ब्रह्मचर्य की समापिका समिधा को लेने के लिये प्रवृत्त होकर अग्नि का समाधान करे और अपहरण आदि के साथ अग्नि का प्रणयन करे फिर उस अपनी अग्नि मे उस अन्तिम समिधा को देवे। यदि उस समय मे अग्नि का ग्रहण न किया गया हो तो गुरु की अग्नि मे ही उस अन्तिम समिधा का आधान करना चाहिए। फिर तो जाया के पाणि ग्रहण करने के पूर्व विवाह के समय मे अग्नि का समाधान करना चाहिए। अग्नि के प्रणयन के लिये मलमूत्रादि के प्रक्षेप मे रहित तैलाभ्यङ्ग से वर्जित पूर्णतया सुरक्षित एव पवित्र किसी जलाशय से जल लाकर उससे परिसहनम् (लीप) कर पूर्व या उत्तर दिशामे समतल भूमि के मध्य मे पूर्वाग्र एक रेखा कर उसके नीचे उत्तराग्र रेखा कर मिला देनी चाहिए और मध्य मे तीन रेखाऐ बनाकर फिर जलसेछिडक देवे। यह स्थान स्थण्डिल कहा जाता है। इस क्रिया का जो अपहरणादिका है उसे लक्षणावृत् कहा जाता है इससे सभी जगह अग्नि के प्रणयन मे व्यवहृत करना चाहिए।५ १०।

भूर्भुव स्वरित्यअभिमुखमग्नि प्रणयन्ति । प्रेते वा गृहपतौ परमेष्ठीकरणम् । तथा तिथिनक्षत्रपर्वसमवाये । दर्शे वा पौणमासे वाऽग्निसमाधान कुर्वीत । वैश्यकुलाद्वाऽम्बरीषाद्वाऽग्निमाहृत्याभ्यादध्यात् । अपिवा बहुयाजिनएवागाराद्ब्राह्म॰स्य वा राजन्यस्य वा वैश्यस्य वा । अपिवाऽन्यम्मथित्वाऽभ्यादध्यात् । पुण्यस्त्वेवा नर्द्धुको भवतीति । यथा कामयेत् तथा कुर्य्यात्।११-१९।

इसके अनन्तर भूर्भुव स्व—इस मन्त्र से अपने सामने अग्नि का प्रणयन करे। सभी कर्मो मे इसी भाति अग्नि-स्थापन करने का विधान है। पाणि ग्रहण के समय मे पित्रादि के जीवित रहन पर वह अग्नि ग्रहण न करे तो जब गृह स्वामी की मृत्यु हो जाव उसी समय मे अग्नि ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार से अग्नि ग्रहण के मुख्य तीन काल है—ब्रह्मचय के अवसान मे—पाणिग्रहण के पूव और गृह स्वामी के मरने पर ये ही तीन समय है। जिस तरह मे अन्य सन्निधान के लिये काल की अपेक्षा होती है वैसेही तिथि—नक्षत्र-पर्वो के शुभ समवाय वाला समय अपेक्षित होता है। अग्नि स्थापन मे शुभ समय आवश्यक है। यदि तिथि आदि के समवाय का समय शीघ्र घटित न हो तो अमावस्या पूर्णिमा मे अग्नि का सम्यक् रीति से आधान—धारण—और पोषण करे। वैश्य कुल के घर से—अम्बरीष से अथवा भार भूँजने वाले से अग्नि लाकर स्थापित करनी चाहिए। अथवा जो वहुयाजी हो उसके यहाँ से अग्नि लाकर आधान करे चाहे वह वहुयाजी ब्राह्मण हो—क्षत्रिय हो अथवा वैश्य हो कोई भी क्यो न हो— इसमे कोई आपत्ति नही होती है। अथवा अरनी का मन्थन न करे अग्नि उत्पादन कर नवीन अग्नि का ग्रहण करना चाहिए अरणि वृक्ष की लकडी के मन्थन द्वारा जो अग्नि प्राप्त होती है उसमे आगे कहे जाने वाले अनुष्ठानो मे परम पुण्य होना है किन्तु अन्य कामनाओ की पूर्ति इससे नही होती है क्योकि यह केवल पुण्य का ही जनक है। अतएव जैसी कामना हो उसी के अनुसार अग्नि का आधान करना चाहिए।११-१९।

स यदेवान्त्यां समिधमभ्यादधाति जायाया वा पाणि जिघृक्षन् जुहोति तमभिसयच्छेत् । स एवास्यगृह्योग्निर्भवति । तेन चैवास्य प्रातराहुतिर्हुता भवतीति । सायमाहुत्युपक्रम एवात ऊर्ध्वं गृह्येऽग्नौ होमो विधीयते। पुरा प्रादुष्करणवेलाया सायप्रातरनुगुप्ता अपआहरेत् परिचरणीया । अपि वा सायम् । अपि वा कुम्भाद्वा मणिकाद्वा गृह्णीयात् । पुरास्तमयादग्नि प्रादुष्कृत्यास्तमिते सायमाहुति जुहूयात् । पुरोदयात् प्रात प्रादुष्कृत्योदितेऽनुदिते वा प्रातराहुति जुहुयात् ।२०-२८।

इस रीति से अग्नि का आहरण करके जिसमे अन्तिम समिधा का तथा विवाह मे खीलो का होम करे उस अग्नि को बडे ही यत्न से सुरक्षित रखना चाहिए ।२०। वही अग्नि इस ग्रहण करने वाले की गृह्य अग्नि होती है । जो गृह के लिये हितकर है और गृह कर्मो के लिये परम उपयोगी है—इसीलिये यह 'गृह्य'—इस नाम से प्रसिद्ध होती है ।२१। अन्त्य समिधा के होम से था लाज (खोल) आदि के होम से ही प्रातकाल की सिद्ध होजाती है फिर उस दिन अन्य आहुति की आवश्यकता नही होती है । क्योकि यही प्रात कालिक आहुति सिद्धाहुति मानी जाती है ।२२।

उसदिन की प्रात काल की उसी से सिद्ध है किन्तु उसी दिन मे साय काल की आहुति का उपदेश करना चाहिए । इसीलिये गृह्य अग्नि मे प्रात और साय के होम के प्रकार का उपदेश दिया जाता है ।२३।

सूय के अस्त होने के पूर्व ही सायङ्काल मे अग्नि को भली भाति दीप्त करके सूर्यास्त के समय आहुति देनी चाहिए । उदय पूव ही जब तक सूय उदित न हो तभी तक अग्नि जलाकर प्रात कालीन आहुति देनी चाहिए । ये दोनो प्रात साय की आहुतियो का समय ही केवल बतलाया

गया है। यहाँ बोध की आसानी के लिये ही पहिले २७ और २८ वें सूत्र की व्याख्या की जाती है।२७ २८।। अब ।२४-२५। और २६ वें सूत्रो की व्याख्या की जाती है—सायकाल और प्रात काल दो बार अग्नि जलाने के पहिले ही आचमन आदि के सम्पादन करने के लिये सुनिमल एव सुरक्षित जल लाना चाहिए।२४। अथवा सायकाल मे एक ही बार अग्नि के सन्दीपन के काल से पूर्व ही आचमन आदि की परिचर्या के उपयुक्त जलले आवे। उसीसे प्रात कालीन क्रिया करनी चाहिए। ।२५। या एक दिन मे सुवह तथा शाम को अग्नि के जलाने से पेश्तर इस जल को लाकर कलश मे रख देवे। फिर आवश्यकता के अनुसार दोनो समय मे उसमे से ले लिया करे ।।२६।।

———

अथ उपवीत विधि

यज्ञोपवीत कुरुते सूत्र वस्त्र वाऽपि वा कुशरज्जुमेव। दक्षिण बाहुमुद्धृत्य शिरोऽवधाय सव्येऽसे प्रतिष्ठापयति दक्षिण कक्षमन्ववलम्ब भवत्येव यज्ञोपवीती भवति। सव्य बाहुमुद्धृत्य शिरोऽवधाय दक्षिणेऽसे प्रतिष्ठापयति सव्य कक्षमन्ववलम्ब भवत्येव प्राचीनावीती भवति। पितृयज्ञे त्वेव प्राचीनावीती भवति। उदङ्ग्नेरुत्सृप्य प्रक्षाल्य पाणी पादौ चोपविश्य त्रिराचामेद् द्वि परिमृजीत। पादावभ्युक्ष्य शिरोऽभ्युक्षेत्। इन्द्रियाण्यद्भि सस्पृशेत्। अक्षिणीनासिके कर्णाविति। यद्यन्मीमांस्य स्यात्तत्तदद्भि सं स्पृशेत्।१ ६।

सूत्र-वस्त्र अथवा कुशरज्जु जिस समय मे जो भी सुविधा से सुलभ हो उस समय मे उसी के यज्ञोपवीत से काम लेना चाहिए ।१। उस यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर धारणकर—मस्तक मे वष्टित करके और वाँयें कन्धे से दाहिने कक्ष के नीचे तक लटकता

हुआ धारण करना—इन तीनो रीतियो मे से किसी भी एक विधि से जनेऊ धारण करने वाले को "यज्ञोपवीती" कहा जाता है ॥२॥

इसी भाति से वाम कन्धे पर जनेऊ रखकर-शिर मे लपेटकर और दक्षिण स्कन्ध से वाम कक्ष के नीचे तक लटकने वाला जनऊ पहिनना—इन तीनो रीतियो मे से किसी भी एक रीति से जनेऊ पहिनने वाले को 'प्राचीनावीती" कहा जाया करता है।३।

केवल पितृयज्ञ मे जब कि पितरो के लिये श्राद्ध आदि करे तभी प्राचीनावीती होना चाहिए। इस प्रकार से देवपितृ कार्यों से अन्य कर्मों मे निवीती होकर ही स्थित रहना चाहिए–यह स्वत ही प्राप्त हो गया करता है। इसके अनन्तर और उपस्पशन विधि बताते है ॥४॥

ऐसा कहागया है कि उदक से आचान्त होकर ही कृत्य करना चाहिए। इस समय मे उसकी इति कर्त्तव्यता का उपदेश दिया जाता है। अग्नि के उत्तर दिशा की ओर उत्सर्पण करके–हाथ पैर धोकर तीनवार आचमन करना चाहिए। दो वार ओष्ठ पर लगे हुए जलका मार्जन करे इसके पश्चात् दोनो पैरो पर और मस्तक पर जल छिडक देवे। इसके उपरान्त आख–नाक और कान इनके दोनो–दोनो छिद्रो को जोकि छै इन्द्रियाँ है जलका स्पर्श करावे। पीछे दूसरे अङ्गो को भी जो अब बोधित करने के लिये अभीष्ट हो जलका स्पश करे।५-९।

तत्रैनदाहु । नोपस्पृशेद् व्रजन् । न तिष्ठन् । न हसन् । न विलोकयन् । नाप्रणत । नाङ्गुलीभि । नातीर्थेन । न सशब्दम् । नानवेक्षितम् । नवाह्या ँस । नान्तरीयेक-देशस्य कल्पयित्वोतरीयताम् । १०-२१ ।

इस आचमन के विषय मे कुछ आचार्यो का मत है—।१०। इधर-उधर भ्रमण करते हुए जल का उपस्पशन नही करना चाहिए। स्थित होकर भी कभी आचमन नही करे।११ १२। हास्य करते हुए भी आचमन करने का निषेध है।१३। किसी अन्य वस्तु को देखते हुए भी आचमन नही करना चाहिए।१४। क्रोध आदि के मनोवेगो से उग्रमूर्ति होते

हुए भी उपस्पर्शन नही करे ।१५। अग्राह्य बुद्धि से अँगुलियो के अग्रभागो मे जल ग्रहण करके भी आचमन नही करना चाहिए ।।१६।।

मनु आदि ने ब्राह्मादिक को तीर्थ कहा है। उस के अतिरिक्त मार्ग अर्थात् धातुमात्र मे मुख से या कण्ठ से जल ग्रहण करके आचमन न करे ।१७। खेल के अभिप्राय से शब्द करता हुआ आचमन न करे ।१८। हाथ मे जल को लेकर उसे न देखते हुए आचमन नही करना चाहिए ।१९। दोनो घुटनो के बाहर स्कन्धो को रखकर आचमन न करे ।२०। एक ही वस्त्र को पहिनकर तथा उसी को ओढकर कभी भी आचमन नही करना चाहिए ।।२१।।

नोष्णाभि । न सफेनाभि । न च सोपानत्क क्वचित् ।
कासक्तिक ।गले वद्ध । चरणौ न प्रसार्य्य च । अन्तत
प्रत्युपस्पृश्य शुचिर्भवति । हृदयस्पृशस्त्वैवाप आचामेत् ।
उच्छिष्टोहैवाताऽन्यथा भवतीति । अथ प्रत्युपस्पर्श-
नानि । सुप्त्वाभुक्त्वाक्षुत्वा स्नात्वापोत्वा विपरिधाय च
रथ्यामाक्रम्य श्मशानञ्चा चान्त पुनराचामेत् ।२२ ३२।

उष्ण जल से उपस्पर्शन न करे। फेनो वाले जल से आचमन का निषेध किया गया है ।२२ २३। किसी अनुचित एव अनावश्यक स्थान पर जूते पहिने हुए आचमन नही करना चाहिए ।२४। माथे या कण्ठ मे दृढ वस्त्रादिका बन्धन रहते हुए या दोनो पेरो को फैलाकर आचमन न करे। पगडी दुपट्टा हो तो उसे हटाकर ही उपस्पर्शन करे ।२५ २७।

चाहे किसी कर्म का आरम्भ किया जाने अथवा न किया जावे शयन से उठकर उस समय मे आचमन करने से मनुष्य पवित्र हो जाया करता है ।२८। आचमन जल का प्रमाण यह है कि जितने जल के पीने से हृदय तक सिक्त हो जावे उतने जल से आचमन करना चाहिए ।२९। जो विधि आचमन की कही गई है उसके विपरीत करने से आचमन करने वाले का मुख उच्छिष्ट (झूठा) ही रहता है ।३०। किस स्थल पर किया

हुआ आचमन प्रत्युपस्पर्शन नाम वाला कहा जाता है – यह बतलाते है–सोकर उठने के पीछे-भोजन के पश्चात्–जँभाई तथा हिचकी आने के अनन्तर-स्नान करने के पश्चात्–रस आदि पेय पदार्थ के पीने के अन्त मे—वस्त्रभूषन आदि के परिधान करने के उपरान्त श्रम के शमन के के लिये जो आचमन किया जाता है वह 'प्रत्युपस्पर्शन'—इस नाम से कहा जाया करता है। तात्पर्य यह है कि निन्द्रा के अन्त मे आचमन करे और देवानुष्ठान के काय मे निद्रात्तन्द्रा या आलस्य होवे तो उस समय भी आचमन करना चाहिए। विहार करके तथा हिचकी आदि के आने पर भी आचमन करे। एक बार करने पर भी दुबारा करना आवश्यक है ॥३१-३२॥

अथ ब्रह्मयज्ञ प्रकरणम्

अग्निमुपसमाधाय परिसमूह्य दक्षिणजान्वक्तो दक्षिणे-नाग्निमदितेऽनुमन्यस्वेत्युदकाञ्जलि प्रसिञ्चेत् । अनु-मतेऽनुमन्यस्वेति पश्चात्। सरस्वत्यनुमन्यस्वेत्युत्तरत । देवसवित प्रसुवेतिप्रदक्षिणमग्नि पर्य्युक्षेत् सकृद्द्वात्रिर्वा । पर्य्युक्षणान्तान् व्यतिहरन्नभिपर्युक्षन् होमीयम् । अथ हविष्यस्यान्नस्याग्नौ जुहुयात् कृतस्य वाऽकृतस्य वा । अकृतश्चेत् प्रक्षाल्य जुहुयात् प्रोदक कृत्वा । अथ यदि दधिपयोयवागू वा, कंसेन वा चरुस्थाल्या वा स्रुवेण वै वा । अग्नये स्वाहेति पूर्व्वा तूष्णोमेवोत्तरा मध्ये चैवापराजितायाश्चैव दिशीति सायम् ।१-६।

पूर्व मे वर्णित रीति से अग्नि का उप समाधान करके परिसमूहन करे और फिर अपना दाहिना घुटना को भूमि पर टेककर प्रार्थना करे—हे अदिते! मुझे इस कम को करने की अनुमति हो'—इस मन्त्र से अग्नि

के दाहिने भाग मे जलकी अञ्जलि से सिञ्चन करे ।१। 'हे अनुमते ! इस कर्म के करने की मुझे अनुमति प्रदान करो'—इस मन्त्र के द्वारा अग्नि के उत्तर भाग मे दूसरी जलकी अञ्जलि देनी चाहिए ।२। इसके अनन्तर एक ही बार या तीन बार "देव सवित प्रसव" इत्यादि मन्त्र से प्रदक्षिणा के अनुसार अग्नि के चारो ओर जल की धारा गिरावे—इसी का नाम पर्युक्षण कहा जाता है । 'सरस्वत्यनुमण्यस्व' अर्थात् हे सरस्वती देवि ! मुझे आप इस कम के करने की अनमति देवे—इस मन्त्र से उत्तर मे तीसरी जल की अञ्जलि देवे ।३-४।

इस रीति से पर्युक्षण की समाप्ति तक के अङ्ग भागो का पूर्ण करके फिर होम के उपयोगी जो अन्नादि पदाथ हैं उनका जल की बूँदो से सिञ्चन करना चाहिए ।५। इसके उपरान्त अग्नि मे पका हुआ या अपक्व यवादि अन्न हविष्य का हवन करना चाहिए ।६। यदि भात आदि आग मे पका हुआ हविष्य होम करने के लायक न प्राप्त हो तो तण्डुल तथा फल आदि जोभी हवनीय उपलब्ध हो उनको जल से धोकर भीगी हुई दशा मे ही हवन करे ।७। दधि–दुग्ध और यवागू से हवन करे तो उनको धोने की आवश्यकता नही है उनको काँसे के पात्र मे या चरुस्थाली मे रखकर अथवा स्रुवा से हवन करना चाहिए । हाथ से हवन न करे।८ अग्नि के मध्य मे 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से प्रथम आहुति देवे और दूसरी आहुति बिना ही मन्त्र के ईशान दिशा मे देवे । इसी प्रकार से सायङ्काल के होम का विधान है ।।९।।

अथ प्रात,—सूर्य्याय स्वाहेतिपूर्व्वा, तूष्णीमेवोत्तरा मध्ये चैवापराजिताया ञ्चैव दिशि । समिधमाधानुपय ६य तथैवोदकाञ्जलीन् प्रसिञ्चेदन्वम स्था इति - त्रविशेष । प्रदक्षिणमग्नि परिक्रम्यापा शेष निनीय पूरयित्वा चमस प्रतिष्ठाप्य यथाथम् । एव मत ऊर्द्ध्वं गृह्येऽग्नौ जुहुयाद्वा हावयेद्वाऽऽजी वितावभृथात् । अथाप्युदाहरन्ति । काम गृह्येऽग्नौ पत्नी जुहुयात् साय प्रातर्होमौ पत्नी गृह्यएषोऽग्निर्भवतीति । निष्ठिते साय-

माशप्रातराशे भूतमिति प्रवाचयेत् । ऋते भगया वाचा शुचिर्भूत्वा– । प्रतिजपत्योमित्युच्चैस्तस्मैनमस्तन्माक्षा इत्युपांशु ।१०-१८।

प्रात काल में होम करने की विधि भी ऐसी ही है केवल 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र के स्थान मे 'सूर्याय स्वाहा', इस मन्त्र से आहुति देवे, इतनी ही विशेषता है ।१०। दोनो कालो मे होम के पश्चात् अग्नि मे एक समिधा बिना किसी मन्त्र का उच्चारण किये डाल देवे, और पहिले के समान ही पर्युक्षण करके उदक की अञ्जलि देवे । इसको 'अनुपर्युक्षण –इस नाम से कहते हैं । अनुपर्युक्षण मे 'हे अदिते ! तूने मेरे कर्म के करने की अनुमति प्रदान की थी मैंने उसी के अनुसार कर्म सम्पन्न किया है'–इस मन्त्र का व्यवहार करे, यही इसमे विशेषता है ।११। अनुपर्युक्षण के पश्चात् अग्नि की परिक्रमा करे और जल के अवशिष्ट भाग को चमस मे रखकर आवश्यक कार्य के लिये रख लेवे ।१२। अग्नि को ग्रहण करके प्रथम बार जैसा हवन करे वैसा ही पूरे जीवन मे करता रहे । अश्वमेध आदि महा भाग मे अवभृथ स्नान करने तक नित्य ही दोनो समयो मे होम करना चाहिए । स्वय न कर सके तो फिर प्रतिनिधि से करावे किन्तु इसका त्याग न करे ।१३।

इस प्रतिनिधि के विषय मे कुछ लोगो का ऐसा कथन है कि–यह गृह्य है जो कि गृह के हित के लिये ही होता है । पत्नी को भी गृह कहा जाता है इसलिये इस गृह्य अग्नि मे यदि पत्नी चाहे तो साय प्रात के होमो का दोनो ही किया करे ।१४ १५। साय काल और प्रात काल मे भोजन प्रस्तुत होने पर छात्रो को अध्ययन करावे । इसी को "ब्रह्म-यज्ञ" कहा जाता है ।१६। ब्रह्म यज्ञ के समय मे जिन वेद के वाक्यो से कल्याण होता है उसका त्याग कर अन्य वाक्यो के प्रयोग से अशुचिता होती है । अपवित्र वचनो के उच्चारण से अशुचिता होती है उसका प्रायश्चित्त ऊँचे स्वर से 'ओ३म्' और मन मे "तस्यै नम" बोले ।१७-१८।

अथ वाग्यतो वलीम् हरेत् । भाषेतान्नसंसिद्धिमतिथिभिः कामं सम्भाषेत । अथ हविष्यस्यान्नस्योद्धृत्य हविष्यैर्व्यञ्जनैरुपसिच्याग्नौ जुहुयात्तूष्णी पाणिनैव । प्राजापत्या पूर्वाहुतिभवति सौविष्टकृत्युत्तरा। अथ बलीन् हरेत्, वाह्यतोवान्तर्वा सुभूमि कृत्वा । सकृदपो निनीय चतुर्धा वलि निदध्यात्, सकृदन्तत परिषिञ्चेत् । एकैक वानुविधानमुभयत परिषिञ्चेत् । स यत् प्रथम निदधाति स पार्थिवो बलिर्भवत्यथ यद् द्वितीयं स वायव्यो यत् तृतीयं स वैश्यदेवो यच्चतुर्थं स प्राजापत्य । अथापरान् बलीन् हरेदुद्धानस्य मध्यमस्य द्वारस्याब्दैवत प्रथमोबलिभवत्योषधिवनस्पतिभ्योद्वितीय आकाशायतृतीय । अथापर बलिं हरेच्छयन वाधिवर्च्चं वा स कामाय वा वलिभवति मन्यवे वा ।१-१०।

इसके अनन्तर वाग्यत होकर हास्य और कौनुक मे भी अनृत भाषण आदि अभिपत भाषण का परित्याग करके बली के लिये पाकादि का जो प्रथम कर्त्तव्य है उसका सम्पादन करे ।१। अन्न से सम्बन्ध रखने वाली ससिद्धि विकतृप्ति आदि विषय वाली होती है उसमे भाषण का निषेध नही है और समागत अतिथियो से नम्रता के भाषण का भी निषेध नही है ।२। पाक के तयार हो जाने पर उसमे से कुछ हविस्यान्त ग्रहण कर बिना ही मन्त्र के पढ व्यञ्जन के साथ हाथ से ही एक आहुति दे देवे । स्रुवा की वहा आवश्यकता नही है ।३। प्रथम आहुति प्रजापति देवता की होती है । अर्थात् मन मे प्रजाओ के स्वामी सृष्टि आदि के करने वाले परम देव का चिन्तन कर 'प्रजापतये स्वाहा'—इसका अस्पष्ट उच्चारण कर देना चाहिए । दूसरी आहुति सौविष्ट कृती होती है अर्थात् जो शोभन अभिलाष को करता है उसी सर्वान्तर्यामी का चिन्तन कर 'स्विष्टकृते स्वाहा' इससे आहुति देवे । इसी को देवयज्ञ—नित्य होम और वैश्वदेव कहा जाता है ।४।

देवयज्ञ नाम वाले उक्त होम के पश्चात् अग्नि चाहे जहाँ भी हो घर या बाहिर, झाड़ू से भूमि को साफ करके उस-उस स्थान मे पशु-पक्षी-पिपीलिका आदि को आहार देकर बलि का कर्म पूर्ण करना चाहिए ।५। स्वच्छ की हुई भूमि मे पहिले एक बार वहाँ पर जल के छीटे लगा कर उस बलि के चार भाग करे और उनपर जल के छीटे देवे ।६। अथवा एक-एक भाग करके ही बलि रक्खे और हर एक के पहिले तथा पीछे एक बार जल छिडके ।७। इन बलि के चारो भागो मे प्रथम भाग पृथ्वी की दूसरी वायुदेव की और तीसरी विश्वदेवा एव चौथी प्रजापति देव की होती है ।८। इन बलियो के रखने वाले ग्रह मे जहाँपर जल रक्खा हो जोकि परिचरणीय हो उसी गृह के मध्य द्वारमे अन्य तीनो बलियो को रख देवे । उसमे प्रथम जल देव का-दूसरी औषधि वनस्पति की और तीसरी आकाश की होती है ।९। तीनो बलियो के रखने के पीछे शयन के घर मे या शयन करने के स्थान मे अथवा मल मूत्र त्याग करने की जगह मे एक ओर बलि रक्खे । शयन-स्थल की बलि काम देव की होती है और दूसरी बलि मन्यु देवता की है ॥१०॥

अथ सस्तूपँ स रक्षोजनेभ्या ।११। अथैतद्बलिशेमद्भिभ्या सिच्यापसलवि दक्षिणानिनयेत् पितृभ्यो भवति ।१२। आसीन एवाग्नौ जुहुयात् ।१३। आसीन पितृभ्यो दद्यात् यथोपपादमितरान् ।१४। स्वयन्त्वेवैतान् यावद्वसेद् बलीन् हरेत् ।१५। अपि वाऽन्यो ब्राह्मण ।१६। दम्पती एव ।१७। इति गृहमेधिव्रतम् ।१८। स्त्री ह साय प्रात पुमानिति ।१९। सर्वस्य त्वेवान्नयैतान् बलीन् हरेत् पित्र्यस्य वा स्वस्त्ययनस्य वाऽर्थार्थस्य वा ।२०।

जहा पर कूडा डाला जावे वहा पर एक बलि राक्षसो के लिये देनी चाहिए ।११। पात्र मे शेष अन्नको जल से धोकर अपसव्य पितृ तीर्थ से दक्षिण दिशामे प्रकीर्ण कर देवे यह बलि पितृगण की होती है ।१२। बैठकर ही अग्नि मे हवन करे पितृगण को बलि भी बैठकर ही देवे और शयन गृह आदि की पूर्व कथित बलि जैसे भी हो सके बठे—

निहृर कर देवे। सुभीते के अनुसार ही करना चाहिए।१३-१४। इन बलियो को अपने समान पर स्वय ही देना चाहिए। असमर्थता होने पर किसी अन्य ब्राह्मण के द्वारा भी दी जा सकती है। इसमे स्त्री पुरुष दोनो ही समान रूप मे अधिकारी है ये कर्म जो इस खण्ड मे वर्णित है गृहस्थो के लिये ही है।१५-१८। किसी आचार्य का मत है कि प्रात घर का स्वामी और साय कालमे उसकी पत्नी ही बलिका हरण करे।१९। पितृगण के कर्म को हो—ब्राह्मण भोजन आदि के लिये हो अथवा अपने भोजन को हो सब बलि कर्म अन्न से ही करना चाहिए।२०।

यज्ञादेव निवर्त्तते।२१। यद्येकस्मिन् काले व्रीहियवौ प्रक्रियेतान्यतरस्य कृत्वा कृत मन्येत।२२। यद्येकस्मिन् काले पुन पुनरन्न पच्येत सकृदेवतद् बलितन्त्र कुर्व्वीत।२३। यद्येकस्मिन् कुले बहुधाऽन्न पच्येत गृहपतिमहानसादेवैतद्बलितन्त्र कुर्व्वीत।२४। यस्यत्वेषामग्रत सिध्येन्नियुक्तनग्नौ कृत्वाऽग्र ब्राह्मणाय दत्त्वा भुञ्जीत।२५। यस्यो जघन्य भुञ्जी तैवेति।२६। अथाप्युदाहरन्ति।२७। एतस्यैवबलिहरणस्यान्तेकामप्रब्रुवीतभवतिहैवास्य।२८। स्वयन्त्वेवाशस्यबलि हरेत् यवभ्योऽध्याव्रीहिभ्यो व्रीहिभ्योऽध्यायवेभ्य सत्वाशस्यो नाम बलिर्भवति।२९। दीर्घायुर्हैव भवति।३०। विश्राणिते फलीकरणानामाचामस्यापामिति बलि हरेत् स रौद्रो भवति स रौद्रो भवति॥३१॥

ज्योतिष्टोम आदि के अनुष्ठान आरम्भ कर देने पर फिर बलि के कर्म का करना उचित नही है।।२१। एक ही काल मे यदि तण्डुल और यव दोनो अन्न उपस्थित हो तो दोनो से बलिकर्म नही करना चाहिए क्योकि दोनो मे से किसी भी एक से बलिकर्म सम्पन्न हो सकता है।२२। एक ही काल मे दो-तीन या इससे भी ज्यादा बार अन्न का

पाक हो तो भी केवल एक ही बार बलिकम करना चाहिए।२३। यदि एक ही मकान एक ही वश के बहुत से व्यक्ति रहते हो और वे सब भिन्न२ अन्न का पाक करते हो तोभी जोभी उन सबमे प्रधान हो उसी की पाकशाला से इस बलि के कम को करना चाहिए। प्रत्येक की पाक शाला से नही करना चाहिए।२४।

यदि एक ही मकान मे पाक करने वाले बहुत से हो तो उनमे सबसे प्रथम जिसका पाक तयार हो जावे वही थोडा सा अन्न अग्नि मे डालकर उस पक्व अन्न मे से अतिथि–सत्कार के पीछे आप भोजन करे। अगर पाकादि के दोष से वह अन्न अग्राह्य हो जावे तो तो उससे आतिथ्य न करके स्वत्र भोजन करे और दुबारा पाक करके अतिथि रीक करनी चाहिए।२५-२६। आचार्य गण दूसरी भी कुछ बात कहते है। पूर्वाचार्य इस बलि हरण के विषय मे कुछ विशेषता बतलाते है। इस बलि हरण के अन्न मे अपने अभीष्ट की प्रार्थना करनी चाहिए। तो इस प्रार्थी की प्रार्थित सिद्धि निश्चय ही हो जाती है।२७-२८। यदि कथित प्रार्थना करे तो स्वय ही आशस्य–इस नाम वाली बलि को प्रदान करे किसी प्रतिनिधि के द्वारा इसे नही करावे। उस आशस्य बलि को बतलाते है—हेमन्त का धान्य जो खेत मे ही है और तयार नही हुआ है तब तक ,और जौ के अन्न के पूर्व जब तक यवशस्य तयार न हुआ हो उस धान्य की उत्पत्ति के समीप मे जो बलि दी जाती है उसी को आशस्य बलि कहा जाता है। इस बलि से अवश्य ही दीर्घायु का लाभ होता है।२९-३०। तुषा से रहित किये हुए धान्य अथवा यव के पाक के सिद्ध होने पर उसके माँड से वह आशस्य बलि रुद्राय नम –इस मन्त्र के द्वारा करनी चाहिए वह बलि रुद्र देवता वाली होती है।३१।

अथ दर्शपौर्णमासयो। सन्ध्या पौर्णमासीमुपवसेदुत्तरामित्येके रुद्र अथ यदहश्चन्द्रमा न दृश्येतताममावास्याम्।पक्षान्ताउपवस्तव्या पक्षादयोऽभियष्टव्या। आमा-

वास्येनहविषापूर्वपक्षमभियजतेपोणमास्येनापर पक्षम् ।१ ६।

इसके अनन्तर दर्श और पौणमास यागो के विषय मे बतलाया जाता है ।१। दश पौणमास यागो के करने के पूर्व दिन मे उपवास करना चाहिए । जिस दिन मे प्रात काल से ही पौर्ण मासी का आरम्भ हो और सन्ध्या तक रहे तभी उपवास करे । अथवा उत्तरा अर्थात् अस्तमि तो दया तथा उच्चैरुदया मे करे । ।२-३। जिस दिन में चन्द्र दशन सम्भवित न हो और सूर्योदय काल मे अम वस्या हो या पीछे प्रतिपत् हो उसी दिन मे अमावस्या का उपवास करना चाहिए । जिस दिन चतुर्दशी के पीछे अमावस्या हो उसमे उपवास का निषेध है । इन दोनो ही उपवासो मे उदय व्य पिनी तिथियाँ ही ग्राह्य होती हैं ।४। जब तक जीवित रहे प्रति मास मे पक्षो के अन्त मे उपवास करना चाहिए और कृष्ण-शुक्ल दोनो प्रतिपत् तिथियो मे यजन करना चाहिए ।५। अम वस्या मे उपवास करके शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा मे ज्यो हवि के द्वारा यजन किया जाता है वह सम्पूण शुक्ल पक्ष का याग मानना चाहिए इसी प्रकार से पूर्णिमा मे भी सम्पूण कृष्ण पक्ष का याग मानना चाहिए ।६।

य परमो विकर्ष सूर्याचन्द्रमसो सा पौर्णमासी य परम सङ्कष सामावास्या । यदहस्त्वेवचन्द्रमा न दृश्येत ताम-मावास्या ङकुर्वीत दृश्यमानेऽप्येकदा गताध्वा भवतीति । अय पौणमासीकालाभवन्तिसन्ध्यावास्तमितोदितावोच्चै-र्वाऽथ यदह पूर्णोभवति पृथगेवेतस्य ज्ञानस्याध्यायो भवत्यधीयीत वा तद्विद्भ्यो वा पर्वावगमयेत् ।।७-१२ ।

जिस तिथि मे सूर्य और चन्द्र इन दोनो ग्रहो का अत्यधिक विप्रकष अर्थात् दूर मे अवस्थान होता है उसी को पूर्णिमा तिथि कहा जाता है और जिस दिन दोनो ग्रहो का अत्यन्त समीप मे अवस्थान होता है उस ही अमावास्या तिथि कहा जाता है ।७। जिस दिन मे चन्द्र दशन न हो उसको अमावस्या कहते हैं । कुछ क्षण के लिये चन्द्रदर्शन की सम्भावना मे यदि अमावस्या मानी जाय तो वह "गताध्वा" कही जाती

है । इस प्रकार से दो प्रकार को अमावस्या होती है ।९। पूर्णिमा तीन प्रकार की होती है—जिस दिन पूर्णचन्द्र होता है वह पूर्णिमा कही जाती है । एक सन्ध्या पूर्णिमा होती है इसमे प्रात कालीन सन्ध्या के पूर्व रात्रि मे पूर्णिमा या प्रतिपदा होती है। दूसरी अस्तमितोदया है। इसमे सूर्यास्त समय मे चतुदशी और इसके पीछे रात्रि मे पूर्णिमा होती है । तीसरी "ऊच्चै पूर्णिमा" है । इसमे सूर्यास्त के पश्चात् चतुर्दशी को छोडकर पूर्णिमा बहुत रात्रि तक रहती है ।१०-११। इसके ज्ञान के लिये ग्रहो और नक्षत्रो की स्थिति तथा गति आदि के ज्ञान की आवश्यकता है इसके लिये ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान करना चाहिए ।१२।

अथयदहरुपवसथो भवति तदहः पूर्वाह्ण एव प्रातराहुति हुत्वतदग्ने स्थण्डिल गोमयेन समन्तम्पर्यु पलिम्पत्यथे- ध्मानुपकल्पयते खादिरान् वा पालाशान् वा खादिर- पालाशालाभे बिभीतकतिल्वकवाधकनीवनिम्बराजवृक्ष- शाल्मल्यरलुदधित्थकोविदारश्लेष्मातकवर्ज ँ सर्ववनस्प- तीनामिध्मोयथा ँ स्याद्विशाखानि प्रति लूना कुशा- बर्हिरुपमूललूना पितृभ्यस्तेषामलाभेशूकतृणशरशीर्य्य- बत्वजमुतदनबशुण्ठवर्ज ँ सवतृणान्याज्य ँ स्थाली- पाकीयान् व्रीहीन् वा यवान् वा चरुस्थाली मेक्षण ँ स्रुव मनुगुप्ता अप इति यानि चानुकल्पमुदाहरिष्यामो न तदह प्रसृज्येत दूरादपि गृहानभ्येयादन्यतस्तुधन क्रीणी यान्न विक्रीणीताबहुवादी स्यात् सत्य विवदिषेदथापरा- ह्ण एवाप्लुत्यौपवसथिक दम्पती भुञ्जीयाता यदेनयो काम्य ँ स्यात् सर्पिमिश्र ँ स्यात् कुशलेन ॥ १३-२६॥५॥

अब काल के निणय के उपरान्त उपवास के दिन मे जो कुछ भी कर्त्तव्य है उसको बतलाया जाता है—उपवास के दिन मे सूर्योदय के समय पूर्णिमा होनी चाहिए । जिसदिन सूर्योदय के समय मे अमावस्या

हो उसदिन मे पूर्वार्द्ध मे अग्निहोत्र और प्रात काल की आहुति आदि सब काय करने चाहिए। सर्व प्रथम गोमय से अग्नि गृह का लेपन करे फिर खैर या ढाक की लकडी सञ्चित करे। यदि इन लकडियो के एकत्रित करने मे असुविधा हो तो वहेडा—लो ा—वाधक–कदम्ब–निम्ब–राजवृक्ष–सेमर–अग्लु–दधित्थ–इन ग्यारह को छोडकर अन्य कोई भी लकडी यज्ञ कर्म मे लाई जा सकती है। देवकाय के लिये स्कन्ध से छिन्न कुछ कुशाऐ लेवे—पिन्टकाय मे मूल मे छिन्न कई कुशाऐ ग्रहण करे। कुशा प्राप्त करने मे असुविधा हो तो शुक–तृण–शर–शीय-वल्वज और मुनत्र इन सात तृणो को त्यागकर अन्य काई भी तृण यज्ञ कर्म म ग्राह्य होता है। घृत पाक के उपयुक्त कतियय धा य अथवा यव। चरुस्थाली मेक्षण–स्रुव–सुरक्षित जल–इन सब को लाकर अग्निगृह मे एकत्रित करना चाहिए। उसदिन मे पालने के योग्य नियमो का ध्यान रक्खे। अपने घर का त्याग न करे—दूर मे भी होतो उस अवसर पर घर लौट आवे—वस्तुऐ खरीद लेवे किन्तु कोई वस्तु वेचे नही—अधिक भाषण न करे—सत्य बोले और स्त्री-पुरष दोनो ही दुपहर के बाद स्नान करे और उपवास के नियमो के अनुसार इच्छा हो वह घृत मिश्रत कर तृप्ति पूर्वक भोजन करे।२२।

मानतन्तव्यो होवा चाहुता वा एतस्य मानुष्याहुतिर्भवति य औहवसथिक नाश्नात्यनीश्वरो ह क्षोधुकोभव त्यकाम्यो जनानाम्पापवसीयसी हास्य प्रजा भवति य औपवसथिक भुड्क्त ईश्वरो ह भवत्यक्षोधुक काम्यो जनाना वसीयसी हास्य प्रजा भवति तस्माद्यत् कामयेतौपवसथिक भुञ्जीयातामध एवैतां रात्रिं शयीण्यतान्तौ खलु जाग्रन्मिश्रवेवैतां रात्रि विहरेयातामितिहासमिश्रेण वा केनचिद्वा जुगुसेयातान्त्वेवाव्रत्येग्य कर्म्म भयो न प्रवसन्नुपवसेदित्याहु पत्न्या व्रत भवतीति। यथा काययेत तथा कुर्य्यात् ॥ १-१० ॥

मान त"तव्य आचार्य का मत है कि उपवास के दिन मे यदि कोई नियमानुकूल भोजन नही करता है तो उसकी मनुष्यो के भलाई के लिये की हुई सवयाग की क्रियाऐ निष्फल हो जाया करती हैं। प्रथम दिन मे उपवास करने के कारण दूसरे दिन क्षुधा से व्याकुल और चञ्चल होकर याग क्रियाओ के सुसम्पादन मे असमर्था होगी—सबको अप्रिय लगेगा तथा पुत्रादिक भी पाप बुद्धि के वशीभूत होगे अतएव यथेच्छ भोजन करके ही याग कम करे । उपवास के दिन खाट पर शयन करे तथा वह रात्रि वैदिक इतिहास की आलोचना आदि मे व्यतीत करनी चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करे। प्रवास मे उपवास न करे। उपवास पत्नी के द्वारा भी सम्पन्न किया जा सकता है। १ से ९ पर्य्यन्त। उपवास के दिन मे भोजन का फल और भोजन न करने का फल दोनों ही बताये गये है—इन दोनो मे जो भी अभीष्ट हो उसी को करना चाहिए।१०।

एवमेवाहिताग्नेरप्युपवसथो भवति यज्ञाम्नायौ विद्ध्यात्। अथपूर्वाह्ण एव प्रातराहुतिं हुत्वाऽग्र णाग्निम्परिक्रम्य दक्षिणतोऽग्ने प्रागग्रान् दर्भानास्तीर्य्य तषा पुरस्तात् प्रत्यङमुखास्तष्ठन् सव्यस्य पाणेरङ गुष्ठेनोपकानष्ठिकया चाङगुल्या ब्रह्माऽऽसनात् तृणमभिसङगृह्य दक्षिणापरमष्टम देश निरस्यति निरस्त परावसुरिनि ॥ ११-१४ ॥

इस रीति से जो नित्य ही अग्निहोत्र करने वाला आहिताग्नि है उसके लिये भी उपवास करने के समस्त नियम आदि हैं—यही वेद की विधि है उस जान लेना चाहिए।११ १२। उसके पर दिन मे प्रतिपदा मे दुपहर के पूव ही नियमानुसार प्रात कालीन आहुति होम को समाप्त करके अग्नि को अपने सामने रखना चाहिए। प्रदक्षिण करके उस सम्मुख स्थित अग्नि के दक्षिण मे कुछ कुशाऐ गिरावे और उन सब कुशाओ के अग्रभागो को पूर्व दिशा मे करे। उस कुशासन पर सामने

पश्चिम की ओर अभिमुख होकर बाये हाथ के अँगूठे और अनामिका अँगुलि से जो ब्रह्मा के लिये कुशाओ को आसन बनाया गया था उन मे से एक तृण ग्रहण कर "निरस्त परावसु"—इत्यादि मन्त्र से नऋ्र्त्य कोण मे प्रक्षिप्त कर देवे। इसी क्रिया को तृण निरसन कहा जाता है ।१२-१४।

अपउपस्पृष्टश्याथ ब्रह्माऽऽसनउपविशत्यावसो सदने सीदामीत्यग्निमुभिमुखो वाग्यत प्राञ्जलिरास्तआकर्म्मण पर्यवसानाद्भाषेत यज्ञ सिद्धिन्नायज्ञीया वाच वदेद्ययज्ञीया वाच वदेद्वैष्णवीमृच यजुर्वा जपेदपि वा नमोविष्णवइ येव ब्रूयात् । यद्यु वा उभय चिकीर्षेद्धौत्रञ्चैवैतेनैवकल्पेन छत्र वोत्तरासङ्ग वोदकमण्डलु दर्भवटु वा ब्रह्मासने निधायतेनैवप्रत्याव्रज्याथान्यच्चेष्टेत् ॥ १५-२१ ॥

इसके उपरान्त सम्पूर्ण कार्यों के निरीक्षण करने वाले ब्रह्मा नाम वाला एक याग का प्रधान पुरुष अपने हाथ पैरो को जल से धोकर उसी कुशाओ के आसन पर जो बिछाया गया था अपना मुख उत्तर की ओर करके उस अग्नि के सामने दोनो हाथ जोडकर "आवसो सदने सीदामि" इस मन्त्र को पढता हुआ नियमित वचनो को ही बोलने का मन मे दृढ प्रतिज्ञा करके जब तक कार्य समाप्त हो वहा पर बैठे। ब्रह्मा को केवल यज्ञ से सम्बन्धित वचन ही बोलने चाहिए अन्य कुछ भी भाषण न करे। यदि आवश्यक ही हो तो विष्णु भगवान् का स्मरण दिलाने वाली किसी ऋचा का अथवा यजुर्वेद के मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। अथवा "नमो विष्णवे"—इतना कहने से भी निर्वाह हो सकता है ।१५-१८। यदि जनाभाव मे होता का कर्म और ब्रह्मा की क्रिया इनको एक ही व्यक्ति को करनी पडे तो उसका कर्त्तव्य है कि ब्रह्मा के लिये बनाये गये उस कुशाओ के आसन पर छत्र अथवा उत्तरीय तथा जल से भरा हुआ कमण्डलु किम्बा कुशाओ के द्वारा बनाया हुआ ब्रह्मा वहा पर स्थापित

कर देना चाहिए और पूर्व की ही भांति प्रदक्षिण आदि पूर्वक सब कुछ करके फिर होता के आसन पर फिर लौटकर स्थित होवे। इसके अनन्तर ही अग्निहोत्र एव जप आदि समस्त कार्य करना चाहिए। चरु का पाक आदि विशेष कम करना है उसकी विशेष विधि पीछे बताई जायगी।१६ २१।

अथोलूखलमुसले प्रक्षाल्य शूर्पञ्च पश्चादग्ने प्रागग्रान् दर्भानास्तीर्योपसादयति ।अथहविर्निर्ववतिव्रीहीन्वायवान् वाकंसेन वा चरुस्थाल्या वामुष्मै त्वा जुष्ट निवपामीति देवतानामादेशंसकृड द्विस्तूष्णीम् अथ पश्चात् पाङमुखो ऽवहन्नुमुपक्रमतेदक्षिणोत्तराभ्या पाणिभ्यान्त्रि फलीकृता स्तुतिपडुलाँस्त्रिदेवेभ्य प्रक्षालयेदित्याहुर्द्विमनुष्येभ्य सकृत्यितृयइति ।। १५ ।।

इसके उपरान्त पूव की ओर अग्रभाग वाली कुशाओ पर उलूखल-मुसल और शूप—इनको भली भाँति जल से प्रक्षालित करके अग्नि के पीछे की ओर रक्खे।१। इसके पश्चात् हवि पाक के लायक बनाने के के लिये धान्य हो या यव हो उनको किसी काँसे के पात्र से अथवा चरु-स्थाली से प्रक्षिप्त करे। किन्तु जितना भी धान्य हवि के योग्य बनाना हो उसे तीन बार मे डाल देना चाहिए। प्रथम बार "अमुष्मै" इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके प्रक्षेप करे और दो बार बिना मन्त्र पढे ही देवे।२-३। फिर पूव दिशा की ओर अपना मुख करके उलूखन के पीछे खडे होकर दोनो हाथो से मूसल को थाम कर उसे करे। तुषो स रहित उस धान्य या यवो को तीन बार साफ करे जोकि देवो के काय के लिये है। ब्राह्मण भोजन प्रभृति मनुष्यो के काय सम्पादित करने के वास्ते दो बार और पितृगण के काय के लिये एक ही बार जल से धोना चाहिए—ऐसी परम प्राचीन प्रथा चली आरही है।४-५।

पवित्रान्तर्हितां स्तण्डुलानावपेत्कुशलश्रृ।मित्र स्थाली

पाकं श्रपयेत्प्रदक्षिणमुदायुवञ्छ्तमभिघार्य्योदगुद्वास्य प्रत्यभिघारयेत् ।। ६-८ ।।

फिर कुशाओ के बनाये हुए पवित्र एव बहुत छिद्र युक्त के मध्य मे साफ किये हुए तण्डुलो को उस मे ग्रहण कर स्थाती मे डाल देवे। पात्र के अवसर पर "मेक्षण" से मिलाकर नीचे-ऊपर पाक करे। यह पाक परम कुशल पाक के करने वाले के हाथो से बने हुए के समान ही होना चाहिए—यह परमावश्यक है। पाक के सम्पन्न होने पर घृत का ढारा देना चाहिए। अग्नि के उत्तर मे उतार कर पुन भाग के अनुरूप घृत का मिश्रण करना चाहिए ।।६-८।।

अग्निमुपसमाधाय कुशै समन्त परिस्तृणुयात् पुरस्ताद्दक्षिणउत्तरत पश्चादिति सवतस्त्रवृतम्पञ्चवृत वा बहुल मणुष्मसं हृतम्प्रागग्रै मूंलानिच्छादयन्पश्चाद्वास्तीर्य्य दक्षिणत· प्राञ्चम्प्रकर्षति तथोत्तरेण दक्षिणोत्तराण्यग्राणि कुर्य्यादेष परिस्तरणन्याय सर्वेस्वाहुतिमत्सु ।। ६-१५ ।।

आगे उन्नीसवें सूत्र मे स्थाली पाक को उतारने के पश्चात् आज्य (घृत)का सस्कार बताया जायगा अतएव स्थाली पाक के उतारने से पहिले ही परिस्तरण करना चाहिए। जिस तरह से बताया जाता है कि समिधाओ को प्रक्षिप्त करके अग्नि को प्रज्वालित करके उसके चारो ओर उसे कुशाओ से ढक देवे। उसमे दिशाओ का क्रम है उसी तरह पहिले पूर्व दिशा मे फिर दक्षिण से-इसके पश्चात् उत्तर दिशा मे और सबसे अन्त मे पश्चिम दिशा म तीन अथवा पाँच बार कुशाओ से ढकना चाहिए। वह समाच्छादन युक्ति से करे जिससे दो-तीन या अधिक कुशा एक ही जगह मे न मिल सके। सब कुशाओ का अगला भाग पूर्व दिशा मे रहे और उन्ही के द्वारा उनका मूल भी समाच्छादित हो जावे। कुशा थोडी हो तो पश्चिम को छोडकर दक्षिणाग्र कुशा से और इसी भाँति उत्तराग्र कुशा से पूर्व की ओर आकर्षित होगा। तात्पर्य यह है

कि चतुष्कोण न कर त्रिकोण ही करना चाहिए । इसको परिस्तरण कहा जाता है । इसी तरह से जो भी आहुतियों विशिष्ट अनुष्ठान होते हैं उन सब में व्यवहार में लाया जायगा ।।६-१५।।

पश्चिमीनप्येके कुर्वन्ति शामीमान् पार्णान् वा उत्तरतोऽपाम्पूर्ण स्रुव प्रणीता भावेन वास्यादित्येके । बर्हिषि स्थालीपाकमासाद्येध्ममभ्याधायाज्यां सं स्कुरुते सर्पिस्तैलन्दधि पयो यवागूं वा ।१६-२०।

कोई २ आचार्य शमी (छोकर) अथवा पलाशर (ढाक) से भी सीमा स्थापन भी किया करते हैं। अग्नि की उत्तर दिशा मे जल से पूर्ण स्रुव की रक्षा करनी चाहिए । उसी को प्रणीता पात्र नाम से कहा जाता है । किसी २ आचार्य का यह भी मत है कि पूर्व मे कहे हुए चमस पात्र मे जल के सुरक्षित रहने से स्रुवा मे जल न रखने से भी कोई हानि नही होती है ।१६-१८। उन प्रक्षिप्त किये हुए कुशाओ पर स्थाली पाक को स्थापित करके फिर ईधन जलकर अग्नि को प्रज्वलित करे और फिर घृत का सस्कार करे । आज्य शब्द से घृत—तैल—दधि दुग्ध और यवागू—इन पाँचो मे से जो भी कोई एक सुलभ एव उपलब्ध हो उसी से यह किया जा सकता है ।।१६-२०।।

ततएव बर्हिष प्रादेशमात्रे पवित्रे कुरुते ओषधिमन्तर्धाय च्छिनत्ति न नखेन पवित्रेस्थो वैष्णव्यावित्यनेन अद्भिरनुमार्ष्टि विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति । सम्पूयोत् पुनात्युदगग्राभ्याम्पवित्राभ्यामङ्गुष्ठाभ्याञ्चोपकाभ्याञ्चाङ्गुलिभ्यामभिसगृह्य प्राक्शस्त्रिरुत्पुनाति देवस्त्वासवितोत्पुनात्वच्छिद्रेणपवित्रेण वसो सूर्य्यस्य रश्मिभिरिति सकृद्यजुषा द्विजस्तूष्णीम् । अथैनेअद्भिरभ्युक्ष्याग्नावभ्युत्सृजेदथैतदाज्यमधिश्रित्योदगुद्वासयेदेवमाज्यस्यसंस्करणकल्पोभवतीति ।२१-२८।

इसके अनन्तर उन्ही पहिले सगृहीत कुशाग्रो के मध्य मे से एक बालिश्त भर प्रमाण वाली दो कुशा लेकर 'तुम विष्णु देवता के हो अतएव स्वत ही पवित्र हो'—इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए ओषधि के बीचो बीच मे छेदन करना चाहिए। फिर "पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ"—इस मन्त्र को पढ़ते हुए जल से धोवे।२१-२३। पूर्व मे कथित रीति से उन दोनो पवित्रो को शोध कर उत्तराग्र करे और फिर उसके द्वारा आज्योत्पवन करना चाहिए अर्थात् घृत मे गिरे हुए तृण आदि को बाहिर पूर्व दिशा की ओर प्रक्षिप्त कर देवे। आज्योत्पवन मे दोनो पवित्रो को अँगूठे और अनामिक से पकडना चाहिए और प्रथम बार "देवस्त्वा" इत्यादि 'यजु' रूप मन्त्र को पढ़े फिर दो वार बिना मन्त्र पढ़े ही उत्पवन करना चाहिए।२४- ५। आज्योत्पवन के पश्चात् इन दोनो पवित्रो को जल से धोकर अग्नि मे डाल देवे। फिर उत्तर दिशा मे प्रज्वलित अगारो पर 'पूत आज्य पात्र' रखना चाहिए। यह आज्य के सस्कार का कल्प है।२६-२८।

पूर्वामाज्यमपर स्थालीपाक । पर्युक्ष्य स्थालीपाक आज्यमानीय मेक्षणेनोपघात होतुमेवोपक्रमते । यद्यु वा उपस्तीर्णाभिघारित जुहुषेदाज्यभागावेव प्रथमौ जुहुयाच्चतुर्गृहीतमाज्य गृहीत्वा पञ्चावत्तन्तु भृगूणामग्नये स्वाहेत्युत्तरत सोमाय स्वाहेति दक्षिणत प्राक्शोजुहुयात् ॥१४॥

चरुस्थाली और आज्यपात्र दोनो ही अग्नि पर रखने की व्यवस्था है। इनमे पहिले आज्य पात्र को और उसके पीछे चरुस्थाली को रखना चाहिए अग्नि के सभी कार्यों मे अनुष्ठेय पूर्व मे उक्त 'अदितेऽनुमन्यस्व" आदि पर्युक्षण' के अन्त मे समस्त कार्य पूर्ण हो जाने पर स्थाली पात्र मे मे घृत को डालकर 'उपघात' होम सम्पन्न करने के वास्ते उपक्रम करना चाहिए।१-२। जब भी कभी "उपस्तीर्णाभिघारित" नाम वाला होम करने का विचार हो उस समय मे इसके पहिले दो 'उपघात होम' करने

चाहिए। इस उपधात होम के करने के समय मे स्रुच् के मध्य मे प्रत्येक बार स्रुवा की धारा से चार बार घृत करना होगा। इस प्रकार से चार बार ग्रहण किये हुए आज्य को सर्व प्रथम "अग्नये स्वाहा"—इस मन्त्र से अग्निकुण्ड के मध्य मे होम करे फिर उत्तर मे 'सोमाय स्वाहा'— इस मन्त्र से अग्निकुण्ड के दक्षिण दिग्भाग मे पूर्व दिग्गत करके होम करना चाहिए। इसमे यह विशेषता है कि भृगुगोत्रोत्पन्न गण के प्रति होम मे पाच बार घृत को ग्रहण करना आवश्यक होता है।३-४।

अथ हविषउपस्तीर्य्यावद्यतिमध्यात्पूर्वार्द्धाच्चतुरवत्ती चेद्भवति मध्यात्पूर्वार्द्धात्पश्चार्द्धादितिपञ्चावत्तीचेद्भ्रूवत्य भिघारयत्यवदानानिप्रत्यनक्तचवदानस्थानान्ययातयामता या अग्नयेस्वाहेतिमध्येजुहुयात्सकृद्वात्रिर्वैतेनकल्पेन।५-१०।

उपघात होम के पीछे उसी स्रुव से एक बार घृत लेकर उसके पश्चात् मेक्षण से चरु को लेना चाहिए। इसकी कुछ विशेषता है कि यदि भृगु गोत्र का हो तो चरुस्थाली के मध्य भाग मे पाच बार चरु का पश्चार्ध से ग्रहण करना आवश्यक है और किसी दूसरे हो गोत्र का हो तो चरुस्थाली के मध्य मे पूर्वार्द्ध से केवल चार बार ही चरु को लेबे। इसके पश्चात् मेक्षण से जहा-जहाँ से चरु निकाले उसी स्थान को आज्य सिञ्चित कर देना चाहिए। जिससे याग के योग्य चरु बना रहे और शुष्क न हो सके। इसके उपरान्त उस ग्रहण किये हुए चरु के ऊपर घृत डालकर उसी घृत विशिष्ट चरु से 'अग्नये स्वाहा'—इस मन्त्र को पढ़ कर मध्य मे होम करे इसीको उपस्तीर्णाव धारित होम कहते है। ऐसे एक या तीन बार करे।५ १०।

अथस्विष्टकृत उपस्तीर्य्यावद्यत्युत्तरार्द्ध पूर्वार्द्धात्सकृदेवभूयिष्ठ द्विरभिघारयेद्यद्य तच्चावत्ती स्याद्द्विरुपस्तीर्यावदायद्विरभिघारयेत् न प्रत्यनक्तचावदानस्थानयातया

मतायाअग्नयेस्विष्टकृते स्वाहेत्युत्तरार्द्धपूर्वार्द्धे जुहुयात् ।११-१४।

उपरि वर्णित होम के अनन्तर प्रकृत होम शेष होने पर स्विष्टकृत हवन करने को पूर्व की ही भाँति स्रुवा से घृत लेने पर चरुस्थाली मे चरु के उत्तरार्द्ध के पूर्वार्द्ध से केवल एक बार कुछ ज्यादा परिमाण मे चरु का ग्रहण करना चाहिए उसके ऊपर घृत का सिञ्चन करे भृगु गोत्र मे सम्पुत्पन्न को दो बार उपस्तरण करना चाहिए। पीछे दो बार चरु ग्रहण करके अभिधारण करे। इसके पश्चात् चरु की आवश्यकता नही रहा करती है। स्विष्टकृत् हवन के वास्ते चरु को लेकर फिर उस पर घृत का सिञ्चन आवश्यक नही होता है। फिर इससे 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि के उत्तरार्ध के पूर्वार्द्ध मे होम करना चाहिए। इसी को स्विष्टकृत् होम कहा जाता है।११-१४।

महाव्याहृतिभिराज्येनाभिजुहुयात् । प्राक् स्विष्टकृत आवाप । गणेष्वेकम्परिसमूहनमिध्मोबर्हिपर्युक्षणमाज्यभागौ च सर्वेभ्य समवदायसकृदेवसौविष्टकृत जुहोति । हुत्वैतन्मेक्षणमनुप्रहरेत्प्रक्षाल्य वैतेनोद्धृत्य भुञ्जीत। न स्रुवमनुप्रहरेदित्येकआहु ।१५-२१।

भूर्भुव स्व. स्वाहा इस मन्त्र से घृत से होम करे—इसको महा व्याहृति होम कहते है।१५। स्विष्ट कृत् होम के पूर्व मे ही आवाय अर्थात् दर्श पौर्ण मास का किम्वा विवाह आदि का प्रवृत होम करना चाहिए।१६।

जहा पर अधिक आवाप करने हो वहाँ पर आवापो के अधिक होने से इधर के ग्रहण करने आदि के कर्म्म अनेक बार नही किये जाते हैं और समस्त आवायो के लिये पूर्व की भाँति चरुके ग्रहण पूर्वक होम आदि शेष पीछे सबके अवसान मे केवल एक बार स्विष्ट कृत होम करे।१७-१८। किसी-किसी आचार्य का मत है कि कार्य के अन्त मे स्रुवा को धोकर रखना चाहिए फिर उसे अग्नि मे न देवे तोभी

कोई हानि नही होती है। इस स्विष्टकृत् होम के पश्चात् मेक्षण की आवश्यकता न रहे तो उसे अग्नि मे प्रक्षिप्त कर देना चाहिए अथवा ऐसा निश्चय होवे कि भोजन के लिये इसकी आवश्यकता है तो उसको धोकर रख लेवे और जब समय हो उसमे भोजन करे।१९-२१।

आग्नेय एवानाहिताग्नेरुभयोदर्शपोर्णमाशयो स्थालीपाकस्यादाग्नेयो वाग्नीषोमीयो वाऽऽहिताग्ने पौर्णमास्यायामैन्दो वैन्द्राग्नो वा माहेन्द्रो वा अमावास्यामपि वाऽऽहिताग्ने रप्युभयो दर्शपौणमासयोराग्नेय एवस्यात् ।२२-२५।

अव दर्शपौर्ण मास के आवाप मन्त्रो को बतलाते हैं यदि यजमान अग्नि होत्र करने वाला हो तो दर्श और पौर्णमास इन दोनो ही यागो मे अक्षये स्वाहा- इसी मन्त्र के द्वारा उपस्तीर्णविधारित चरु का होम करना चाहिए । यदि वह आहिताग्नि हो तो पौर्णमाम याग के आवाय होम मे अग्नये स्वाहा या अग्नी षोमाभ्या स्वाहा इन मन्त्रो को प्रयोग मे लावे। अमावस्या याग मे इन्द्राय स्वाहा या इन्द्राग्नीभ्या स्वाहा—इन मन्त्रो को व्यवहार मे लाना चाहिए। अथवा आहिताग्नि न हो वह भी दश और पौर्णमास इन दोनो ही यागो मे अग्निहोत्री के ही समान अग्नये स्वाहा—इस मन्त्र के द्वारा ही आहुति देवे ।२२-२५।

समिधमाधायानुपर्युक्ष्ययज्ञवास्तु करोति तत एव बर्हिष कुशमुष्टिमादायाज्ये वा हविषि वा त्रिरवदध्यादग्राणि मध्यानि मूलानीत्यक्तँ रिहाणा व्यन्तु वय इत्यथैनमद्भिरभ्युक्ष्या नावप्यर्जयेद्य पशूनामधिपतीरुद्रस्तन्ति चरोवृषापशूनस्माक माहिँ सी रेतदस्तु हुतन्तव स्वाहेत्येतद्यज्ञवास्त्वित्याचक्षते ।२६-२९।

दर्श पौर्णमास यागो मे यह एक कार्य करना आवश्यक है और उस को यज्ञ वास्तु कहा जाता है। यह पूर्व मे उक्त समिधादान और पर्यु

क्षण आदि के कर्मों के पीछे होता है। इस का विधान यह है कि आस्तृत कुशाओ मे के समुदाय से एक मुट्ठी कुशा लेकर आज्य या चरु मे अक्तरिहाणा—इस मन्त्र का उच्चारण करके अग्र–मध्य–मूल के क्रम से तीन वार जल का सिञ्चन करे। उसके पीछे उसे जल स्वच्छ करके या पशूनामधिपति–इस मन्त्र के द्वारा उसे अग्नि मे छोड देना चाहिए–इसी को यज्ञ वास्तु कहते है।२६।

इति गोभिलगृह्य सूत्र समाप्त

पारस्करगृह्यसूत्रम् ।

प्रथम काण्ड

अथातो गृह्यस्थालीपाप ाना कर्म । परिसमुह्योप-लिप्योल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य प्रणीय परिस्तीर्यार्थवदासाद्य पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणी सस्कृत्यार्थवत्प्रोक्ष्य निरुप्याज्यमधिश्रित्य पर्यग्नि कुर्यात् । स्रुव प्रतप्य समृज्याभ्युक्ष्य पुन प्रतप्य निदध्यात् । आज्यमुद्वास्योत्पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववदु पयमनान्कुशानादाय समिधोऽभ्याधाय पर्युक्ष्य जुहुयात् । एष एव विधिय त्र क्वचिद्धोम ॥१॥

गृह्यस्थालीपाक अब गृह्यस्थाली पाको का कर्म बतलाया जाता है । परिसमूहन करके उपलेपन करे और उल्लेखन करके उद्धरण करे तथा अभ्युक्षण करके अग्नि का उपसमाधान करना चाहिए । दक्षिण भाग मे ब्रह्मासन को आस्तरण करके प्रणय करे और परिस्तरण करना चाहिये । अर्थात् पवित्री बनावे और प्रोक्षणी का सस्कार करे । अर्थवत् से प्रोक्षण करके निरुपया करे और घृत को अधिश्रिन करके पर्यतिन करना चाहिये । स्रुव को ताप्त करके निदध्याय करना चाहिये । आज्य को उद्वामित करके उत्पूयन और अवेक्षण करे और प्रोक्षणी को भी करे पूर्व की ही भाँति उपयमन कुशाओ को लाकर समिधाओ का अभ्याधान करे । तथा पर्युक्षण करके आहुतियाँ देनी चाहिये । यह ही विधि होती है जहाँ कही पर भी होम होता है ॥१॥

आवसथ्याधानं दारकाले । दायाद्यकाल एकेषाम् । वैश्यस्य बहुपशोर्गृहादग्निमाहृत्य चातुष्प्राश्यपचनवत्सर्वम् । अरणिप्रदानमेके । पञ्चमहायज्ञा इति श्रुते । अग्न्याधेयदेवताभ्य स्थाली पाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति । त्वन्नो अग्ने, स त्वन्नो अग्ने, इमं मे वरुण, तत्त्वायामि, ये ते शतमया श्चाग्ने, उदुत्तमे, भवतन्न इत्यष्टौ पुरस्तात् । एवमुपरिष्टात्स्थालीपाकस्याग्न्याधेयदेवताभ्यो हुत्वा जुहोति । स्विष्टकृते च । आयास्याग्नेवषट्कृत यत्कमणाऽत्यरीरिच देवा गातुविद इति । बर्हिर्हुत्वा प्राश्नाति । ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥२॥

द्वितीय कण्डिका मे दारकाल मे आवसथ्याधान होता है । एको के मत मे दायाद्य काल है । बहुत पशुओ वाले वैश्य के गृह से अग्नि का आहरण करके सब चातुष्प्राश्य पचनवत् है । एक लोग कहते हैं कि अरणि का प्रदान होता है । पञ्च महायज्ञ है—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है । अग्नि आधेय देवताओ के लिये स्थाली पाक का श्रपन करके आज्य भाग को आविष्ट करके आज्य (घृत) की आहुतियो का हवन करता है । 'त्वन्नो अग्ने, सत्वन्नो अग्ने'' इन मन्त्रो से इस प्रकार ऊपर से स्थाली पाक का अग्न्याधेय देवताओ के लिये हवन करके आहुतियाँ देता है । और स्विष्टकृत में ऐसा ही करे । 'अथास्याग्नेवषट्कृत यत्कमणा त्यरीरिच देवा जातुविद' इस मन्त्र से वर्हि का हवन करके प्राशन करता है इसके अनन्तर ब्राह्मण भोजन होता है ॥२॥

षडर्घ्या भवन्त्याचार्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियःस्नातक इति । प्रतिसवत्सरानर्हयेयु । यक्ष्यमाणास्त्वृत्विज । आसनमाहार्याह साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तमिति । आहरन्ति । विष्टरं पाद्य पादायमुदकमर्घमाचमनीय मधुपर्क दधिमधुघृतमपिहित कांस्ये कांस्येन

अन्यस्त्रिस्त्रि प्राह विष्टरादीनि । विष्टर प्रतिगृह्णाति । वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्य । इम तमभिति ष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ।। इत्येनमभ्युपविशति । पादयोरन्य विष्टर आसीनाय । सव्य पाद प्रक्षाल्य दक्षिण प्रक्षालयति । ब्राह्मणश्चेद्दक्षिण प्रथमम् । विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोह इति । अर्घ प्रतिगृह्णाति आप स्थ युष्माभि सर्वान्कामानवाप्नवानोति । निनयन्नभिमन्त्रयते, समुद्र व प्रहिणोमि स्वा योनिमभिगच्छत । अरिष्टा अस्माक वीरा मा परासेचिमत्पय इति । आचामत्यामागन्यशसा स सृज वचसा । त मा कुरु प्रिय प्रजानामधिपति पशूनामरिष्टि तनूनामिति मित्रस्य त्वेति मधुपर्क प्रतीक्षते । देवस्य त्वेति प्रतिगृह्णाति । सव्ये पाणौ कृत्वा दक्षिणस्यानामिकया त्रि प्रयौति नम श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्ध तत्ते निष्कृन्तामीति । अनामिकाङ्गुष्ठन च त्रिर्निरुक्षयति । तस्यत्रि प्राश्नाति । यन्मधुनो मधव्य परम रूपमन्नाद्यम् । तेनाह मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ।।इति।। मधुमतीभिर्वा प्रत्यृचम् । पुत्रायान्तेवासिने वोत्तरत आसीनायोच्छिष्ट दद्यात् । सर्वं वा प्राश्नीयात् । प्राग्वाऽसचरे निनयेत । आचम्य प्राणान्समृशति । वाङ्म आस्येनसो प्राणोऽक्ष्णोश्चक्षु कर्णयो श्रोत्र बाह्वोर्बलमूर्वोरोजोऽरिष्टानि मेऽङ्गानितनूस्तन्वा मे सह।इति।आचान्तोदकाय शासमादाय गौरिति त्रि प्राह । प्रत्याह । माता रुद्राणा दुहितावसूनाथ स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभि । चिकितुषे जनाय मागामनागामदिति वधिष्ट । मम चामुष्य च पाप्मान हनोमीति यद्यालभेत । अथ यद्युत्सिसृक्षेन्मम चामुष्य च पाप्माहत ओमुत्सजत तृणान्यत्त्विति

ब्रूयात् । न त्वेवामांसोऽर्घ स्यात् । अधियज्ञमधिविवाह कुरुतेत्येव ब्रूयात् । यद्यप्यसकृत्सवत्सरस्य सोमेन यजेत कृताघ्यॉ एवैन याजयेयुर्नाकृताघ्यॉ इति श्रुते ॥३॥

तृतीय काण्डिका मे मधुपर्क पूजा है—ये छै व्यक्ति अर्घ देने के योग्य होते हैं उनमे आचार्य—ऋत्विक्—वैवाह्य अर्थात् विवाह करने के योग्य प्रस्तुत वर—राजा—प्रिय—स्नातक प्रति सम्वत्सर ये पूजा के योग्य होते है । यज्ञादि मे जो यजन करने वाले होते है वे ऋत्विक् होते हैं । आसन का आहरण करके कहे—साधु, आप ठहरिये । हम आपका अभ्यर्चन करेगे । विष्टर—पाद्य—चरण धोने के लिये उदक—अघ—आचमनीय—मधुपर्क—दधि और आपिहित मधु घृत को काँस्य पात्र से काँस्य पात्र मे आहरण करते हैं । अन्य तीन-तीन बार विष्टरादि को बोलता है । विष्टर का प्रतिग्रहण करता है । उद्यत समानो को सूर्य की तरह मैं वर्ष्म हू । उस इसको मैं अभिस्थित करता हूँ, जो कोई मुझको अभिदास करता है । इससे इसको अभ्युपविष्ट करता है । पादा मे अन्य विष्टर आसीन के लिये देवे । सव्य चरण का प्रक्षालन करके दक्षिण चरण का प्रक्षालन करता है । यदि ब्राह्मण होतो प्रथम दक्षिण चरण को प्रक्षालित करना चाहिये । "विराजो होहोऽसि" इस मन्त्र से प्रक्षालन करै । अर्घ का प्रतिग्रहण करता है । आप स्थित हैं आपके द्वारा अर्थात् जलो से सब कामो को प्राप्त करूँ—इस रीति निनयन करता हुआ अभिमन्त्रण करना है । आपको समुद्र मे प्रेरित करता हूँ । अपनी योनि को अभिगमन करे । "अरिष्टा अस्माक वीरा मा परासेचिमत्पय" इति—"आचामस्या मागन्यशसा स सृज वर्चसा । त मा कुरु प्रिय प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् इति" 'मित्रस्य त्वेति" इससे मधुपर्क की प्रतीक्षा करता है । "देवस्य त्वा" इति—इससे प्रतिग्रहण करता है । सव्य पाणि (हाथ) मे करके दाहिने हाथ की अनामिका से तीन बार नमस्कार प्रयुक्त करता है । 'श्यावास्यायान्नशने वत्त आदिद्ध तत्ते निष्कृन्ततामिति'

इससे अनामिका और अ गुष्ठ से तीन बार निरुक्षण करता है। उसको तीन बार प्राशन करता हैं। जो मधु का मधव्य परम रूप अन्नाद्य है। उससे मैं मधु के मधव्य से परम रूप से अन्नाद्य से परम मधव्य अन्नाद होऊँ। इति। अथवा मधुमतियो से प्रत्येक ऋचा मे करे। अपने पुत्र के लिये अथवा अन्तेवासी (छात्र-शिष्य) के लिये जो उत्तर की ओर आसीन है उच्छिष्ट देना चाहिये। अथवा सबका प्राशन करे। अथवा पहिले असचर मे निनयन करना चाहिये। आचमन करके प्राणो को समृष्ट करता है। "वाड्म आस्ये नसो प्राणोऽक्ष्णोश्चाक्षु कर्णयो श्रोत्र वाह्वोर्वलमूर्वोरोजोऽरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्त्वन्वा मे सह" इति इससे आचान्तोदक के लिये शास को लेकर गौरिति तीन बार बोलता है। प्रति कथन करता है। माता रुद्राणा दुहिता वसूना ँ स्वस्तऽऽदित्या नाममृतस्य नाभि। प्रनुवोच चिकितुषे जनाय मागामनागामदिर्ति वधिष्ट। मेरा और इसके पाप्मा का हनन करता हू ऐसा कहे। इसके अनन्तर यदि उत्सिसृक्षा करे मेरा और इसका पाप्मा अहत है तो ओमुत्सृजन तृणानि यत्त्विति—यह बोलना चाहिए। नत्वेवा मा ँ सोऽर्घ म्यात्। अधियज्ञ और अधि विवाह कुरुत—इसमे इस प्रकार से बोलना चाहिये। यद्यपि कई बार मम्वत्सर के सोप के द्वारा यजन करे। अर्घ्य किय हुए ही इसका यजन करावे। जो कृतार्घ्य नही है वे नही करे—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ॥३॥

चत्वार पाकयज्ञा हुतोऽहुत प्रहुत प्राशित इति पञ्चसु बहि शालाया विवाहे चूडाकरण उपनयने केशान्ते सीमन्तोन्नयन इति। उपलिप्त उद्धतावोक्षितेऽग्निमुपसमाधाय। निमन्थ्यमेके विवाहे। उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे कुमार्या पाणि गृह्णीयात्। त्रिषु त्रिषूत्तरादिषु स्वातौ मृगशिरसि रोहिण्या वा। तिस्रो ब्राह्मणस्य वर्णानुपूर्व्येण। द्वे राजन्यस्य। एका वैश्यस्य। सर्वेषा ँ शूद्रामप्येके मन्त्रवर्जम्। अथैना वास परिधापयति।

जरा गच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टीनामभिशस्ति-
पावा । शत च जीव शरद सुवर्चा रयि च पुत्राननुस-
व्ययस्वायुष्मतीद परिधत्स्व वास ॥ इति ॥ अथोत्त-
रीयम् । या अकृन्तन्नवयन्या अतवन्त । याश्चदेवीस्तन्तू-
नभितो ततन्थ । तात्स्वा देवीर्जरसे सव्ययस्वायुष्मतीद
परिणत्स्व वास ॥ इति ॥ अथैनो समञ्जयति समञ्जन्तु
विश्वेदेवा समापो हृदयानि नौ । सम्मातरिश्वा
सधाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥ इति ॥ पित्रा प्रत्तामा-
दाय गृहीत्वा निष्क्रामति । यदैषि मनसा दूर दिशोऽनु
पवमानो वा हिरण्यपर्णो वैकण स त्वा मन्मनसा करो-
त्वित्यसाविति । अथैनौ समीक्षयति । अघोरचक्षुरपति-
घ्न्येधि शिवा पशुभ्य सुमना सुवर्चा । वीरसूर्देव-
कामा स्योनाशन्नो भव द्विपदे श चतुष्पदे ॥ सोम
प्रथमो विविदे गधर्वो विविद उत्तर । तृतीयोऽग्निष्टे
पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा । सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो-
ऽददग्नये । रयि च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ।
सा न पूषा शिवतमामेरय सा न ऊरू उशती विहर ।
यस्यामुशन्त‌ प्रहराम शेप यस्यामु कामा बहवो निवि-
ष्टचा इति ॥ ४ ॥

चार प्रकार के पाक यज्ञ होते हैं—एक हुत होता है, दूसरा अहुत होता है, तीसरा प्रहुत हाता है और चौथा प्राशित है । पाँचो मे वाहिर शाला मे—विवाह मे, चूडाकरण मे, उपनयन मे, केशान्त मे और सामान्तोन्नयन मे होता है । उपलेयन किए हुए मे उद्धता बोक्षित मे अग्नि का उप समाधान करे । कतिपय मनीषियो का मत है कि विवाह मे निर्मन्थ्व होता है । उदगमन मे उत्तरायण सूर्य के होने पर आपूर्यमाण पक्ष मे किसी पुण्यमय दिन मे कुमारी का पाणिग्रहण करना चाहिए । पाणिग्रहण करने के लिए कतिपय नक्षत्र निश्चित किये हुए

हैं–तीनो उत्तराओ मे अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी–उत्तराषाढा और उत्तरा भाद्रपदा– इन तीनो नक्षत्रो मे––स्वाती––मृगशिरा अथवा रोहिणी में पाणिग्रहण करना चाहिए। वर्णों की आनुपूर्वी से ब्राह्मण को तीनों का ग्रहण करना चाहिए––क्षत्रिय को केवल दो ही वर्णों वाली का विधान है––वैश्य केवल अपने ही वर्ण वाली एक कुमारी का पाणिग्रहण करने का अधिकार रखता है। कुछ विद्वानो का मत है कि मन्त्रो से रहित सभी वर्णों वाले शूद्र का भी पाणिग्रहण कर सकते हैं। इसके अनन्तर इसको "जरा गच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टीना ममि शस्ति पावा। शत च जीव शरद सुवर्चा रयि च पुत्रानन्‌ सव्ययस्वायुष्मतीद परिधत्स्व वास" इससे वसन का परिधायन करता है। इसके उपरान्त उत्तरीय वस्त्र अर्थात् शारिका के ऊपर आढने वाला दूसरा वस्त्र का परिध यन करे। उत्तरीय वस्त्र के परिधायन का मन्त्र यह है––"या अकृन्तन्नव यन्या अतन्वत। याश्च दवी स्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जर से सव्ययस्वायुष्मतीद परिधत्स्व वास" यह है। इसके अनन्तर इन दोनो का समञ्जन करे। इसका मन्त्र यह है––"समञ्जन्तु विश्वे-देवा समापो हृदयानि नौ। सम्मातरिश्वा मधाता समुदेष्ट्री दधातु नौ।। इति। पिता से प्रत्ता का लेकर ग्रहण करके निष्क्रमण करता है। निष्क्र-मण का मन्त्र यह है—"यदैदि मनसा दूर दिशोऽनु प वमानो वा हिरण्य पर्णो वैकम स त्वा मन्मनमा करोत्वित्य सावित्ति"। इसके अनन्तर इन दोनो का समीक्षण करता है––मन्त्र निम्नलिखित है––"अघोर चक्षुर-पतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्या सुमना सुवर्चा। वीरसूर्देव कामा स्योमा शन्नो भव द्विपदे श चतुष्पदे। सोम प्रथमो विविदे गन्धर्वोऽददग्नये। रयिं च पुत्रा ँश्चादादग्नि मह्यमथो इमाम्। सा न पूषा शिवतमा मेरय स्तन ऊरू उशती विहर। यस्मामुशन्त प्रहराम शेष यस्यामु कामा बहवो निविष्टया इति। ४।

प्रदक्षिणमग्नि पर्याणीयैके। पश्चादग्नेस्तेजनी कट वा दक्षिणपादेन प्रवृत्योपविशति। अन्वारब्ध

आघारावाज्यभागौ महाव्याहृतय वंप्रायश्चित्त प्राजापत्य स्विष्टकृच्च । एतन्नित्य सव प्राड् महाव्याहृतिभ्यः स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धवि । सर्वप्रायश्चित्तप्राजापत्यन्तरमेतदावापस्थान विवाहे राष्ट्रभृत इच्छञ्जयाभ्याताताश्च जानन् । येन कर्मणेर्त्सेदिति वचनानात् । चित्त च चित्तिश्चाकूत चाकूतिश्चविज्ञातच विज्ञातिश्च मनश्चशवरीश्चदशश्च पौणमास च बृहच्च रथन्तर च। प्रजापतिजयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्र. पृतना जयेषु । तस्मै विश समनमन्तस र्वा स उग्र स इहव्यो बभूव स्वाहेति । अग्निभू तानामधिपति स मावत्विन्द्रो ज्येष्ठाना यम पृथिव्या वायुरन्तरिक्षस्य सूर्यो दिवश्चन्द्रमा नक्षत्राणा बृहस्पतिर्ब्रह्मणो मित्र सत्याना वरुणोऽपां समुद्र स्रोत्यानामन्नं साम्राज्यानामधिपति तन्मावतु सोम ओषधीनाँ सविता प्रसवानाँ रुद्र पशूना त्वष्टा रूपाणाँ विष्णु पवताना मरुतो गमानामधिपतयस्ते मावन्तु पितर पितामहा परेऽवरे ततास्ततामहा । इह मावन्त्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्या पुरोधायामस्मिन्कमण्यस्यादेवहूत्याँ स्वाहेति सर्वत्रानुषजति । अग्निरैतु प्रथमो देवताना सोऽस्यै प्रजा मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदय राजा वरुणोऽनुमन्यता यथेय स्त्री पौत्रमघ नरोदात्स्वा हा ।। इमामग्निस्त्रायता गाहपत्य प्रजामस्मै नयतु दीघमायु । अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामिय स्वाहा ।। स्वस्ति नो अग्ने दिव आपृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र । यदस्या महि दिवि जात प्रशस्त तदस्मासु द्रविण धेहि चित्र स्वाहा ।। सुगन्न पन्था प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्येह्यजरन्न आयु । अपतु मृत्युरमृत न आगाद्वैवस्वतो नो अभय कृणोतु स्वाहेति । पर मृत्यविति चैके प्राशनान्ते ।। ५ ।।

कुछ विद्वानो का मत है कि प्रदक्षिणा अग्नि का पर्याणयन करे। पीछे अग्नि के तेजनी अथवा कर को दाहिने पैर से प्रहृत करके उपविष्ट होता है। अन्वारब्ध आधार और दो आज्यभाग-महात्याहुतियाँ सर्व प्रायश्चित्त प्राजापत्य और स्विष्टकृत है। यह नित्य सर्वत्र है। पहिले महासाहुतियो से यदि अन्य स्विष्ट कृत हो तो आज्य (घृत) से हवि होनी चाहिए। सर्व प्रायश्चित प्राजापत्यान्तर यह है आवाय स्थान है कि बाद मे राष्ट्रभृत की इच्छा करता हुआ और जयाभ्याताओ को जानता हुआ करे। 'येन कमणा र्छे दिति' सन से ऐसा न करे। त्रित्त और चित्ति—आकूत और आकूति—विज्ञान और विज्ञप्ति—और मन—और शक्वरी—और दर्श—और पौर्ण मास—वृहत् और घन्तर हैं, "प्रजापतिजयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्र वृतनाजमेषु। तस्मैं विश समनमन्त सर्वा सव्ग्र.म इहव्यो बभूव स्वाहेति' यह मन्त्र है। "अग्निदेव भूतो के अधिपति है वह मेरी रक्षा करे। इन्द्र ज्येष्ठो का अधिपति है-यम पृथिवी का अधिपति है—वायु अन्तरिक्ष का अधिपति है। सूर्य दिव का है—चन्द्रमा नक्षत्रो का अधिपति है—बृहस्पति ब्रह्म का अधिपति है। मित्र सत्यो का अधिपति है—वरुण जलो का अधिपति है—समुद्र स्रोत्यो का अधिपति है—अन्न साम्राज्यो का अधिपति है वह मेरी रक्षा करे। औषधियो का सोम अधिपति है—सविता प्रसवो का अधिपति है—त्वष्टा पशुओ का अधिपति है। रूपो का अधिपति विष्णु है। मरुत पर्वतो का अधिपति है और गणो के अधिपति गण है वे सब मेरी रक्षा करे। पितर-पितामह—पर—अवर—ततास्तता यह सब मेरी रक्षा करे।" "इह मावन्त्व स्मिन्ब्रह्मणि अस्मिन क्षत्रेऽस्या माशिष्या पुरोधाया यस्मिन् कर्मण्यस्या देवहूत्या स्वाहा-इति—यह मन्त्र है। सर्वत्र अनुषजन करता है। देवताओ मे प्रथम अग्नि आवे। वह इसके लिये प्रजा का मोचन करे और मृत्युपाश से छुडावे। यह मन्त्र है—"तक्ष्य राजा वरुणोऽनुमन्याता यथेय स्त्री पौत्रमघ नरोदात्स्वाहा" अर्थात् यह राजा वरुण ऐसी अनुमति प्रदान करे जिसमे यह स्त्री पौत्र देवे। "इमामग्नि स्त्रायता गार्हपत्य प्रजा मस्यै नयतु दीर्घमायु। अशून्योपस्था जीवता मस्तु माता

पौत्रानन्दमभि विबुध्यतामिय स्वाहा "अर्थात् यह गार्हपत्य अग्नि इस स्त्री की रक्षा करे और इसको दीर्घ आयु देवे । यह अशून्योपस्था माता जीवित रहे और यह पौत्रानन्द को प्राप्त करे । "स्वस्ति नो अग्ने दिव आपृथिव्या विश्वानि देह्ययथा यजत्र । यदस्या महि दिवि जात प्रशस्त तदस्मासु द्रविण धेहि चित्र स्वाहा" अर्थात् हे अग्निदेव ! हमको सर्वत्र स्वस्ति अर्थात् कल्याण प्रदान करो जिससे यहाँ यजन करे । इस पृथिवी आदि मे सब प्रशस्त हुआ है अब आप हमको द्रविण प्रदान करो । "सुगन्न पन्था प्रदिन्न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्न आयु । अपैतु मृत्यु रमृत न आगाद्वैवस्वतो नो अभय कृणोतु स्वा "इति—अर्थात् इसको सुगम मार्ग दिखलाते हुए आइये । ज्योतियो के मध्य मे आयु की वृद्धि हो और मृत्यु दूर जावे । वैवस्वत (यम) अमृत को प्राप्त करावें और हमको अभय प्रदान करे । कतिपय मनीषियो का मत है प्राशवान्त मे "परमृत्यविति" ऐसा होना चाहिए । ५ ।

कुमार्यी भ्राता शमीपलाशमिश्रॉल्लाजानञ्जलिनाऽञ्जलावावपति । ता जुहोतिस हस्तेन तिष्ठती अर्यमण देव कन्या अग्निमयक्षत । सनो अयमा देव प्रेतो मुञ्चतु मा पते स्वाहा ॥ इय नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका । आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्ता ज्ञातयो मम स्वाहा ॥ इमॉल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरण तव । मम तुभ्य च सवनन तदग्निरनुमन्यतामिय स्वाहेति ॥ अथास्यै दक्षिण हस्त गृह्णाति साङ्गुष्ठ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्त मया पत्या जरदष्टिर्यथा स. । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिमह्य त्वादुर्गार्हपत्याय देवा । अमोऽहमस्मि सा त्वसा त्वमस्यमो अहम् । सामाहमस्मि ऋक्त्व द्यौरह पृथिवी त्वम् । तावेहि विवहावहै सह रेतो दधावहै । प्रजा प्रजनयावहै पुत्रान्विदयावहै बहून् ते सन्तु जरदष्टय सप्रियौ

रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । पश्येम शरद शत जीवेम शरद शतं शृणुयाम शरद शतमिति ॥ ६ ॥

कुमारी का भाई शमी (छाकर) और पलाश से मिश्रित लाजाओ (खीलो) को अञ्जलि से अञ्जलि मे आवयन करता है। 'ताजुहोति—हुतेन तिष्ठती अर्यमण देव कन्या अग्नि मयक्षत। सनो अर्यमा देव प्रेतो मुञ्चतु या पते स्वाहा'' अर्थात् वह स्थित होती हुई कन्या उसका हवन करती है और अर्यमा देव एव अग्नि का यजन करती है कि वह अर्यमा देव मेरे पति का मोचन कर देवे। "इयनार्युप ब्रूते ला जाना वपन्ति का आयुष्मानस्तु म पति रेधन्ता ज्ञातयो मम स्वाहा''। अर्थात् लाजाओ का आवयन करती हुई नारी—कहती है कि मेरा पति आयुष्मान हावे और मेरे ज्ञाति के लोग वृद्धि को प्राप्त होवे। "इमा लाजाना वपाम्यग्नौ समृद्धि करण तव। मय तुभ्यच सवनम तदाग्नि रनुमन्यता मियं स्वाहेति'' अर्थात् इन लाजाओ को अग्नि मे आवयन करती हू जो कि तुम्हारी समृद्धि का करने वाला है। यह अग्नि देव अनुमति देवे कि मेरा तुम्हारे लिये सवनम होवे। इसके अनन्तर इसके दाहिने हाथ का अगुष्ठ के सहित ग्रहण करता है और कहता है कि तेरे सौभगत्व के लिये तेरे हाथ को ग्रहण करता हू। मेरे पति के द्वारा वह हाथ जरदृष्टि के ही समान है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से वृद्ध का सहारा यष्टि होती है उसी भाँति वह है। भग—अर्यमा—सविता पुरन्धि मेरे वास्ते दुर्गार्हपत्य के लिये देव है। मै अम हूँ वह तू है मै अभ हूँ। वह कहती है मै अभा हूँ, तुम ऋक् हो, मै द्यौ हू तुम पृथिवी हो। व हम दोनो विवाहें करे साथ मे रेत धारण करे प्रजा को जन्म देवे और बहुत पुत्रो को प्राप्त करे। वे बुढापे की यष्टि होगे। इस प्रकार मे दोनो सप्रिय, रोचिष्णु और सुमनस्यमान होवे। हम सौ वर्ष तक नत्रो से देखे—सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहे और सौ वर्ष तक श्रवण करे। प्रार्थना का तात्पर्य यह है कि सौ वर्ष के जीवन मे हमारे चक्षु और कर्ण सबल सक्षम रहे। जिससे भली भाँति देख व सुन सके।६।

अथैनामश्मानमारोहयत्युत्तरतोऽग्नेर्दक्षिणपादेन । आरोहेममश्मानमश्मेव त्वं स्थिरा भव । अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायत. ॥ इति ॥ अथ गाथा गायति । सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनोवती । या त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रत ॥ यस्या भूतंसमभवद्यस्या विश्वमिद जगत् । तामद्य गाथा गास्यामि या स्त्रीणामुत्तम यश ॥ इति ॥ अथ परिक्रामत.—तुभ्यमग्रे पर्यवहन्सूर्या वहतुना सह । पुन पतिभ्यो जाया दाग्ने प्रजया सह ॥ इति ॥ एव द्विरपर चतुर्थं शूर्पकुष्ठया सर्वाल्लाँजानावपात भगाय स्वाहेति । त्रि परिणीता प्राजापत्यं हुत्वा ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर अग्नि के उत्तर भाग मे इस कुमारी का दाहिने पैर से पाषाण पर आरोहण कराता है। हम इस पाषाण पर आरोहण कराते है इसी अश्म (पाषाण) के समान तुम स्थिरा हो जाओ। पृतन्य से अभिस्थित हो जाओ और पृतनायत को अबबाधित करो । इति। इसके उपरान्त गाथा का गान करता है। हे सरस्वति ! हे सुभगे ! इसको रक्षित करो यह वाजिनीवती है । जिसको तुम इस विश्व भूत की प्रजा मे आगे रखने हो। जिसमे भूत समुत्पन्न हुआ और जिसमे यह विश्व जगत् है। आज उस गाथा को गाऊँगा जो स्त्रियो मे उत्तम यश है। इति। इसके अनन्तर परिक्रमण करते है। तेरे लिये बहुत के साथ आगे सूर्या को पर्यवहन करे। पुन प्रजा के साथ पतियो से जाया को आगे करे। इस प्रकार से अपर हो कर चतुर्थ को शूर्य कुष्ठा से सम्पूर्ण खीलो का भग के लिय आवपन करता है, स्वाहेति । तीन बार परिणीता का प्रजापत्य का हवन करे।७।

अथैनामुदीचीं सप्त पदानि प्रक्रमयति । एकमिषे द्वे ऊर्जे त्रीणि रायस्पोषाय चत्वारि मायोभवाय पञ्च पशुभ्य षड् ऋतुभ्य सखे सप्तपदा

भव सा मामनुव्रता भव ॥ विष्णुस्त्वानयत्विति सर्वत्रानुषजति । निष्क्रमणप्रभृत्युदकुम्भं स्कन्धे कृत्वा दक्षिणतोऽग्नेर्वाग्यत स्थितो भवति । उत्तरत एके-षाम् । तत एनां मूर्धन्यभिषिञ्चति । आप शिवा शिवतमा शान्ता शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेष-जम् ॥ इति ॥ आपोहिष्ठेति च तिसृभि । अथैनां सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति । अथास्यै दक्षिणांसमधि-हृदयमालभते मम । व्रते ते हृदय दधामि मम चित्तमनुचित्त ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ इति ॥ अथैनामम-भिन्त्रयते । सुमङ्गलीरिय वधूरिमां समेत पश्यत सोभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्त विपरेतनेति । ता दृढ-पुरुष उन्मथ्य प्राग्वोदग्वाऽनुगुप्तागार आनडुहेरोहिते चमण्युपवेशयति ॥ इह गावो निषिदन्त्विहाश्वा इह पूरुषा । इहो सहस्रदक्षिणो यज्ञ इह पूषा निषीदतु ॥ इति ॥ ग्रामवचन च कुर्यु । विवाहश्मशान-योर्ग्राम प्रविशनादिति वचनात् । तस्मात्तयोर्ग्राम प्रमाणमिति श्रुते । आचार्याय वर ददाति । गौर्ब्राह्म-णस्य वर । ग्रामो राजन्यस्य । अश्वो वैश्यस्य । अधिरथशत दुहितृमते । अस्तमिते ध्रुव दर्शयति । ध्रुवमसि ध्रुव त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि मह्य त्वादाद्बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सजीव शरद शतम् ॥ इति ॥ सा यदि न पश्येत्पश्यामीत्येव ब्रूयात् । त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौ स्यातामध शयी-यातां सवत्सर न मिथुनमुपेयाता द्वादशरात्रं षड्रात्र त्रिरात्रमन्तत ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर इसको उदीची मे सात पदो को युक्रामण कराता है। एक इष मे—दो ऊर्ज मे— तीन रायस्पोष के लिये—चार

मायोभव के लिये -पाच पशुओ के लिये--छै ऋतुओ के लिये करे। हे सखे ! सप्त पदो वाली हो जाओ। वह मेरे अनुव्रता हो जावे। विष्णु तुझको लावे--इससे सर्वत्र अनुषजन करता है। निष्क्रमण प्रभृति उद कुम्भ को कन्धे पर करके अग्नि की दक्षिण की ओर मौनव्रती होकर स्थित होना है। कुछ के मत मे उत्तर की ओर स्थित होवे ऐसा है। इसके अनन्तर इसके मूर्धा मे अभिषिञ्चन करता है--मन्त्र यह है जिसके द्वारा अभिषिञ्जन किया जाता है--"आप शिवा शिवतमा शान्ता शान्ततमा स्तास्ते कृण्वन्तु भेषषम्" इति अर्थात् येजल शिव है और अधिक मङ्गलमय हैं, ये शान्त है और अधिक शान्त हैं वे जल तेरे भेषज का कृण्वन करे। फिर "आपोहिष्ठा मयोभुवस्तानऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षु से ।१। यो व शिवतमोऽत्पस्तस्य भाजयते हव। उशतीखि मातर ।२। तस्माऽ अरङ्ग मामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपोजन यथाचन" ।३। इन तीनो मन्त्रो से अभिषिञ्जन करना चाहिए। इसके उपरान्त इसका "तच्चक्षुरिति" इस मन्त्र से सूर्य्य देव को दिखाता है। इसके अनन्तर इसके लिये दक्षिण की ओर मेरे हृदय के मध्य मे आलभन करता है। तेरे व्रत मे हृदय को धारण करता हूं, मेरा चित्त तेरे अनुनित्त होवे। मेरे वचन को एक मन वाली होकर सेवन करो, प्रजापति तुझको मेरे लिये नियुक्त करे। इति। इसके उपरान्त इसको अभिमन्त्रित करता है--यह वधू सुमङ्गली है। इसको सब एकत्रित होकर देखिये। इस वधू को सौभाग्य प्रदान कीजिए फिर जैसे आये थे जाइए। दृढ पुरुष उस वधू को उन्मथित करके पूर्व या उत्तर मे किसी अनगुप्त आगार मे अनड्वान् के रोहित चर्म्म पर उपविष्ट कराता है। यहाँ पर गोऐ बैठे और यहाँ पर अश्व तथा यहा पर पुरुष निषण्ण (उपविष्ट) होवें। यहाँ पर सहस्र दक्षिण वाला यज्ञ हो और यहा पर पूषा बैठें। इति। "विवाह श्मशानयो ग्रीम प्रविशवान्"--इस वचन से ग्राम वचन नही करना चाहिए। इससे उन दोनो का ग्राम प्रमाण है-यह श्रुति है। आचार्य्य के लिये वर देता है। ब्राह्मण का गौ वर होता है। क्षत्रिय का वर ग्राम होता है। वैश्य का वर अश्व होता है।

दुहितृमान के लिये शत अधिरथ है । अस्तमित होने पर ध्रुव को दिखाता है। मंत्र यह है—"ध्रुवमसि ध्रुवत्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि मह्यं त्वादाद् बृहस्पति र्मया पत्या प्रजावती सजीव शरद शतम्" इति । अर्थात् आप ध्रुव हैं ध्रुव आपको देखता हूं, ध्रुव के द्वारा अधिपोष्य मुझमे मेरे लिये बृहस्पति ने दिया था, मुझ पति के द्वारा प्रजावती सौ वर्ष तक जीवित रहो । यदि वह न देखे तो देखती हैं यह ही बोलना चाहिए । तीन रात्रि तक अक्षार लवणाशी दोनो होवे । नीचे भूमि पर शयन करे। एक सम्वत्सर पर्यन्त मिथुनी भाव को प्राप्त न होवे अर्थात् मैथुन न करे । अन्तत बारह रात्रि तक—छं रात्रि तक और तीन रात्रि तक इस नियम का परिपालन करना चाहिए ।८।

उपयमनप्रभृत्यौपासनस्य परिचरणम् । अस्तमितानुदितयोर्दध्ना तण्डुलैरक्षतैर्वा । अग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति सायम् । सूर्याय स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति प्रात । पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विनावुभौ । पुमानिन्द्रश्चसूर्यश्च पुमांसवर्तता मयि पुन स्वाहेति पूर्वां गर्भकामा ॥ ९ ॥

उपयमन प्रभृति औपासन का परिचरण सूर्य के अस्तमित और उदित होने पर दोनों समयो मे दधि से— तण्डुलो से अथवा अक्षतो के द्वारा करे। सायङ्काल मे "अग्नये स्वाहा—प्रजापतये स्वाहा" इनसे करे प्रात काल मे "सूर्याय स्वाहा—प्रजापतये स्वाहा"—इनसे करना चाहिए । "पुमान् सौ मित्रावरुणौ पुमा सावश्विना बुभौ । पुमा निन्द्रश्च सूर्यश्च पुमां सवर्त्तया मयि" पुन स्वाहेति पूर्वां गर्भ कामा ।अर्थात् मित्रावरुण पुमान् है—दोनो अश्विनीकुमार भी पुमान् हैं—इन्द्र और सूर्य्य भी पुमान् है, ये सब मुझमे प्रवर्त्तन करे। पूर्वा गर्भ की कामना रखने वाली 'स्वाहा'—यह कहे ।९।

राज्ञोऽक्षभेदे नद्धविमोक्षे यानविपर्यासेऽन्यस्या वा व्यापत्तौ स्त्रियाश्चोद्वहने तमेवाग्निमुपसमाधायाज्यं सस्कृत्येहरतिरिति जुहोति नानामन्त्राभ्याम् । अन्य-

द्यानमुपकल्प्य तत्रोपवेशयेद्राजान ँ स्त्रिय ,वा प्रतिक्षत्र इति यज्ञान्तेनात्वाहार्षमिति चैतया। धुर्यौ दक्षिणा। प्रायश्चित्ति । ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ १० ॥

राजा ने अक्षभेद मे-नद्ध विमोक्ष मे-यान के विपर्यास मे अथवा अन्य व्यापत्ति मे और स्त्री के उद्वहन मे उसी अग्नि का उप समाधान करके आज्य (घृत) को सस्कार करके इह रति रति—इससे हवन करता है और नाना मन्त्रो से करता हैं। अन्य स्थान की उप कल्पना करके उस पर राजा को बिठाना चाहिए अथवा स्त्री को प्रतिक्षेत्र मे बिठावे। इति 'यज्ञान्तेना त्वाहावम्'' इस ऋचा स करे।। दो धुर्य दक्षिणा है। प्रायश्चित्ति करे और इसके अनन्तर ब्राह्मणो को भोजन करावे। १० ।

चतुर्थ्यामपररात्रेऽभ्यन्तरतोऽग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्योत्तरत उदपात्र प्रतिष्ठाप्य स्थालीपाकँ श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति । अग्ने प्रायश्चित्ते त्व देवाना प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै पतिघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा। वायो प्रायश्चित्ते त्व देवाना प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै प्रजाघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा। सूर्य प्रायश्चित्ते त्व देवाना प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै पशुघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा। चन्द्र प्रायश्चित्ते त्व देवाना प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै गृहघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा। गन्धर्व प्रायश्चित्ते त्व देवाना प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै यशोघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहेति। स्थालीपाकस्य जुहोति प्रजापतये स्वाहेति। हुत्वा हुत्वैतासामाहुतीनामुदपात्रे

सँस्रवान्समवनीय तत एना मूर्द्धन्यभिषिञ्चति । या ते पतिघ्नी प्रजाघ्नी पशुघ्नी गृहघ्नी यशोघ्नी निन्दिता तनूर्जारघ्नी तत एना करोमि सा जीर्य त्व मया सहासाविति । अथैनाँ स्थालीपाक प्राशयति प्राणैस्ते प्राणान्सदधाम्यस्थिभिरस्थीनि माँ समाँसानि त्वचा त्वचमिति । तस्मादेवविच्छ्रोत्रियस्य दारेण नोपहासमिच्छेदुत ह्येवंवित्परो भवति । तामुदुह्य यथर्तु प्रवेशनम् । यथा कामी वा काममाविजनितो सभवामेति वचनात् । अथास्यै दक्षिणाँसमधिहृदयमालभते । यत्ते सुसीमेत्हृदय दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाह तन्मा तद्विद्यात्पश्येम शरद शत जीवेम शरद शतँश्रृणु ाम शरद शतमिति । एवमत ऊर्ध्वम् ॥११॥

चतुर्थी मे अपरात्रि मे अभ्यन्तर से अग्नि का उप-समाधान करके दक्षिण की ओर ब्रह्मा को उपविष्ठ कराकर उत्तर की ओर जल के पात्र को प्रतिष्ठापित करे। स्थाली पाक का हवन कर के आज्य भागो को यजन करके आज्य को आहुतियो से हवन करता है। मन्त्र यह है— 'अग्ने प्रायश्चिन्ते त्व देवाना प्रायश्चित्ति रसि ब्राह्मण स्त्वानाथ काम उपधावामि याऽस्यै पतिघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा" अर्थात् हे अग्ने । प्रायश्चित्ति मे तुम देवो के प्रायश्चित्ति हो, नाथ काम ब्राह्मण तुमको उपधावन करता हूँ, जो इसमे पति के हनन करने वाली तनू है इसके उसको नष्ट कर दो स्वाहा । "हे वायो । प्रायश्चित्ति मे आप दोनो के प्रायश्चित्त हो नाथ काम ब्राह्मण आपका उप धावन करता हू, जो इसकी प्रजा के हनन करने वाली तनू है इसके उसको विनष्ट कर दो स्वाहा" । 'हे सूर्य ! प्रायश्चित्ते त्व देवाना प्रायश्चित्ति रसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि याऽस्यै पशुघ्नी तनू स्तामस्यै नाशय स्वाहा" इन दोनो मन्त्रो का अर्थ समान ही पूर्ववत् है केवल प्रजा और पशु के हनन की बात विशेष है । "हे चन्द्र ! प्रायश्चित्त त्व देवाना पाय श्चित्ति रसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि याऽस्यै गृहघ्नी अर्थात्

गृह के ग्ने वाली। तनूस्ता मस्यै नाशय स्वाहा"–अर्थ पूर्ववत् ही है। "गन्धर्व प्रायश्चित्ते त्व देवाना प्रायश्चित्ति रसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै यशोघ्नी (अर्थात् यश के हनन करने वाली) तनू स्तामस्यै नाशाय स्वाहा" अर्थ पूर्वोक्तवत् ही है। 'प्रजापतये स्वाहा" इससे स्थाली पाक का हवन करता है। हवन करके इन आहुतियो का उदक पात्र मे स स्रवो का का समव नयन करके फिर इसके पश्चात् इसके मूर्धा मे अभिषिञ्जन करता है जो मेरी पति के हनन करने वाली–पतिघ्नी–प्रजाघ्नी–पशुघ्नी–यशोघ्नी और निन्दिता तन है जार का हनन करने वाली इसके पश्चात् इसको करता हू वह जीण होकर तू मेरे साथ यह है इति। इसके अनन्तर इसको स्थाली पाक का प्राशन कराता है तेरे प्राणो से प्राणो को, अस्थियो स अस्थियो को, मासो से मासो को और त्वचा से त्वचा को भली भाँति धारण करता हूँ। इससे इस प्रकार का ज्ञाता श्रोत्रिय की दारा के साथ उपहास करने की कभी इच्छा नही करनी चाहिये अथवा इस प्रकार का वेत्ता पर होता है। उसके साथ उद्वाह करके जो ऋतु काल हो उसी के अनुसार प्रवेशन करे। "यथा कामी वा काम मा विजनितो सभवाम" इस वचन से ऐसा ही करे। इसके अनन्तर इसके लिये दक्षिण हृदय के मध्य का आलमन करता है। जो तेरा सुसीम मे हृदय दिव लोक मे चन्द्रमा मे श्रित है। मैं उसको जानता हू वह मुझको जाने, सौ वर्ष नक हम देखे अर्थात् हमारे नेत्रो मे देखने की ज्योति बनी रहे—सौ वर्ष तक जीवित रहे–सौ वर्ष तक श्रवण करे अर्थात् कानो मे श्रवण करने की शक्ति बनी रहे। इस प्रकार इससे ऊध्व मे है। ११।

पक्षादिषु स्थालीपाकं श्रपयित्वा दर्शपूर्णमासदेवताभ्यो हुत्वा जुहोति ब्रह्मणे प्रजापतये विश्वेभ्यो देवेभ्यो द्यावापृथिवीभ्यामिति। विश्वेभ्यो देवेभ्योबलिहरण भूतगृह्येभ्य आकाशाय च वैश्वदेवस्याग्नौ जुहोत्यग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्य स्वाहा अग्नये स्विष्ट ते स्वाहेति प्राशनाग्ने। बाह्यत स्त्रीबलिं हरति

नम स्त्रियै नम पुंसे वयसेऽवयसे नम शुक्लाय कृष्ण-
दन्ताय पापिना पतये नम । ये मे प्रजामुपलोभयन्ति
ग्रामे वसन्त उत वाऽरण्ये तेभ्यो नमोऽस्तु बलिमेभ्यो
हरामि स्वस्ति मेऽस्तु प्रजा मे ददत्विति । शेषमद्भि
प्रप्लाव्य ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥१२॥

पक्ष आदि मे स्थाली पाक का श्रवण कराकर और दश पौण मास देवताओ के लिए हवन करके आहुतियाँ देता है । वे आहुतियाँ–ब्राह्मणे स्वाहा–प्रजापतये स्वाहा–विश्वेभ्यो देवेभ्य स्वाहा–द्यावा पृथिभ्याँ स्वाहा इस प्रकार से होती है । विश्वेदवो के लिए बलिकाहरण भूतगृह्येभ्य और आकाश के लिये वैश्व देवकी अग्नि मे हवन करता है–वे आहुतिया–अग्नये स्वाहा —प्रजा पतये स्वाहा—विश्वेभ्यो देवेभ्य स्वाहा—अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा मे है जो प्राशन के अन्त मे होती है । बाहर से स्त्री बलि को हरण करता है–स्त्रियै नम –नम पुं से—वय से ऽवयसे नम । शुक्लाय कष्णदन्ताय पापिना पतये नम । जो मेरी प्रजा को उपलोभित करते है ग्राम मे निवास करते हुए अथवा अरण्य मे रहने हुए उनके लिये नमस्कार होवे । उनके लिए बलिका हरण करते है । मेरा कल्याण हो, मुझको प्रजा देवे–इति । शेष को जलो से प्रप्लावित करके इसके अनन्तर ब्राह्मणो का भोजन होता है । १२ ।

अथ गर्भाधानं स्त्रिया पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वं स्नात्वा
विरजायास्तस्मिन्नवदिव' आदित्यङ्गर्भमित्य'दित्यमवे-
क्षते गृहे वा स्नापयित्वा तामभिगच्छेदिति श्रुतेस्तस्मि-
न्प्रजाया सभवकाले निशाया कुर्याद्यदि दिवा मैथुन
व्रजेत्क्लीबा अल्पवीर्या अल्पायुषश्च प्रसूयन्तेतस्मादेतद्वर्ज-
येत्प्रजाकामो हि श्रुतिस्मृतिविरोधाभ्या दक्षिणेन पाणि-
ना उभावूरू प्रसार्य प्रजास्थानमभिमृशति पूषा भगं
सविता मे ददातु रुद्र कल्पयति ललामगु विष्णुर्योनि
कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आसिञ्चतु प्रजापतिर्धा-

ता गर्भं दधातु ते । गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके । गर्भं ते अश्विनो देवावाधत्ता पुष्करस्रजाविति सँ मृजेथास्तेजावै श्वानरोदद्याब्द्रह्माणमामन्त्रयतेब्रह्मागर्भं दधात्विति प्राङ्मुख उदङ्मुखो वोपविष्टो मन्थेद्रेतो मूत्रमिति चैके स्रावण कुर्यात् ।।१३।।

इसके अनन्तर गर्भाधान संस्कार होता है। पुष्पवती अर्थात् मासिक धर्मवाली स्त्री के जब चार दिन रजस्वला होने के निकल जावे इससे ऊपर जब वह शुद्धि स्नान कर लेवे और विरजा हो जावे उसी दिन मे 'आदित्य गर्भम् "इत्यादि से आदित्य का अवेक्षण करती है अथवा गृह मे स्नपन कराकर उस स्त्री के साथ अभिगमन करना चाहिये—यह श्रुति के द्वारा प्रतिपादित है। उसमे प्रजा के सम्भव काल निशा मे ही अभिगमन करना चाहिये। यदि दिनो मे मैथुन करे तो जो सन्तति होगी वे क्लीव-अल्प वीर्य वाले—अल्प आयु वाले प्रसून होते है। इस कारण से दिवा मैथुन को वर्जित कर देना चाहिये। जो प्रजा के जनन की कामना वाला श्रुति और स्मृति के विरोधो से दूर रहे तथा दक्षिण हाथ से दोनो ऊरुओ को फैला कर प्रजा के स्थान को अभिमृष्ट करता है। मन्त्र ये है—पूषा—भाग सविता मुझे देवे। रुद्रललामगु को कल्पित करते है—विष्णु योनि को कल्पित करे—त्वष्टा रूपो पिंशित करे। प्रजा निधाता आसिञ्चन करे। तुझे गर्भ धारण करावे। हे सिनीवालि ! गर्भ धारण करो, हे पृथुष्टुके गर्भधारण कराओ। तुझे अश्विनी दोनो देव गर्भ धारण करावे जो पुष्कर स्रज है, तज का ससृजन करे, वैश्वानर देवे। फिर ब्रह्मा जी को आमन्त्रित करता है—ब्रह्मा गर्भ धारण करावे इस प्रकार से प्राङ्मुख अथवा उत्तर की ओर मुख वाला होकर उपविष्ट होते हुए रेत मूत्र का मन्थन कर—ऐसा कुछ विद्वानो का मत है कि स्रावण करना चाहिये। १३।

अथर्तुमती जायामधिगच्छेत्पिण्डपितृयज्ञेनयजेत मध्यमपिण्ड पत्नी प्राश्नाति पुत्रकामा तत एतामाहुति जुहोत्याधत्त पितर इत्यलकारमवजिघ्रत्यायन्तुन इति

जपत्येवमथर्त्तुमतीजायात्हृदयमालभ्य पूर्ववत्सव्येन पाणिनोपस्थमभिमृशति भगप्रणेतरिति प्रागुतेदानीमिनि रेतो मूत्रमिति सधत्ते गायत्रेणेति प्रतिमन्त्र मन्थयति पुत्रकामोऽभिगच्छेन्नित्यम् ॥१४॥

इसके अनन्तर यह है कि भार्या जब ऋतुमती हो तभी अभिगमन करना चाहिए और पिण्ड पितृ यज्ञ के द्वारा यजन करना चाहिये। मध्यम पिण्ड को पत्नी प्राशन करती है जो पत्नी पुत्र की कामना रखने वाली होती है। इसके पश्चात् इस आहुति को देता है। 'आधत्त पितर' इससे अलङ्कार का अवघ्राण करता है—'आयन्तु न' इसका जप करता है। इस प्रकार से जो ऋतुमती जाया हो उसके हृदय का आलभन करके पूर्व की ही भाँति सव्य कर से उपस्थ (जननेन्द्रिय) को अभिमर्शित करता है। 'भगप्रणे तरिति' 'प्रागुते दानी मिति' इससे 'रेतो मूत्रमू इति' इससे सधान करता है 'गायत्रेणेति' इससे प्रति मन्त्र मन्थन करता है। पुत्र की कामना वाला पुरुष नित्य अभिगमन करता है ॥१४॥

सा यदि गर्भं न दधीत सिंह्या श्वेतपुष्प्या उपोष्य पुष्येण मूलमुत्थाप्य चतुर्थेऽहनि स्नातायां निशायामुदपेष पिष्ट्वा दक्षिणस्यां नासिकायामासिञ्चति। इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती। अस्या अहं बृहत्या पुत्र पितुरिव नाम जग्रभमिति ॥१५॥

वह पत्नी यदि गर्भ का धारण न करे तो श्वेत पुष्पी सिंही को उपोषित होकर पुष्य नक्षत्र मे मूल उठाकर चतुर्थ दिन मे शुद्धि स्नान की हुई रात्रि मे जल से पेषण कर दक्षिण नासिका मे आसिञ्चन करता है। मन्त्र यह है—'इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती। अस्या अहं बृहत्या पुत्र पितुरिव नाम जग्रभम् इति' अर्थात् यह ओषधि त्रायमाणा और सहमाना सरस्वती है। मै इस बृहती का नाम पुत्र पिता की तरह ग्रहण करता हूँ ॥१५॥

अथ पुंसवनम् । पुरा स्पन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा । यदह पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युज्येत तदहरुपवास्याल्पाव्याहृते वाससी परिधाप्य न्यग्रोधावरोहाञ्छुङ्गांश्च निशायामुदपेष पिष्ट्वा पूर्ववदासेचनं हिरण्यगर्भोऽद्भ्य सभृत इत्येताभ्याम् । कुशण्टकं सामांशु चैके । कूर्मपित्त चोपस्थे कृत्वा स यदि कामयते वीर्यवान्स्यामिति विकृत्यैनमभिमन्त्रयतेसुपर्णोऽसीतिप्राग्विष्णुक्रमेभ्य ।१६।

इसके अनन्तर पुंसवन संस्कार होता है । 'पुरा स्पन्दते' इससे दूसरे अथवा तीसरे मास मे करना चाहिये । जो दिन ऐसा हो जिसमे चन्द्रमा पुरुष जाति के नक्षत्र से युक्त हो उसी दिन मे उपवास करके अप्लावन करे और अहत वस्त्रो को परिधापित कर न्यग्रोध (वट वृक्ष) के अवरोहो को और शुङ्गो को निशा मे जल से पीसकर पूर्व की भाँति 'हिरण्यगर्भोऽद्भ्य सभृत' इन दो मन्त्रो से आसेचन करे । कतिपय विद्वानो का मत है कि कुशकण्टक और सामाशु का ग्रहण करे । कूर्म के पित्त को उपस्थ मे करे । वह यदि कामना करता है तो 'वीर्यवान् स्याम् इति' इसमे विकृत कर इसका 'सुपर्णोऽसीति' इसे पहिले विष्णु क्रमो से अभिमन्त्रण करता है ॥१६॥

अथ सीमन्तोन्नयनम् ॥ पुंसवनवत् । प्रथमगर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा तिलमुद्गमिश्रं स्थालीपाकं श्रपयित्वा प्रजापतेर्हुत्वा पश्चादग्नेर्भद्रपीठ उपविष्टाया युग्मेन सटालुग्रप्सेनौदुम्बरेण त्रिभिश्च दर्भपिञ्जूलैस्त्रेण्या शलल्या वीरतरशङ्कुना पूर्णचात्रेण च सीमन्तमूर्ध्वं विनयति भूर्भुवः स्वरिति । प्रतिमहाव्याहृतिभिर्वा । त्रिवृतमाबध्नाति । अयमूर्जावतो वृक्ष उर्जीव फलिनी भवति । अथाह वीणागाथिनो राजानं सगायेता यो वाप्यन्यो वीरतर इति । नियुक्तामप्येके गाथामुपोदाहरन्ति । सोम एव नो राजेमा मानुषी प्रजा । अविमुक्तचक्र असीरस्तीरे

तुभ्यमसाविति या नदीमुपावसिता भवति तस्या नाम गृह्णाति । ततो ब्राह्मणभोजनम् ।। १७ ।।

इसके अनन्तर सीमन्तोन्नयन सस्कार होता है । यह भी पु सवन के ही समान होता है । प्रथम गर्भ मे छटे अथवा अष्टम मास मे होता है । तिलो और मूँगो से मिश्रित स्थाली पाक क, हवन करके प्रजापते का हवन करके पीछे अग्नि के भद्रपीठ मे उपविष्टा मे युग्म से सरालुग्रत्मे नौहुम्बरसे और तीन दभ के पिञ्जूलो से–त्रेणी शलल्या से–वीरतर शकु से और पूर्ण पात्र से सीमन्त को ऊपर की ओर "भूर्भुव स्व" इससे करता है । अथवा प्रति महा व्याहृतियो से करे । त्रिवृत आवन्धन करता है । म त्र निम्नलिखित है—'अयमूर्ज्जावितो वृक्ष उर्ज्जीव फलिनीभव' इति 'अथाङ्ग वीणा गाथिनो राजान ँ सगायेता यो वाप्यन्यो वीरतर' इति । कुछ विद्वानो का मत है कि नियुक्ता गाथा को भी उपोदाहृत करते है । 'सोम ही हमारा राजा है और ये मानुषी प्रजा है । अविमुक्त चक्र तीर पर यह तुम्हारे लिए है, इससे जिस नदी का उपवासिता होता है उसका नाम ग्रहण करता है । इसके उपरान्त ब्राह्मण भोजन होता है ।।१७।।

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति । एजतुदशमास्य इति प्राग्यस्यैत इति । अथावरावपतनम् । अवैतु पृश्निशेवल ँ शुने जरायतववे । नैव मांसेन पीवरी न कस्मिश्चनायतन मवजरायुपद्यतामिति । जातस्य कुमारस्याच्छिन्नाया नाड्या मेधाजननायुष्ये करोति । अनामिकया सुवर्णान्तर्हितया मधुघृते प्राशयति घृत वा भूस्त्वयि दधामि भुवस्त्वयि दधामि स्वस्त्वयि दधामि भूर्भुव स्व सर्व त्वयि दधामीति । अथास्यायुष्य करोति । नाभ्यां दक्षिणे वा कर्णे जपति अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मास्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि । साम आयुष्मान्त्सओषधीभिरायुष्मास्तेनत्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि । ब्रह्मायु-

ष्मत्तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि। देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि। ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि। पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। यज्ञआयुष्मान्त्स दक्षिणाभिरायुष्मान्स्तेनत्वायुषायुष्मन्त करोमि। समुद्र आयुष्मान्त्स स्रवन्तोभिरायुष्मास्तेन त्वायुषायुष्मन्त करोमीति। त्रिस्त्रिस्त्र्यायुषमिति च। स यदि कामयेत सवमायुरियादिति वात्सप्रेणैनमाभमृशेत्। दिवस्वपरात्येतस्यानुवाकस्योत्तमामृचपरिशिनष्टि प्रानिदिश पञ्च ब्र ह्मणानवस्थाप्यब्रूयादिममनुप्राणितेति। पूर्वोब्रूयात्प्राणेति। व्यानेति दक्षिण। अपानत्य पर। उदानत्युत्तर। समानेति पश्चम उपरिष्टादवेक्षमाणा ब्रूयात्। स्वय वा कुर्यादनुपरिक्राममविद्यमानेषु। म यस्मिन्दशेजातोभवति तमाभमन्त्रयते वेद ते भूमि हृदय दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाह तन्मा तद्विद्यात्पश्यम शरद शत जीवेम शरद शत श्रृणुयाम शरद शतमिति। अथैनमभिमृशत्यश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्रुत भव। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरद शतमिति। अथास्य मातरमभिमन्त्रयते। इडाऽसि मैत्रावरुणी वीरे वारमजीजनथा। सा त्व वीरवती भव याऽस्मान्वीरवतोऽकरदिति। अथास्य दक्षिण स्तन प्रक्षाल्य प्रयच्छतीम स्तनमिति। यस्ते स्तन इत्युत्तरमेताभ्याम्। उदपात्र शिरस्तानिदधाति। आपोदेवेषुजाग्रथयथादेवषुजाग्रथ। इवमस्या सूतिकाय सपुत्रकायाजाग्रथइति। द्वा देशेसूतिकाग्निमुपसमाधायोत्थानानात्संन्धिवेलया फलीकरग मिश्रान् सर्षपानग्नावावपति शण्डामर्का उपवीर शौण्डिकेय उलूखल। मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवना नश्यतादित

स्वाहा। आलिखन्ननिमिष किं वदन्त उपश्रुतिर्हर्यक्ष कुम्भीशत्रु पात्रपाणिर्नृमणिहन्त्रीमुख सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादित स्वाहेति। यदि कुमार उपद्रवेज्जालेन प्रच्छाद्योत्तरीयेण वा पिताऽङ्क आधाय जपति कूकु र सुकूकुर कूर्कुरो बालबन्धन.। चेच्चेच्छुनक सृज नमस्त अस्तु सीसरा लपेतापह्वर तत्सत्यम् यत्ते। देवा वरमददु स त्वं कुमारमेव वा वृणी था। चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरा लपेतापह्वर तत्सत्यम्। यत्त सरमा माता सीसर पिता श्यामशबलौ भ्रातरौ चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेतापह्वरेति। अभिमृशति न नामयति न रुदति न हृष्यति न ग्लायति यत्र वय वदामो यत्र चाभिमृशामसीति ॥१८॥

सोष्यमान जलो से अभ्युक्षण करता है। 'एजतु दशमास्य' इत्यादि से और 'प्राग्यस्यैत' इति इन मन्त्रो से अभ्युक्षण करना चाहिए। इसके अनन्तर अवैतु प्रश्नि शेवल शुने जराय्वत्तवे। नैव मासेन पीवरी न कस्मिश्चता यतन मवजरायु पद्यताम्' इति इस मन्त्र से अवरावयतन करे। जन्म ग्रहण कर लेन वाले कुमार की अविच्छिन्न नाडी मे मेधाजनन और आयुष्य करता है। सुवर्णान्तर्हिता अनमिका अंगुलि से मधु और घृत का प्राशन कराता है अथवा घृत का कराता है। निम्न प्रकार से महा व्याहृतियो स प्राशन कराना चाहिए—भूस्त्वया दधामि—भुवस्त्वयि दधामि, स्वस्त्वयि दधामि—भूर्भुव स्व सर्व त्वयि दधामि' इति। इसके अनन्तर आयुष्य करता है। नाभि म अथवा दक्षिण काल मे यह निम्नलिखित का जाप करता है—'अग्निरायुष्मान्तम वनस्पतिभि रायुष्मास्तेन त्वाऽऽयुष्मन्त करोमि'—'सोम आयुष्मान्त्स ओषधीभि रायुष्मा स्तेन त्वायुषाऽऽयुष्यमन्त करोमि 'देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि'—ऋषयआयुष्मन्तस्तेव्रतैरायुष्मन्त स्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि'। 'पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्त स्तेन त्वाऽऽ-

ऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि' यज्ञ आयुष्मान्त्स दक्षिणाभि रायुष्मा स्तेन त्वाऽऽयुष्मन्त करोमि'। समुद्र आयुष्मान्त्स स्रवन्तीभिरायुष्मास्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि' इति अर्थात् अग्नि आयुष्मान् है और वह वनस्पतियो से ही आयुष्मान् है उससे तुमको आयु से आयुष्मान् करता हूँ। उपर्युक्त सभी मन्त्रो का अर्थ समान-सा ही होता है केवल सोम ओषधियो से आयुष्मान् है-देव अमृत से आयुष्मान् है—पितर स्वधाओ से आयुष्मान् है-ऋषिगण व्रतो से आयुष्मान् है। यज्ञ दक्षिणाओ से आयुष्मान् है। समुद्र स्रवन्तीयो से आयुष्मान् है यही सबमे भिन्नता है। तीन-तीन बार 'आयुषम् इति' इसको कहे। वह यदि कामना करे तो 'सर्वमायुरियात्' इससे वात्सप्रेण इसको अभिमृष्ट करे। 'दिवस्परीति'—इस अनुवाक के उत्तमा ऋचा को परिशिष्ट करता है। प्रत्येक दिशा मे ब्राह्मणो को अवस्थापित करके 'इसको अनुप्राणित करो-यह बोलना चाहिए। पूर्व वाले को प्राण यह बोलना चाहिये। दक्षिण दिशा मे जो ब्राह्मण अब स्थापित है उसको व्यानमह बोलना चाहिए। दूसरे को अपान-यह कहना चाहिए उत्तर मे स्थित को 'उदान'-कहना चाहिये। समान-यह पाँचवा ऊपर से अवेक्षमाण होता हुआ बोले। अथवा अविद्यमान होने पर स्वय परिक्राम को करना चाहिए। वह जिस देश मे समुत्पन्न हुआ होता है उसको अभिमन्त्रित करता है—वेद तेरी भूमि है। हृदय दिन मे है जो चन्द्रमा मे श्रित है। वेदाह तन्मा तद्विद्या त्पश्येम शरद शत जीवेम शरद शत शृणुयाम शरद शतम्' यह अभिमन्त्रण का मन्त्र है। इसका अर्थ स्पष्ट है और पहिले भी बताया जा चुका है। इसके अनन्तर इसको अभिमृष्ट करता है—'अश्मा भव, परशुर्भव, अस्तुत हिरण्यम भव' अर्थात् अश्मत्पाषाण हो जाओ, परशु हो जाओ और हिरण्य हो जाओ। आत्मा ही पुत्र नाम वाला है वह एक सौ वर्ष तक जीवित रहे। इसके अनन्तर इसकी माता को अभिमन्त्रित करता है। अभिमन्त्रिण का मन्त्र यह है-'इडाऽसि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथा। सा त्व वीरमती भव याऽस्मान् वीरवतोऽकरदिति' तुम इडा हो मत्रावरुणी हो वीर मे वीर को समुत्पन्न करो। वह तुम वीरमती होओ जिसने हमको वीरवान्

किया है इति'। इसके उपरान्त इसके दाहिने स्तन को प्रक्षालित करके इस स्तन को देती हैं इति। जो तुम्हारा स्तन है-यह इन दोनो से उत्तर देवे। जल के पात्र को शिर पर रखता है। मन्त्र इस प्रकार से है— 'आप अर्थात् जल देवो मे जगते है जैसे देवो मे जाग्रत होते है। इसी प्रकार से इस सपुत्रा सूतिका मे जाग्रत होते हैं। इति'। द्वार देश मे सूतिकाग्नि का उपसमाधान कर उत्थान से सन्धि की दोनो वेलाओ मे फली करण मिश्रित सर्षयो को अग्नि मे आवपन करता है। मन्त्र यह है जिससे आवपन किया जाता है-'शण्डामर्का उपवीर शौण्डिकेय उलूखल। मलिम्लुचो द्रोणासश्चवनो नश्यतादित स्वाहा'। 'आलिखन्न निमिष किं वदन्त उपश्रुतिहर्यक्ष कुम्भी शत्रु पात्र पाणि नृमणिर्हन्त्री मुख सर्षपारुणश्चयवना नश्यादित स्वाहा इति'। यदि कुमार उपद्रव करे तो जाल से प्रच्छादन करके अथवा उत्तरीय वस्त्र से प्रच्छादन करे फिर पिता अपनी गोद मे उसको रखकर निम्न मन्त्रो का जाप करता है-'कूर्कुर सुकूर्कुर' यत्र चाभिमृशामसीति ॥१८॥

अथातो यमलजनने प्रायश्चित्त व्याख्यास्यामो यस्य भार्या गौर्दासी महिषी वडवा वा विकृत प्रमवेत्प्रायश्चित्ती भवेत्पूर्णे दशाहे चतुर्णां क्षीरवृक्षाणा काषायमुपसंहरेत् प्लक्षवटौदुम्बराश्वत्थशमीदेवदारुगौरसर्षपास्तेषामपो हिरण्यदूर्वाङ्कुपाम्रपल्लवैरष्टौ कलशान्प्रपूय सर्वौषधीभिदम्पती स्नापयित्वा आपो हिष्ठेति तृसृभि कयानश्चित्र इति द्वाभ्या पञ्चेन्द्रेण पञ्च वारुणेनेदमाप प्रवहतेत्यपाघामति स्नापयित्वाऽलकृत्य तौ दर्भपूर्णवेश्य तत्र मारुतं स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽऽज्य भागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीजु होति पूर्वोक्तै स्नपनमन्त्रै स्थालीपाकस्यजुहोत्यग्नयस्वाहा सोमायस्वाहा पवमानायस्वाहा पावकायस्वाहामरुतायस्वाहामारुतायस्वाहा यमायस्वाहा मरुद्भयऽन्तकायस्वाहा मृत्यवेस्वाहा ब्रह्मणेस्वाहाऽग्नये

स्विष्टकृते स्वाहेत्येतदेव गृहोत्पातेषूलूककपोतगृध्राः श्येनो वा गृहं प्रविशेत्स्तम्भं प्ररोहेद्वल्मीकं मधुजालवा भवेदुदकुम्भप्रज्वलनासनशयनयानभङ्गेषुगृहगोधिकाकृकलासशरीरसर्पणे छत्रध्वजविनाशे सार्पे नैर्ऋते गण्डयोगेष्वन्येष्वप्युत्पातेषु भूकम्पोल्कापातकाकसर्पसंगमप्रेक्षणादिष्वेतदेव प्रायश्चित्त ग्रहशान्त्युक्तेन विधिना कृत्वाऽऽचार्याय वरं दत्त्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्ति वाच्याशिष प्रतिगृह्य शान्तिर्भवति शान्तिर्भवति ॥१६॥

इअके अनन्तर इसलिये यमल (जोडला) के जनन करने मे प्रायश्चित की व्याख्या करेगे । जिसकी भार्या गौ—दासो—महिषी अथवा वडबा विकृत का प्रसव करे तो वह प्रायश्चित्ती होती है । जब दस दिन पूर्ण हो जावे तो चार क्षीर वृक्षो के अर्थात् ऐसे वृक्षो के जिनमे दूध विद्यमान रहता है, काषाय का उपसहार करना चाहिए । प्लक्ष (पाखर)—वट (बड)—औदुम्बर (गूलर)—अश्वत्थ (पीपल)—शमी (छौंकर)—देवदारु और गौर सर्षप है उनका जल हिरण्य—दूर्वांकुर—आम्र पल्लवो से आठ कलशो को पूरित करके और सर्वोषधियो से दम्पती पति-पत्नी) को स्नपन कराकर "आपोहिष्ठामयो भुव" इत्यादि तीन मन्त्रो से "कयानाश्चित्र" इन दो से, पाँच ऐन्द्र से—पांच वारुण से यह आप (जल) प्रवहन करे इति—इससे और अपाद्यम्—इससे स्नपन कराकर तथा अलकृत करके उन दोनो को दर्भों पर उपविष्ट करावे । वहाँ पर मारुत स्थाली पाक का हवन करके आज्य के दोनो भागो का इष्ट करके घृत की आहुतियो को हवन करता है । पूर्वोक्त स्नपन के मन्त्रो के द्वारा स्थाली पाक का हवन करता है । निम्न वचन बोलते हुए हवन करे—"अग्नये स्वाहा—सोमाय स्वाहा—पावमानाय स्वाहा—पावकाय स्वाहा—मरुनाय स्वाहा—मरुताय स्वाहा—मरुद्भ्य स्वाहा—यमाय स्वाहाऽन्तकाय स्वाहा—मृत्यवे स्वाहा—ब्रह्मणे स्वाहा—अग्नये स्वाहा—स्विष्ट कृते स्वाहा—ये ही आहुतियाँ गृहो मे उत्पातो के होने पर उल्लू,

कपोत गृध्र अथवा श्येन घर मे प्रवेश करे तब देवे। उसका कुम्भ, प्रज्वलन, आसन, शयन, मान आदि के भङ्ग हो जाने पर—गृह गाधिका, कृकलास शरीर सर्पण मे—छत्र और ध्वज वे विनाश मे—सार्प मे नैर्ऋतयो—गण्डयोगो मे और अन्य अभ्युत्पातो मे—भूकम्प, उल्कापात, काक और सप के सङ्गम के देखने आदि मे यही प्रायश्चित्त गृहशान्ति मे उक्त विधि से करके आचार्य को वर देव और ब्राह्मणो को भोजन कराकर स्वस्ति वाचन करना चाहिए। आशीष वचन का प्रतिग्रहण करके शान्तिभर्वति अर्थात् शान्ति होती है।१९।

अथ यमलचरु मारुत व्याख्यास्यामो यस्य च यमलौ पुत्रौ दारिका वा प्रजायेत पूर्ण दशाहे चतुर्णांवीरवृक्षाणा काषायमाहृत्याश्वत्थप्लन्यग्राधौदुम्बराश्चत्वारोऽविधवा स्नापयति ब्रह्मचारिणोवा शुल्कवासस ऐन्द्री दिशमुदीची वा मङ्गल पूववाद्गायन्त्यो यामिलिनी ँ स्नापयन्त्याचाय स्नापयति वसो पवित्रेण शतधारेण चाष्टभि कलशै स्नात्वाऽप्रतिरथ जपेदिदमाप प्रवहतेति तौ स्नापितौ वर प्रयच्छत्यानडुहसातृभ्यश्च हिरण्य वस्त्रमेव परीतोषण वाजेवाजेऽवतेति जपत्याघार मारुत चरु जुहोति मरुताय स्वाहा मारुताय स्वाहा मरुद्भ्यो विष्णवे प्रजापतये विश्वेभ्यो देवेभ्योऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति प्राशनान्ते शेष चरु गृहीत्वाऽश्वत्थ प्रदक्षिणीकृत्योपविशेत्तदेव तन्त्र ँ समाप्य ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥२०॥

इसके अनन्तर यमल चरु मारत की व्याख्या करेगे। जिसके यमल दो पुत्र अथवा दारिका समुत्पन्न होवे तो दश दिन के परिपूर्ण हो जाने पर चार दूध वाले वृक्षो के काषाय को लाकर अश्वत्थ—प्लक्ष—न्यग्रोध और औदुम्बर के वृक्षो चारो को अविधवा अर्थात् सौभाग्यवती नारियाँ होवे स्नपन कराती है अथवा ब्रह्मचारी शुक्ल वस्त्रधारी कराते है। ऐन्द्री दिशा अथवा उदीची दिशा मे मङ्गल गायन करती हुई

यमलिनी को स्नपन कराती हैं-आचार्य स्नपन कराता है। वसु के पवित्र शतधार से और आठ कलशो के द्वारा स्नान करके अप्रतिरथ का जाप करे। "इदमाय प्रवहत" इति-इससे वे दोनो स्नामित होवे वर का प्रदान करता है। और आनडुह मातृगण के लिये हिरण्य वस्त्र ही परीतोषण देवे। "वाजे वाजेऽवतेत" इति-इसका जप करता है। अगर मारुत चरु का हवन करता है। आहुतिया देने के मन्त्र निम्न हैं-"मरुताय स्वाहा—मारुताय स्वाहा-मरुद्भ्य स्वाहा-विष्णवे-प्रजापतये-विश्वेभ्यो देवेभ्योऽग्नये स्विष्ट कृते स्वाहा-इति। प्राशन के अन्न मे शेष चरु को ग्रहण करके पीपल के वृक्ष की परिक्रमा करके उपविष्ट हो जावे। उसी तन्त्र को समाप्त करके इसके अनन्तर ब्राह्मणो भोजन कराना चाहिए।२०।

अथातो मूलविधि व्याख्यास्यामो मूलाशे प्रथमे पितुर्नेष्टो द्वितीये मातुस्तृतीये धनधान्यस्य चतुर्थे कुलशोकावह स्वय पुण्यभागी स्यान्मूलनक्षत्रे मूलविधान कुर्यात्सर्वौषध्या सर्वगन्धैश्च सयुक्त तत्रोदकुम्भ कृत्वा वस्त्रगन्धपुष्परत्नसहित श्वेतसिद्धार्थकुसुमादियुक्त कुर्यात्तस्मिन्रुद जपित्वाऽप्रतिरथँ राक्षोघ्न सूक्त द्वितीयोदकुम्भ कृत्वा चतुष्प्रस्रवणसयुक्त तस्मिन्नुपरिष्टान्मूलानि धारयेद्व शपात्रेकृत्वा वस्त्रेबद्धा तस्मिन्प्रधानानि मूलानिवक्ष्याम्यष्टादशमासँ हिरण्मयमूलँ सप्त धान्यानि प्रथमाकाश्मर्या सहदे व्यपराजिता बाला पाठा शङ्खपुष्पी अधोपुष्पी मधुयष्टिका चक्राङ्किता मयूरशिखा काकजङ्घा कुमारीद्वय जीवन्त्यपामार्गभृङ्गराजलक्ष्मणा सुलक्ष्मणा जाती व्याघ्रपत्रचक्रमर्दकसहदेश्वरा अश्वत्थोदुम्बरपलाशप्लक्षवटाकदूर्वारोहितकशमीशतावर्य इत्येवमादिमूल पूरयित्वा तस्मिन्निषिद्धानि मूलानि वक्ष्यामि बैल्वधवनिम्बकदम्बराजवृक्षशालप्रियालुदधिकपित्थकोबिदार-

श्लेष्मातकबिभीतकशाल्मल्यरलुसवकण्टकीवर्जंतत्राभिषे-
ककुर्यात्पितु. शिशोर्जनन्या देवस्य त्वेत्यौदुम्बर्यासन्दी-
मुदगग्रामास्तृणाति। तत्रासीनान्त्सपातेनैकेनाभिषिश्वति
शिरसोऽध्यनुलोमंशिरो मे श्रीर्यंश इति यथालिङ्गम-
ङ्गानि समृशति ।स्नात्वा तदूर्ध्वं नैर्ऋत पायसंश्रप-
यित्वा काश्मर्यमयं स्रुक्स्रुव प्रतप्य सम्मृज्या-
वारब्ध आघारावज्यभागौ हुत्वाऽसुन्वन्तमिति
च्चतस्र स्थालीपाकेन जुहुयात्पञ्चदशाज्याहुती-
श्चतुर्गृहीतेन जुहोति कृणुष्व पाज इति पञ्च
मा नस्तोक इति द्वे या ते रुद्र शिवा तनूरिति
षडग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रज्योतिरमर्त्य शुचि
पावक इडच इति त्वन्न सोम विश्वतो रक्षा
राजन्नघायतो न रिष्ये त्वावत सखेति स्विष्टकृदादि
प्राशनान्ते कृष्णा गौ कृष्णाश्च तिला हेम-
मयमूलं सप्तधान्यसयुक्तमाचार्याय वर दद्यात्कृष्णो-
ऽनडावाब्रह्मणे दद्यान्नक्षत्रसूचकेभ्यो वा वासो
दद्यादन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्य सुवर्णं दद्यात्पायसेन
ब्राह्मणान्भोजयेत्सापदैवते गण्डजातानामेष एव
विधि. कात्यायनेनोक्त. । कृते शान्तिर्भ
वतीति ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर इससे मूलविधि की व्याख्या करेगे। मूलाश मे प्रथम मे पिता को नेष्ट होता है-दूसरे मे माता का नेष्ट है—तीसरे अस मे धन-धान्य को नेष्ट होता है—चौथे अश मे कुल को शोक का देने वाला होता है। स्वय पुण्यभागी होता है। मूल नक्षत्र मे मूल का विधान करना चाहिए। सर्वौषधि से और सर्व गन्धो से सयुक्त वहाँ पर जल के कुम्भ को करके फिर उसको वस्त्र, गन्ध, पुष्प, रत्न से सहित तथा श्वेत सिद्धार्थ, कुसुम प्रभृति से युक्त करके उसमे "हरिॐ नमस्ते रुद्र मन्य

बऽउतोतरषवे नम" इत्यादि रुद्र का जाप करे। अप्रतिरथ रक्षोघ्न सूक्त को जपे द्वितीय उपकुम्भ को करके चार व्रतवणो स सयुक्त करे। उस पर ऊपर मूलो को धारण करना चाहिए। वश पात्र मे करके वस्त्र मे बाँधकर उसमे प्रधान मूलो को बतलाते है। अष्टादश मास हिरण्मय मूल को, सात धान्य प्रथम काश्मर्या–सहदेवी–अपराजिता, बाला, पाठा, शङ्खपुष्पी, अधोपुष्पी, मधुमष्टिका, चक्राङ्किता, मयूर, शिखा, काकजङ्घा, दोनो कुमारी, जीवन्ती, अपामार्ग, भृङ्गराज, लक्ष्मणा, सुलक्ष्मणा, जाती, व्याघ्रपत्र, चक्रमर्द, कसद्धेश्वर, अश्वत्थ, उदुम्बर, पलाश, प्लक्ष, वट, अर्क, दूर्वा, रोहितक, शमी, शतावरी–इत्येव आदिमूल को पूरित करके रखे। उसमें जो मूल निषिद्ध है उनको बतलायेगे। वे निषिद्ध ये है–विल्व–धव–निम्ब–कदम्ब–राजवृक्ष–शाल—प्रियालु—दधि—कपित्थ—कोविदार—श्लेष्मातक—बिभीतक—शाल्मति—अरलु और सर्वकण्टकी इनको वर्जित कर देवे। वहाँ पर अभिषेक करना चाहिए। शिशु के पिता और जननी को देव के समीप मे आकर औदुम्बर्या सन्दी को मुदग ग्रामा आस्तरण करता है। वहाँ पर बैठे हुए इनको एक सम्पात के द्वारा अभिषिञ्जन करता है।"शिरसोऽध्यनु लोम" शिरो मे श्रीर्यश इति "इससे यथालिङ्ग अङ्गो को समृष्ट करता है। स्नान करके उसके आगे नऋृत पायस का हवन करे। काश्मर्यमय स्रुक् स्रुक को प्राप्त करे और समृष्ट करे। अन्वारब्ध आघारावा ज्यके दोनो भागो का हवन करके "असुन्वन्तम्–इति" इससे चार स्थालीपाक के द्वारा हवन करना चाहिए। पन्द्रह घृत की आहुतियाँ चतुर्गहीत के द्वारा हवन करता है। "कृणुष्व पाज" इति—ये पाँच "मानस्तोक इति" ये दो "भाले रुद्र शिवा तनूरिति" ये छै। "अग्नी रक्षासि सेधति शुक्रज्योतिरमर्त्य शुचि पावक ईड्य इति" "त्वन्न सोम विश्वतो रक्षा राजन्न घायतो नरिष्ये त्वावत सखा" इति–इससे स्विष्ट कृद आदि का हवन करे। प्राशन के अन्त मे कृष्णा गौ और काले तिल, हेममय मूल, सात धान्यो सयुत करने अपने आचार्य के लिये वर (दान) देना चाहिए। कृष्णवर्ण वाला अनड्वान किसी ब्राह्मण के लिये दान मे देना चाहिए। जो नक्षत्र सूत्र

अर्थात् राशि गृहादिवता ने वाले हो उनके लिये अथवा वस्त्र देना चाहिए। अन्य ब्राह्मणो के लिये सुवर्ण का दान देना चाहिए। पायस (खीर) के द्वारा ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए। सार्प दैवत मे गण्डजातो की यह ही विधि होती है और इसको कात्यायन ऋषि ने कहा है। इसके करने पर मूल की शान्ति हो जाती है।२१।

दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति । द्व्यक्षर चतुरक्षर वा घोषवदाद्य न्तरन्त स्थ दीर्घाभिनिष्ठान कृत कुर्यान्न तद्धितम् । अयुजाक्षरमाकारान्त स्त्रियै तद्धितम् । शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य । चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका । सूय दीक्षयति तच्चक्षुरिति ॥ २२ ॥

दशमी मे उठाकर ब्राह्मणो को भोजन करवा कर पिता नाम करण करता है। दो अक्षरो वाला अथवा चार अक्षरो वाला आदि अन्त और मध्य से घोष प्रयत्नवाला दीर्घाभिनिष्ठान किया हुआ करना चाहिये तद्धित नही है। अयुजाक्षरो वाला और आकार जिस के अन्त मे हो ऐसा नाम स्त्री के लिए हितकर होता है। ब्राह्मण के नाम के आगे "शर्मा" क्षत्रिय के नाम के आगे "वर्मा" और "गुप्ता"—यह वैश्य के नाम के आगे होना चाहिए शिशु के जन्म के चौथे मास मे घर से बाहिर निष्क्रमणिका अर्थात् निकालने का कार्य करना चाहिए।"तच्चक्षु" इत्यादि मन्त्र के द्वारा सूर्य्य देव को दिखलाया जाता है। २२।

प्रोष्येत्य गृहानुपतिष्ठते पूर्ववत् । पुत्र दृष्ट्वा जपति । अङ्गादङ्गात्सभवसि हृदयादधि जायसे । आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरद शतमिति । अथास्य मूर्द्धानमवजिघ्रति । प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेणावजिघ्रामि सहस्रायुषाऽसौ जीव शरद शतमिति । गवा त्वा हिंकारेणेति

च त्रिदक्षिणेऽस्य कर्णे जपति । अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरे । अस्मे शतँ शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्रशिप्रिन्निति । इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे । पोषँ रयीणामरिष्टिं तनूनाँ स्वात्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नामिति सव्ये स्त्रियै । तु मूर्द्धानमेवावजिघ्रति तूष्णीम् ॥ २३ ॥

बाहिर ले जाकर पुनः गृहो मे आकर पूर्व की ही भाँति उपस्थित होता है । अपने पुत्र को देखकर 'अङ्गा दङ्गात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे । आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरद शतम्" अर्थात् अङ्ग-अङ्ग से सम्भूत होता है और हृदय से अधिजात होता है । आत्मा ही पुत्र नाम वाला है वह सौ वर्ष तक जीवित रहे—इस मन्त्र का जाप करता है । इसके अनन्तर इस नवजात शिशु के मूर्द्धा का अवघ्राण करता है अर्थात् सूँघता है । "प्रजापति का यजन करके हिंकार से अवघ्राण करता हूँ । सहस्रायु मे यह जीवित रहे और सौ वर्ष पर्यन्त जीवे" इस मन्त्र को जपे । और गत्रा त्वा हिंकारेण"—इति—इस मन्त्र से तीन बार इसके दाहिने कान मे जप करता है । मन्त्र यह है—'अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजी षिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरे । अस्मे शतँ शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्निति—"इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्व मस्मे । पौषँ रयोणामारिष्टिं तनूनँ स्वात्मानं वाच सुदिन त्वमह्नामिति" इन मन्त्रो को सव्यकाल मे जपता है । स्त्री के लिये तो केवल मूर्धा का ही मौन रहते हुए अवघ्रण करता है । २३ ।

षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम् । स्थालीपाकँश्रपयित्वा-ऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति देवीं वाच-मजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो

वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वाग-स्मानुप सुष्टुतैतु स्वाहेति । वाजो नो अद्येति च द्वितीयाम् । स्थालोपाकस्य जुहोति प्राणेनान्न-मशीय स्वाहाऽपानेन गन्धानशीय स्वाहा चक्षुषा रूपाण-यशीय स्वाहा श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहेतिप्राशनान्ते सर्वान्रसान्सर्वमन्नमेकत उद्धृत्याथैन प्राशयेत् । तूष्णीं हन्तेति वा हन्तकार मनुष्या इति श्रुते । भारद्वाज्या मांसेन वाक्प्रसारकामस्य ।कपिञ्जलमांसेनान्नाद्यकाम-स्य । मत्स्यैर्जवनकामस्य । कृकषाया । आयुष्यकामस्य । आटचा ब्रह्मवर्चसकामस्य । सर्वैं सवकामस्य । अन्नपर्याय वा ततो ब्राह्मणभोजनमन्नपर्याय वा ततो ब्राह्मण-भोजनम् ॥ २४ ॥

नवजात शिशु के छटवे मास मे अन्न प्राशन संस्कार कराना चाहिए चाहिए अर्थात् आरम्भ मे अन्न खिलावे । स्थाली पाक का श्रवण (हवन) करके आज्य भागो को इष्ट करके आज्य (घृत) की आहुतियो से हवन करता है । मन्त्र यह है—"देवी वाचमजनयन्त देवास्ता विश्वरूपा यशवो वदन्ति । सानोमन्द्रेषपूर्ण दुहाना धेनुर्वाग स्मानुय सुष्टुतैतु स्वाहा" इति । वा जो नो अद्य "इति—इससे द्वितीय आहुति देवे । स्थालीपाक का हवन करता है—"प्राणेनाज्ज मशीय स्वाहा—अपानेन गन्धानशीय स्वाहा—वक्षषा रूपाण्यशीय स्वाहा—श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा" इन मन्त्रो को बोलकर प्राशन के अन्त मे सब रसो सम्पूर्ण अन्न को एक बार उठाकर इसको खिला देना चाहिए । अथवा "तूष्णीं हन्ता" इति—इससे "हन्तकार मनुष्या" इति—श्रुति से करे । व्याक् के प्रसार की कामना का भारद्वाज्य मास के द्वारा—अन्नाद्य कामना का कपिञ्जल मास के द्वारा—जवन कामना का मत्स्यो के द्वारा—आयुष्कामना का कृकषाय के लिए अथवा अन्त पर्याय के लिये । इसके अनन्तर अन्नपर्याय के लिये ब्राह्मणो को भोजन करावे ।२४।

———

द्वितीय काण्ड

सावत्सरिकस्य चूडाकरणम् । तृतीये वाऽप्रतिहृते। षोडशवर्षस्य केशान्त । यथामङ्गल वा सर्वेषाम् । ब्राह्मणान्भोजयित्वा माता कुमारमादायाप्लाव्याहृते वाससी परिधाप्याङ्क आधाय पश्चादग्नेरुपविशति । अन्वारब्ध आज्याहुत्वा प्राशनान्ते शीतास्वप्सूष्णा आसिञ्चत्युष्णेन वाय उदकेनेह्यदिते केशान्वपेति । केशश्मश्र्विति च केशान्ते । अथात्र नवीनीतपिण्ड घृतपिण्ड दध्नो वा प्रास्यति । तत आदाय दक्षिण गोदानमुन्दति । सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनू दीर्घायुत्वाय वर्चस इति । त्र्येण्या शलल्या विनीय त्रीणि कुशतरुणान्यन्तदधात्योषध इति । शिवो नामेति लोहक्षुरमादाय निवर्तयामीति प्रवपति येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् । तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्य जरदष्टिय-थासदिति । सकेशानि प्रच्छिद्यानडुहे गोमयपिण्डे प्रास्यत्युत्तरतो ध्रियमाणे । एव द्विरपर तूष्णीम् । इतरयोश्चोन्दनादि । अथ पश्चात्त्र्यायुषमिति । अथोत्तरतो येन भूरिश्चरा दिव ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम् । तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तय इति । त्रि क्षुरेण शिर प्रदक्षिण परिहरति समुख केशान्ते । यत्क्षुरेण मज्जयिता सुपेशसा वप्त्वा वा वपति केशाँश्छिन्धि शिरो माऽस्यायु प्रमोषी । मुखमिति च केशान्ते । ताभिरद्भि शिर समुद्य नापिताय क्षुर प्रयच्छति । अक्षण्वन्परिवपेति । यथामङ्गल केशशेषकरणम् । अनुगुप्तमेत सकेश गोमयपिण्ड निधाय गोष्ठे पल्वल उदकान्ते वाऽऽचार्याय वर ददाति । गा

केशान्ते । संवत्सरं ब्रह्मचर्यमवपनं च केशान्ते द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः ॥ १ ॥

एवं सम्वत्सर का जब बालक हो जावे तो उस समय में चूडाकरण संस्कार करना चाहिए अथवा अप्रतिहत तीसरे वर्ष मे करे। सोलह वर्ष का केशान्त होता है। अथवा जिस रीति से मङ्गल होता हो सब का करे। ब्राह्मणो को भोजन कराकर बच्चे की माता कुमार को लेकर आप्लावन करे और नूतन वस्त्र का धारण कर गोद मे बालक को लेकर पीछे अग्नि के उपविष्ट होती है। अन्वारब्ध आहुतियो का हवन करके प्राशन के अन्त मे शीतल जलो मे उष्णो का आसिञ्चन करती है अथवा उष्ण उदक से यहाँ पर उदित होने पर केशो का वपन करती है। इति। 'केशश्मश्रुश्च" इससे केशान्त मे करे। इसके अनन्तर नवनीत (मक्खन) का पिण्ड–घृत का पिण्ड अथवा दधि का पिण्ड का प्राशन कराती है। इसके अनन्तर लेकर दक्षिण गो दान देता है। "सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे" इति अर्थात् सविता के द्वारा समुत्पन्न दैवी जल उन्दन करे। तेरा तनू दीर्घायुत्व और वर्चसे के लिये हो—इस मन्त्र से करे। त्रेण्या शलल्या से निनयन कर 'तीन तरुण कुशो का ओषध मे अन्तर्धान करता है" इति। "शिवोनाम" इससे लौह के क्षुर (उस्तरा) को लेकर "निर्वर्तयामि"–इससे प्रवपन करता है। जिसके द्वारा अर्थात् क्षुर के द्वारा सविता ने सोम राजा के और विद्वान् ने वरुण का वपन किया था। उससे ब्रह्मा का वपन करे। यह इसका जिससे आयुष्य और जरदष्टि हो जावे। केशो के सहितो का प्रच्छादित करके आनडुह गोमय पिण्ड पर उत्तर की ओर ध्रियमाण पर बैठता है। इस प्रकार से दो बार चुपचाप अपर करे। इतरो का उन्दनादि करे। इसके अनन्तर पीछे "त्र्यायुषम् इति' करे। इसके अनन्तर उत्तर की ओर "येन भूरिश्चरा दिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्य्यम्। तेन ते वपामि ब्राह्मणा जीवा तवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये" इति इस मन्त्र से वपन करे। तीन बार क्षुर के द्वारा शिर को प्रदक्षिण मे परिहरण करता है। सम्मुख मे केशान्ते सेशस मर्जन करने वाले जिस क्षुर से वपन

करके अथवा वपत करता है। 'केशो को काटो, शिर को मत छेदन करो। इसको आयु का प्रमोषी मुख ह'—इससे केशान्त मे करे। उन जलो से शिर को सभुद करके नापित के लिये क्षुर देना है। 'अक्षण्वन्य रिवयेति'' इस मन्त्र से देवे। फिर मङ्गल के अनुमार केशो का शेष करण होता है। इस अनुगुप्त से केश गोमय पिण्ड को रखकर गोष्ठ मे—पल्वल मे अथवा उदकान्त मे आचार के लिये वर होता है। केशान्त मे गौ दवे। एक सम्वत्सर तक ब्रह्मचय रख—अवपन केशान्त मे करे। बारह रात्रि तक—छै रात्रि पयन्त और अत म तीन रात्रि पयन्तरक्खे।१।

अथ कणवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा पुष्येन्दुचित्राहरिरेवताषु पूर्वाह्णे कुमारस्य मधुर दत्त्वा प्राङ्मुखोपविष्टस्य दक्षिण कणमभिमन्त्रयते भद्र कर्णेभिरिति सव्य वक्ष्यन्तीवेदिति चाथ भिन्द्यात्ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ २ ॥

इसके अनन्तर कर्ण वेध सस्कार तीसरे वर्ष मे अथवा पाचवे वर्ष मे पुष्येन्दु चित्राहरि रेवती नक्षत्रो मे दिन के पूव भाग मे कुमार को कुछ मधुर पदार्थ देकर पूव की ओर मुख करके उपविष्ट के दाहिने कर्ण को 'भद्र कर्णेभि' इससे अभिमन्त्रित करता है और 'सव्य वक्ष्यन्ती वेदिति' इससे इसके उपरान्त भेदन करना चाहिये। इसके अनन्तर ब्राह्मणो को भोजन करावे ॥२॥

अष्टवष ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भाष्टमे वा। एकादशवर्षे राजन्यम्। द्वादशवष वश्यम्। यथामङ्गल वा सवेषाम्। ब्राह्मणान्भोजयेत्त च पर्युप्तशिरसमलङ्कृतमानयन्ति। पश्चादग्नेरवस्थाप्य ब्रह्मचयमागामिति वाचयति ब्रह्मचार्यसानीति च। अथैन वास परिधापयति येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वास पयदधादमृतम्। तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वचस इति। मेखला बध्नीते। इय दुरुक्त परिबाधमाना वण पवित्र पुनती म

आगात् । प्राणापानाभ्या बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयमिति । युवा सुवासा परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमान । त धीरास कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त इति वा । तूष्णी वा । अत्र यज्ञोपवीतपरिधान (यज्ञोपवीत परम पवित्र प्रजापतेयत्सहज पुरस्तात् । आयुष्य-मग्र्य प्रतिमुञ्च शुभ्र यज्ञोपवीत बल्मस्तु तेज ।। यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनो पनह्यामीत्यथाजिन प्रयच्छति मित्रस्य चक्षुर्वरुण बलीयस्तेजो यशस्विस्थविरं समिद्धम् । अनाहनस्य वसन जरिष्णु परीद वाज्यजिन दधेऽहमिति) दण्ड प्रयच्छति । त प्रतिगृह्णाति । यो मे दण्ड परापतद्वैहायसोऽधि भूम्याम् । तमह पुन-रादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसायेति । दीक्षावदेके दीर्घसत्रपैतीति वचनात् । अथास्याद्भिरञ्जलिना-ऽञ्जलि पूरयति आपो हिष्ठेति तिसृभि । अथैनं-सूयमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति । अथास्य दक्षिणां-समधिहृदयमालभते । मम व्रते ते हृदय दधामि मम चित्तमनु चित्त ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यमिति । अथास्य दक्षिणंहस्त गृहीत्वा आह को नामासीति ।असावह भो इति प्रत्याह । अथैनमाह कस्य ब्रह्मचार्यसीति । भवत इत्युच्यमान इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्य-स्तवाहमाचार्यस्तवामाविति ।अथैन भूतेभ्य परिददाति प्रजापतये त्वा परिददामि देवाय त्वा सवित्रे परिददाम्यद्भ्यस्त्वौषधीभ्य परिददामिद्यावापृथि-वीभ्या त्वा परिददामि विश्वेभ्यस्त्वादेवेभ्य परिद दामि सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्य परिददाम्यरिष्ट्या इति ।।२।।

आठ वर्ष का जब ब्राह्मण का कुमार हो उस समय में उसका उपनयन संस्कार करा देना चाहिये अथवा गर्भ से आठवे वर्ष मे करा देवे। ग्यारहवे वर्ष मे क्षत्रिय का तथा द्वादश वर्ष मे वैश्य का उपनयन करा देना चाहिए। अथवा जैसा भी मङ्गल हो सब वर्णों का करा देवे। ब्राह्मणो का भोजन करना चाहिये और उस कुमार को पर्युप्त शिर वाले को अलकृत करके आनयन करते हैं। पीछे अग्नि के अवस्थापित करके 'ब्रह्मचर्य मागामिति' इसका वाचन करता है और 'ब्रह्मचार्य सानिति' इसका वाचन करता है। इसके अनन्तर इसको 'येने द्राय वृहस्पतिर्वास पर्यदधादमृतम्। तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे' इस मन्त्र क द्वारा वस्त्र का परिधायन करता है। मेखला को बाँधता है। मेखल बन्धन का मन्त्र यह है—'इय दुरुक्त परिबाधमाना वर्ण पवित्र पुनतीम आगात्। प्राणापानाभ्या बलमादधाना स्वसा देवी सुभागा मेखलेयमिति' अथवा 'युवा सुवासा परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति ज यमान। त धीरास कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त इति' इस मन्त्र से करे। अथवा कोई मन्त्र का वाचन न कर मौन ही होकर करे। यहा पर यज्ञोपवीत का परिधान करे। यज्ञोपवीत के परिधान का मन्त्र यह है—'यज्ञोपवीत परम पवित्र प्रजापतेर्यत्सहज पुरस्तात्। आयुष्य मग्रय प्रतिमुञ्च शुभ्र यज्ञोपवीत बलमस्तु तेज'। यज्ञोपवीत हो, यज्ञ का तुमको यज्ञोपवीत के द्वारा उपनयन करता हू—इससे इसके उपरान्त अजिन होता है। 'मित्रस्य चक्षुर्द्धरुण बलीयस्तेजो यशस्वि स्थविर गमिद्धम्। सनाहनस्य वमन जरिष्णु परीद वाज्यजिन दधेऽहम् इति' इससे दण्ड देता है। उसको प्रतिग्रहण करता है। 'योमे दण्ड परापतद्वैहायसोऽधि भूम्याम्। तमह पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसायेति' मन्त्र यह है। कतिपय विद्वानो का मत है दीक्षा के समान दीर्घसत्रमुपैती—इस वचन से करे। इसके पश्चात् इसकी अञ्जलि को जलो से अञ्जलि के द्वारा पूरित करता है। 'आपो हिष्ठा मयोभुव'। इत्यादि तीन मन्त्रो के द्वारा इसके उपरान्त 'तच्चक्षु' इस मन्त्र से इसको सूर्य का उद्वीक्षण कराता है। इसके अनन्तर 'मम व्रते ते हृदय दधामि

मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्' इस मन्त्र से इसके दक्षिणा ` समावि हृदय का आलभन करता है। इसके अनन्तर इसके दाहिने हाथ को ग्रहण करके 'को नामासि' अर्थात् किस नाम वाला है—यह कहता है । 'असावह भो' अर्थात् मै यह हू—यह प्रत्युत्तर देता है। इसके उपरान्त इससे कहे किसके ब्रह्मचारी हो । मै आपका हो ब्रह्मचारी हूँ—ऐसा प्रत्युत्तर देने पर इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, अग्नि तुम्हारा आचार्य है और तुम्हारा मै आचार्य हू, तुम्हारा यह है इति । इसके उपरान्त इसको भूतो के लिये परिदान करता है । मन्त्र ये है—'प्रजापतये त्वा परिददामि देवाय त्वा

इससे समिधा लाओ। इसके अनन्तर इस कुमार ब्रह्मचारी के लिए अग्नि के उत्तर मे सावित्री का अनुकथन करे। प्रत्यङ्मुख होकर उपविष्ट के लिए—उपसन्त, समीक्षमाणे, समीहित के लिए सावित्री देवे। कतिपय मनीषीगण यह कहते है कि दक्षिण की ओर स्थित समासीन को देना चाहिए। पच्छ अर्द्ध ऋचा का अंश और सर्वा को तृतीय के द्वारा अनुवर्तन करता हुआ करे। सम्वत्सर मे—षाण्मास्य मे, चौबीस दिन मे, बारह दिन मे, छै दिन मे, तीन दिन मे, अथवा तुरन्त ही गायत्री को ब्राह्मण के लिये 'आग्नेयो वै ब्राह्मण' इस श्रुति के वचन से बोल देना [illegible]

[illegible]

च म आप्यायन्ता वाक्प्राणश्चक्षु श्रोत्र यशो बलमिति त्र्यायुषाणि करोति भस्मना ललाटे ग्रीवाया दक्षिणेऽँसे हृदि च त्र्यायुषमिति प्रतिमन्त्रम्) ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर समिधाओ का आधान होता है। 'अग्ने सुश्रव सुश्रवस मा कुरु। यथा त्वमग्ने सुश्रव सुश्रवा अस्येव मा ँ सुश्रव सौश्रवस कुरु। यथा त्वमग्ने देवाना यज्ञस्य निधिपा अस्येयमह मनुष्याणा वेदस्य निधिपो भूयासम्' इस मन्त्र को बोलकर हाथ से अग्नि का परि-

अत्र भिक्षाचर्यचरणम् । भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षेत । भवन्मध्यां राजन्य । भवदन्त्यां वैश्य । तिस्रोऽप्रत्याख्यायिन्य । षड् द्वादशापरिमिता वा । मातर प्रथमामेके । आचार्याय भैक्ष निवेदयित्वा वाग्यतोऽह शेष

सावित्रीका भवन्ति। नैनानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्न चैभिर्व्यवहरेयुः। कालातिक्रमे नियतवत्। त्रिपुरुष पतितसावित्रीकाणामपत्ये सस्कारो नाध्यापनं च। तेषां सस्कारेप्सुर्व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काममधीयीरन्व्यवहार्या भवन्तीति वचनात्॥ ६

इसके अनन्तर भिक्षाचरण के विषय मे बतलाया जाता है। ब्राह्मण वर्ण का ब्रह्मचारी जब भिक्षाचरण करने जावे तो भवत् शब्द का पूर्व मे प्रयोग करे अर्थात् भवति 'भिक्षा देहि' ऐसा कहे और भिक्षाचरण करे। जो क्षत्रिय वर्ण का ब्रह्मचारी होवे तो उसको भवत् शब्द का प्रयोग करना चाहिए। यदि वैश्य वर्ण का ब्रह्मचारी होतो उसको भवत् शब्द का प्रयोग अन्त मे करना चाहिए। इस प्रयोग से ही यह प्रतीत हो जाता है कि किस वर्ण का ब्रह्मचारी भिक्षाचरण कर रहा है। तीनो ही वर्णों के ब्रह्मचारी भिक्षा देने के योग्य है। इनमे किसी का भी प्रत्याख्यान नही करना चाहिए। षट् अथवा द्वादश परिमिता होवे। कुछ विद्वानों का मत है प्रथमा भिक्षा माता को लाकर देनी चाहिए। अपने आचार्य के लिये भिक्षा का निवेदन कर देवे और मौन होकर दिन के शेष तक स्थित रहे—ऐसा कुछ विद्वानो का मत है। आदि होता हुआ अरण्य से समिधा का आहरण करके उस अग्नि मे पूर्व की ही भाँति आधान करके वाणी का विसृजन करता है—भूमि पर नीचे शयन करने वाला और अक्षराल वर्ण का अशन करने वाला होना चाहिये। ब्रह्मचारी को दण्ड को धारण करना—अग्नि का नित्य नियम से परिचरण करना—अपने गुरुदेव की सेवा—सुश्रूषा करना और भिक्षाचरण करना चाहिये। उपवीती ब्रह्मचारी को मधु—मास—मञ्जन—ऊपर (ऊँचा) आसन—स्त्री गमन—अनृत—अहत्ताहान इन सबको वर्जित कर देना चाहिये। अडतालीस वर्ष पर्यन्त वेद ब्रह्मचर्य का समाचरण करे। अथवा बारह बारह वर्ष प्रत्येक वेद मे लगावे। अथवा जितने समय मे भी वेदो का ग्रहण होवे तब तक करना चाहिए। ब्रह्मचारी के धारण करने के लिये सबके वस्त्र और

क्षौभ वस्त्र तथा आविक वस्त्र होने चाहिये । ब्राह्मण वर्ण के ब्रह्मचारी का उत्तरीय वस्त्र ऐणेय अजिन होना चाहिए । क्षत्रिय का उत्तरीय रौरव अजिन अर्थात् रुरु का चर्म होना चाहिए । वैश्य का उत्तरीय वस्त्र अर्थात् शरीर पर ऊपर ओढने का वस्त्र बकरी का अथवा गौ का चर्म होना चाहिये । अथवा न होने पर सभी का उत्तरीय वस्त्र गौ का अजिन ही होवे क्योकि यह प्रधान होता है ।

ब्राह्मण की मेखला मूँज की होनी चाहिए । यदि मूँज का अभाव होतो कुशाश्मन्तक बलवजो की बनावे । धनुष की प्रत्यञ्चा की मेखला क्षत्रिय की होनी चाहिये और वैश्य की मौर्वी मेखलावन्त होनी चाहिए । ब्राह्मण के लिये दण्ड पलाश (ढाक) वृक्ष का रक्खे—राजन्य (क्षत्रिय) का दण्ड बिल्व वृक्ष का होना चाहिये । अथवा सभी उपर्युक्त वृक्षो का दण्ड सभी वर्ण वालो के लिये हो सकता है । ब्राह्मण के दण्ड की ऊँचाई केशो के बराबर होनी चाहिये । क्षत्रिय का दण्ड ललाट के समान ऊँचा होना चाहिये । नासिका के बराबर वैश्य वर्ण वाले ब्रह्मचारी का दण्ड होना चाहिये । आचार्य के द्वारा जिस समय मे बुलाया गया हो उसी समय मे उटकर प्रतिश्रवण करना चाहिए । यदि गुरुदेव शयन कर रहे हो तो बैठा रहे और यदि आचार्य वर बैठे हो तो खडा रहे—यदि गुरु-देव खडे हो तो स्वय अभिक्रमण करे और यदि वे अभिक्रमणकारी हो तो अभिधावन करे । वह इस प्रकार से वर्तमान होता हुआ यहाँ पर अज वास करता है और यहाँ पर आज रहता है—इति अर्थात् यह उस स्नातक की कीर्त्ति होती है । स्नातक भी तीन प्रकार के हुआ करते है—एक विद्यास्नातक होता है—दूसरा व्रतस्नातक होता है और तीसरा विद्या व्रतस्नातक हुआ करता है । इति ॥

वेद को समाप्त करके और व्रत को समाप्त न करके जो समावर्त्तन किया करता है वह विद्या स्नातक कहा जाता है । व्रत को तो समाप्त कर देवे और वेद को समाप्त न करे और समावर्तन किया करता है वह व्रतस्नातक नाम से पुकारा जाया करता है । जो वेद और व्रत दोनो को

समाप्त करके संमावर्तन करता है वही विद्या व्रतस्नातक होता है। इति सोलह वर्ष तक उपनयन सस्कार का ब्राह्मण का काल अनतीत होता है अर्थात् सोलह वर्ष की उम्र तक ब्राह्मण के उपनयन सस्कार काल व्यतीत हुआ नहीं माना जाता है। अधिक से अधिक सोलह वर्ष तक उपनयन करा ही देना ब्राह्मण के लिए आवश्यक है। बाईस वर्ष की अवस्था तक क्षत्रिय काल अनतीत माना जाता है। चौबीस वर्ष की आयु तक वैश्य का उपनयन सस्कार करा देने का काल अनतीत होता है। इन तीनो वर्णों के लिए बताने वालों के निकल जाने पर ये सब पतित सावित्रीक हो जाया करते है अर्थात् फिर इनको सावित्री के ग्रहण करने का कोई अधिकार नही रहता है और पतित हो जाया करते हैं। उपर्युक्त आयु के समाप्त हो जाने पर फिर इनको नही पढाना चाहिये—न याजन ही कराना चाहिए और फिर इनके साथ कोई भी अभिव्यहार ही करना चाहिए। काल के अतिक्रम हो जाने पर नियतवत् होवे। तीन पुरुष (पुश्त-पीढी) तक जो सावित्री पाने के अधिकार से पतित हो गये हो उनके अपत्य (सन्तति) मे भी सस्कार नही होता है और न अध्याय नही होता है। उनके सस्कार की इच्छा रखने वाला पुरुष व्रात्यस्तोय के द्वारा यजन करके स्वेच्छया अध्ययन करे और फिर वे व्यवहार के योग्य ही हो जाया करते है—ऐसा वचन है ॥६॥

अथोपनीतो ब्राह्मणस्त्रिशिख शिखी जटिलो मुण्डो वाऽक्षारालवणाशो स्यात्सावित्रं षड्रात्र त्रिरात्रं सद्य काल वा चरेत्तदेव व्रतमुदीक्ष्य दण्डमपो निधाय मेखला यज्ञोपवीत चाप्स्वन्तरिति प्रत्यृच नमो वरुणायति त्रिमधुर दत्त्वा ततोऽस्याग्नेय प्रथम वेदव्रतमादिशेद्ब्राह्मणक्षत्रियविशा पञ्चसावत्सरिकाणि वेदव्रतानि भवन्त्याग्नेयं शुक्रियमौपनिषदं शौलभ गोदानमिति पञ्चसावत्सरिकाणि वेदव्रतानि चरित्वा स्नात्वोपव्रत चरेत्त्रिष्ववगुण्ठनं शुक्रियादिषु शुक्रियं शुक्रभि. श्रावयेदौपनि-

षड्भिः शौलभं शौलभिनीभिरथवा विद्यमान आब्रह्म-न्नुदीरतामानो भद्रा आशु शिशान इमानुकमिति च वेदशिरसाऽवगुण्ठयेदवगुण्ठनो त्रिवालपञ्चवलि (वा नाभि-देशात्प्रच्छाद्य वाग्यतोऽरण्येऽध शयीत ग्रामे गोष्ठेदेवताय-तने वा व्युष्टायामवगुण्ठनीमरण्ये विसृजेदहृश्रमस्योदुत्य चित्र देमित्युदिवानातेऽर्के जपति वषति द्यौ शान्तिरिति-शान्ति करोति शान्तिभाजन गुरवे दद्यादेवमेवाव-गुण्ठनी च गोदाने गोमिथुन नस्माद्गोदानमिति तस्मा-द्गोदानमिति ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर उपनयन सस्कार किया हुआ ब्राह्मण तीन शिखाओ वाला—शिखी—जटित अर्थात् जटाधारी अथवा मुण्डित अक्षाराल-वणाशी होना चाहिए। सावित्री छै रात्रि तक—तीन रात्रि तक अथवा सद्य काल चरण करे। उसी व्रत का उद्वीक्षण करके दण्ड को अपमे रखकर मेखला और यज्ञोपवीत को जल मे अन्दर रक्खे। प्रत्येक ऋचा मे "नमो वरुणाय" इससे त्रिमधुर देकर इसके अन्तर इसको आग्नेय प्रथम वेद व्रत का आदेश करना चाहिए। ब्राह्मण—क्षत्रिय और वैश्य इन तीनो वर्णों के ब्रह्मचारियो के वेद व्रत पाँच वर्ष मे होने वाले होते हैं। आग्नेय, शुक्रिय, औपनिषद, शौलभ और गोदान—इन पञ्च साम्वत्सरिक वेद व्रतो का समाचरण करे। फिर स्नान करके उपव्रत का समाचरण करना चाहिए। तीनो मे अवगुण्ठन होता है। शुक्रयादि मे शुक्रमि शुक्रिय का श्रवण करावे। औपनिषदो के द्वारा औपनिषद का करे, शौलभिनियो से शौलभ का करे। अथवा "विद्यमान आब्रह्मन्नु-दीरितामनो भद्रा आशु शिशान इमानुकम्" इति। इस मत्र से वेदशिर से अनगुण्ठनी—त्रिवति अथवा पञ्च बालिका अनगुण्ठन करे। नाभिदेश से प्रच्छाद्य करके वाग्यत (मौन) होकर अरण्य मे नीचे शयन करना चाहिए। ग्राम मे—गोष्ठ मे अथवा देवता यतन मे व्युष्टा मे अव-गुण्ठनो को अरण्य मे विसृष्ट करना चाहिए। "अहश्रम स्यो दुत्य चित्र

देवानाम्" इसका सूय देव के उदित होने पर जपता है। "वर्षति द्यौ शान्ति" इति–इससे शान्ति को करता है। शांति भाजन को गुरुदेव के लिये देना चाहिए। इसी प्रकार से अवगुण्ठनी को और गोदान मे गौ मिथुन को "तस्माग्दोदानम्" इससे देना चाहिए तस्मानुगोदानम्"– यह मन्त्र है।७।

वेदँसमाप्य स्नायात्। ब्रह्मचर्यं वाऽष्टाचत्कारिँशकम्। द्वादशकेऽप्येके। गुरुणाऽनुज्ञात। विधिर्विधेयस्तकश्च वेद। षडङ्गमेके। न कल्पमात्रे। काम तु याज्ञिकस्य। उपसगृह्य गुरुँ समिधोऽभ्याधाय परिश्रितस्योत्तरत कुशेषु प्रागग्रेषु पुरस्तात्स्थित्वाऽष्टानामुदकुम्भाना ये अप्स्वन्तरग्नय प्रविष्टा योह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदूषुरिन्द्रियहा तान्विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्येकस्मादपो गृहीत्वा तेनाभिषिञ्चते। तेनमामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसायेति। येन श्रियमकृणुता येनावमृशताँ सुराम्। येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चता यद्वा तदश्विना यश इति। आपो हिष्ठेति च प्रत्यृचम्। त्रिभिस्तूष्णीमितरै। उदुत्तममिति मेखलामुन्मुच्य दण्डं निधाय वासोऽन्यत्परिधायादित्यमुपतिष्ठते। उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्प्रातर्यावभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनि मा कुर्वाविदन्मा गमय उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनि मा कुर्वाविदन्मा गमय उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्साय यावभिरस्थात्सहस्रसनिरसि सहस्रसनि मा कुर्वाविदन्मा गमयेति। दधितिलान्वा प्राश्य जटालोमनखान् सँहृत्यौदुम्बरेण दन्तान्धावेत। अन्नाद्याय व्यूहध्वँ सोमो राजाऽयमागमत्। स मे मुख प्रमाक्ष्यते

यशसा च भगेन चेति। उत्साद्य पुन स्नात्वांऽनुलेपन नासिकयोर्मुखस्य चोपगृह्णीते प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तपय श्रोत्र मे तपयेति । पितर शुन्धध्वमिति पाण्योरवनेजन दक्षिणानुषिच्यानुलिप्य जपेत्। सुचक्षा अहमक्षीभ्या भूयास सुवर्चा मुखेन । सुश्रुत्कर्णाभ्या भूयासमिति । अहृत वासो धौत वाऽमौत्रेणाच्छादयीत । सरिधास्यै यशो धास्यं दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शत च जीवामि शरद पुरूची रायस्पोषमभिसव्ययिष्य इति । अथोत्तरीयम् । यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती । यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यतामिति । एक चेत् पूर्वस्योत्तरवर्गेण प्रच्छादयीत । सुमनस प्रविगृह्णाति। या आहरज्जमदग्नि श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय ता अह प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन चेति। अथावबध्नीते यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुल पृथु तेन सग्रथिता सुमनस आबध्नामि यशो मयीति। उष्णीषेण शिरो वेष्टयते। युवा सुवासा इति। अलकरणमसि भूयोऽलकरण भूयादिति कणवेष्टकौ । वृत्रस्येत्यङ्क्तेऽक्षिणी । रोचिष्णुरसीत्यात्मानमादर्शे प्रेक्षते। छत्र प्रतिगृह्णाति । बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्द्धेहि तेजसो यशसो मामन्तर्द्धेहीति । प्रति ष्ठेस्थो विश्वतो मा पातमित्युपानहौ प्रतिमुञ्चते । विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वत इति वैणव दण्डमादत्ते। दन्तप्रक्षालनादीनि नित्यमपि वासश्छत्रोपानहश्चापूर्वाणि चेन्मन्त्र ।। ८ ।।

वेद का अध्ययन पूर्वतया करके स्नान करना चाहिए। अथवा ब्रह्मचर्य्य व्रत अडतालीस वर्ष तक रक्खे। कतिपय मनीषियो का मत है बारह वर्ष तक ही ब्रह्मचय्य व्रत का परिपालन करना चाहिए गुरुदेव

के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त करके विधि को करना चाहिए और तर्क वेद है। कुछ विद्वानो का मत है कि षडङ्ग (छै अङ्ग शास्त्रो के सहित) वेद का अध्ययन करना चाहिए। केवल कल्पो को ही नही पढ़ावे। याज्ञिक के इच्छानुरूप अध्ययन करे। गुरुदेव को उपसगृहीत करके समिधाओ का अभ्याधान करे। परिश्रित के उत्तर की ओर प्रागण कुशाओ पर आगे स्थित होकर जल कुम्भो मे जो "अपूवन्तराम्नय प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्त तूदषुरिन्द्रियहा तान्विजमि योरोचन स्तमिह गृह्णामि" इति—इससे एक से जल ग्रहण करके उस जल से अभिषिञ्चन करता है। उससे मुझको अभिषिञ्चन करता हू और यह अभिषिञ्चन श्री के लिये—यश की प्राप्ति के लिये—ब्रह्म के लिये और ब्रह्म वर्चस के लिये करता हूँ—इति। मत्र यह है-"येनाक्ष्यावभ्य षिञ्चिता यद्वा तदश्विन यश' इति। "आपो हिष्ठा मयाँभुव।" इससे प्रतिऋचा मे अभिषिञ्चिन करे। इतर तीनो के द्वारा तूष्णी भाव से करना चाहिए। "उदुत्तमम्" इस मत्र से मेखला का उन्मोचन करे। दण्ड को रख देवे। अन्य वस्त्र को परिधान करके आदित्य देव का उपस्थान करता है। उपस्थान करने के समय मे निम्न मत्र बोले—"उद्यन्भ्राज भृष्णु रिन्द्रो मरुद्भिरस्था त्प्रातर्याविभि रस्थाद्द शसनि शसि दशसनि माकुर्वाविदन्मा गमय उद्यन्भ्राज भृष्णु रिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्साय यावभि रस्थात्सहस्र सविरासि सहस्रनि मा कुर्वाविदन्मा गमय" इति। अथवा दधि तिलो का प्राशन करके जटा—लोम- भखों को सहृत करके गूलर की दाँतुन से दातो को धावन करे। मत्र यह है—"अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजायमागमत्। स मे मुख प्रमाक्ष्यते यशसा च भगेन च" इति। उत्सादन करके पुन स्नान करे। दोनो नासिकाओ मे और मुख का अनुलेपन उपग्रहण करता है। "प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तपय श्रोत्रं मे तर्पय" अर्थात् मेरे प्राण और अपान को तृप्त करो—मेरे नेत्र को तृप्त करो—मेरे श्रोत्र को तृप्त करो—इस मन्त्र से करे। "पितर शुन्ध्व हवम्" इससे दोनो हाथो अवनेजन दक्षिणानुषिञ्चिन कर अनुलेपन करके जाप करना चाहिए। मत्र यह है—"सुचक्षा अहमक्षीभ्या भूयास

सुवर्चा भुसेन । सुश्रुत कर्णाभ्या भूयामम्" इति ।

अहृत अर्थात् नूतन अथवा धौत धुला हुआ वस्त्र अभौत्र के द्वारा आच्छादन करे । "परिधास्ये यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि शत च जीवामि शरद पुरूची रायस्पोषभिसव्ययिष्ये" इति–इस मन्त्र से आच्छादन करना चाहिए । इसके अनन्तर उत्तरीय वस्त्र ग्रहण करे । इसका मन्त्र यह है—"यशसा मा द्यावा पृथिवी यशसेन्द्रा बृहस्पति । यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम्" इति । यदि एक ही हो पूर्व के उत्तर वर्ग से प्रच्छादन करना चाहिए । सुमनसो । प्रतिग्रहण करता हूँ । जिनका जमदग्नि ने आहरण किया था श्रद्धा के लिये मेधा के लिये–काम के लिये–इन्द्रिय के लिये उनको मैं प्रतिग्रहण करता हू यश से और भग से । इसके अनन्तर "यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुल पृथु । तेन सग्रथिता सुमनस आवध्नामि यशा ममि" इस मन्त्र के द्वारा आवध्नन करता है । उष्णोष (पाग या कोई शिरो वेष्टन) से शिर का वेष्टन करता है अर्थात् मस्तक को ढाकता है । इसका मन्त्र —"युवा सुवासापरिवीत आगात्" इत्यादि है । "अलङ्करणमसि भूयो अलङ्करण भूमात्" इससे कर्णो का वेष्टन करे । "वृत्रस्य" इत्यादि के द्वारा नेत्रो को अङ्क्त करता है । "रोचिष्णुरसि" इस मन्त्र के द्वारा अपने आपको आदश (दर्पण) मे प्रेक्षण करता है । छत्र का प्रतिग्रहण कर करता है । छत्र धारण का मन्त्र यह है—"बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तार्द्धेहि तेजसा यशसो मामन्तर्द्धेहि" इति—उपवर्हो (जूतो को) "प्रतिष्ठितो विश्वतो मा पातम्"—इत्यादि मत्र के द्वारा प्रति मोचन करता है । "विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परि पाहि सवत" इति–इस मत्र से वणव दण्ड का आदान करता है । दन्त प्रक्षालनादीनि अर्थात् दातो को धोना आदि कर्म नित्यमी होता है । वस्त्र–छत्र और उपानह यदि अपूर्व हो तो मत्र का प्रयोग करना चाहिए ।२।

स्नातस्य यमान्वक्ष्याम । कामादितर । नृत्यगीतवादित्राणि न कुर्यान्न च गच्छेत् । काम तु गीत गायति

वैव गीते वा रमत इति श्रुतेर्ह्य परम् । क्षेमे ग्रामान्तर न गच्छेन्नच धावेत् । उदपानावेक्षणवृक्षारोहणफलप्रपतनसधिसर्पणविवृतस्नानविमलङ्घन शुष्कवदनसध्यादित्यप्रेणक्षभैक्षणानि न कुर्यान् । न ह वै स्नात्वा भिक्षेतापह वै स्नात्वा भिक्षा जयतोति श्रुते । वर्षत्यप्रावृतो व्रजेत् अय मे वज्र पाप्मानमपहनदिति । अप्स्वात्मान नावेक्षेत । अजातलोम्नी विपु ँषी ँ षण्ढ च नोपहसेत् । गर्भिणी विजन्येति ब्रूयात् । स कुलमिति नकुलम् । भगालमिति कपालम् । मणिधनुरितीन्द्रधनु' । गाधयन्तीपरस्मैनाचक्षीत । उर्वरायामनन्तर्हिताया भूमावूत्सर्पस्तिष्टन्न मूत्रपुरीषे कुर्यात् । स्वय प्रशोर्णेन काष्ठेन गुद प्रमृजीत । विकृत वासो नाच्छादयीत । दृढव्रतो वधत्र' स्यात्सर्वत आत्मान गोपायेत् सर्वेषा मित्रमिव (शुक्रियमध्येष्यमाण) ॥ ६ ॥

स्नान किये हुए पुरुष के यमो को बतलाया जाता है । काम मे इतर रहे । नृत्य (नाच) गीत (गाना) और वादित्र (बाजे) आदि को नही करना चाहिये और जहाँ पर ये उपयुक्त इत्यादि होते है वहाँ पर पर गमन भी नही करना चाहिए । "काम पूर्वक तो गीत को गाता है अथवा वैव गीत मे रमण करता है"–इस श्रुति के वचन से अपर है । कुशल क्षेत्र के समय मे रात्रि मे अन्य ग्राम मे गमन नही करना चाहिए और दौड भी नही लगाना चाहिए । तात्पर्य यह हे कि यदि कोई आपत्ति काल उपस्थित न हो तो रात्रि मे दूसरे ग्राम मे न जावे और धावन भी न करे । तथा निम्नलिखित निषिद्ध कर्मों को कभी नहीं करना चाहिये–यथा–उपानहो का अवेक्षण, वृक्ष पर समारोहण, फलो का गिराना, सन्धि काल मे सर्पण करना खुले स्थान मे स्नपन करना, विषम स्थल का लङ्घन करना, शुष्क वदन वाला रहना, सन्धि कालो मे अर्थात् उदयास्त मन वला मे आदित्य का दर्शन करना और भैक्षण करना अर्थात् भीख माँगना आदि कर्मों को नहीं करना

चाहिए। "न ह वै स्नात्वा भिक्षेतापह वै स्नात्वा भिक्षां जयति-इति" यह श्रुति का वचन है। "अय मे वज्रः पाप्मानम पहन दिति" इस मन्त्र से वर्षते हुए मे अप्रावृत्त गमन करना चाहिए। जल मे अपने आपकी परछाई को नही देखना चाहिए। अजात लोगो के वपु वाली स्त्री को ओर षण्ढ (नपु सक) पुरुष को देखकर कभी उपहास (मजाक) नही करना चाहिए। गर्भिणी गर्भ धारण करने वाली का विजन्या— यह बोलना चाहिए। न कुल है–इति न कुल होता है। भगालम्—यह कपालम् होता है। मणिधनु–यह इन्द्र धनुष है। जो गौ धयन कर रही है अर्थात् अपने वत्स को दूध पिला रही हो उसका वत्स का दूध पिलाने की बात कभी दूसरे से नही कहना चाहिए। उर्वरा अर्थात् उपजाऊ और अनन्तर्हिता भूमि मे उत्सर्पण करता हुआ तथा स्थित रहता हुआ मूत्र का तथा मल का त्याग नही करना चाहिए। स्वय प्रशीर्ण काष्ठ से गुदा द्वार को प्रमृष्ट करना चाहिए। कभी भी विकृत वस्त्र को आच्छादित नही करना चाहिए। दृढव्रत वाला वधत्र होना चाहिए। सभी ओर से अपनी आत्मा की रक्षा करनी चाहिए और सबके साथ मित्र की तरह व्यवहार करना चाहिए और शुक्रिय का अश्रेष्यमण रहना चाहिए। ९।

तिस्रो रात्रीर्व्रत चरेत्। अमांसाश्यमृण्मयपायी। स्त्रीशूद्रशवकृष्णशकुनिशुना च दर्शननमसभाषा च तैः। शवशूद्रसूतकान्नानि चनाद्यात्। मूत्रपुरीषे ष्ठीवन चातपे न कुर्यात्सूर्याच्चात्मान नान्तदधीत। तप्तेनोदकार्थान्कुर्वीत। अवज्योत्य रात्रौ भोजनम्। सत्यवदनमेव वा। दीक्षितोऽप्या तपादीनि कुर्यात्प्रवर्ग्यवाश्चेत्॥ १०॥

तीन रात्रि पर्यन्त व्रत का समाचरण करे। अमांसाशी और अमृण्मय पायी रहना चाहिए। स्त्री–शूद्र—शव (मृतदेह) कृष्ण पक्षी और कुत्तो का दर्शन करना और उनके साथ सम्भाषण नही करना चाहिए। शव-शूद्र और सूतक का अन्न कभी नही खाना चाहिए। मूत्र त्याग—

मल त्याग और थूकना ये कभी भी आतप मे न करे और सूर्यदेव से आत्मा का अन्तर्धान नही करना चाहिए। नग्न होकर उदकार्थों को करे। अवाजोत्य रात्रि मे भोजन करे। अथवा सर्वदा सत्य भाषण करना चाहिए यदि प्रयत्नवान् हो तो दीक्षित होता हुआ भी आतपादिको को करे। १०।

अथात पञ्चमहायज्ञा । वैश्वदेवादन्नात्पर्युक्ष्य स्वाहाकारैर्जुहुयाद्ब्रह्मणे प्रजापतये गृह्याभ्य कश्यपायानुमतय इति। भूतगृह्येभ्यो मणिके त्रीन् पर्जन्यायादभ्य पृथिव्यै। धात्रे विधात्रे च द्वार्ययो प्रतिदिश वायवे दिशा च। मध्ये त्रीन्ब्रह्मणेऽन्तरिक्षाय सूर्याय। विश्वेभ्यो देवेभ्यो विश्वेभ्यश्च भूतेभ्यस्तेषामुत्तरत । उषसे भूतानॉं च पतये परम्। पितृभ्य स्वधा नम इ दक्षिणत । पात्र निर्णिज्योत्तमपरस्या दिशि निनयेद्यक्ष्मैतत्त इति। उद्धृत्याग्र ब्राह्मणायावनेज्य दद्याद्धन्तत इति। यथार्हं भिक्षुकानातिथींश्च सभजेरन्। बालज्येष्ठा गृह्या यथार्हमश्नीयु । पश्चाग्दृहपति पत्नी च। पूर्वो वा गृहपति. तस्मादु स्वादिष्ट गृहपति पूर्वोऽतिथिभ्योऽश्नीयादिति श्रुते। अहरह स्वाहा कुर्यादन्नाभावे केनचिदाकाद्देवेभ्य पितृभ्यो मनुष्येभ्यश्चोदपात्रात्॥ ११॥

इसके अनन्तर पॉच महायज्ञो के विषय मे बतलाया जाता है। वैश्वदेव अन्न से पर्युक्षण करके स्वाहाकारो के द्वारा हवन करना चाहिये। आहुतियॉं ब्रह्मा के लिये—प्रजापति के लिये—गृह्यो के लिए—कश्यप के लिये और अनुमति के लिये होनी चाहिए। इति। भूतगृह्यो के लिये मणिक मे तीन को पर्जन्य के लिए- जलो के लिए और पृथिवी के लिये देवे। धाता और विधाता के लिये दोनो को द्वार पर देना चाहिये। प्रति दिशा मे वायु के लिए और दिशाओको देवे। मध्य मे तीन ब्रह्मा के लिये—अन्तरिक्ष के लिए और सूर्य्य के लिए देना चाहिये।

उनके उत्तर की ओर विश्व देवो के लिए और विश्वै भूतो के लिये देवे। उसके लिये और भूतो के पात के लिए पर देवे। दक्षिण की ओर "पितृभ्य स्वधा नम" इससे देना चाहिए। "यक्ष्यै तस्ते" इससे पात्र का निर्योजन करके उत्तरापरा दिशा मे निलयन करे। अग्र को उद्धृत करके "हत्नत इति" इससे ब्राह्मण के लिए अवनेज्य देवे। तथार्हं भिक्षुको को और अतिथियो की भली भाति सेवा करनी चाहिये। बालक और ज्येष्ठ गृह्य यथार्ह आशन करे इन सब के पीछे गृह का पति और पत्नी दोनो भोजन करे। "पूर्वोवा गृहपति तस्मादु स्वादिष्ट गृहपति पूर्वोऽतिथिभ्मोऽश्नीयात्" इति--इस श्रुति का वचन है। दिन प्रतिदिन स्वाहा करनी चाहिए। अन्न के अभाव मे किसी के द्वारा आकाङ्क्ष देवो के लिये—पितृगण के लिए और मनुष्यो के लिये उदकपात्र से करे। ११।

अथातो धर्मजिज्ञासा। केशान्तादूर्ध्वमपत्नीक उत्सन्नाग्निरनग्निको वा प्रवासी ब्रह्मचारी चान्वग्निरिति ग्रामाग्निमाहृत्य पृष्टोदिवीत्यधिष्ठाप्य त्रिभिश्च सावित्रैं प्रज्वाल्य ताँ सवितुस्तत्सवितुर्विश्वानि देवसवितरिति पूर्ववदक्षतैर्हुत्वा पाक पचेत्तत्र वैश्वदेव ब्रह्मणे प्रजापतये गृह्याभ्य कश्यपायानुमतये विश्वेभ्यो देवेभ्योऽग्नये स्विष्टकृत इत्युपस्पृश्य पूर्ववद्बलिकर्मैव कृते न वृथा पाको भवति न वृथा पाक पचेन्न वृथा पाकमश्नीयादत्र पिण्डपितृयज्ञ पश्चादाग्रहायणानि कुर्यात् ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर इसलिए धर्म के ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होती है। केशान्त से ऊर्ध्व मे अपत्नीक—उत्सन्नाग्नि अथवा अनग्निक, प्रवासी और ब्रह्मचारी "अनाग्नि "इति—इसमे ग्राम की अग्नि का आहरण करके "पृष्टोदिवि" इति—इससे अधिष्ठापित करके और तीन सावित्र मन्त्रो से प्रज्वलित करके "ताँ स वितुस्तत्सवितु विश्वानि देव सविनरिन" इस मन्त्र से पूर्व की भाँति अक्षतो के द्वारा हवन करके

पाक का पाचन करे। वहाँ पर वैश्वदेव को ब्रह्मा के लिये—प्रजापति के लिये—गृह्याओ के लिये—कश्यप के लिये—अनुमति के लिए—विश्वेदेवाओ के लिये अग्नि के लिये और स्विष्ट के लिए उपस्वर्शन करके पूर्व की भाँति इस प्रकार से बलिकर्म्म के करने पर पाक वृथा नही होता है और वृथा पाक का पाचन भी नहीं करना चाहिए और वृथा पाक का अशन भी नही करे। यहाँ पर पितृ पिण्ड यज्ञ होता है। इसके पीछे आग्रहायणो को करना चाहिए। १२।

अथानोऽध्यायोपाकम। ओषधीना प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावण्या पौणमास्या ँ श्रावणस्य पञ्चमी ँ हस्चेन वा। आज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति। पृथिव्या अग्नय इत्यृग्वदे। अन्तरिक्षाय वायव इति यजुर्वेदे। दिवे सूर्यायेति सामवदे। दिग्भ्यश्चन्द्रमस इत्यथर्ववेदे। ब्रह्मणे छन्दोभ्यश्चेति सर्वत्र। प्रजापतये देवेभ्य ऋषिभ्य श्रद्धायै मेधायै सदसस्पतयेऽनुमतय इति च। एतदेव व्रतादेशनविसर्गेषु। सदसस्पतिमित्यक्षतधानाञ्जि। सर्वेऽनुपठेयु। हुत्वाहुत्वौदुम्बर्यस्यिस्त्रस्तिस्र समिध आदध्युरार्द्रा सपलाशा घृताक्ता सावित्र्या। ब्रह्मचारिणश्च पूर्वकल्पेन। शन्नोभवन्त्वित्यक्षतधाना अखादन्त प्राश्नीयु। दधिक्राव्ण इति दधि भक्षयेयु। म यावन्त गणमिच्छेत्तावतस्तिलानाकर्षफलकेन जुहुयात्सावित्र्या शुक्रज्योतिरित्यनुवाकेन वा। प्राशनान्ते प्रत्यङ्मुखेभ्य उपविष्टेभ्य ॐकारमुक्त्वा त्रिश्च सावित्रीमध्याययादीन्प्रब्रूयात्। ऋषिमुखानि बह्वृचानाम् पर्वाणि चन्दोगानाम्। सूक्तान्याथवणानाम्। सर्वे जपन्ति सह नोऽस्तु सह नोऽवतु सह न इद वीर्यवदस्तु ब्रह्म। इन्द्रस्तद्वेद येन यथा न विद्विषामह इति। त्रिरात्र नाधीयीरन्। सामनखानामनिकृन्तनम्। एके प्राकुत्सर्गात्॥ १३॥

इसके अनन्तर अध्यायोयाकर्म होता है। औषधियो के प्रादुर्भाव हो जाने पर श्रवण नक्षत्र के द्वारा श्रावणी पौर्ण मासीमे अथवा हस्त नक्षत्र मे श्रावण मास की पञ्चमी तिथि में करे। आज्य (घृत) के भागो का यजन करके आज्य की आहुतियो से हवन करता है। "पृथिव्या अग्नये" इति—यह ऋग्वेद मे है। "अन्तरिक्षाय वायवे"—यह यजुर्वेद मे है। "दिवे सूर्याय" इति—यह साम वेद मे है। "दिग्भ्यश्चन्द्रमसे" इति—यह अथर्व वेद मे है। "ब्रह्मणे छन्दोभ्यश्च" इति—यह सर्वत्र होता है। "प्रजापतये देवेभ्य ऋषिभ्य श्रद्धायै मेधायै सदसस्पतयेऽनुमतये च" इति—और यह भी है। यह ही व्रतादेशन विसर्गो मे होता है। "सदसस्पतिम्" इति—इसको अक्षत धान वाले तीन बार पढे। और जो वहा पर हो वे सब पीछे पढ़े। हवन करकरके तीन-तीन गूलर की समिधायें आदधान करनी चाहिए। आर्द्र से भीजे हुए सपलाश घृत से अक्त सावित्री के द्वारा करना चाहिए। और जो ब्रह्मचारी हो वे पूर्व कल्प से करे। "शन्नोभवन्तु"—इससे अक्षत धान वाले न खाते हुए प्राशन करे। "दधि क्राव्णो" इति—इससे दही का भक्षण करना चाहिए। वह जितने गण को इच्छा करता है उतने ही तिलो को जाकर्ष फलक के द्वारा हवन करना चाहिए। सावित्री के द्वारा अथवा "शुक्रज्योति रिति" इस अनुवाक के द्वारा हवन करना चाहिए। प्राशन करने के अन्त मे पश्चिम की ओर मुख वाले उपविष्टो के लिये "ॐकारम्" को कहकर तीन बार सावित्री को अध्यायादि को बोलना चाहिए। जो बाह्वृच हो उनको ऋषि मुखानि बोलना चाहिए। जो छन्दोग हो उनको पर्वो को बोलना चाहिए। आथर्वणो को सूक्त बोलने चाहिये। सब लोग "सह नोऽस्तु सह नोऽवतु सह न इद वीर्य वीर्यं वदस्तु ब्रह्म। इन्द्रस्तद्वेद येन यथा न विद्विषामहे" इति—इसका जाप करते है। तीन रात्रि तक अध्ययन नही करना चाहिए। लाम और नखो को भी कृन्तन नही करना चाहिए। कुछ विद्वानो का यह मत है कि उत्सर्ग से पहिले करे। १३।

वातेऽमावास्यायां सर्वानध्याय । श्राद्धाशने चोल्का-
वस्फूर्जद्भूमिचलनाग्न्युत्पातेष्वृतुसंधिषु चाकालम् ।
उत्सृष्टेष्वभ्रदर्शने सर्वरूपे च त्रिरात्रं त्रिसन्ध्यं वा ।
भुक्त्वार्द्रपाणिरुदके निशायां संधिवेलयोरन्तःशवे ग्रामे
ग्रामान्तर्दिवाकीर्त्ये । धावतोऽभिशस्तपतितदर्शनाश्चर्या-
भ्युदयेषु च तत्कालम् । नीहारे वादित्रशब्द आर्त्तस्वने
ग्रामान्तेश्मशाने श्वगर्दभोलूकशृगालसामशब्देषु शिष्टाच-
रिते च तत्कालम् । गुरौ प्रेतेऽपोभ्यवेयाद्दशरात्रं चोप-
रमेत् । सतानूनप्त्रिणि सब्रह्मचारिणि च त्रिरात्रम् । एरा-
कत्रमसब्रह्मचारिणि । अर्द्धषष्ठान्मासानधीत्योत्सृजेयु ।
अर्द्धसप्तमान्वा । अथेमामृच जपन्ति उभा कवी युवा
यो नो धर्म परापतत् । परिसख्यस्य धर्मिणो विसख्यानि
विसृजामह इति । त्रिरात्रं सहोष्य विप्रतिष्ठेरन् ॥१४॥

वात के वहन होने पर अमावस्या तिथि मे सबका अनध्याय होता है । श्राद्ध के भोजन करन मे—और उल्कावस्फूजद् होने पर—भूमि के चलने अर्थात् भूकम्प होने पर—अग्नि के—उत्पातो मे—ऋतु की सधियो मे अकाल होता है । उत्सृष्टो मे—अभ्रदर्शन मे और सव रूप मे तीन रात्रि तक अथवा तीन सन्ध्याओ तक अनध्याय होता है । भोजन करके आर्द्र करो वाला उदक मे—निशा मे—सधियो की वेला मे—शव मे—ग्राम मे ग्रामान्तर दिवा कीर्त्य मे—धावन करने हुए—अभिशस्त और पतित के दर्शन मे—आश्रयाभ्युदयो मे तत्काल ही अनध्याय होता है । नी हार मे—वादित्र के शब्द मे—आर्त्त व्यक्ति की ध्वनि मे—ग्रामान्त मे—श्मशान मे—कुत्ता, उल्लू, गधा, गीदड, साम शब्दो के होने पर और शिष्टा चरित मे तत्काल अर्थात् जितने समय तक मे रहते हे उतने ही समय तक अनध्याय होता है । अपने श्री गुरुदेव के मृत हो जाने पर अपोभ्यवेय से दश रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय से उपराम रखना चाहिए । सतानून प्त्रिणि स ब्रह्मचारी अर्थात् सदाध्यायी साथी ब्रह्मचारी के प्रेत हो जाने पर तीन रात्रि पर्यन्त अनध्याय रखना चाहिए । जो ब्रह्मचारी सदाध्यायी साथी

न हो उसके मृत हो जाने पर एक रात्रि ही अनध्याय मनाना चाहिए। साढ़े छै मास तक अध्ययन करके उत्सर्जन कर देना चाहिये। अथवा साढ़े सात मास तक अध्ययन करके उत्सर्ग करे। इसके उपरान्त 'उभा कवी युवा यो नो धर्म परापतत्। परिसख्यस्य धर्मिणो विसख्यानि विसृज्या महे' इति—इस ऋचा का जाप करते है। तीन रात्रि तक साथ रह कर विप्रस्थित हो जाना चाहिए ॥१४॥

पौषस्य रोहिण्या मध्यमाया वाष्टकायामध्यायानुत्सृजेयु । उदकान्त गत्वाद्भिर्देवा श्छन्दाँसि वेदानृषीन्पुराणाचार्यान् गन्धर्वानितराचार्यान्सवत्सर च सावयव पितृनाचार्यान्स्वाश्च तर्पयेयु । सावित्री चतुरनुद्रुत्य विरता. स्म इति प्रब्रूयु । क्षपण प्रवचन च पूर्ववत् ॥ १५ ॥

पौष मास की रोहिणी मे अथवा मध्यमा अष्टका मे अध्यायो का उत्सर्ग करना चाहिए। जलाशय के अन्त तक गमन करके जलो के द्वारा देवो को–छन्दो को–वेदो को—ऋषियो को पुराणाचार्यो को—गन्धर्वों को—इतर आचार्यो को और अवयवो सहित सम्वत्सर को—पितृगणो को और अपने आचार्य्यों को तृप्त करे अर्थात् इन सबका तर्पण करना चाहिये। सावित्री को चार बार अनुद्रुत करके विरत हो गये है–यह बोलना चाहिये। क्षपण और प्रवचन पूर्व की ही भाँति करे ॥१५॥

पुण्याहे लाङ्गलयोजन ज्येष्ठया वेन्द्रदैवत्यम् । इन्द्र पर्जन्यमश्विनौ मरुत उदलाकाश्यप स्वातिकारीँ सीतामनुमति च दध्ना तण्डुलैर्गन्धैरक्षतैरिष्ट्वाऽनडुहोमधुघृते प्राशयेत्। सीरायुञ्जन्तीति योजयेत्। शुनँ सुफाला इति कृषेत् फाल वा लभेत ॥ न वाऽग्न्युपदेशाद्वपनानुषङ्गाच्च । अग्रयभिषिच्याकृष्टे दता कृषेयु । स्थालीपाकस्य पूववद्देवता यजेदुभयोर्व्रीहियवयो प्रवपन्सीतायज्ञेच। ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ १६ ॥

किसी परम पुण्य (पवित्र) दिन मे लाङ्गल का योजन अथवा ज्येष्ठा से इन्द्र दैवत्य करे। इन्द्र को-पर्जन्य को-अश्विनी कुमारो को-मरुत—उदलाकाश्यप को—स्वातिकारी को-सीना को और अनुमति को दही से तण्डुलो से, गन्धों से और अक्षनो से अभ्यर्चन करके अनडुहो को मधु और घृत का प्राशन कराना चाहिए। "सीरा युञ्जन्ति" इति-इसस योजित करे। "शुनँ सुफाला" इति—इससे कर्षण करे अथवा फल को लब्ध करे। अग्नि-उपदेश से और वयमानुषङ्ग से नही करना चाहिए। अग्र भाग मे होने वाले का अभिषिञ्चन करके उस समय मे जो अकृष्ट हो उसका कर्षण करना चाहिए। स्थाली पाक के देवताओ का पूर्व की ही भाँति यजन करे। दोनो व्रीहि और यवो को सीता और यज्ञ मे प्रवसन करे। इसके अनन्तर ब्राह्मणो को भोजन करना चाहिए ॥१६॥

"अथातो वापीकूपतडागारामदेवतायतनानाम् (पुष्करिण्याम्) प्रतिष्ठापन व्याख्यास्याम । तत्रोदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे तिथिवारकरणे नक्षत्रे च गुणान्विते तत्र वारुण यवमय चरुँ श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति त्वन्नो अग्न स त्व नो अग्ने इमम्मे वरुण तत्त्वा यामि येते शतमयाश्चाग्न उदुत्तममुरुँहि राजा वरुणस्योत्तम्भनमग्नेर्ग्नीकमिति। दशर्चँ हुत्वा स्थालीपाकस्य जुहोत्यग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा वरुणाय स्वाहा यज्ञाय स्वाहोग्राय स्वाहा भीमाय स्वाहा शतक्रतवे स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहेति । यथोक्तँ स्विष्टकृत्प्राशनान्ते जलचराणि क्षिप्त्वाऽलंकृत्य गालारयित्वा पुरुषसूक्त जपन्नाचार्याय वर दत्वा कर्णवेष्टकौ वासाँसि धेनुर्दक्षिणा। ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ १७ ॥"

इसके अनन्तर बावडी-कूआ-तालाब—बाग-देवायतन आदि का (पुष्करिणी मे) प्रतिष्ठा करने के विषय मे व्याख्या करेंगे। वहाँ पर उत्त-

रायण सूर्य के होने पर आपूर्यमाण पक्ष मे किसीभी श्रवि नदत्रि मे और तिथि, बार, नक्षत्र के गुणान्वित होने पर वहाँ पर वारुण यवमय चरु का श्रपण (हवन) कराकर आज्य भागो का यजन कर आज्य की आहुतियो से हवन किया जाता है। मन्त्र यह है– 'त्वन्नो अग्न स त्व नो अग्ने इमम्मे वरुण तत्वा यामि येते शतमयाश्चग्ने उद्त्तममुरु ँ हि राजा वरुणस्योत्तम्भन मग्ने रनीकम्' इति। दश ऋचाओ का हवन करके स्थाली पाक का हवन करता है। निम्न मन्त्रो से आहुतियाँ देनी चाहिए— 'अग्नय स्वाहा—सोमाय स्वाहा–वरुणाय स्वाहा–यज्ञाय स्वाहा–उग्राय स्वाहा भीमाय स्वाहा–शतक्रतवे स्वाहा–व्युष्टयै स्वाहा–स्वर्गाय स्वाहा" इति यथोक्त स्विष्टकृत् प्राशन के अन्त मे जलचरो को क्षिप्त करके अलकृत करके गौ को तारित करे और पुरुष सूक्त का जाप करता हुआ अपने आचार्य को वर देकर कर्णवेष्टको का–वस्त्रो को देवे तथा धेनु को दक्षिणा मे देनी चाहिये। इस सब कृत्य के समाप्त हो जाने पर फिर ब्राह्मणो को भोजन करावे ॥१७॥

अथात श्रवणाकर्म। श्रावण्यां पोर्णमास्याम्। स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽक्षतधानाश्चैककपाल पुरोडाश धानाना भूयसीः पिष्ट्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुती जुहोति। अप श्वेतपदा जहि पूर्वेण चापरेण च। सप्त च वारुणीरिमा प्रजा सर्वाश्च राजबान्धवै स्वाहा। न वै श्वेतस्याध्याचारेऽहिर्ददर्श कचन। श्वेताय वैदर्व्याय नम. स्वाहेति। स्थालीपाकस्य जुहोति विष्णवे श्रवणाय श्रावण्यै पौर्णमास्यै वर्षाभ्यश्चेति। धानावन्तमिति धानानाम्। स्घृताक्तान्सक्तून्सर्पेभ्यो जुहोति। आग्नेयपाण्डुपार्थिवानां सर्पाणामधिपतये स्वाहा श्वेतवायवान्तरिक्षाणां सर्पाणामधिपतये स्वाहाऽभिभू सौर्यदिव्यानां सर्पाणामधिपतये स्वाहेति। सर्वहुतमेककपाल ध्रुवाय भौमाय स्वाहेति। प्राशनान्ते सक्तूनामेकदेशं शूर्पे न्युप्योपनिष्क्रम्य बहि शालायां स्थण्डिलमुपलि-

ध्योल्काया ध्रियमाणाया माऽन्तरागमतेत्युक्त्वा वाग्यत: सर्पानवनेजयति । आग्नेयपाण्डुपार्थिवानां सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्व श्वेतवायवान्तरिक्षाणां सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्वाभिभू सौर्य दिव्यानां सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्वेति । यथाऽवनिक्त दर्व्योपघातं सक्तून्सर्पेभ्यो बलिं हरति । आग्नेयपाण्डुपार्थिवानां सर्पाणामधिपत एष ते बलि श्वेतवायवान्तरिक्षाणां सर्पाणामधिपत एष ते बलिरभिभू सौर्यदिव्यानां सर्पाणामधिपत एष ते बलिरिति । अवनेज्य पूर्ववत्कङ्कतै प्रलिखति । आग्नेयपाण्डुपार्थिवानां सर्पाणामधिपते प्रलिखस्व श्वेतवायवान्तरिक्षाणां सर्पाणामधिपते प्रलिखस्वाभिभू सौर्यदिव्यानां सर्पाणामधिपते प्रलिखस्वेति । अञ्जनानुलेपनं स्रजश्चाञ्जस्वानुलिम्पस्व स्रजोऽपि नह्यस्वेति । सक्तुशेषं स्थण्डिले न्युप्योदपात्रेणोपनिनीयोपतिष्ठते नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति तिसृभि. । स यावत्कामयेत न सर्पा अभ्युपेयुरिति तावत्सन्ततयोदधारया निवेशनं त्रि· परिषिञ्चन्परीयाद पश्वेतपदा जहीति द्वाभ्याम् । दर्वीं शूर्पं प्रक्षाल्य प्रतप्य प्रयच्छति । द्वारदेशे मार्जयन्त आपो हिष्ठेति तिसृभि । अनुगुप्तमेतं सक्तुशेषं निधाय ततोऽस्तमितेऽस्तमितेऽग्नि परिचय दर्व्योपघातं सक्तून्सर्पेभ्यो बलिं हरेदाग्रहायण्या । तं हरन्त नान्तरेण गच्छेयु । दर्व्याचमन प्रक्षाल्य निदधाति । धानाः प्राश्नन्त्यसंस्यूता । ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ १८ ॥

इसके अनन्तर श्रवणाकर्म के विषय मे वर्णन किया जाता है । यह श्रावणी पौर्णमासी मे होना है । स्थालीपाक का हवन करके और अक्षत धाना एक कपाल धानो की बहुत सी पुरोडाश को पीसकर आज्य भागो का यजन करके आज्य की आहुतियो का हवन करता है । मन्त्र

यह है—"अप श्वेतपदा जहि पूर्वेण चापरेण च। सप्त च वारुणीरिमा प्रजा सर्वाश्च राजबान्धवै स्वाहा"। "न वै श्वेतस्याध्याचारेऽहिर्ददर्श कचन। श्वेताय वैदर्व्याय नम स्वाहा" इति। स्थालीपाक का विष्णु के लिये—श्रवण के लिये—श्रावणी के लिये पौर्णमासी के लिये और वर्षाओ के लिये हवन करता है। "धानावन्तम्"—इति—इसमे धानो को हवन करता है। घृत से अक्त (मिश्रित) सतुआओ का सर्पों के लिये हवन करता है—हवन की आहुतिया निम्न लिखित मन्त्रो को पढकर देनी चाहिए—"आग्नेय पाण्डु पार्थिवाना सर्पाणामधिपतये स्वाहा"—"श्वेतवायवान्तरिक्षाणा सर्पाणामधिपतये स्वाहा"—"अभिभू सौर्य दिव्याना सर्पाणामधिपतये स्वाहा—इति"—"सवहुतमेककपाल ध्रुवाय भौमाय स्वाहा"—इति। प्राशन के अन्त मे सक्तुओ के एक देश को शूर्प मे रखकर उपनिष्क्रमण करके शाला के बाहिर स्थण्डिल का उपलेपन करके उल्का के ध्रियमाण होने पर "माऽन्तरागमत"—यह कहकर वाग्यत (मौन) होकर सर्पो का अवभेजन करता है आग्नेय पाण्डु पार्थिव सर्पो के अधिपति का अपने जन करके—श्वेत वायवान्तरिक्ष सर्पो के अधिपति का अवनेजन करके—अभिभू सौर्य दिव्य सर्पों का अवनेजन करके यथावनिक्त दर्व्योपघात सक्तुओ को सर्पो के लिये बलि का आहरण करता है। हे आग्नेय पाण्डुपार्थिव सर्पो के अधिपते ! यह आपकी बलि है—हे श्वेवायवान्तरिक्ष सर्पों के अधिपति ! यह आपकी बलि है—हे अभिभू सौर्य दिव्य सर्पों के अधिपते ! यह तुम्हारी बलि है। अवनेजन करके पूर्व की ही भाँति कङ्कतों से प्रलिखिता है। हे आग्नेय पाण्डु पार्थिव सर्पो के अधिपते ! प्रलिखन करिए। हे श्वेतवायवान्तरिक्षो सर्पो के अधिपति ! प्रलिखन करो। हे अभिभू सौर्य्य दिव्य सर्पो के अधिपते ! प्रलिखन करो। अञ्जन अनुलेपन और स्रजो का अञ्जन करो—अनुलेपन करो और स्रजो को बद्ध करो। इति। "नमोऽस्तु सर्पेभ्य"इति—इन तीनो से स्थण्डिल मे निउपयन करके जल के पात्र से उपनिनयन करके उपस्थित होता है। वह जब तक कामना करता है सर्प नही आवेगे—इति। तब तक निरतन्र रहने वाली जल की धार के द्वारा तीन बार नियेशन का परिषिञ्चन करते हुए "अपश्वेत पदाजहि"

इति—इस दो से परियान करे। दर्वी की और शूर्प का प्रक्षालन करके प्रतप्त करके प्रदान करता है। द्वार देश मे "आपोहिष्ठा मयोभुव" इन तीन मन्त्रों से मार्जन करे अनुगुप्त इस सक्तु के शेष को रखकर इसके अनन्तर अस्तमन वेला मे प्रतिदिन अग्नि का परिचरण करके दर्व्योपघात को सक्तुओ को सर्पो के लिये आग्रहायण्य बलि क हरण करे उस आहरण करते हुए के बीच से गमन नही करे। दर्व्या चमन का प्रक्षालन करके रख देता है। असँस्यूत धाना प्राशन करते है। इसके अनन्तर ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए।१८।

प्रौष्ठपद्यामिन्द्रयज्ञ । पायसमैन्द्रँश्रपयित्वाऽपूपाञ्चापूपैः स्तीर्त्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोतीन्द्रायेन्द्राण्या अजायैकपदेऽहिर्बुध्न्याय प्रौष्ठपदाभ्यश्चेति । (स्थालीपाकस्य जुहोतीन्द्राय स्वाहेति) प्राशनान्ते मरुद्भ्यो बलिँ हरत्यहुतादो मरुत इति श्रुते । आश्वत्थेषु पलाशेषु मरुतोऽश्वत्थे तस्थुरिति वचनात् । शुक्रज्योतिरिति प्रतिमन्त्रम् । विमुखेन च । मनसा । नामान्येषामेतानीति श्रुते । इन्द्र दैवीरिति जपति । ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ १९ ॥

प्रौष्ठपदी पौर्णमासी मे इन्द्र यज्ञ होता है। ऐन्द्र पायस का श्रवण करके अपूर्पों से अपूपों का स्तरण करके आज्यभागो का यजन कर आज्य (घृत) की आहुतियो से हवन करता है। मन्त्र हवन करने का यह है—'इन्द्रायेइन्द्रण्या अजायैकपदेऽहिर्बुध्न्याय प्रौष्ठपदाभ्यश्च" इति। स्थालीपाक का "इन्द्राय स्वाहा" इनसे हवन करना है। "अहुता हो मरुत"—इस श्रुति के वचन से प्राशन के अन्त मे मरुतो के लिये बलिका हरण करता है। "आश्वत्थो मे पलाशी मे मरुत अश्वत्थ मे स्थित रहते है—इस वचन से ऐसा मानना चाहिये। "शुक्रज्योति" इति-यह प्रति मन्त्र है। और विमुख से करे। मन से करे। इनके ये नाम है"—इति यह श्रुति वचन है। "इन्द्र दैवी" इति— इसका जाप करता है। इस समस्त कृत्य के समाप्त हो जाने के पश्चात् फिर ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए।१९।

आश्वयुज्या पृषातका । पायसमैन्द्रँ श्रपयित्वा दधिमधुघृतमिश्र जुहोतीन्द्रायेन्द्राण्या आश्विभ्यामाश्वयुज्यै पौर्णमास्यै शरदे चेति । प्राशनान्ते दधिपृषातकमञ्जलिना जुहोति । ऊन मे पूर्यन पूर्ण मे मा व्यगात्स्वाहेति । दधिमधुघृतमिश्रममात्या अवेक्षन्ते आयात्विन्द्र इत्यनुवाकेन । मातृभिर्वत्सान्सँ सृज्यताँ रात्रिमाग्रहायणी च । ततो ब्राह्मणभोजनम् ।। २० ।।

पृषातक इस इन्द्र यज्ञ को आश्वयुगी पौणमासी मे करते हैं । ऐन्द्र पायस का हवन करके दही—घृत से मिश्रित का हवन करना है । मन्त्र यह है—"इन्द्रायेन्द्राण्या आश्विभ्यामाश्वयुज्यै पौणमास्यै शरदे च" इति प्राशन के अन्त मे अञ्जलि से दधि पृषातक का हवन करता है । ऊन मे पूणता पूर्ण मे मा व्यगात्स्वाहा' इससे हवन करना चाहिये । दधि—घृत से मिश्रित को अमात्य अवेक्षण करते है । "आयात्विन्द्र" इस अनुवाक के द्वारा करे । उस रात्रि मे और आग्राह्वायणी मे वत्सो को माताओ के साथ ससृष्ट कर देना चाहिये । इसके उपरान्त ब्राह्मणो का भोजन करावे ।।२०।।

अथ सीतायज्ञ । व्रीहियवाना यत्र यत्र यजेत तन्मयँ स्थालीपाकँ श्रपयेत् । कामादीजानोऽन्यत्रापि व्रिहियवयोरेवान्यतरँ स्थालीपाकँ श्रपयेत् । न पूवचोदितत्वात्सन्देह । असभवाद्विनिवृत्ति । क्षेत्रस्य पुरस्तादुत्तरतो वा शुचौ देशे कृष्टे फलानुपरोधेन । ग्रामे वोभयसप्रयोगादविरोधात् । यत्र श्रपयिष्यन्नुपलिप्त उद्धतावोक्षितेऽग्निमुपसमाधाय तन्मिश्रैदर्भैँ स्तीर्त्वाऽऽज्यभागा विष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति । पृथिवी द्यौ प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृता । तमिहेन्द्रमुपह्वये शिवा न सन्तु हेतय स्वाहा । यन्मे किञ्चिदुपेप्सितमस्मिन्कर्मणि वृत्रहन् । तन्मे सर्वँ समृध्यता जीवत शरद शतँ

स्वाहा। सपन्तिभूतिर्भूमिवृष्टिर्ज्यैष्ठ्यँ श्रैष्ठ्यँ श्री प्रजामिहावतु स्वाहा। यस्या भावे वैदिकलौकिकाना भूतिर्भवति कर्मणाम्। इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीताँ सा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा। अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता। खलमालिनीमुर्वरामस्मिन्कर्मण्युपह्वये ध्रुवाँ सा मे त्वनपायिनी भूयात्स्वाहेति। स्थालीपाकस्य जुहोति सीतायै यजायै शमायै भूत्या इति। मन्त्रवत्प्रदानमेकेषाम्। स्वाहाकारप्रदाना इति श्रुतेर्विनिवृत्ति। स्तरणशेषकुशेषु सीतागोप्तृभ्यो बलिँ हरति पुरस्ताद्ये त आसते सुधन्वानो मिषङ्गिण। ते त्वा पुरस्ताद्गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषा करोम्यह बलिमेभ्यो हरामीममिति। अथ दक्षिणतोऽनिमिषा वर्मिण आसते। ते त्वा दक्षिणतो गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषा करोम्यह बलिमेभ्यो हरापीममिति। अथ पश्चादाभुव प्रभुवो भूतिर्भूमि पार्ष्णि शुनकुरि। ते त्वा पश्चाद्गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषा करोम्यह् बलिमेभ्यो हरामीममिति। अथोत्तरतो भीमा वायुसमाजवे। ते त्वोत्तरत क्षेत्रे खले गृहेऽध्वनि गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषा करोम्यह बलिमेभ्यो हराभीममिति। प्रकृतादन्यस्मादाज्यशेषेणच पूर्ववद्बलिकर्म। स्त्रियश्चोपयजेरन्नाचरितत्वात्। सँस्थिते कमणि ब्राह्मणान्भोजयेत् सँस्थिते कमणि ब्रह्मणान्भोजयेत् ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर सीतायज्ञ होता है। जहाँ-जहाँ पर व्रीहियवो का यजन करे तन्मय स्थाली पाक का श्रपण करना चाहिए। कामादीजान अन्यत्र स्थाली पाक का श्रपण करे। पूर्व मे प्रेरित होने के कारण से सन्देह नही करे। असम्भव होने से विनिवृत्ति हो जाती है। क्षेत्र के

आगे अथवा उत्तर की ओर किसी पवित्र देश मे जो फलानुरोध से कृष्ट हो वहा पर करे। अथवा ग्राम मे उभय का सम्प्रयोग होने से कोई विरोध नही है। जहा पर श्रपण करने वाला होता हुआ उपलिप्त–उद्धत–अवोक्षित मे अग्नि का उपसमाधान करके उससे मिश्रित दर्भों के द्वारा फैला कर आज्य त्रिभागो का यजन कर आज्य की आहुतियो से हवन करता है। हवन करने का मन्त्र यह है—"पृथिवी द्यौ प्रदिशो दिशो यस्मै द्यभिरावृता। तमिदेन्द्रमुयह्वये शिवा न सन्तु हेतय स्वाहा"–यन्मे किंचिदुपेप्सित मस्मिनकर्मणि वृत्रहन्। तन्मे सर्वं समृध्यता जीवत शरद शत स्वाहा" "सम्पत्तिर्भूति भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं श्री प्रजामिहावतु स्वाहा" "यस्या भावे वैदिक लौकिकाना भूतिभवति कर्म्मणाम्। इन्द्र पत्नी मुपह्वये सीतां सा मे त्वन्नपायिनी भूयात् कर्मणि कर्मणि स्वाहा"। "अश्वावर्त गोमती सूनृतावती विभर्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता। खलमालिनी मुर्वरामस्मिन् कर्मण्युपह्वये ध्रुवा सा मे त्वनपायिनी भूयात् स्वाहा"। स्थाली पाक का सीता के लिये—यजा के लिये–शमा के लिये और भूति के लिए हवन करता है। कतिपय मनीषियो का मत है कि मन्त्र के समान ही प्रदान करे। 'स्वाहाकार प्रदाना"—इस श्रुति की विनिवृत्ति है। स्तरण से शेष कुशो पर सीतागोप्ताओ के लिये बलि का हरण करता है। मन्त्र यह है—"पुरस्तात् ये त आसते सुध वानो निषङ्गिण। ते त्वा पुरस्तादगो पायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषा करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति"। अर्थात् आगे जो ये सुन्दरधारी निषङ्ग वाले स्थित है वे आगे तुम्हारी रक्षा करे और अनपायी तथा अप्रमत्तर है। इनको नमस्कार है। इनकी मै बलि करता हूँ और इनके लिए इसका हरण करता हूँ। इसके अनन्तर दक्षिण की ओर अनिमिष वर्मो स्थित है। वे तुमको दक्षिण मे रक्षित रखे। इनको नमस्कार है। मैं इनकी बलि करता हूँ और इनके लिए बलि का इसको हरण करता हूँ। इति॥ इसके अनन्तर पश्चात् अभुव प्रभुवो भूतिर्भूमि पार्ष्णि शुनकरि। वे पश्चिम मे तुम्हारी रक्षा करे और अप्रमत्त तथा अनपायी रहे। इनको नमस्कार है। मैं इनकी बलि करता हू। मै इनके लिये

इसको बलि का हरण करता हू। इति। इसके उपरान्त उत्तर की ओर क्षेत्र मे—गृह मे—खल मे—मार्ग मे अप्रमत्त और अनपायी होकर रक्षा करे। इनके लिये नमस्कार है। मै इनकी बलि करता हूँ मैं इसको इनके लिए बलिकाहरण करता हू" इति ॥ प्रकृत अन्य से आज्य के शेष के द्वारा पूव की ही भाति बलिकर्म करना चाहिए। आचरितत्व होने से स्त्रियाँ उपयजन न करे कर्म्म के स स्थित होने पर ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए। स स्थित कर्म मे ब्राह्मणो को भोजन देना चाहिए। २१।

तृतीय काण्ड

अनाहिताग्नेर्नव प्राशनम्। नव ँ स्थालीपाक ँ श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुती जुहोति। शतायुधाय शतवीर्याय शतोतये अभिमातिषाहे।ँशत यो न शरदोऽजीजानिन्द्रो नेषदतिदुरितानि विश्वा स्वाहा। ये चत्वार पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति। तेषा योऽज्यानिमजोजिमावहात्तस्मै नो देवा परिधत्तेह सवे स्वाहेति। स्थालीपाकस्याग्रयणदेवताभ्यो हु वा जुहोति स्विष्टकृते च स्विष्टमग्ने अभि तत्पृणीहि विश्वाश्च देव पृतना अविष्यत्। सुगन्नु पन्था प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मदध्येह्यजरन्न आयु स्वाहेति। अथ प्राश्नाति। अग्नि प्रथम प्राश्नातु स हि वेद यथा हवि। शिवा अस्मभ्यम ॰ षधी कृणोतु विश्वचर्षणि। भद्रान्न श्रेय समनैष्ट देवास्त्वयाऽवशेन समशीमहि त्वा। स नो मयोभू पितोआविशस्व श तोकाय तनुवे स्योन इति। अन्नपतीयया वा। अथ यवानामेतमुत्य मधुनासयुतयव ँ सरस्वत्या अधि वनाय चक्रुषु.

इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतु कीनाशा आसन्मरुत सुदानव इति। ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ १ ॥

अनाहित अग्नि वाले का नव प्राशन होता है। नवीन स्थाली पाक का श्रयण करके आज्य भागो का यजन कर आज्य की आहुतियो से हवन करता है। मन्त्र यह है–"शतायुधाय" दूसरा मन्त्र है–'ये चत्वार पथयो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी वियन्ति। तेषा योऽज्या निमजी जिमा वहस्तस्मै नो देवा परिधत्तेह सर्वे स्वाहा" ॥ इति ॥ तीसरा मन्त्र यह है–"स्थाली पाकस्याग्र" इसके अनन्तर प्राशन करता है। प्रथम अग्नि प्राशन करे। वह जैसा हवि है जानते हैं। औषधिया हमारे लिये शिव है। विश्वचर्षणि कृणान करे। मन्त्र ये है—"भद्रान्न श्रेय" अथवा अन्नपतीया से करे। "अथ यवानामेतमुत्य मधुना" इसके अनन्तर सभी कृत्य को साङ्ग सम्पन्न कराने वाला सुयोग्य ब्राह्मणो को भोजन करना चाहिए। १।

मार्गशीर्ष्यां पौर्णमास्यामाग्रहायणीकर्म। स्थालीपाक श्रपयित्वा श्रवणवदाज्याहुतीर्हुत्वाऽपरा जुहोति। याजना प्रतिनन्दन्ति रात्री धेनुमिवायतीम्। सवत्सरस्ययापत्नीसा नो अस्तु सुमङ्गली स्वाहा। सवत्सरस्य प्रतिमा या ता रात्रिमुपास्महे। प्रजा सुवीर्या कृत्वा दीर्घमायुर्व्यश्नवै स्वाहा। सवत्सराय परिवत्सरायेदावत्सरायेद्वत्सराय वत्सराय कृणुते बृहन्नम। तेषा वय सुमतौ यज्ञियाना ज्योग्जीता अहता स्याम स्वाहा। ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्त शिवा वर्षा अभया शरन्न। तेषामृतूना शतशारदाना निवात एषामभये वसेम स्वाहेति। स्थालीपाकस्य जुहोति। सोमाय मृगशिरसे मार्गशीर्ष्यै पौर्णमास्यै हेमन्ताय चेति। प्राशनान्ते मक्तुशेष शूर्पे न्युप्योपनिष्क्रमणप्रभृत्यामाजनात्। मार्ज-

नान्त उत्सृष्टो बलिरित्याह । पश्चादग्ने । स्रस्तरमास्तीर्याहृत च वाम अष्लुता अहृतवासस प्रत्यवरोहन्ति दक्षिणत स्वामी जायोत्तरा यथाकनिष्ठमुत्तारत । दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्योत्तरत उदपात्रं शमीशाखासीतालोष्ठाश्मनो निधायाग्निमीक्षमाणो जपति । अयमग्निर्वीरतमोऽय भगवत्तम सहस्रसातम । सुवीर्योऽयं श्रैष्ठ्ये दधातु नाविति । पश्चादग्ने प्राञ्चमञ्जलि करोति । दैवी नावमिति तिसृभि स्रस्तरमारोहन्ति । ब्रह्माणमामन्त्रयते ब्रह्मन्प्रत्यवरोहामेति । ब्रह्मानुज्ञाता प्रत्यवरोहन्ति । आयु कीर्तिर्यशो बलमन्नाद्य प्रजा--मिति । उपेता जपन्ति । सुहेमन्त सुवसन्त सुग्रीष्म प्रतिधीयतान्न शिवा नो वर्षा शरद सन्तु न शिवा इति। स्योना पृथवि नो भवेति दक्षिणपार्श्वै प्राक्शिरस सविशन्ति । उपोदुतिष्ठन्ति । उदायुषा स्वा युषोत्पर्जन्यस्य वृष्ट्या पृथिव्या सप्तधामभिरति । एव द्विरपर ब्रह्मानुज्ञाता । अध शयीरश्चतुरो मासान्यथेष्ट वा ॥ २ ॥

मार्गशीर्ष्या पौर्णमासी मे आग्रहायणी कर्म्म होता है। स्थालीपाक का हवन करके श्रपण के ही साथ आज्य की आहुतियो का हवन करके अपरा का हवन करता है। मन्त्र ये है "या जना प्रतिनदन्ति मिवायतीम् । सम्वत्सरस्य या पत्नी शा नो अस्तु सु मङ्गली स्वाहा"। अर्थात् जिस रात्रि को आती हुई धेनु की तरह जन अभिनन्दन करते है और जो सम्वत्सर की पत्नी है वह हमको सुमङ्गल करने वाली होवे। "सम्वत्सरस्य प्रतिमा या ता रात्रियुपास्महे । प्रजां सुवीर्यां कृत्वा दीर्घमायुर्व्यश्नव स्वाहा" । "सम्वत्सराय परिवत्सरा येदा वत्सरा येद्वत्सराय वत्सराय कृणुते वृहन्नम तेषा वय सुमतौ यज्ञियाना ज्योग्जीता अहता स्याम स्वाहा"—"ग्रीष्मो हेमन्त उतमो वसन्त शिवा वर्षा

अभया शरन्न । तेषामृतूनां शत शारदाना निवात एषामभये वसम स्वाहा"•इति । स्थाली पाक का हवन करता है। सोम के लिए–मृगशिरा के लिए–मार्ग शीर्ष के लिए–पौणमासी के लिए और हेमन्त के लिये हवन करता है । प्राशन के अन्त मे जो सक्त, शेष रहे उमे शूर्प मे रखकर मार्जन पर्यन्त उपनिष्क्रमण प्रभृति मे करे । मार्जन के अन्त मे बलि उत्सृष्ट होता है–यह कहा है । अग्नि के पीछे । स्रस्तर को फैलाकर और वस्त्र अहत होता है । अहत वस्त्र वाले आप्लुन होते हुए दक्षिण की ओर प्रत्यवरोहण करते है स्वामी जाया उत्तरा कनिष्ठ के अनुसार उत्तर की ओर से करे । दक्षिण की ओर ब्रह्मा को उपविष्ट कराकर उत्तर मे जल पात्र को शमी शाखा सीता लोष्टाश्म को रखकर अग्नि को समीक्षण करता हुआ जाप करता है । शन्त्र यह है–"अय-मग्निर्वीरतमोऽय भगवत्तय सहस्रसातम । सुवीर्योऽय श्रेष्ठ्ये दधातु नौ–इति" पीछे अग्नि के प्राञ्च अञ्जलि को करता है । "दवी नावम्" इति इससे तीनो से स्रस्तर पर आरोहण करत है । ब्रह्मा का आमन्त्रण करता है–हे ब्रह्मम् ! 'प्रत्यवरोहण करते हैं" 'इति । ब्रह्मा के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त करके प्रत्यवरोहण करने है । 'आयु —कीर्ति —यश — बलम्–अन्नाद्य और प्रजाम्" इति । उपत हाते हुए जप करते है । सुहेमन्त–सुवसन्त और सुग्रीष्म प्रतिधीय ताल हो । वर्षा हमको शिवा हो, शरद हमको शिवा होवे । हे पृथिवी । हमको स्योना होवे–इति । दक्षिण पार्श्वो से प्राक्शिर वाले सवेश करते है । मन्त्र यह है— "उपोदुतिष्ठन्ति उदायुषा स्वायुषोत्पर्जन्यस्य वृष्ट्या पृथिव्या सप्तधामभि –इति इसी प्रकार से दो बार अपर ब्रह्मा के द्वारा अनुज्ञात होने है । नीचे भूमि पर शयन करे अथवा चार मास पर्यन्त यथेष्ट शयन करे ।२।

ऊर्ध्वमाग्रहायण्यास्तिस्रोऽष्टका । ऐन्द्री वैश्वदेवी प्राजापत्या पित्र्येति । अपूपमांसशाकैर्यथासङ्ख्यम् । प्रथमाऽष्टका पक्षाष्टम्याम् । स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति । त्रिं शत्स्वसार उपयन्ति

निष्कृतँ समान केतु प्रतिमुञ्चमाना । ऋतू स्तन्वते कवय प्रजानतीर्मध्येछन्दस परियन्ति भास्वती स्वाहा । ज्योतिष्मती प्रतिमुञ्चते नभो रात्रो देवी सूयस्य व्रतानि । विपश्यन्ति पशवोजायमाना नानारूपा मातुरस्या उपस्थे स्वाहा । एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गभ महिमानमिन्द्रम् । तेन दस्यून्व्यसहन्तदेवा हन्तासुराणामभच्छचीभि स्वाहा । अनानुजामनुजा मामकत सत्य वदन्त्यन्विच्छ एतत् । भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्या वा अन्यामति मा प्रयुक्त स्वाहा । अभून्मम सुमतौ विश्ववेदा आष्ट प्रतिष्ठामविदद्धि गाधम् । भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्या वो अन्यामति मा प्रयुक्त स्वाहा । पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गा हञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च । पञ्च दिश पञ्चदशेन क्लृप्ता समानमूर्ध्नीरधिलोकमेकँ स्वाहा । ऋतस्य गर्भ प्रथमा व्यूषिष्यपामेकामहिमान बिभर्ति । सूर्यस्यैका चरति निष्कृतेषु धर्मस्यैका सवितैकान्नियच्छतु स्वाहा । या प्रथमा व्यौच्छत्सा धेनुरभवद्यमे । सा न पयस्वती धुक्ष्वोत्तरामुत्तराँ समाँ स्वाहा । शुक्रऋषभा नभसा ज्योतिषाऽऽगाद्विश्वरूपा शबली अग्निकेतु । समानमर्थँ स्वपस्यमाना बिभ्रती जरामजर उष आगा स्वाहा । ऋतूना पत्नी प्रथमेयमागादह्ना जनेत्री जनित्री प्रजानाम् । एका सती बहुधोषो व्यौच्छत्साऽजीर्णा त्व जरयसि सवमन्यत्स्वाहेति । स्थालीपाकस्य जुहोति । शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्षँ शन्नो द्यौरभय कृणोतु । श नो दिश प्रदिश आदिशो नोऽऽहोरात्रे कृणुत दीघमायुर्व्यश्नवै स्वाहा । आपो मरीची परिपान्तु सवतो धाता समुद्रो अपहन्तु पापम् । भूत भविष्यदकृन्तद्विश्वमस्तु मे ब्राह्माभिगुप्त सुरक्षित स्याँ स्वाहा । विश्वे

आदित्या वसवश्च देवा रुद्रा गोप्तारो मरुतश्च सन्तु। ऊर्जं प्रजाममृत दीर्घमायु प्रजापतिर्मयि परमेष्ठी दधातु न स्वाहेति। अष्टकायै स्वाहेति। मध्यमा गवा। तस्यै वपां जुहोति वह वपां जातवेदः पितृभ्य इति। श्वोऽन्वष्टकासु सर्वासा पाश्व सक्थिसव्याभ्यां परिवृते पिण्डपितृयज्ञवत्। स्त्रीभ्यश्चोपसेचन च कर्षूषु सुर्ग्या तर्पणेन चाञ्जनानुलेपनं स्रजश्च। आचार्यान्तेवासिभ्यश्चानपत्येभ्य इच्छन्। मध्या वर्षे च तुरीया शाकाष्टका ॥ ३ ॥

आग्रहायणी के आगे तीन अष्टकाएं होती है। ऐन्द्री वैश्वदेवी—प्राजापत्या और पित्र्या—इति। ये तीन अष्टकाओ के नाम हैं। अपूप—मास—शकों से संख्या के अनुसार ही करना चाहिए। प्रथमा अष्टका पक्ष की अष्टमी मे होती है। स्थालीपाक का श्रपण करके आज्य के भागो का यजन करे। और आज्य की आहुतियो का हवन करता है। मन्त्र ये है—"त्रिंशत्स्वसारं उपयन्ति निष्कृत समानं केतु प्रतिमुञ्चमाना। ऋतूंस्तन्वते कवय प्रजानती मध्येछन्दसं परियन्ति भास्वती स्वाहा"। "ज्योतिष्मती प्रतिमुञ्चते नभो रात्री देवी सूर्यस्य व्रतानि। विपश्यन्ति पशवो जायमाना नानारूपा मातुरस्या उपस्थे स्वाहा"। "एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भ महिमानमिन्द्रम्। तेन दस्यून्व्यसहन्त देवा हन्ता सुराणामभवच्छचीभि स्वाहा"—"अनानुजामनुजा मामकर्त्त सत्यं वदन्त्यन्विच्छ एतत्। भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्या वो अन्यामति मा प्रयुक्त स्वाहा"। "अभून्मम सुमतौ विश्ववेदा आष्ट प्रतिष्ठामविदद्धि माधम्। भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्यां वो अन्यामतिमा प्रयुक्त स्वाहा"। 'पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गा पञ्च नाम्नी मृतवोऽनु पञ्च। पञ्च दिश पञ्चदशेन क्लृप्ता समान मूर्ध्नीरधिलोक मेकं स्वाहा"। ऋतस्य गर्भ प्रथमा व्यूषिष्यपामेकामहिमान बिभर्ति। सूर्यस्यैका चरति निष्कृतेषु घर्मस्यैका सवितैकान्नियच्छतु स्वाहा"। "या प्रथमा व्यौच्छत्सा धेनुरभ-

वद्वषमे । सान पयस्वती धुक्ष्वोत्तरामुत्तरां समां स्वाहा"। "शुक्रऋषभा नभमा ज्योतिषाऽऽगा द्विश्वरूपा शबली अग्नि केतु । समानमर्थ स्वपस्यमाना बिभ्रती जरामजर उष आगा स्वाहा"। "ऋतूना पत्नी प्रथमेयमागादह्ना नेत्री जनित्री प्रजानाम् । एका सती बहुषोषो व्यौच्छत्साऽजीर्णा त्व जरयसि सर्वमन्य स्वाहा" इति। स्थालीपाक का हवन करता है। अन्य मत्र है–"शान्ता पृथिवी शिव मन्तरिक्षं शन्नो द्यौभय कृणोतु। श नो दिश. प्रदिश आदिशो नोऽह्नोरात्रे कृणुत दीर्घमायुर्व्यश्नवै स्वाहा"। "आपो मरीची परिपान्तु सवतोधाता समुद्रो अपहन्तु पापम्। भूत भविष्यदकृन्त द्विश्वमस्तु मे ब्रह्माभिगुप्त सुरक्षित स्यां स्वाहा"। अर्थात् जल मरीची सब ओर से रक्षा करे—धाता समुद्र पाप का अपहनन करे। भूत—भविष्यत् का अकृन्तन करने वाला विश्व मेरा हावे और ब्रह्मा के द्वारा अभिगुप्त होता हुआ मैं सुरक्षित होऊं। "विश्वे आदित्या वसवश्च देवा रुद्रा गोप्तारो मरुतश्च सन्तु। ऊर्ज प्रजानाममृत दीघमायु. प्रजापतिर्मयि परमेष्ठी दधातुन स्वाहा" इति। अष्टका के लिये स्वाहा है। मध्यमा गवा है। उसक लिये वपा का हवन करता है। जात बेद पितृगण के लिये वपा का वहन करो। इति। श्व अन्वष्टकाओ मे सबका पार्श्व—सक्थि सब्यो से परिवृत मे पिण्ड पितृ यज्ञ के समान है। और स्त्रियो के लिये उपलेपन कर्षुओ मे सुरा के द्वारा तर्पण से और अञ्जन का अनुलेपन और स्रज देवे। आचार्य और अपत्यहीन अन्ते वासियो के लिये इच्छा करता हुआ करे। और वर्ष मे मध्यातुरीया शाकाष्टका होती है।३।

अथात शालाकर्म । पुण्याहे शाला कारयेत्। तस्या अवटमभिजुहोत्यच्युताय भौमाय स्वाहेति । स्तम्भमुच्छ्रयति इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभि वसोधारा प्रतरणी वसूनाम् । इहैव ध्रुवान्निमिनोमि। शाला क्षेमे तिष्ठतु घृतमुक्षमाणा अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय। आ त्वा शिशुराक्रन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमाना । आ त्वा कुमारस्तरुण आ

वत्सो जगदै सह । आ त्वा परिस्रुत कुम्भ आ दध्न. कलशैरुप क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासा रयि नो धेहि सुभगे सुवीयम् । अश्वावद्गोमदूर्जस्वत्पर्णं वनस्पतेरिव । अभि न. पूर्यतां रयिरिदमनुश्रेयो वसान इति चतुर प्रपद्यते । अभ्यन्तरतोऽग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्योत्तरत उदपात्र प्रतिष्ठाप्य स्थालीपाकं श्रपयित्वा निष्क्रम्य द्वारसमीपे स्थित्वा ब्रह्माणमामन्त्रयते ब्रह्मन्प्रविशामीति । ब्रह्मानुज्ञात प्रविशत्यृत प्रपद्ये शिव प्रपद्य इति । आज्य सस्कृत्येह रतिरित्याज्याहुतीर्हुत्वाऽवाऽपरा जुहोति । वातोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशो अनमीवो भवा न. । यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे श चतष्पदे स्वाहा । वास्तोष्पते प्रतरणो न एधिगयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो । अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे श चतुष्पदे स्वाहा । वास्तोष्पते शन्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या । पाहि क्षेम उत योगे वरन्नो यूयम्पात स्वस्तिभि सदा न स्वाहा । अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि न स्वाहेति । स्थालीपाकस्य जुहोति । अग्निमिन्द्र बृहस्पति विश्वान्देवानुपह्वये । सरस्वती च वाजी च वास्तु मे दत्त वाजिन स्वाहा । सर्पदेवजनान्सर्वान्हिमवन्त सुदर्शनम् । वसू श्च रुद्रानादित्यानीशान जगदै सह । एतान्सर्वान्प्रपद्येऽह वास्तु मे दत्त वाजिन. स्वाहा । पूर्वाह्णमपराह्णञ्चोभौ मध्यन्दिना सह । प्रदोषमर्द्ध रात्र च व्युष्टा देवी महापथाम् । एतान्सर्वान्प्रपद्येऽह वास्तु मे दत्त वाजिन स्वाहा । कर्तार च विकर्तारविश्वकर्माण मोषधीश्चवनस्पतीन् । एतान्सर्वान्प्रपद्येऽह वास्तु मे दत्त वाजिन स्वाहा । धातारञ्चविधातार निधीनांच पति सह ।

एतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिन स्वाहा। स्योनं शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती। सर्वाश्च देवताः स्वाहेति। प्राशनान्ते कांस्ये सम्भारानोप्यौदुम्बरपलाशानि ससुराणि शाड्वलं गोमयं दधि मधु घृतं कुशान्यवाश्चासनोपस्थानेषु प्रोक्षेत्। पूर्वे सन्धावभिमृशति। श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेतामिति। दक्षिणे सन्धावभिमृशति। यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे सन्धौ गोपायेतामिति। पश्चिमे सन्धावभिमृशति। अन्नं च त्वा ब्राह्मणश्च पश्चिमे सन्धौ गोपायेतामिति। उत्तरे सन्धावभिमृशति। ऊर्क्च त्वा सूनृता चोत्तरे सन्धौ गोपायेतामिति। निष्क्रम्य दिश उपतिष्ठते। केता च मा सुकेता च पुरस्ताद्गोपायेतामित्यग्निर्वै केताऽऽदित्यः सुकेता तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद्गोपायेतामिति। अथ दक्षिणतो गोपायमानं च मा रक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यहर्वै गोपायमानं रात्री रक्षमाणा ते प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेतामिति। अथ पश्चाद्दीदिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद्गोपायेतामित्यन्नं वै दीदिविः प्राणो जागृविस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पश्चाद्गोपायेतामिति। अथोत्तरतोऽस्वप्नश्च माऽनवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मोत्तरतो गोपायेतामिति। निष्ठिता प्रपद्यते धर्मस्थूणा राजं श्रीस्तूपमहोरात्रे द्वारफलके। इन्द्रस्य गृहा वसुमन्तो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिः सह। यन्मे किंचिदस्त्युपहूतः सर्वगणसखायसाधुसंवृतः। तां त्वा शालेऽरिष्टवीरा गृहान्नः सन्तु सर्वत इति। ततो ब्राह्मणभोजनम्॥ ४॥

इसके अनन्तर इसलिये शालाकर्म होता है। किसी पवित्र दिन मे शाला को कराना चाहिए। उसका "अच्युत के लिये भौम के लिये स्वाहा है"—इससे अवरक का हवन करता है। स्तम्भ को उच्छ्रित करता है—इस भुवन की नाभि वसुओ कीप्रयरणी वमोधारा को उच्छ्रित करताहू। यहाँ ध्रुवो का निमनन करता हू।—शाला को क्षेम पूर्वक स्थित रहे—घृत को उक्षमाणा—अश्वावती—गोमती—सूनृतावती शाला को महान् सौभग के लिये उच्छ्रित करो। ये चार मन्त्र कहे जाते हैं—"आत्वा शिशुराक्रन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमाना—"आत्वा कुमारस्तरुण आवत्सो जगदै सह"। आत्वा परिस्रुतः कुम्भ आदध्नः कलशैरुप क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासा रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम्। अश्वावद्गो मदूर्जस्वत्पर्ण वनस्पतेरिव। अभि पूर्यता रयिरिदमनु श्रेयो वसान"। अभ्यन्तर से अग्नि का उपसमाधान करके दक्षिण की ओर ब्रह्मा को उपविष्ट कराकर उत्तर की ओर उदपात्र को प्रतिष्ठापित करे और स्थालीपाक का श्रपण करके निष्क्रमण करे—द्वार के समीप मे स्थित होकर "ब्रह्मन्प्रविशामि" इस मन्त्र से ब्रह्मा का आमन्त्रण करता है। ब्रह्मा के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त करता हुआ प्रवेश करता है। मन्त्र यह है—ऋत प्रपद्ये—शिव प्रपद्ये" इति। आज्य का सस्कार करके यहाँ "रतिरिति" इससे आज्य की आहुतियो का हवन करके अपरा का हवन करता है। मन्त्र यह है—"वास्तोष्पते प्रतिजानीहि अस्मान्स्वावेशो अनमीवो भवान्। यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शचतुष्पदे स्वाहा"—"वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो। अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदेश चतुष्पदे स्वाहा"। "वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या। पाहि क्षेम उत योगे वरन्नो यूयम्पात स्वस्तिभिः सदानः स्वाहा"। "अमीवहा वास्तोष्पते विश्वारूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः स्वाहा"। इति।

स्थालीपाक का हवन करता है। मन्त्र यह है—"अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वान्देवानुपह्वये। सरस्वती च वाजी च वास्तु मे दत्त

वाजिन स्वाहा"। "सर्पदेवजनाम् सर्वान् हिमवन्तं सुदर्शनम्। वसूश्च रुद्रानादित्यानीशान जगदैं सह। एतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिन स्वाहा"। पूर्वाह्णमपराह्णञ्चोभौ मध्यन्दिना सह। प्रदोष मर्द्धरात्र च व्युष्टां देवी महापथाम्। एतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिन स्वाहा"। "कर्त्तार च विकर्त्तारं विश्वकर्माण मोषधीश्च वनस्पतीन्। एतान्सर्वा प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिन स्वाहा" अर्थात् कर्त्ता को—विकर्त्ता को—विश्वकर्मा को—औषधियों को—वनस्पतियों को—इन सबको शरणागति में मैं जाता हूं—वाजिगण मुझे वस्तु देवें—स्वाहा है। "धातार च विधातार निधीनाँ च पतिं सह। सतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिन। स्वाहा"। स्योन शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती। सर्वाश्च देवता स्वाहा—इति" प्राशन के अन्त में कांसे के पात्र मे सम्भारों को रखकर औदुम्बर पलाशो को ससुर—शाड्वल—गोमय—दधि—मधुर घृत—कुशो—और यवों को आसनोप स्थानों में प्रोक्षण करे। पूर्व मे सन्धि मे अभिमृष्ट करता है। मत्र यह है—"श्रीश्चत्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेताम्" इति। दक्षिण सधि मे "यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे सन्धौ गोपायेताम्" इति—इस मत्र से दक्षिण सधि मे अभिमृष्ट करता है। पश्चिम सधि में—"अन्नं च त्वा ब्राह्मणश्च पश्चिमे सन्धौ गोपायेताम्" इति—इस मत्र से अभिमृष्ट करना है। इसके अनन्तर उत्तर सधि मे—"ऊर्क्च त्वा सूनृता चोत्तरे सन्धौ गोपायेताम्" इति—इससे अभिमृष्ट करता है। निष्क्रमण करके दिशाओ का उपस्थान करता है। मत्र यह है—"केता च मा सुकेना च पुरस्ता द्गोपायेताम्" इसमे अग्निर्वै केताऽऽदित्यः सुकेता इन दोनो की प्रपत्ति ग्रहण करता हू। उन दोनो के लिये नमस्कार है वे दोनो आगे रक्षा करे। इति।

इसके अनन्तर दक्षिण की ओर गोपायमान मेरी रक्षा करती हुई दक्षिण की ओर रक्षा करे—इससे दिन गोपायमान है और रात्री रक्षमाणा है—उन दोनो की सन्निधि मे मैं प्रपन्न होता हू। उन दोनों को मेरा नमस्कार है। वे दोनो मेरी दक्षिण की ओर से रक्षा करे—इति।

इसके अनन्तर "पश्चाद्दिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद्गोपायेताम्" इससे अन्न—दीदिवि प्राण जागृवि—इन दोनो की प्रपत्ति ग्रहण करता हू—उन दोनो को मेरा नमस्कार है—वे दोनो मेरी पश्चात् रक्षा करे—"इति। इसके अनन्तर "उत्तरतोऽस्वप्नश्च माऽनवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेताम्" इति। "चन्द्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्या नमोऽस्तु तौमोत्तरतो गोपायेताम्—" इति। अर्थात् चन्द्रमा अथवा अस्वप्न वायु अनवद्राण उन दोनो की शरणागति मे मैं जाता हू—उन दोनो के लिये मेरा नमस्कार है—वे दोनो मुझको उत्तर की ओर रक्षित रक्खे। हे राजन्! धर्म स्थूणा निष्ठिता को प्रपन्न होती है और द्वार फलक में अहोरात्र में श्री स्तूप को प्रपन्न होता है। इन्द्र के गृह वसुवाले और वरूथी हैं उन की प्रपत्ति मे मैं जाता हू समस्त प्रजा और पशुओ के साथ हायस्म होता हू। जो कुछ सवगण सखाय साधु सङ्कृत उपहूत है। उनको तुमको शाला मे अष्टवीरा हमारे गृहो को होवे और सब ओर से हो" इति। इसके अनन्तर ब्राह्मणो को भोजन करना चाहिए।४।

अथातो मणिकावधानम्। उत्तरपूर्वस्या दिशि यूपवद-वट खात्वा कुशानास्तीर्याक्षतानरिष्टकान् (सुमनस कपर्दिकान्) चान्यानि चाभिमङ्गलानि तस्मिन् मिनोति मणिक समुद्रोऽसीति। अप आसिञ्चति। आपो रेवती क्षयथा हि वस्व क्रतु च भद्र बिभृथा-मृत च। रायश्च स्थ स्वापत्यस्य पत्नी सरस्वती यद्-गृणते वयोऽधादिति। आपोहिष्ठेति च तिसृभि। ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ ५ ॥ ६.

इसके अनन्तर मणिका विधान होता है। उत्तर पूर्व दिशा मे यूप की ही भाँति अवट का खनन करके कुशाओं को फैलाकर अरिष्टक अक्षतो को पुष्पो को—कपर्दिकाओ को (कौडियो को) और अन्य अभि-मङ्गलो को आस्तरण करके उसमे मणिक को "समुद्रोऽसि" इससे

मथन करता है। फिर "आपो रेवती क्षयथा हि वस्वः क्रतु च भद्र बिभृथामृत च। रायश्च स्थ स्वापत्यस्य पत्नी सरस्वती तद्गृणते वयोऽधात्" इति—इससे जल का आसेचन करता है। और "आपोहिष्ठा मयोभुव" इत्यादि तीन मन्त्रों के द्वारा आसेचन करता है। इस सम्पूर्ण कृत्य के साङ्ग सुसम्पन्न हो जाने के अनन्तर अन्त में ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। ५।

अथात शीर्षरोगभेषजम्। पाणी प्रक्षाल्य भ्रुवौ विमार्ष्टि। चक्षुर्भ्यां श्रोत्राभ्यां गोदानाच्छुबुकादधि। यक्ष्मं शीर्षण्यं रराटाद्विवृहामीममिति। अर्द्धञ्चेदव-भेदकविरूपाक्ष श्वेतपक्ष महायश। अथो चित्रपक्ष शिरो माऽस्याभितापीदिति। क्षेम्यो ह्येव भवति॥ ६॥

इसके उपरान्त शीर्षरोग की भेषज हैं। दोनों हाथों को प्रक्षालित करके भौंहों का विमार्जन करता है। मार्जन करने का मन्त्र यह है—"चक्षुर्भ्यां श्रोत्राभ्यां गोदानाच्छुबुका दधि। यक्ष्म शीर्षण्य रराटाद्वि-वृहामीमम्" इति। "अर्द्धञ्चेदव भेदक विरूपाक्ष श्वेतपक्ष महायश। अथो चित्रपक्ष शिरो माऽस्याभितापीद्॥ इति क्षेम्य ही होता है। ६।

उतूलपरिमेहः। स्वपतो जीवविषाणे स्व मूत्रमासि-च्यापसलवि त्रि परिषिञ्चन्परीयात्। परि त्वा गिरेरह परिमातुः परिस्वसुः परिपित्रोश्च भ्रात्रोश्च सख्येभ्यो विसृजाम्यहम्। उतूल परिमीढोऽसि परिमीढ क गमिष्यसीति स यदि भयाद्धावाग्निमुपसमाधाय घृताक्तानि कुशेण्डवानि जुहुयात्। परि त्वा ह्वलनो ह्वनिवृत्तन्द्रोरुधः। इन्द्रपाशेन छित्त्वा मह्य मुक्त्वाथान्यमानयेदिति क्षेम्यो ह्येव भवति॥ ७॥

उतूल परिमेद बतलाया जाता है। सोते हुए जीव के विषाण में अपने मूत्र का आसेचन करके अप सलवि तीन बार परिषिञ्चन करते

हुए परियान करे। "परित्वा गिरेरह परिमातु परिस्वसु परिपित्रोश्च भ्रात्रोश्च सखोभ्यो विसृजाम्यहम्। उतूल परिमीढोऽसि परिमीढ क गमिष्यासि ॥ इति। इस मन्त्र के द्वारा वह यदि भ्रम्य से द्वावाग्नि का उप समाधान करके घृताक्त अङ्गों को कुश से हवन करे। "परित्वा ह्वलनो ह्वल निवृ त्तेन्द्र वीरुध। इन्द्रपाशेन च्छित्वा मह्य भुक्त्वाधान्य मामयेत् ॥ इति। इस मन्त्र से क्षेम्य ही होता है। ७।

शूलगव। स्वर्ग्य पशव्य पुण्यो धन्यो यशस्य आयुष्य। औपासनमरण्य हृत्वा विवितान साधयित्वा रौद्र पशुमालभते। साण्डम्। गौर्वा शब्दात्। वपा श्रपयित्वा स्थालीपाकमवदानानि च रुद्राय वपामन्तरिक्षाय वसा स्थालीपाकमिश्राण्यवदानानि जुहोत्यग्नये रुद्राय शर्वाय पशुपतये उग्रायाशनये भवाय महादेवायेशानायेति च। वनस्पतिस्विष्टकृदन्ते ॥ दिग्व्याघारणम्। व्याघारणान्ते पत्नी सयाजयन्तीन्द्राण्यै रुद्राण्यै शर्वाण्यै भवान्या मग्नि गृहपतिमिति। लोहित पालाशेषु कूर्चेषु रुद्राय सेनाभ्यो बलि हरति यास्ते रुद्र पुरस्तात्सेनास्ताभ्य एष ते बलिस्ताभ्यस्तेनमो यास्ते रुद्र दक्षिणत सेनास्ताभ्य एष ते बलिस्ताभ्यस्ते नमो यास्ते रुद्र पश्चात्सेनास्ताभ्य एष बलिस्तास्य एष बलिस्ताभ्यस्ते नमो यास्ते रुद्रोत्तरत सेनास्ताभ्य एष ते बलिस्ताभ्यस्तेनमोयास्ते रुद्रोपरिष्टात्सेनास्ताभ्य एष ते बलिस्ताभ्यस्ते नमो यास्ते रुद्राधस्तात्सेनास्ताभ्य एष ते बलिस्ताभ्यस्ते नम इति ऊवध्य लोहितलिप्तमग्नौ प्रास्यत्यधो वा निखनन्ति। अनुवात पशुमवस्थाप्य रुद्रैरुपतिष्ठते प्रथमोत्तमाभ्या वाऽनुवाकाभ्या नैतस्य पशोर्ग्राम हरति। एतेनैव गोयज्ञो व्याख्यात। पायसेनानर्थलुप्त। तस्य तुल्यवया गौदक्षिणा ॥ ८ ६॥

अब शूलगव बतलाते हैं यह स्वर्ग देने वाला—पशु देने वाला—पुत्र प्रदाता धन्य–यशस्य और आयुष्य होता है। औपासन अरण्य का हरण करके विवितान का साधन करके रौद्र पशु का आलभन करता है। साण्ड को करता है। अथवा शब्द से गौ का ग्रहण है। वपा का श्रपण करके स्थाली पाक और अवदानो को रुद्र के लिये—वपा को अन्तरिक्ष के लिये—वसा को और स्थाली पाक से विमिश्रित अवदानो का हवन करता है। मन्त्र यह है—"अग्नये रुद्राय शर्वाय पशुपतये उग्रायाशनये भवाय महादेवाये शानाय ॥ इति। अन्त मे वनस्पति स्विष्टकृत होता है। फिर दिग्व्या धारण होता है व्याधारण के अन्त में "पत्नी. मयाज यन्त्रीन्द्राण्यै रुद्राण्यै शर्वाण्यै भवान्या अग्नि गृहपति मिति" इस मन्त्र से करे। लोहित पालाश कूर्चों मे रुद्र के लिये सेनाओं के लिए बलि का हरण करता है—हे रुद्र ! जो आप के आगे सेनाये है उनके लिये यह बलि है। उनके लिय आपके लिए नमस्कार है। हे रुद्र ! जो आपके दक्षिण की ओर सेनाऐ है उनके लिये यह बलि हैं। आपकी उन सेनाओ के लिये नमस्कार है। हे रुद्र ! जो सेनाऐ आपके पश्चिम की ओर है उनके लिये यह बलि है आपकी उन सेनाओ के लिए नमस्कार है। हे रुद्र ! आपकी उत्तर की ओर जो ये सेनाऐ है उनके लिये यह बलि है आपकी उन सेनाओ के लिये नमस्कार है। हे रुद्र ! जो आपके ऊपर की ओर ये सेनाऐ है उनके लिए यह बलि है, आपकी उन सेनाओ के लिए नमस्कार है। हे रुद्र ! आपके नीचे की ओर जो ये सेनाऐ हैं उनके लिए यह बलि है आपकी उन सेनाओ के लिए नमस्कार है। लोहित लिप्त ऊवध्य को अग्नि मे देगा अथवा अधोभाग में निखनन करते हैं। बात के अनुसार पशु को अब स्थापित करके रुद्र मन्त्रो के द्वारा उपस्थान करता है। अथवा प्रथमोत्तम अनुवाको से इस पशु के ग्राम का हरण नहीं करता है। इतने इससे ही गो यज्ञ की व्याख्या कर दी गयी है। पायस से अनर्थलुप्त होता है। उसके समान अवस्था वाली गौ की ही दक्षिणा होनी चाहिए। ८-६।

अथ वृषोत्सर्गः । गोयज्ञेन व्याख्यातः । कार्तिक्यां पौर्णमास्यां रेवत्या वाऽऽश्वयुजस्य । मध्येगवां सुसमिद्धमग्निं कृत्वाऽऽज्यं संस्कृत्येहरतिरिति षट् जुहोति प्रतिमन्त्रम् । पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्ववर्न्तः । पूषा वाजं सनोतु नः स्वाहेति पौष्णस्य जुहोति रुद्रान् जपित्वैकवर्णं द्विवर्णं वा यो वा यूथं छादयति यं वा यूथं छादयेद्रोहितो वैव स्यात्सर्वाङ्गैरुपेतो जीववत्साया पयस्विन्याः पुत्रो यूथे च रूपस्वित्तमः स्यात्तमलंकृत्य यूथेमुख्याश्चतस्रो वत्सतर्यस्ताश्चालंकृत्य । एतं युवानं पतिं वो ददामि तेन क्रीडन्तीश्चरथ प्रियेण । मानः साप्तजनुषा सुभगा रायस्पोषेण समिषा मदेमेत्येतयं वोत्सृजेरन् । नभ्यस्थमभिमन्त्रयते मयोभूरित्यनुवाकशेषेण (वामे चक्रं दक्षिणे त्रिशूलं) । सर्वासां पयसि पायसं श्रपयित्वा ब्राह्मणान्भोजयेत् । पशुमप्येके कुर्वन्ति । तस्य शूलगवेन कल्पो व्याख्यातः ॥ १० ॥

इसके अनन्तर वृष के उत्सर्ग के विषय मे बतलाया जाता है। गौ के यज्ञ से व्याख्या कर दी गयी है। कार्तिक मास की पौर्ण मासी मे अथवा आश्विन मास की रेवती मे इसको करे। गौओ के मध्य मे अग्नि को भली भाति समिद्ध करके आज्य (घृत) का संस्कार करे फिर "इहरति रिह" इत्यादि मन्त्रो के द्वारा प्रतिमन्त्र छै आहुतियो का हवन करता है। "पूषा गा अन्वेतु न पूषा रक्षत्ववंत । पूषा वाज सनोतु न स्वाहा" इस मन्त्र से पौष्ण की आहुतियो का हवन करता है। रुद्र मन्त्रो का जाप करके एक वर्ण वाले अथवा दो वर्ण वाले को जो भी यूथ का छादन करता है अथवा यूथ जिसका छादन करे अथवा रोहित ही हो किन्तु सम्पूर्ण अङ्गो से युक्त हो जीववत्सा पयस्विनी का पुत्र और यूथ मे रूपस्वित्तम होना चाहिए। उसको अलकृत करके यूथ में चार जो मुख्य वत्सतरी हैं उनको भी भली भाँति अलकृत करे।

इस युवक पति को आपको देता हूं। उस प्रिय के साथ क्रीडा करती हुई विचरण करो। "मान सासजनुषा सुभगा रायस्पोषेण समिषा मदेम" इति—इससे उत्सर्ग करे। "मयोभू" इस अनुवाक शेष के द्वारा मध्यस्थ को अभिमन्त्रित करना है। (वाम भाग मे चक्र और दक्षिण भाग मे त्रिशूल रक्खे) सबके दूध मे पायस का श्रपण करके अन्त मे ब्राह्मणो को भोजन करावे। १०।

अथोदककर्म। अद्विवर्षे प्रेते मातापित्रोराशौचम्। शौचमेवेतरेषामेकरात्रं त्रिरात्रं वा। शरीरमदग्ध्वा निखनन्ति। अन्तःसूतके चेदोत्थानादाशौचं सूतकवत्। नात्रोदककर्म द्विवर्षप्रभृति प्रेतमाश्मशानात्सर्वेऽनुगच्छेयुः। यमगाथा गायन्तो यमसूक्तं च जपन्त इत्येके। यद्युपेतो भूमिजोषणादिसमानमाहिताग्नेरादकान्तस्य गमनात्। शालाग्निना दहन्त्येनमाहितश्चेत्। तूष्णीं ग्रामाग्निनेतरम्। सयुक्तं मैथुनं वो याचेरन्नुदकं करिष्यामह इति। कुरुध्वं मा चैवं पुनरित्यशतवर्षे प्रेते कुरुध्वमित्येवेतरस्मिन् सर्वे ज्ञातयोऽपोऽभ्यवयन्त्यासप्तमात्पुरुषाद्दशमाद्वा। समानग्रामवासे यावत्सम्बन्धमनुस्मरेयुः। एकवस्त्राः प्राचीनावीतिनः। सव्यस्यानामिकयाऽपनोद्यापनः शोशुचदघमिति। दक्षिणामुखा निमज्जन्ति। प्रेतायोदकं सकृत्प्रासिञ्चन्त्यञ्जलिनाऽसावेतत्त उदकमिति। उत्तीर्णाञ्छुचौ देशे शाड्वलत्युपविष्टांस्तत्रैतानपवदेयुः। अनवेक्षमाणा ग्राममायान्ति रीतीभूताः। कनिष्ठपूर्वाः। निवेशनद्वारे पिचुमन्दपत्राणि विदश्याचम्योदकमग्निमश्मयमौरसर्षपांस्तैलमालभ्याश्मानमाक्रम्य प्रविशन्ति। त्रिरात्रं ब्रह्मचारिणोऽधःशायिनो न किंचन कर्म कुर्युर्न प्रकुर्वीरन्। क्रीत्वा लब्ध्वा वा दिवैवान्नमश्नीयुरमांसम्। प्रेताय

पिण्ड दत्त्वाऽवनेजनप्रत्यवनेजनेषुनामग्राहम्। मृन्मयेहता ँ, रात्री क्षीरोदके विहायसि निदध्यु प्रेतायात्र स्नाहीति। त्रिरात्र ँ, शावमाशोचम्। दशरात्रमित्येकेन स्वाध्यायम धीयीरन्। नित्यानि निवर्तेरन्वैतानवर्जम्। शालाग्नौ चैके। अन्य एतानि कुर्यु। । प्रेतस्पर्शिनो ग्रामन प्रविशेयुरानक्षत्रदर्शनात्। रात्रौ चेदादित्यस्य। प्रवेशनादि समानमितरैं। पक्ष द्वौ वाऽऽशौचम्। आचार्ये चैवम्। मातामहयोश्च। स्त्रीणां चाप्रत्तानाम्। प्रत्तानामितरे कुर्वीरन्। ताश्च तेषाम्। प्रोषितश्चेत्प्रेयाच्छ्रवणप्रभृति कृतोदका कालशेषमासीरन्। अतीतश्चेदेकरात्र त्रिरात्र वा। अथ कामोदकान्यृत्विक्श्वशुरसखिसम्बन्धिमातुलभागिनेयानाम्। प्रत्ताना चैकादश्यामयुग्मान्ब्राह्म॰ान्भोजयित्वा मा ँ, सवत्। प्रेतायोद्दिश्य गामप्येके घ्नन्ति। पिण्डकरणे प्रथम पितृणा प्रेत स्यात्पुत्रवाश्चेत्। निवर्तेत चतुर्थ। सवत्सर पृथगेके। न्यायस्तु। न चतुथपिण्डो भवतीति श्रुते। अहरहरन्नमस्मै ब्राह्मणायोदकुम्भ च दद्यात्। पिण्डमप्येके निपृणन्ति ॥११॥

इसके अनन्तर उदक कर्म के विषय मे बतलाते हैं। आद्विवर्ष प्रेत मे माता-पिता का आशौच होता है। इतरो का शौच हो एक रात्र अथवा त्रिरात्र होता है। शरीर को दग्ध करके निखनन करते हैं। और अन्त सूतक मे उत्थान से सूतक की ही भाँति आशौच होता है। यहा पर उदक कम नही है। दो वर्ष आदि श्मशान से लेकर सब प्रेत के पीछे अनुगमन करे। कतिपय विद्वानो का मत है कि वे मनुष्य सब यमराज की गाथा का गान करते हुए अनुगमन करे और यम सूक्त का जाप करते हुए जावे। यदि भूमि जोषणादि समान को उपेत हो तो आहिताग्नि पुरुष का ओदकान्त का गमन होता है। यदि आहित होवे

तो इसका दाह शालाग्नि के द्वारा किया करते है। इतर का दाह चुप-चाप ग्राम की अग्नि के द्वारा करना चाहिए। मन्त्र मह है—"सयुक्त मैथुन वो याचेरन् उदक करिष्या महे" इति। पुन इस प्रकार से मत करो—इससे अशत वष वाले प्रेन मे करो –इससे ही इतर मे सब ज्ञाति वाले सप्तम पुरुष से अथवा दशम पुरुष तक जल का अभ्य वयन करते हैं। समान ग्राम के वास मे जितना सम्बन्ध हो उसका अनुस्मरण करे। प्राचीना वीति एक वस्त्र वाले होवे। "शोशुचम्" इति—इससे सव्य की अनामिका से अपनोद्यापन होवे। दक्षिण की ओर मुखो वाले होकर निमज्जन किया करते है। "असौ–एततेदुकम्" इति—यह कहते हुए प्रेत के लिए उदक को एक बार अञ्जलि से प्रासिञ्चन करते है। उत्ती-वर्णों को शुचि देश मे घास वाली भूमि पर उपविष्ट होते हुए वहाँ पर इनका अप वदन करना चाहिए। अनवेक्षमाण ग्राम का जाते हैं जो रीति भूत कनिष्ठ पूर्व है। निवेशन द्वार मे पिचुमन्द के मन्त्रो का विद-शन करके आचमन करके उदक को—अग्नि को–गोरमय—गोर सर्षपो को—तैल को आलभन करके आक्रमण करके प्रवश करते हैं।

तीन रात्रि तक ब्रह्मचारी–अधोभाग मे शयन करने वाले होते हुए कुछ भी कर्म न करे अथवा नही करना चाहिए। क्रम करके अथवा प्राप्त करके दिन मे ही अमोम अन्न का प्राशन करना चाहिए। प्रेत के लिये पिंड देकर अवभेजन—प्रत्यवनेजनेषु नाम का ग्रहण करे। मृन्मय क्षीरोक मे हता रात्रि को प्रात काल मे प्रेत के लिए "अत्र स्नादि" इस मन्त्र से रक्खे। तीन रात्रि पर्यन्त शाव (शव सम्बन्धी) अशौच होता है। एक के मत मे दशरात्रि तक अशौच होता है पश्चात् स्वाध्याय का अध्ययन करे। वैतान को वर्जित कर नित्य कर्मों का निवर्त्तन करे। कतिमय विद्वानो का मत है शालाग्नि मे करे। अन्य इनको करे—प्रेत का स्पर्श करने वाले मनुष्य जब तक नक्षत्रो का दर्शन न हो तब तक ग्राम मे प्रवेश न करे। और यदि रात्रि मे प्रेत का स्पर्श के पात्र हो तो जब तक सूय दव के दर्शन न करे–ग्राम मे प्रवेश नहीं

करना चाहिए। प्रवेशन आदि अन्यो के ही समान होता है। पक्ष का अथवा दो का आशौच है। आचार्य मे इसी प्रकार से होता है। माता-मही और माता यह इन दोनो का भी होता है। जो अप्रत्त स्त्रियाँ हो उनका भी होता है। जो प्रत्त हो उनका इतरो को करना चाहिये। और उनके वे है। यदि कोई प्रोषित है तो जो प्रेयान् हो उसको जिस समय से श्रवण करे तभी से शेष काल तक रहे। यदि अतीत होगया हो तो एक रात्रि अथवा तीन रात्रि तक आशौच मानना चाहिये। इसके अनन्तर ऋत्विक्–श्वशुर–सखि––सम्बन्धी – मातुल और भागिनेयो के कामोदक होते हैं अर्थात् इच्छानुसार जल का देना होता है। और प्रज्ञों का एकदशी में अयुग्म ब्राह्मणो को मास वत् कराना चाहिए। प्रेत के लिये उद्देश्य करके गाय का भी हनन करते हैं–ऐसा कुछ विद्वानो का मत है। पिण्डकरण मे यदि पुत्रवान् हो तो पितृगणो का प्रेत प्रथम होता है। चतुर्थ निवर्त्तन करने वाला होता है। कुछ का मत है पृथक् सवत्सर तक होता है। न्यायोचित तो चतुर्थ पिण्ड नही होता है–यह श्रुति के द्वारा प्रतिपादित होता है। नित्य प्रति इसके लिए अन्न देवे और ब्राह्मण के लिए जल का कुम्भ देना चाहिए। कतिपय मनीषियो का मत है कि पिण्ड का निर्वचन करते हैं ॥११॥

पशुश्चेदाप्लव्या गामग्रेणाग्नीन्परीत्य पलाशाग्रे शाखा-न्निहन्ति। परिव्ययणोपाकरण नियोजनप्रोक्षणाग्न्यावृता कुर्याच्चान्यत्। परिपशव्ये हुत्वा तूष्णीमपरा पञ्च। वपोद्धरण चाभिघारयेद्देवता चादिशेत्। उपाकरण नियोजन प्रोक्षणेषु स्थालीपाके चैवम्। वपा ँ हुत्वाऽव-दानान्यवद्यति। सर्वाणि त्रीणि पञ्च वा। स्थालीपाक मिश्राण्यवदानानि जुहोति। पञ्चाङ्ग दक्षिणा। यद्देवते तद्दैवत यजेत्तस्मै च भाग कुर्यात्त च ब्रूयादिम-मनुप्रापयेति। नद्यन्तरे नाव कारयेन्न वा ॥१२॥

यदि पशु हो तो अग्र के द्वारा गौ का आप्लवम कराना चाहिए। पलाशाग्र मे अग्नियो को परीत करके निहनन करता है। पर्यग्नियण–उपाकरण–नियोजन और प्रोक्षणो को आवृत्त होते हुए करना चाहिए और जो अन्यत् हो वह करे। परिपशव्य मे तूष्णी भाव से हवन करके आरे पांचो को करे। वयोद्धर को करे और अभिधारण करे और देवता को आदेश करे। उपाकरण मे—नियोजन मे और प्रोक्षण मे और इसी प्रकार ऐ स्थाली पाक मे करना चाहिए। वपा का हवन करके अवदानो को अवद्य करता है। सबको करे अथवा तीन तथा पाँच को करे। स्थाली पाक से मिश्रित अवदानो का हवन करता है। पशु का अङ्ग दक्षिणा होती है। जिस देवता से सम्बन्धित मे जिस दैवत का यजन करे और उसके लिए भाग को करे और उससे बोलना चाहिए कि इसका अनुप्राषण करिये। इति॥ अन्तर मे नाव न करावे अथवा नही करना चाहिए ॥१२॥

अथातोऽवकीर्णिप्रायश्चित्तम् । अमावास्यायां चतुष्पथे गर्दभं पशुमालभते । निर्ऋतिं पाकयज्ञेन यजेत् । अप्स्ववदानहोमः । भूमौ पशुपुरोडाशश्रपणम् । तां छविं परिदधीत । ऊर्ध्वबालामित्येके । संवत्सरं भिक्षाचर्यं चरेत्स्वकर्म परिकीर्तयन् । अथापरमाज्याहुती जुहोति । कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि काम कामाय स्वाहा । कामाभिदुग्धोऽस्म्यभिदुग्धोऽस्मि काम कामाय स्वाहेति । अथोपतिष्ठते सं मा सिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः सं बृहस्पतिः । सं माऽयमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन चेति । एतदेव प्रायश्चित्तम् ॥१३॥

इसके अनन्तर अवकीर्णी का जो प्रायश्चित है उसके विषय मे बतलाया जाता। अमावस्या तिथि मे चौराहे पर गर्दभ पशु का आलभन करना चाहिए अर्थात् आलभन करता है। निर्ऋति का यजन पाक यज्ञ के द्वारा करना चाहिए। जलो मे अवदान का होम होता है। भूमि मे

पशु पुरोडाश का श्रपण होता है। उस छवि को परिधान करना चाहिए। कतिपय विद्वानों का मत यह है कि ऊर्ध्व बाला को करे। एक सम्वत्सर पर्यन्त अपने किये हुए कर्म का सर्वत्र परिकीर्त्तन करता हुआ भिक्षाचरण करता हुआ चरण करना चाहिए। इसके अनन्तर ऊपर आज्य की आहुतियों का हवन करता है। मन्त्र यह हैं—"कामावकीर्णोऽसि—अवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा"—कामाभिदुग्धोऽस्मि—अभिदुग्धोऽस्मि काम कामाय स्वाहा" ॥इति॥ इसके उपरान्त मे उपस्थान करता है—"समा सिञ्चन्तु मरुत समिन्द्र संवृहस्पति। स माऽयमग्नि सिञ्चतु प्रजया च धनेन च" इति। यह ही प्रायश्चित्त होता है ॥१३॥

अथात सभाप्रवेशनम्। सभामभ्येति सभाङ्गिरसि नादिर्नामासित्विषिर्नामासितस्यै ते नमइति। अथ प्रवशति सभा चमा समितिश्चोभे प्रजापतेर्दुहितरौ सचेतसौ। यो मान विद्यादुपमा स तिष्ठेत्सचेतनो भवतु शं॰सथे जन इति। पषदमेत्य जपेदभिभूरहमागमविराडप्रतिबाश्या। अस्या पषद ईशान सहसा सुदुष्टरो जन इति। स यदि मन्येत क्रुद्धोऽयमिति तमभिमन्त्रयते यात एषा रराटथा तनूर्मन्यो' क्रोधस्य नाशनी। ता देवा ब्रह्मचारिणो विनयन्तु सुमेधस। द्यौरह पृथिवी चाह तौ ते क्रोध नयामसि गभमश्वतर्यसहासाविति। अथ यदि मन्येत द्रुग्धोऽयमिति तमभिमन्त्रयते ता ते वाचमास्य आदत्ते हृदय आदधे। यत्र यत्र निहिता वार्त्ता ततस्तत आददे यदह ब्रवीमि तत्सत्यमधरो मत्तांद्यस्वेति। एतदेव वशीकरणम् ॥१४॥

इसके अनन्तर सभा प्रवेशन के विषय मे बतलाया जाता है। मन्त्र यह है—"सभायभ्येति सभाङ्गिरसि नादिर्नामासि त्विषिर्नामासि तस्यै ते नम" इति ॥ इसके अनन्तर प्रबेश करता है। सभा और समिति दोनो प्रजापति की दुहिताऐ है और सचेतस है। जो मान जानता है उपमा

वह सचेतन स्थित रहे सू ँ् सथमें जन है' इति ।। पर्षद मे जाकर जाप करे—मन्त्र यह है–"अभिरभूरहमागम विराडप्रतिवाश्या । अस्मा॰ पर्षद ईशान सहसा सुदुष्टरो जन इति" । "वह यदि यह क्रुद्ध है–यह माने तो उसको अभिमन्त्रित करता है–"यात एषा रराटचा तवूर्मन्यो क्रोधस्य नाशनी । त देवा ब्रह्मचारिणो विनयन्तु सुमेधस॰ । द्यौरह पृथिवी चाह तौ ते क्रोध नयामसि गर्भमश्वतर्य्र महासाविं'त" ।इति। इसके अनन्तर यदि यह द्रुग्ध है–यह मानता है तो उसको अभिमन्त्रित करता है—"ता ते वाचमास्य आदत्ते हृदय आदधे । यत्र यत्र निहिता वाक्ता ततस्तत आददे यदह ब्रवीमि तत्सन्यमधरो मत्ताद्यस्वेति" । यह ही वशीकरण होता है ।।१४।।

अथातो रथारोहणम् । युङ्क्तेऽतिरथ ँ् सम्प्रेष्य युक्त इति प्रोक्ते सा विराडित्येत्य चक्रे अभिमृशति रथन्तर-मसीति दक्षिणम् । बृहदसीत्युत्तरम् । वामदेव्यसीति कूबरीम् । हस्तेनोपस्थमभिमृशति । अङ्कौ न्यङ्कावभितो रथ यौ ध्वान्त वाताग्रमनु सचरन्तम् । दूरेहेतिरिन्द्रिय-वान्पतत्री ते नाम्नय पप्रय पारयन्त्विवति । नमो मणि चरायेति दक्षिण धुर्य प्राजति (गवा मध्ये स्थापयति) अप्राप्य देवता प्रत्यवरोहेत्सप्रति ब्राह्मणान्मध्ये गा अभिक्रम्य पितृन् । न स्त्री ब्रह्मचारिणौ सारथी स्याताम् । मुहूर्तमतीयाग्र जपेदिहरतिरिहर ममध्वम् । एके माऽस्त्विह रेतिरिति च । स यदि दुबलो रथ स्यात्त-मास्थाय जपेदय वामश्विना रथो मा दुर्गे मास्तरोरिष-दिति । स यदि भ्रम्यात्स्तम्भमुपस्पृश्य भूमि वा जपेदेष-वामश्विना रथो मा दुर्गे मास्तरोरिषदिति । तस्य न काचनार्तिर्न रिष्टिर्भवति । यात्वाध्वान विमुच्य रथ यवसोदके दापयेदेष उ ह वाहनस्यापह्नव इति श्रुते ।१५।

इसके अनन्तर रथ पर आरोहण के विषय मे बतलाया जाता है । 'युङ्क्तेऽतिरथ ँ् सम्प्रेष्य युक्त इति"—इसके कहने पर "सा विराड्"

इति—इससे आकर 'चक्रे अभिमृशति रथन्तरमसि' इति—इससे दक्षिण मे करे"। 'वृहदसीति'—इससे उत्तर मे करे। 'वामदेव्यमसीति'—इससे कूबरी को करे। हाथ से उपस्थ को अभिमृष्ट करता है। मन्त्र यही है—'अङ्कौ न्यङ्कावभितो रथ यौ ध्वान्त वाताग्रमनु सचरन्तम्। दूरेहेतिरिन्द्रियवान् पतत्री ते नाग्नयः पप्रय पारयन्त्विति'। (गायो के मध्य मे स्थापित करता है) देवताओ को अप्राप्त करके प्रत्यवरोहण करे। अब ब्राह्मणो को मध्य मे गौओ का अभिक्रमण करके पितृगणो को करे। स्त्री और ब्रह्मचारी सारथी नही होने चाहिए। एक मूहूर्त तक समय को विताकर निम्न मन्त्र का जप करना चाहिए—'इहरति रिहरम मध्वम्। एके भाऽस्त्विह रेतिरिति'। वह रथ यदि दुबल होवे उस पर आस्थित होकर जाप करे—'अय वामश्विना रथो मा दुर्गे मास्तरोरिषत्' इति। वह यदि भ्रमण करे तो स्तम्भ का उपस्पदशन करके अथवा भूमि का जाप करे। मन्त्र यह है—'एष वामश्विना रथो मा दुर्गे मास्तरोरिषत्' इति। उसको कोई आर्त्ति (पीडा) और कोई रिष्टि नही होती है। 'या त्वाध्वान विमुच्य रथ य वसोदके दापयेदेष उह वाहनस्यापह्नव' इति—इसका श्रुति वचन प्रतिपादन करता है ॥१५॥

अथाऽतो हस्त्यारोहणम्। एत्य हस्तिनमभिमृशति हस्तियशसमसि हस्तिवर्चसमसीति। अथाऽवरोहतीन्द्रस्य त्वा वज्रेणाभितिष्ठामि स्वस्ति मा सपारयेति। एतेनैवाश्वारोहण व्याख्यातम्। उष्ट्रमारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते त्वाष्ट्रोऽसि त्वष्ट्रदैवत्य स्वस्ति मा सपारियेति। रासभमारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते शूद्रोऽस शूद्रजन्माऽऽग्नेयो वै द्विरेता स्वस्ति मा सपारयेति। नावमारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते सुनावमिति। उत्तरिष्यन्नभिमन्त्रयते सुत्रामाणमिति वनमभिमन्त्रयते नमो रुद्राय वनसदे स्वस्ति मा सपारयेति। गिरिमभिमन्त्रयते नमो रुद्राय गिरिषदे स्वस्ति मासपारयेति। चतुष्पथमभिमन्त्रयते नमो

रुद्राय पथिषदे स्वस्ति मा सपारयेति । नदीमुत्तरिष्यन्नभिमन्त्रयते नमो रुद्रायाप्सुषदे स्वस्ति मा सपारयेति । श्मशानमभिमन्त्रयते नमो रुद्रायपितृषदे स्वस्ति मा सपारयेति । गोष्ठमभिमन्त्रयते नमो रुद्राय शकृत्पिण्डसदे स्वस्ति मा सम्पारयेयि । यत्र चान्यत्रापि नमत्रे रुद्रायेत्येव ब्रूयाद्रुद्रो ह्येवेदँ सवमिति श्रुते । सिचाऽवधुतोऽभिमन्त्रयते सिगसि न वज्रोऽसि नमस्तेऽस्तु मा माहिँसीरिति । स्तनयित्नुमभिमन्त्रयते शिवा ना वर्षा सन्तु शिवा न. सन्तु हेतय । शिवानस्ता सन्तु याम्त्वँसृजसि वृत्रहन्निति । शिवा वाश्यमानामभिमन्त्रयते शिवो नामेति । शकुनि वाश्यमानमभिमन्त्रयते हिरण्यपर्ण शकुने देवाना प्रहितगम । यमदूत नमस्तेऽस्तु किन्त्वा काक्कीरिणोऽब्रवीदिति । क्षेम्यो ह्येव भवति । लक्षण्य वृक्षमभिमन्त्रयते मा त्वाऽशनिर्मा परशुर्मावातो मा राजप्रेषितोदण्ड. । अकुरास्ते प्ररोहन्तु निवाते त्वाऽभिवषतु । अग्निष्टे मूल मा हिँसीत्स्वस्ति तेऽस्तु वनस्पते स्वस्ति मेऽस्तु वनस्पत इति । स यदि किंचिल्लभेत तत्प्रतिगृह्णाति द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णात्विति साऽस्य न ददत क्षीयत भूयसी च प्रतिगृहाता भवति । अथ यद्योदन लभेत तत्प्रतिगृह्णाति द्यौस्त्वेति तस्य द्वि प्राश्नाति ब्रह्मा त्वाऽश्नातु ब्रह्मा त्वा प्राश्नात्विति । अथ यदिमन्थ लभेत त प्रतिगृह्य द्यौस्त्वति तस्य त्रि प्राश्नाति ब्रह्मा त्वाऽश्नातु ब्रह्मा त्वा प्राश्नातु ब्रह्मा त्वा पिबत्विति । अथातोऽधीत्याधीत्यानिराकरण प्रतीक मे विचक्षण जिह्वा मे मधु यद्वच । कर्णाभ्या भूरि शुश्रुवे मा त्वँहार्षी श्रुत मयि । ब्रह्मण प्रवचनमसि ब्रह्मण प्रतिष्ठानमसि ब्रह्मकोशोऽसि सनिरसि शान्तिर-

स्यनिराकरणमसि ब्रह्मकोश मे विश । वाचा त्वा पिदधामि वाचा त्वा पिदधामीति (तिष्ठ प्रतिष्ठ) स्वरकरण-कण्ठ्यौरसदन्त्यौष्ठ्यग्रहणधारणोच्चारणशक्तिर्मयि भवतु । आप्यायन्तु मेऽङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं यशो बलम् । यन्मे श्रुतमधीते तन्मे मनसि तिष्ठतु तिष्ठतु ॥१६॥

इसके अनन्तर हाथी के अधिरोहण के विषय मे वर्णन किया जाता है। आकर के हस्ती को अभिमृष्ट करता है। मन्त्र यह है—"हस्ति यशः समसि हस्ति वर्चस मसि" इति । इसके पश्चात् निम्न मन्त्र के द्वारा अवरोहण करता है—"इन्द्रस्य त्वा वज्रेणाभितिष्ठामि स्वस्ति मा सपारय" इति । इसी मन्त्र के द्वारा अश्व के आरोहण की व्याख्या की गयी है। ऊँट पर आरोहण करते हुए निम्न मन्त्र के द्वारा अभि-मन्त्रण करता है--"त्वाष्ट्रोऽसि त्वष्ट्र दैवत्य स्वस्ति मा स पारियेति"। रासभ (गधा) पर आरोहण करते हुए अभिमन्त्रित करता है। मन्त्र यह है—"शूद्रोऽसि शूद्रजन्माऽऽग्नयो वै द्विरेता स्वस्ति मा सपारयेति"। नाव पर आरोहण करते हुए अभिमन्त्रण "सुनाव मिति" इत्यादि मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रण करता है। उत्तरण करते हुए "सुत्रामाणामिति" इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित करता है। वन का अभिमन्त्रण "नमो रुद्राय वनसहे स्वस्ति मा सम्पारयेति" इस मन्त्र से करता है। गिरि का अभिमन्त्रण "नमो रुद्राय गिरिषदे स्वस्ति मा सपारयेति" इस मन्त्र के द्वारा करता है "नमो रुद्राय परिषदे स्वस्ति मा सपारय । इस मन्त्र से चतुष्पथ का अभिमन्त्रण करता है। नदी में उतरते हुए "नमो रुद्रायाप्सुषदे"—इस मन्त्र से अभिमन्त्रण करता है। "नमो रुद्राय पितृषदे स्वस्ति मा सपारय" इति—इस मन्त्र के द्वारा श्मशान को अभिमन्त्रित करता है। "नमोरुद्राय शकृत्पिड सदे स्वस्ति मा सम्पारयेति"— इस मन्त्र से गोष्ठ का आम मन्त्रण करता है। जहाँ पर और अन्यत्र भी "नमोरुद्राय" इति—यही बोलना चाहिए। क्योकि "रुद्रो ह्येवेद सर्वम्"—यह श्रुति वचन के द्वारा प्रतिपादित होता है। सिचाव-

श्रुत होकर "सिगाग्नि न वज्रोऽसि नमस्तेऽस्तु मा माहि ँसी रिति" इस मन्त्र से अभिमन्त्रण करता है। शिवा नो वर्षा सन्तु शिवा न. सन्तु हेतय। शिवा नस्ता सन्तु यास्त्व ँसृजसि वृत्रहन्निति" इस मन्त्र के द्वारा स्तनयित्नु को अभिमन्त्रित करता है। "शिवो नामेति" इत्यादि के द्वारा वाश्यमाना शिवा का अभिमन्त्रण करता है 'हिरण्पर्ण शकुने देवाना प्रहितगम। यमदूत नमस्तेऽस्तु किन्त्वा कार्क्षारिणोऽब्रवीत्" इति– इसको पढे। इस प्रकार से क्षेम्य हो होता है "मा त्वाऽशनिर्मा परशुर्मा वातो मा राजप्रेषितो दण्ड। अङ्कुरास्ते प्ररोहन्तु नियाते त्वाऽभि वर्षतु। अग्निष्टे मूल मा हिमीस्स्वस्ति तेऽस्तु वनस्पते स्वस्ति मेऽस्तु वनस्पते" इति—

इस मन्त्र के द्वारा लक्षण्य वृक्ष का अभि मन्त्रण करता है। वह यदि कुछ प्राप्त करे तो उसका प्रतिग्रहण करता है। द्यौ तुमको देवे, पृथिवी तुमको प्रतिग्रहण करे– इति–इससे करे। वह देने वाले इसकी क्षीण नहीं होती है और भूयसी प्रति ग्रहीता होती है। इसके अनन्तर यदि ओदन का लाभ करता है तो उसका प्रतिग्रहण करता है मन्त्र यह है—'द्यौस्त्वेति तस्य द्वि प्राश्नाति ब्रह्मा त्वाऽश्नातु ब्रह्मा त्वा प्राश्नात्विति" इसके अनन्तर यदि मन्थ का लाभ करता है तो उसका प्रतिग्रहण करे। उसका मन्त्र यह है–"द्यौस्त्वेति तस्य त्रि प्राश्नाति ब्रह्मा त्वाऽश्नातु ब्रह्मा त्वा प्राश्नातु ब्रह्मा त्वा पिबत्विति"। इसके अनन्तर अध्ययन कर–करके मेरा अनिराकरण प्रतीक विचक्षण हो, मेरी जिह्वाओ वचन हो वह मधु हो। कानों से बहुत अधिक श्रवण करूँ, आप मुझ मे श्रुत को हरण मत करो। आप ब्रह्मा के प्रवचन हो–आप ब्रह्मा के प्रतिष्ठान हो, ब्रह्म कोश हो, सनि हो, शान्ति हो, अनिराकरण हो, ब्रह्म कोश मुझ मे प्रवेश करो। वाणी मे आपका विधान करता हूँ– वाक् के द्वारा तुम्हारा विधान करता हू (ठहरिये, प्रतिष्ठित होइए) स्वरकरण–कण्ठ्य–और स–दन्त्य—औष्ठ्य–ग्रहण–धारण–उच्चारण की शक्ति मुझ मे हो जावे। मेरे सम्पूर्ण अङ्ग वाक्–प्राण–चक्षु–श्रोत्र —

यश और बल आप्यायित होवे । जो भी मैने श्रवण किया है और जो कुछ भी मेरा अध्ययन किया हुआ है वह सम्पूर्ण श्रुत और अधीत किया हुआ मेरे मन मे स्थित रहे—स्थित रहे । १६ ।

चतुर्थ काण्ड

अपरपक्षे श्राद्ध कुर्वीतोर्द्ध वा चतुर्थ्या यदह सपद्येत तदहर्ब्राह्मणानामन्त्र्य पूर्वेद्युर्वा स्नातकानके यतीन् गृहस्थान् साधून् वा श्रोत्रियान् वृद्धाननवद्यान् स्वकर्मस्थानभावेऽपि शिष्यान् स्वाचारान् द्विनग्नशुक्लविक्लिधश्यावदन्तविद्धप्रजननव्याधितव्यङ्गिश्वित्रिकुष्ठिकुनखिवर्ज्यमानिन्द्येनामन्त्रितो नापक्रामेदामन्त्रितो वाऽन्यदन्न प्रतिगृह्णीयात्स्नाताञ्छुचीनाचान्तान्प्राङ्मुखानुपवेश्य दैवे युग्मानयुग्मान्यथाशक्ति पित्र्य एकैकस्योदङ्मुखान्द्वौ वा दैवे त्रीन् पित्र्य एकैकमुभमत्र वा मातामहानामप्येव तन्त्र वा वैश्वदेविकम् । श्रद्धान्वित श्राद्ध कुर्वीत शाकेनापि वाऽपरपक्षमतिक्रामेन्मासि मासि वोऽशनमिति श्रुतेस्तदहा शुचिरक्रोधनोऽत्वरितोऽप्रमत्त सत्यवादी स्यादध्वमैथुनश्रमस्वाध्यायान्वर्जयेदावाहनादि वाग्यत औपस्पर्शनादामन्त्रिताश्चैवम् ।१।

अपर पक्ष मे श्राद्ध करना चाहिए अथवा इसके चतुर्थी के भी ऊर्ध्व मे करे, जो दिन सम्पन्न होवे उस दिन मे ब्राह्मणो का आमन्त्रण करे

अथवा श्राद्ध वाले दिन मे पूर्व दिन मे आमन्त्रण करे। स्नातकों को आमन्त्रित करना चाहिए। कुछ लोगो का मत है कि यतियो को—गृहस्थो को अथवा साधुओं को आमन्त्रित करना चाहिए। श्रोत्रियो—वृद्धो को—अनवद्यो को अर्थात् दोषो से रहितो को—अपने कर्मों मे अवस्थित रहने वालो को आमन्त्रित करे। यदि ऐसे उपर्युक्त प्रकार के गुणगण विशिष्ट ब्राह्मण न मिले और अभाव हो तो उस अभाव मे शिष्यो को—अपने आचार मे रहने वालो को आमन्त्रित श्राद्ध मे करना चाहिए। द्विनान—शुक्ल विक्लिध श्याव दन्त (अर्थात् काले दाँतो वाला) विद्ध—प्रजनन व्याधित (रोगी) व्यङ्ग अर्थात् न्यून या अधिक अङ्गो वाला—श्वित्री अर्थात् सफेद कोढ वाला—कुष्ठी—कुनखी इस प्रकार के ब्राह्मणो को श्राद्ध मे वर्जित कर देवे। अनिन्द्य के द्वारा आमन्त्रित होकर अन्य अन्न का प्रतिग्रहण नही करना चाहिए। स्नान किये हुए, परम शुचिता को प्राप्त हुए, आचत अर्थात् आचमन किये हुए और पूर्व की ओर मुखो वाले ब्राह्मणो को जो कि आमन्त्रित किये गये हैं, बिठा देवे।

देव कर्म मे युग्म विप्रों को और शक्ति के अनुसार अयुग्मो को आमन्त्रित करे। पित्र्य कर्म मे एक—एक का आमत्रण करे। और उत्तर की ओर मुखो वाले रक्खे। अथवा देव कर्म मे दो, तीन पित्र्यकर्म मे मे अथवा एक—एक का ही दोनो ही कर्मों मे आमन्त्रित करे। मातामहो का भी (नाना आदि का भी) इसी प्रकार से करना चाहिए। अथवा वहाँ पर वैश्वदेविक करे। श्रद्धा की भावना से जो पितृगण के निमित्त मे उनकी तृप्ति के लिये किया जाता है उसको ही वास्तविक श्राद्ध कहा जाता है। अतएव श्रद्धा से समन्वित होकर ही श्राद्ध करना चाहिए। अथवा श्रद्धा से शाक के द्वारा ही श्राद्ध करे। अथवा अपर पक्ष का अतिक्रमण करे "मासि मासि वोऽशनम्" इस प्रकार का श्रुति—वचन है अर्थात् प्रत्येक मास मे आपका अशन होता है। उस श्राद्ध के दिन मे जिस दिन मे भी श्राद्ध करना हो उस दिन श्राद्ध कर्त्ता को परम शुचि

रहना चाहिए। उस दिन किसी बात पर भी क्रोध न करने वाला अर्थात् परम शान्त रहे—जल्दबाजी किसी भी कर्म मे न करने वाला होवे—प्रमत्त अर्थात् प्रमाद करने वाला न होवे और उस दिन मे तो पूर्णतया सत्य बोलने वाला होना चाहिए। इन ही गुण गणो से पितृगण श्राद्ध कर्त्ता पर पूर्ण प्रसन्न होकर आशीष दिया करते हैं और स्वय पूर्ण तृप्त होते हैं श्राद्ध वाले दिन मे मार्ग गमन-मैथुन-किसी काम में अधिक श्रम और स्वाध्याय अर्थात् वेद-वेदाङ्गो का अध्ययन-इस सबको वर्जित कर देना चाहिए। वाग्यत होते हुए आवहनादि करे औपस्पर्शन से इस प्रकार से आमन्त्रित होते हैं ॥१॥

देवपूर्वं श्राद्धम्। पिण्ड पितृयज्ञवदुपचार पित्र्ये द्विगुणास्तु दर्भा पवित्राणिर्दद्यादासीन सर्वत्र प्रश्नेषु पङ्क्तिमूधन्य पृच्छति सर्वान्वाऽऽसनेषु दर्भानास्तीर्य विश्वान्देवानावाहयिष्य इति पृच्छत्यावाहयेत्यनुज्ञातो विश्वे देवास आगतेत्यनयाऽऽवाह्यावकीर्य विश्वे देवा शृणुतेममिति जपित्वा पितृनावाहयिष्य इति पृच्छत्यावाहयेत्यनुज्ञात उशन्तस्त्वेत्यनयाऽऽवाह्यावकीर्याऽऽयन्तु न इति जपित्वा यज्ञियवृक्षचमसेषु पवित्रान्तर्हितेष्वेकैकस्मिन्नप आसिञ्चति शन्नो देवीरित्येकैकस्मिन्नेव तिलानावपतितिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवो देवनिर्मित। प्रत्नमद्भि प्रत्त स्वधया पितॄँल्लोकान्प्रीणयाहि न स्वाहेति सौवर्णराजतौदुम्बरखड्गमणिमयाना पात्राणामन्यतमेषु यानि वा विद्यन्ते पत्रपुटेष्वेकैकस्यैकैकेन ददाति सपवित्रेषु हस्तेषु या दिव्या आप पयसा सम्बभूवुर्या आन्तरिक्षा उत पार्थवीर्या। हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आप शिवा श स्योना सुहवा भवन्त्विक्त्यसावेष तेऽघ इति प्रथमे पात्रे म स्रवान्समवनीय पितृभ्य स्थानमसीति न्युब्ज

पात्र न्निदधात्यत्र गन्धपुष्प धूपदीपवाससा च प्रदानम् ॥२॥

श्राद्ध दैवपूर्व होता है। पिंड पितृयज्ञ के ही समान उपचार होता है। पित्र्य कर्म मे दर्भ (कुशा) द्विगुण होते है। पवित्रपाणि होकर अर्थात् पवित्री धारण करके शुचि कर वाला हो जावे और फिर श्राद्ध देना चाहिए। समासीन होकर सर्वत्र प्रश्नो मे जो ब्राह्मण पक्ति में मूर्धन्य (प्रमुख) हो उसी से पूछता है। अथवा समस्त दर्भों को आसन पर फैला कर विश्वान् देवान् अर्थात् विश्वेदेवाओ का आवाहन करूँगा—यह पूछना है। आवाहन करता है—इस प्रकार से अनुज्ञा प्राप्त करने वाला होकर 'विश्वे देवास आगतेति' इस ऋचा से आवाहन करे और अवकिरण करके 'विश्वेदेवा शृणुतेमम्' इस मन्त्र का जाप करके फिर पितृगणो का आवाहन करूँगा यह पूछना है। 'आवाहयेन' आवाहन करो इस रीति से अनुज्ञात होवे। 'उशन्तस्त्वेति' इस ऋचा से आवाहन करके 'आयन्तु न' इति—इसका जाप करके यज्ञिय वृक्ष चमसो मे पवित्रान्तर्हितो मे—एक-एक मे जल का आसिञ्चन करता है। 'शन्नो देवी' इति—इससे एक-एक मे ही तिलो का आवपन करता है। मन्त्र यह है—तिलोऽसि सोम दैवत्यो गोमवो देवनिर्मित प्रत्नमद्भि प्रज्ञ स्वधया पितॄंल्लोकान्प्रीणयादि न स्वाहा' इस मन्त्र के द्वारा सुवर्ण से निर्मित—चाँदी के बने हुए—उदुम्बर से रचित और सङ्ग मणिमय पात्रो के अन्यतमो मे अथवा जो भी विद्यमान होते है पत्र पुटो मे (दोनो मे) एक एक का एक-एक के द्वारा देता है। सपवित्र हस्तो मे 'या दिव्या आप पयसा सम्बभूवुर्या आन्तरिक्ष उत पार्थवीर्या। हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आप शिवा शं स्योना सुहवा भवन्तु' इति—इस मन्त्र से 'असौ एष तेऽर्घ' अर्थात् वह यह तुम्हारे लिए अर्घ है—यह कहकर प्रथम पात्र मे सस्रवो को समवनयन करके 'पितृभ्य स्थानमसि' इससे न्युब्ज पात्र को रखता है। यहाँ पर गन्ध—पुष्प—धूप—दीप और वस्त्र—इन सबका प्रदान किया जाता है ॥२॥

उद्धृत्य घृताक्तमन्न पृच्छति अग्नौ करिष्य इति कुरुष्वेत्यनुज्ञात पिण्डपितृयज्ञवद्धुत्वा हुतशेष दत्त्वा पात्रमालभ्य जपति पृथिवी ते पात्र द्यौरपिधान ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृत जुहोमि स्वाहेति वैष्णव्यर्चा यजुषा वाऽङ्गुष्ठमन्नेऽवगाह्यापहता इति तिलान्प्रकीर्योष्णꣳ स्विष्टमन्न दद्याच्छक्त्या वाऽश्नत्सु जपेत् व्याहृतिपूर्वां गायत्रीꣳ सप्रणवाꣳ सकृत्त्रिर्वा राक्षोघ्नी पित्र्यमन्त्रा-न्पुरुषसूक्तमप्रतिरथमन्यानि च पवित्राणि तृप्तान् ज्ञात्वाऽन्न प्रकीर्य सकृत्सकृदपो दत्त्वा पूर्ववद्गायत्री जपित्वा मधुमतीर्मधु मध्विति च तृप्ता स्थेति पृच्छति तृप्ता स्म इत्यनुज्ञात शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमन्नमेकनोद्धृत्योच्छिष्टसमीपे दर्भेषु त्रीस्त्रीन्पिण्डानवनेज्य दद्यादाचान्तेष्वित्येक आचान्तेषु उदक पुष्पाण्यक्षतानक्षय्योदक च दद्यादघोरा पितर सन्तु सन्त्वित्युक्ते गोत्र नो वर्धता वर्धतामित्युक्ते दातारो नोऽभिवर्धन्ता वेदा सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देय च नोऽस्त्वित्याशिष प्रतिगृह्य स्वधावाचनीयान्स पवित्रान्कुशानास्तीय स्वधा वाचयिष्य इति पृच्छति वाच्यतामित्यनुज्ञात पितृभ्य पितामहेभ्य प्रपितामहेभ्यो मातामहेभ्य प्रमातामहेभ्यो वृद्धप्रमातामहेभ्यश्च स्वधोच्यतामित्यस्तु स्वधेत्युच्यमाने स्वधावाचनीयेष्वपो निषिञ्चति ऊर्जमित्युत्तान पात्र कृत्वा यथाशक्ति दक्षिणा दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो विश्वेदेवा प्रीयन्तामिति दैवे वाचयित्वा वाजेवाजेऽवतेति विसृज्याऽऽमा वाजस्येत्यनुव्रज्य प्रदक्षिणीकृत्योपविशेत् ।।३।।

घृत से अक्त अन्न को उद्धृत करके पूछता है। जो ब्राह्मण आमन्त्रित हुए है उनमे ही पितृगणो का आवाहन किया गया है और उनको

ही अपने पितर मानकर उनसे आज्ञा प्राप्त की जाया करती है। उनसे पूछकर आज्ञा जब वे दे दिया करते हैं तो अग्रिम कृत्य करना चाहिए। श्राद्धकर्त्ता पूछता है—'अग्नि मे करूँगा' इस पूछने पर वे आज्ञा प्रदान करते है– कुरुष्व' अर्थात् करो। इस प्रकार से अनुज्ञात होकर पिण्ड पितृ यज्ञ के ही समान हवन करे और हुत से शेष को देकर पात्र का आलभन करके जाप करता है–'पृथिवी तेपात्र द्यौरपिधान ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृत जुहोमि स्वाहा'' इति। यह मन्त्र है। वैष्णवी अर्चा यजु मे करे। अथवा अगुष्ठ को अन्त मे आच्छादित करके प्रपहृता'' इसमे तिलो को प्रकीर्ण करे। उष्ण स्विष्ठ अन्न देवे। उनके अशन करते पर यथा शक्ति जाप करना चाहिए। व्याहृतिया जिससे पूर्व मे हो ऐसी प्रणव से युक्त गायत्री को, एक बार अथवा तीन बार रक्षोघ्नी को पित्र्य मन्त्रो को— पुरुष सूक्त को, अप्रतिरथ को तथा अन्य पवित्र मन्त्रो का जाप करना चाहिए। यह जाप उस समय मे करे जब ब्राह्मण भोजन कर रहे हो। जब यह ज्ञान प्राप्त कर लेवे कि ब्राह्मण पूर्णतया तृप्त हो गये है। अन्न को प्रकीर्ण करके एक एक बार जल देकर पूर्व की ही भाँति गायत्री का जाप करके "मधुमती मंधु मध्विती च तृप्ता स्थ'' इति–इस प्रकार श्राद्ध करने वाला पूछता है। वे ब्राह्मण जिन मे पितृगण का आवाहन किया गया था वे उसको उत्तर मे कहते हैं—"तृप्ता'' अर्थात् हम लोग पूर्ण रूप से तृप्त हो गये हैं। इस प्रकार से जब अनुज्ञात हो जाता है तो शेष अन्न को अनुज्ञापित करके और सब अन्न को एक ओर उद्धृत करके जो उच्छिष्ट हो उसके समीप मे दर्भों पर तीन–तीन पिण्डो को अवनेजन करके देवे। कुछ का मत है कि आचान्त होने पर करे। आचान्त होने पर उदक—पुष्प—अक्षत और अक्षय्योदक देना चाहिये। "अघोरा पितर सन्तु' सन्त्स्विति'' इसके कथन पर "गोत्र नो वर्धताम्'' अर्थात् हमारा गोत्र बढ़े। इसके उत्तर मे 'वर्धताम्' वृद्धि को प्राप्त होवे– यह कथित होने पर "दातारो नोऽभिवर्धन्ता वेदा सन्तति रेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगम द्बहु देय च नोऽस्तु''—अर्थात् हमारे दातागण

वृद्धि को प्राप्त होवे—वेदो और सन्तति की भी वृद्धि होवे। और हमारे प्रति श्रद्धा का लोप न होवे—तथा बहुत अधिक देय होवे—इस प्रकार के आशीर्वाद का प्रतिग्रहण करके स्वधा वाचनीय सपवित्र अर्थात् पवित्रियो के सहित कुशाओ को आस्तृत करके स्वधा का वाचन करूँगा—यह पूछता है। इसका उत्तर 'वाचन करो'—ऐसा प्राप्त कर अनुज्ञा प्राप्त करने वाला होते हुए पितृगणो के लिए, पितामहों के लिए—प्रपितामहो के लिए और इसी भाँति मातामहो के लिये—प्रमातामहो के लिये—वृद्ध प्रमातामहो के लिये स्वधा कहू—स्वधा होवे—यह उच्यमान होने पर स्वधा वाचनीयो पर जल का निषिञ्चन करता है "ऊर्जम्" इससे पात्र को उत्तान करके अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणो के लिए दक्षिणा देनी चाहिए। "विश्वे देवा प्रीयन्ताम्" इति दैव मे वाचन करके "वाजे वाजेऽवत" इति—इससे विसर्जन करके "आमा वाजस्य" इति—इससे अनुगमन करके प्रदक्षिणा करके उपविष्ट होना चाहिए ॥३॥

अथैकोद्दिष्टम् । एकोऽर्घ एक पवित्रमेक पिण्डो नावाहन नाग्नौकरण नात्र विश्वेदेवा स्वदितमिति तृप्तिप्रश्न सुस्वदितमितीतरे ब्रूयुरुपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थानेऽभिरम्यतामिति विसर्गोऽभिरता स्म इतीतरे ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर एकोद्दिष्ट श्राद्ध के विषय मे वर्णन किया जाता है। इस एकोद्दिष्ट श्राद्ध मे एक ही अर्घ होता है-एक पवित्र होता है-और एक ही पिण्ड होता है। इसमे आवाहन नही होता है—अग्नीकरण नहीं होता है और उसमे विश्वेदेवा स्वदितम्—इति यह इतरो को बोलना चाहिए। उपतिष्ठताम्" इति—इससे अक्षय्य स्थान मे 'अभिर-

म्यताम्" इति—इससे विसर्गोऽभिरता स्म ।। इनि—यह इतर करते है ।।४।।

तत सवत्सरे पूर्णे त्रिपक्षे द्वादशाहे वा यदहर्वा वृद्धिरापद्येत चत्वारि पात्राणि सतिलगन्धोदकानि पूरयित्वा त्रीणि पितृणामेक प्रेतस्य प्रेतपात्र पितृप्रात्रेष्वासिञ्चति ये समाना इति द्वाभ्याम् । एतेनैव पिण्डो व्याख्यात । अत ऊर्ध्व ॅ सवत्सरे सवत्सरे प्रतायान्न दद्याद्यस्मिन्नहनि प्रेत स्यात् ।।५।।

इसके अनन्तर सम्वत्सर के पूण होने पर त्रिपक्ष मे अथवा द्वादशाह मे अथवा जो दिन वृद्धि को प्राप्त होवे चार पात्रो को तिल और गन्धोदको को पूरित करके तीन पितृगणो को, एक प्रेत को उस प्रेत पात्र को पितृपात्रो मे आसिञ्चन करता है। इसके लिये "ये समाना" इति—ये दो मन्त्रो से करे। उससे ही पिण्ड की व्याख्यात किया गया है। इसके आगे सम्वत्सर—सम्वत्सर मे प्रेत के लिये अन्न देना चाहिए, जिम दिन मे प्रेत होता है ।।५।।

आभ्युदयिके प्रदक्षिणमुपचार पूर्वाह्णे पित्र्यमन्त्रवर्जं जप ऋजवो दर्भा यवैस्तिलार्था सपन्नमिति तृप्तिप्रश्न सुसपन्नमितीतरे ब्रूयुर्दधिबदराक्षतमिश्रा पिण्डा नान्दीमुखान्पितृनावाहयिष्य इति पृच्छत्यावाहयेत्यनुज्ञातो नान्दीमुखा पितर प्रीयन्तामित्यक्षय्यस्थाने नान्दीमुखान्पितृन्वाचयिष्य इति पृच्छति वाच्यतामित्यनुज्ञातो नान्दीमुखा पितर पितामहा प्रपितामहा मातामहा प्रमातामहा वृद्धप्रमातामहाश्च प्रीयन्तामिति न स्वधा प्रयुञ्जीत युग्मानाशयेदत्र ।।६।।

आभ्युदयिक श्राद्ध मे प्रदक्षिण उपचार पूर्वाह्न मे पित्र्य मन्त्रो से वर्जित जप करे। ऋजु दर्भ इसमे होते हैं और तिलो के अथ यवो के द्वारा सम्पन्न होते है—इति—यह तृप्ति का प्रश्न होता है। सुसम्पन्न हो गया—यह इतरो को बोलना चाहिये। दधि—वदर-अक्षतो से मिश्रित पिण्ड नान्दी मुख पित्रो का आवाहन करूँगा—यह पूछता है और इसके उत्तार मे 'आवाहय' अर्थात् आवाहन करो इस प्रकार से अनुज्ञात होता हुआ अर्थात् अनुज्ञा प्राप्त कर लेने वाला श्राद्धकर्त्ता "नान्दीमुख पितर प्रीयमाण होवे"—इससे अक्षय्य स्थान मे नान्दीमुख पितृगणो को वाचन करूँगा—ऐसा पूछता है। इसके उत्तर मे 'वाच्य" अर्थात् वाचन करो—इस प्रकार से अनुज्ञात होकर—"नान्दीमुखा पितर पितामहा प्रपितामहा मातामहा प्रमाता महा वृद्ध प्रमाताम महाश्च प्रीयताम्"—इति—इससे स्वधा का प्रयोग न करे। यहाँ पर युग्मो को प्राशन कराना चाहिए ॥६॥

अथ काम्यानि भवन्ति स्त्रियोऽप्रतिरूपा प्रतिपदि द्वितीयायाँ स्त्री जन्म श्वास्तृतीया चतुर्थ्यां क्षुद्रपशव पुत्रा पञ्चम्या द्यूतर्द्धि षष्ठ्या कृषि सप्तम्या वाणिज्यमष्टम्यामेकशफ नवम्या दशम्या गाव परिचारका एकादश्या धनधान्यानि द्वादश्या कुप्यँ हिरण्य ज्ञाति श्रैष्ठ्य च त्रयोदश्या युवानस्तत्र म्रियन्ते शस्त्रहतस्य चतुर्दश्याममावास्यायाँ सर्वमित्यमावास्यायाँ सर्वमिति ॥७॥

इसके अनन्तर काम्य श्राद्ध होते है। स्त्रियाँ अप्रति रूपा है इनका प्रतिपदा मे, द्वितीया मे स्त्री जन्म तृतीया मे, क्षुद्र पशु गण पुत्र पञ्चमी मे, धूतर्द्धि षष्ठी मे, कृषि सप्तमी मे, वाणिज्य अष्टमी मे, एक शफ वाला नवमी मे, दशमी मे गौएँ परिचारक एकादशी मे, धनधान्य

द्वादशी मे, कुप्य हिरण्य और ज्ञाति श्रेष्ठता त्रयोदशी में बहाँ पर युवा लोग मरते है शस्त्र के द्वारा जो हत उनका चतुर्दशी मे और अमावस्या मे सबका होता है। रहे सहे सबका अमावस्या तिथि में होता है। इति ॥ ७।

॥ इति पारस्करगृह्य सूत्र समाप्त ॥

खादिर गृह्यसूत्रम् ।

प्रथम खण्ड

अथातो गृह्या कर्माणि ।१। उदगयनपूर्वपक्षपुण्याहेषु प्रागावर्तनादह्न कालोऽनादेशे ।२। अपवर्गे यथोत्साह ब्राह्मणानाशयेत् ।३। यज्ञोपवीतम् ।४। सौत्रम् ।५। कौश वा ।६। ग्रीवाया प्रतिमुच्य दक्षिण बाहुमुद्धृत्य यज्ञोपवीती भवति ।७। सव्य प्राचीनावीती ।८। त्रिराचम्यापो द्वि परिमृजीत ।९। पादावभ्युक्ष्य शिरोऽभ्युक्षेत् ।१०।

अब गृह्य कर्मो के विषय मे कहा जाता है । इसमे जहा कहीं समय के सम्बन्ध मे काई निर्देश नही दिया गया हो, अर्थात् स्पष्ट शब्दो मे यह न बताया गया है कि अमुक कर्म अमुक दिन और समय पर करना चाहिये, वहा सब कार्यो को उत्तरायण शुक्ल पक्ष, निर्दोष दिन मे दोपहर के पहिले करना चाहिये । इस प्रकार के सभी कर्मो मे एक, दो अथवा यथा शक्ति ब्राह्मण भोजन करावे । आगे वर्णित कर्मों के करने के अवसर पर यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक है । इसके लिये सूत, वस्त्र या कुशा से बनी डोरी मे से जो कोई वस्तु मिल सके, उसी का यज्ञोपवीत बनावे उसको दाहिने कन्धे के बगल मे लटकता रहने दे । इसी को 'यज्ञोपवीती' कहते है । इसी प्रकार यज्ञोपवीत को बाँये कन्धे पर रखकर दाहिनी बगल मे लटकाये रखने वाले को "प्राचीनवीती" कहते हैं । दैव कार्यो मे यज्ञोपवीती और पितृ कार्यों मे

प्राचीनवीती विधि से पहनकर कार्य सम्पन्न करना चाहिये। सभी कर्मों मे प्रथम 'आचमन' किया जाता है। दोनो हाथो को धोकर उपयुक्त स्थान पर उपवेशन करे, फिर तीन बार आचमन और दो बार समस्त शरीर का मार्जन करे। दो बार ओठो मे जल लगाकर उनको साफ करे और फिर दोनो पैरो पर और माथे पर जल के छीटे दे ॥१-१०॥

इन्द्रियाण्यद्भिस्सस्पृशेत् ।११। अन्तत प्रत्युपस्पृश्य शुचिर्भवति ।१२। आसनस्थानसवेशनान्युदगग्रेषु दर्भेषु ।१३। प्राङ् मुखस्य प्रतीयात् ।१४। पश्चादग्नेयत्र होमस्यात् ।१५। सहशिरस स्नानशब्दे ।१६। दक्षिणेन पाणिना कृत्यमनादेशे ।१७। मन्त्रान्तमव्यक्त परस्यादि-ग्रहणेन विद्यात् ।१८। स्वाहान्ता मन्त्रा होमेष ।१९। पाकयज्ञ इत्याख्या य कश्चैकाग्नौ ।२०।

अँगूठा तथा अनामिका से दोनो नेत्रो, अँगूठा तथा प्रदेशिनी से नाक, अँगूठा तथा कनिष्ठिका से कानो को स्पर्श करे। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियो का भी स्पर्श करे। कर्म को आरम्भ करने अथवा आरम्भ करने से पहले ही यदि सोकर उठे तो फिर से आचमन करने पर ही पवित्र होता है। जहाँ बैठकर कम किया जाय वहाँ उत्तराग्र कुशो के आसन का प्रयोग करे। यदि विधान मे किसी तरफ मुँह करके बैठने की बात न लिखी हो तो पूर्व दिशा की तरफ मुँह करके ही बैठे। इसी प्रकार जहाँ यह नही लिखा हो कि अग्नि के किस ओर बैठा जाय वह हमेशा हवन की अग्नि के पश्चिम तरफ बैठना चाहिये। जहाँ कही 'स्नान' करने का विधान हो वहा शिर पर जल डाल कर सर्वाङ्ग स्नान को ही समझना चाहिये। यदि यह न लिखा हो कि दाहिने या बाँये किस हाथ से कम किया जाय, वहाँ दाहिने हाथ से ही सब कर्म करे। जिस मत्र के अन्त मे उसका विनियोग और परिमाण स्पष्ट रूप से न बतलाया गया हो वहाँ उत्तर मत्र के आदि या प्रधान मत्र के

अर्थ को समझकर तदनुसार कार्य करे। होम करने वाले जिन मन्त्रो के अन्त मे 'स्वाहा' का शब्द न हो तो भी उनका उच्चारण करते समय उनमे 'स्वाहा' शब्द अवश्य जोड दिया जाय। इस प्रकार गृह्य-अग्नि मे जितने कर्म किये जाते है उनको "पाक-यज्ञ" कहा जाता है ॥११-२०॥

तत्रर्त्विक ब्रह्मा सायप्रातर्होमवर्जम् ।२१। स्वय हौत्रम् ।२२। दक्षिणतोऽग्नेरुदङ् मुखस्तूष्णीमास्ते ब्रह्मा-ऽऽहोमात्प्रागग्रेषु ।२३। काम त्वधियज्ञ व्याहरेत् ।२४। अयज्ञीया वा व्याहृत्य महाव्याहृतीर्जपेत् ।२५। हौत्र-ब्रह्मत्वे स्वय कूर्वन् ब्रह्मासनमुपविश्य छत्रमुत्तरासङ्ग कमण्डलु वा तत्र कृत्वाऽथान्यत्कुर्यात् ।२६। अव्यावृत्ति यज्ञाङ्गैरव्यवाय चेच्छेत् ।२७।

ऐसे "पाक यज्ञो" मे सायकाल तथा प्रात के हवन को छोडकर अन्य पाकयज्ञो मे ऋत्विग् (होम करने वाला) को ही "ब्रह्मा" माना जाता है। जो हवन नित्य प्रति किये जाते है उनमे यजमान को स्वय ही कर्म करने का अधिकार होता है। हवन के समय "ब्रह्मा" अग्नि के दक्षिण ओर अन्त तक मौनपूर्वक बैठा रहे। उसके कुशासन की कुशाओ का अग्रभाग पूव की ओर रहे। यदि यज्ञ सम्बन्धी किसी बात का स्पष्टीकरण या निर्देश करना हो तो ब्रह्मा बोल सकते है। पर यदि वे यज्ञ सम्बन्धी बात के अतिरिक्त अन्य लौकिक बात करे तो उसके प्रायश्चित्त स्वरूप "इद विष्णु" ऋचा का पाठ करे। यदि हवन का कर्म और ब्रह्मा का कार्य एक ही व्यक्ति को करना हो तो ब्रह्मा के लिये बिछाये गये आसन पर छाता या जल से भरा कमण्डल रखकर उसकी प्रदक्षिणा आदि करके होता के आसन पर आ जाय और "इद भूमे" मन्त्र पढकर बैठकर कर्म को प्रमाद अथवा किसी अन्य कारणवश

बीच मे न छोडे । यदि किसी कारण छोडना पडे तो फिर आरम्भ से कर्म कराये ।।२१-२७।।

द्वितीय खण्ड

पूर्वे भागे वेश्यनो गोमयेनोपलिप्य तस्य मध्यदेशे लक्षण कुर्यात् ।१। दक्षिणत प्राची लेखामुल्लिख्य ।२। तदारम्भादुदीची तदवसानात्प्राची तिस्रो मध्ये प्राची ।३। तदभ्युक्ष्य ।४। अग्निमुपसमाधाय ।५। इय स्तोममिति परिसमूह्य तृचेन ।६। पश्चादग्नेर्भूमौ न्यञ्चौ पाणी कृत्वेद भूमेरिति ।७। वस्वन्त रात्रौ ।८। पश्चाद्दर्भानास्तीर्य दक्षिणत प्राची प्रकषदुत्तरतश्च ।९। अप्रकृष्य वा ।१०।

इस प्रकार का "पाक यज्ञ" घर के पूर्व भाग मे किया जाय और और उस स्थान को गोबर से लीप कर उसके मध्य मे वेदी बनाई जाय। वेदो के स्थान पर पश्चिम से पूर्व को रेखा खीचे और रेखा पर उत्तर क्रम से (आडी) तीन रेखाये खीचे और वेदी को जल से छिडक कर पवित्र करे। तब वेदी के बीच अग्नि स्थापित करके होम आरभ करे। समस्त सामान्य पाक यज्ञो के लिये यही विधि है। तत्पश्चात् "इम स्तोम०" आदि तीन ऋचाये पढ कर यज्ञ वेदी का परिसमूहन करे। फिर अग्नि के पश्चिम भाग मे तृण आदि सहित भूमि पर दोनो हाथ औधे रखकर "इद भूमे०" मत्र का जाप करे। जो हवन कृत्य रात्रि मे करना हो तो "अन्येषा विन्दते वसु" मत्र को पढ़े और यदि दिन मे करना हो तो "अन्येषा विन्दते धनम्" मत्र पढ़े और तब ब्रह्मा

को बिठावे। हवन की वेदी पर अग्नि प्रज्ज्वलित कर उस अग्नि के चारो तरफ कुशाओ को इस प्रकार बिछावे कि पहले पूर्व की ओर, फिर दक्षिण की ओर, फिर उत्तर मे और अन्त मे पश्चिम की तरफ से अग्नि कुण्ड घिर जाय ॥९-१०॥

पूर्वोपक्रम प्रदक्षिणमग्नि स्तृणुयान्मूलान्यग्रेश्छादयन्त्रिवृत पञ्चवत वा।११। उपविश्य दर्भाग्रे प्रादेशमात्र प्रच्छिनत्ति न नखेन पवित्रे स्थो वैष्णव्याविति।१२। अद्भिरुन्मृज्य विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति।१३। उदगग्रे अगुष्ठाभ्यामनामिकाभ्या च सगृह्य त्रिराज्यमुत्पुनाति 'देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण' 'वसोस्सूर्यस्य रश्मिभिरिति'।१४। अभ्युक्ष्यैते अग्नावनुप्रहरेत्।१५। आज्यमधिश्रित्योत्तरत कुर्यात्।१६। दक्षिणजान्वक्तो दक्षिणेनाग्निमदितेऽनुमन्यस्वेत्युदकाञ्जलि प्रसिञ्चेत्।१७। अनुमतेऽनुमन्यस्वेति पश्चात् सरस्वत्यनुमन्यस्वेत्युत्तरत।१८। देव सवित प्रसुवेति प्रदक्षिणमग्नि पर्युक्षेदभिपरिहरन् हव्यम्।१९। सकृत्त्रिर्वा।२०। समिध आधाय।२१। प्रपद जपित्वोपताम्य कल्याण ध्यायन् वैरूपाक्षमारभ्योच्छ्वसेत्।२२। प्रतिकाम काम्येषु।२३। सवत्रैतद्धोमेषु कुर्यात्।२४।

इस प्रकार कुशाओ को एक के ऊपर एक, तीन या पाँच बार बिछावे। पर यह ध्यान रखे कि दो तीन या अधिक कुशा एक स्थान पर मिल न जाये और उनका अग्रभाग उनकी जड से ढका रहे। तत्पश्चात् पहले से इकट्ठा किये कुशाओ मे से "प्रादेश" प्रमाण दो कुशाओ को लेकर "पवित्रे स्थो०" म त्र पढकर बीचो बीच छेदन करे। फिर "विष्णोमनसा" मत्र पढकर उसको जल से धो डाले। फिर उत्तराग्र करके "आज्योत्पवन" करे अर्थात् घी मे पडे तिनके आदि को निकाल कर पूर्व की ओर ऊपर की तरफ फेक दे। इस कर्म को करले

हुये दोनो "पवित्रो" को अँगूठा और अनामिका अँगुली से पकड कर एक बार "देवस्त्वा०" यजुर्वेद के मन्त्र को पढकर और दो बार बिना मन्त्र पढे 'उत्पवन' करे। उत्पवन के पश्चात् उन दोनो 'पवित्रो' को जल से धोकर अग्नि मे डाल दे। इसके पश्चात् हवन वेदी से उत्तर दिशा मे कुछ जलते हुये अंगार (कोयला आदि) रख पर उस पर पहले उपर्युक्त आज्य-पात्र (घी के वर्तन) को और फिर चरुस्थाली (खीर की पतीली को रखे। अग्नि का आधान तथा परिसमूहन करके दाहिना जानु पृथ्वी पर टेक कर "अदिते०" मन्त्र को पढ कर अग्नि के दक्षिण मे जल की अंजलि प्रदान करे। "अनुमते०" मन्त्र से पश्चिम भाग मे दूसरी उदकाञ्जलि दे और "स्वरसत्यनु०" मन्त्र से अग्नि को उत्तर दिशा मे तीसरी अंजलि प्रदान करे। तत्पश्चात् "देव सवित०" मन्त्र से हवन कुण्ड की प्रदक्षिणा करके जल की धारा छोडे। फिर एक या तीन बार मन्त्र पढकर "पर्युक्षण" करे। इसके पश्चात् गूलर, खैर, पलाश अथवा ये न मिल सके तो किसी यज्ञ मे विहित वृक्ष की लकडी की १५ समिधाये अग्नि मे डाले। एक समिधा के उत्तर भाग मे वर्हि कुश धरे। "तपश्च तेजश्च" से लेकर "ब्रह्मण-पुत्राय नम" तक को "प्रपद" कहते है। "विरूपाक्षोऽसि" का पाठ प्रपद वाचक मन्त्रो के बीच होने से यह कल्याण और मोक्ष वाचक है। श्वॉस को रोक कर प्रपद का पाठ करता हुआ, "भूर्भुवस्स्वरोम्" का पाठ करता हुआ परमात्मा का ज्ञान मुझे हो—इसका ध्यान करता हुआ "विरूपाक्षोऽसि दन्ताञ्जि" जप कर श्वॉस लेवे। यह नित्य कर्मों का विधान है, काम्य कर्मों मे इसकी अपेक्षा विशेषता रहती है। काम्य कर्मो मे जिस कार्य की सिद्धि के लिये कर्म किया जाता है उसी का ध्यान करता हुआ जप करे। सब प्रकार के होम कर्मों मे इस प्रकार के आरम्भिक कृत्य करके अन्य कर्म करना विधेय है ॥११-२४॥

तृतीय खण्ड

ब्रह्मचारी वेदमधीत्योपन्याहृत्य गुरवेऽनुज्ञातो दारान् कुर्वीत ।१। आप्लवन च ।२। तयोराप्लवन पूर्वम् ।३। मन्त्राभिवादात्तु पाणिग्रहणस्य पूर्वं व्याख्यातम् ।४। ब्राह्मणस्सहोदकुम्भ. प्रावृतो वाग्यतोऽग्रेणाग्निं गत्वोदङ् मुखस्तिष्ठेत् ।५। स्नातामहतेनाच्छाद्य या अकृन्तन्नित्यानीयमानाया पाणिग्राहो जपेत् सोमोऽददिति ।६। पाणिग्राहस्य दक्षिणत उपवेशयेत् ।७। अन्वारब्धायाँ स्रुवेणोपघात महाव्याहृतिभिराज्य जुहुयात् ।८। समस्ताभिश्चतुर्थीम् ।९। एव चौलोपनयनगोदानेषु ।१ ।

ब्रह्मचर्य आश्रम मे रहने वाला व्यक्ति अ ग सहित वेदो का अध्ययन करके गुरु को उनकी इच्छानुसार दक्षिणा प्रदान करे और उनकी आज्ञा प्राप्त करके समावर्तन सस्कार करके कुमारी से विवाह-सस्कार करे। समावर्तन की विधि सम्पन्न करने के पश्चात् विवाह सस्कार के लिये सर्व प्रथम कन्या और वर स्नान करे। वर को मत्र पूर्वक स्नान करना होता है और कन्या बिना मत्र के ही करती है। विवाह के अवसर पर किया गया यह स्नान अन्य अवसर पर किये गये सामान्य स्नान से इस दृष्टि से भिन्न होता है कि इसमे कन्या अथवा वर की जाति की स्त्रियाँ एकत्रित होकर कन्या के समस्त शरीर को उबटन से भलीभाँति मल कर सर्वाङ्ग को अच्छी तरह साफ कर देती है। इसके पश्चात् पुरोहित अथवा कोई अन्य ब्राह्मण उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टा) से अपने शिर और कानो को ढककर जल से भरे कलश को शिर प रख कर जल-स्थान से उठकर ब्रह्मा के सम्मुख खडा हो जाय। ज तक मस्तक पर जल का सेक न हो तब तक यह उसी प्रकार स्थि रहे। इसके पश्चात् पहले से स्नान की हुई वधू के पास दो वर पक्ष

वाले जायें और उसके समस्त शरीर को दो नये वस्त्रो से ढक दे। उस समय वे "या अकृन्तन" तथा "परिधत्त" मत्रो को पढे। फिर वर अग्नि कुण्ड के पास खडा होकर कन्यादान करने वाले व्यक्ति द्वारा ले जाती हुई बहू को देख "सोमोऽददत्" मत्र का जप करे। वह "या अकृन्तन" मत्र पढ कर अधोवस्त्र तथा "परिधत्त" मत्र पढ कर ओढने का वस्त्र दे। तत्पश्चात "प्रमे पतियान" मत्र का जप बहू करे तथा "प्रास्या पतियान" मत्र का पाठ पति करे। तब कुश के आसन, पर बहू को पति के दक्षिण भाग मे बिठावे और "परिस्तरणादि" से लेकर "प्रपद" तक की विधि पूरी करके सस्कारित आज्य (घी) स्रुवा, समिधा और शमी या पलाश के पत्ते सहित लावा (धान की खील) सूप मे धर कर हवन कुण्ड के उत्तर तरफ रखे। सिल तथा लोढी को पश्चिम तरफ रखे।

प्रपद जप के पश्चात् बहू अपने दाहिने हाथ से पति के दाहिने हाथ को स्पर्श करती हुई बर्हि कुशा पर रखे हुये स्रुवा से पति द्वारा सस्कारित आज्य को लेकर 'भूस्स्वाहा' "भुवस्स्वाहा" "स्वस्स्वाहा" व्याहृति मत्रो को पढ कर अग्नि मे हवन करे। वह तीन आहुतियाँ ता "भूस्स्वाहा" आदि मत्रो से और चौथी आहुति 'भूर्भुवस्स्वाहा" इस सम्पूर्ण व्याहृति-मत्र से देवे। चूडाकरण, उपनयन और केशान्त सस्कारो के अवसर पर लेने वाले हवनो मे भी इसी विधि से कम किया जाता है ॥१-१०॥

अग्निरैतु प्रथम इति षड्भिश्च पाणिग्रहणे ।११। नाज्यभागौ न स्विष्टकृद व्याहृतिष्वनादेशे ।१२। सवत्रोपरिष्टान्महाव्याहृतिभि ।१३। प्राजापत्यय च ।१४। प्रायश्चित्त जुहुयात् ।१५। हुत्वोपोत्तिष्ठत ।१६। अनुपृष्ठं गत्वा दक्षिणतोऽवस्थाय वध्वञ्जलि गृह्णीयात् ।१७। पूर्वा माता शमीपलाशमिश्रान् लाजाञ्छूर्पे कृत्वा ।१८। पश्चादग्नेर्दृषत्पुत्रमाक्रमयेद्वधू दक्षिणेन प्रपदेन इमम-

श्मानमिति ।१६। सकृद्गृहीतमञ्जलि लाजाना बध्व-ञ्जल्यावावपेत् भ्राता ।२०।

पाणिग्रहण स स्कार मे " अग्नि रेतु प्रथम०" इत्यादि छ मत्रो से हवन करे । जहाँ इस बात का स्पष्ट निर्देश न किया गया हो कि अमुक मत्रो मे इस प्रकार हवन किया जाय वहाँ "आज्य-भाग" और स्विष्ट कृत" होम न किया जाय । सभी हवन कृत्यो मे उस अवसर पर विहित हवन करने के पश्चात् महाव्याहृति से हवन करना चाहिये । फिर "प्रजापते न स्वदेनानि" मत्र से भी हवन करे । जहाँ कही किसी कारण वश प्रायश्चित की आवश्यकता हो वहाँ प्रायश्चित्तीय आहुतियाँ भी दी जाये । महाव्याहृति होम पूर्ण हो जाने पर वर और बधू दोनो एक साथ उठे । उठते समय वर का दाहिना हाथ कन्या की पीठ पर होकर दाहिने कन्धे पर और कन्या का बाँया हाथ वर की पीठ पर होकर बाँये कन्धे पर रहे । फिर पति बहू की पीठ की ओर होकर दाहिनी ओर जाकर उसकी अ जलि पकड कर उत्तर की ओर मुँह करके बैठे । उस समय कन्या की माता अथवा भाई शमी या पलाश के पत्ते मिला लावा सूप मे लेकर अग्नि के पूर्व भाग मे खडे रहे । तब अग्नि के पश्चिम भाग मे रखे सिल लोढी पर बाये हाथ से अ जलि को पकडे रह कर दाहिने पैर को रखे और पूव से ईशान कोठा की ओर चलावे । उस समय पति "इममश्मानमारोहा०" इत्यादि मत्र पढता जावे । तब बहू का भाई सूप मे रखे लावा मे मे एक अ जलि लावा एक बार मे देवे ।।११—२०।।

सुहृद्वा कश्चित् ।२१। त साऽग्नो जुहुयादविच्छिद्या-ञ्जलि इय नारीति ।२२। अयमण पूषणमित्युत्तरयो ।२३। हुते तेनैव गत्वा प्रदक्षिमग्नि परिणयेत् कन्यला पितृभ्य इति ।२४। अवस्थानप्रभृत्येव त्रि ।२५। शूर्पेण शिष्टा-नग्नावोप्य प्रागुदीचीमुत्क्रमयेत् एकमिष इति ।२६। ईक्षकावेक्षणरथारोहणदुर्गानुमन्त्रणान्यभिरूपाभि ।२७।

अपरेणाग्निमौदको गत्वा पाणिग्राह मूर्धन्यवसिञ्चेत् ।२८। बधू च ।२९। समञ्जन्त्वित्यवसिक्त ।३०। दक्षिण पाणि सागुष्ठ गृह्णीयात् गृभ्णामि ते इति षड्भि ।३१।

यदि बहू का कोई भाई न हो तो यह लावा देने का कार्य कोई अन्य रिश्तेदार करे। उस भाई या सम्बन्धी व्यक्ति से लावा को ग्रहण करके बहू इस प्रकार सावधानी से अग्नि मे आहुति दे जिससे उसकी अजलि अलग-अलग न हो जाय। उस समय "वर इय नारी०" मत्र का जप करे। इस प्रकार वेदज्ञ पति ने जिस प्रकार गमन किया था उसी प्रकार कन्या को आगे-आगे लेकर अग्नि की प्रदक्षिणा कराते हुये "कन्यलापितृभ्य" इस मत्र का पाठ करके कन्या को परिणीता करे। अर्थात् कन्या जो पत्नी बनकर पति ग्रह को प्राप्त करती है यह उसको समझा देवे। इस प्रकार परिणीता हो जाने पर दो बार फिर पूर्ववत् अवस्थान, अश्मारोहण, लजावपन, लाजा-होम करे, पर इन दो बार मे पहले मन्त्रो को न पढे, वरन् उनके स्थान पर "अयमणनुदेव" एव पूषण" इन दो मन्त्रो का पाठ करे। तीन बार होम करने से बचा हुआ लावा आदि को सूप मे लेकर बिना मत्र पढ़े अग्नि मे डाल दे और ईशान कोष मे 'एकामिषे" इत्यादि ६ मन्त्रो को पढ कर बहू को यथाक्रम सात पग इस भाँति चलावे जिसमे बहू का दाहिना पग आगे चले और बाँया पीछे पीछे पर बाँया पैर दाहिने पैर मे न जाय। बहू को देखने आये व्यक्तियो (ईक्षको) वधू निरीक्षण वहू को पति-गृह जाने के लिये रथ पर चढना, मार्ग के भय का निवारण आदि के अनुरूप मन्त्रो को पढ़े। जैसे देखने वाले "सुमङ्गली" इत्यादि मत्र पढ़े, बहू के रथ पर चढने समय "सुकिंशुकम" और मार्ग मे जहाँ भय हो वहाँ "मा विदन्०" आदि मत्र पढ़े जाये। तत्पश्चात् कोई जलवाहक अग्नि के पश्चिम भाग मे वर और बधू के मस्तक पर जल के छीटे दे। उस समय वर-बधू दोनो एक साथ "समञ्जन्तु०" मत्र पढ़े। पति उस जलसिक्त वधू की अञ्जलि को बाँये हाथ से पकड कर अपने

पास कुछ ऊपर उठावे और दाहिने हाथ से उसके अँगूठा सहित दाहिने हाथ को पकड कर 'गृभ्णामिते' इत्यादि विवाह के छ मत्रो को पढ़े । और अग्नि की प्रदक्षिणा क्रम से घूम कर होम करके वाम देव्य गान तक सब क्रियाएँ करे। २१-३१ ।

चतुर्थ खण्ड

प्रागुदीचीमुद्वहेत् ।१। ब्राह्मणकुलेऽग्निमुपसमाधाय पश्चादग्नेर्लोहित चर्मानडुहमुत्तरलोम प्राग्ग्रीवमास्तीर्य वाग्यतामुपवेशयेत् ।२। प्रोक्ते नक्षत्रेऽन्वारब्धाया स्रुवेणोपघात जुहुयात् षड्भिर्लेखाप्रभृतिभिस्सम्पातानवनयन् मूर्धनि वध्वा ।३। प्रदक्षिणमग्नि परिक्रम्य ध्रुव दर्शयति ध्रुवाद्यौरिति ।४। अभिवाद्य गुरून् गोत्रेण विसृजेद्वाचम् ।५। गौर्दक्षिणा ।६। अत्रार्घ्यम् ।७। आगतेष्वित्येके ।८। त्रिरात्र क्षारलवणे दुग्धमिति वर्जयानौ सह शय्याता ब्रह्मचारिणौ ।९। हविष्यमन्न परिजप्यान्न पाशेनेत्यसाविति वध्वा नाम ब्रूयात् ।१०।

होम समाप्त हो जाने पर वधू और स्थापनार्थ अग्नि को ईशान कोण मे पहुँचावे । यदि विवाह क्षत्रिय आदि को हो और उसका अपना घर दूर होतो ईशान कोण मे ब्राह्मण का जा घर समीप हो उसी घर मे उत्तर विवाह (चतुर्थी कर्म) कर्म के लिये अग्नि स्थापन करे । उस स्थापित अग्नि के पश्चिम भाग मे चर्मासन बिछाये । उस पर बहू को बिठादे और वह अतिरिक्त बाते न करे । यदि बादल आदि के कारण नक्षत्र न दिखाई पडें तो ज्योतिष द्वारा ज्ञात नक्षत्रोदय काल मे "लेखा

सन्धिषु०" इत्यादि छ मन्त्रो के द्वारा बधू को "अन्वारब्ध" करे, अर्थात् स्रुवा से छ आहुतियाँ दे और प्रत्येक आहुति के अन्त मे बधू के शिर पर घी टपका देवे । होम के पश्चात् वर बधू बाहर निकले और पति बधू को ध्रुव का दर्शन कराते हुए "ध्रुवाद्यौ०" मन्त्र का उच्चारण करे । तब बधू अपने नाम के साथ पति के गोत्र का नाम जोड कर पति का अभिवादन करे और जो अतिरिक्त न बोलने का नियम था उसे छोड दे । विवाह यज्ञ के उपलक्ष्य मे ब्राह्मण को एक गौ दक्षिणा स्वरूप प्रदान करे । इस अवसर पर विवाह करने वालो तथा अपनी अपनी जाति वालो को कन्यादान करने वाला अर्घ्य दे । अन्य आचार्यों के मतानुसार जब विवाह के लिए बधू के घर आये तब अर्घ्य दे । जिस दिन विवाह कार्य हो उस दिन से तीन रात्रि तक वर-बधू नामक, दूध आदि छोडकर हविष्यान्न का भोजन करे और मैथुन न करते हुए एक शैया पर शयन करे । तीन दिन-रात वर बधू को हविष्यान्न भोजन करना होता है । उस अवसर पर जब भोजन लाया जाय तब "अन्नपान मणिना" मन्त्र उच्चारण करके "यह है" ऐसा कह कर पति बहू का नाम बोले ॥१-१०॥

भुक्त्वोच्छिष्टं वध्वै दद्यात् ।११। ऊर्ध्वं त्रिरात्राच्चतसृभिराज्यं जुहुयात् अग्ने प्रायश्चित्तिरिति समस्त पञ्चमी सम्पातानवनयन्नुदपात्रे ।१२। तेनैनां सकेशनखामाप्लावयेत् ।१३। ततो यथार्थं स्यात् ।१४। ऋतुकाले दक्षिणेन पाणिनोपस्थमालभेद्विष्णुर्योनिं कल्पयन्त्विति समाप्तायाम ।१५। सम्भवेद्गर्भं धेहीति ।१६।

भोजन करने पर जो शेष रहे उसे उसे बधू ग्रहण करे । "लेखा होम" पूरा हो जाने पर "सुकिंशुकम्०" पढकर बधू को रथ पर चढावे और अग्नि को साथ मे रखले । मार्ग मे जहा भय हो वहाँ "माविदन्" मन्त्र को बोले और घर मे प्रवेश करके "इह गाव" मन्त्र पढ़े । तब । शैया पर बैठ कर "इह धृति०" मन्त्र का उच्चारण करे और उसी शैया

पर तीन रात्रि तक वर-वधू मैथुन रहित होकर शयन करे । इसके पश्चात् चौथे दिन, दिन के आरम्भिक भाग मे "प्रपदान्त' तक समस्त विधि से बहू अन्वारब्ध होकर महाव्याहृतियो से तीन आहुतियाँ दे और चौथी बार समस्त महाव्याहृति को बोल कर आहुति डाले । उस अवसर पर "अग्ने प्रायश्चित्ति०"आदि मन्त्रो को बोले । इसमे विशेषता यह है कि प्रथम आहुति के बाद दूसरी आहुति मे 'अग्नि" के स्थान पर "वायु, चन्द्र और सूर्य" का नाम ले और पाँचवी आहुति मे "अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य" इन चारो देवताओ को एक ही बार मे सम्बोधन करे । इस लिये मन्त्र मे जितने वचन आवे उनको बहुवचन करके पढे । इन पाँच "प्रायश्चित्त आहुतियो" मे से बचने वाले घी को एक चमस मे रक्षित रखे । साथ मे लाये जल मे पति बधू को शिर सहित स्नान करावे और 'वामदेव्य" तक गान करके ब्राह्मण भोजन करावे । इसके पश्चात् जो अन्य कार्य अवसर के अनुकूल हो उनको वर बधू करे । जब स्त्री का मासिक धर्म हो उस दिन से १६ (सोलह) रात्रि ऋतुकाल कहा जाता है । उसमे से प्रथम चार रात्रि निन्द्य मानी गई है । एकादशी और त्रयोदशी सभोग के लिये निषिद्ध है । शेष १० रात्रि शुद्ध मानी गई है । इनमे जिसे पुत्र की इच्छा हो वह सम तिथियो (जैसे द्वितीया, चतुर्थी आदि) मे बहू के पास सम्प्रयोग के लिये जाय और जिसे कन्या की इच्छा हो वह विषय तिथियो मे (जैसे तृतीया, पचमी आदि) मे जाय । ऋतुकाल मे पति पहले "विष्णुर्योनिंकल्पयतु०" तथा "गर्भं धेहि सिनीवालि०" मत्रो को पढकर दाहिने हाथ से वधू की जननेन्द्रिय का अभिमर्शन करके मैथुन कर्म मे प्रवृत्त हो ॥११ १६॥

पञ्चम खण्ड

यस्मिन्नग्नौ पाणि गृह्णीयात्स गृह्य ।१। यस्मिन्वाऽन्त्या समिधमादध्यात् ।२। निर्मन्थ्यो वा पुण्यस्सोऽनर्धुक ।३। अम्बरीषाद्वाऽऽनयेत् ।४। बहुयाजिनो वाऽगाराच्छूद्रवजम् ।५। सायमाहुत्युपक्रम परिचरणम् ।६। प्रागस्तमयोदयाभ्या प्रादुष्कृत्य ।७। अस्तमिते होम ।८। उदिते चानुदिते वा ।९। हविष्यस्यान्नस्याकृत चेत् प्रक्षाल्य जुहुयात्पाणिना ।१०।

विवाह-स स्कार मे जिस अग्नि का प्रयोग किया जाता है उसी को "गृह्य" कहा जाता है। अथवा जिस अग्नि से ब्रह्मचारी का समावर्तन स स्कार होता है उसको "गृह्य' कहते है। उपर्युक्त दोनो प्रकार की अग्नियाँ जो अरणि काष्ठ द्वारा मन्थन करके उत्पन्न की जाती है, वे परलोक के लिये हितकारी होती है, लौकिक दृष्टि से सम्पत्ति दाता नही होती। अथवा इन स स्कारो के अवसर पर हलवाई की भट्टी मे से अग्नि लावे। अथवा देवताओ की पूजा करने वाले और यज्ञ करने वाले के घर से अग्नि लावे और उसी से विवाह-स स्कार या समिदाधान करे। इस प्रथम बार आहुति दान करने के पश्चात् अन्य दिनो मे भी उसी 'गृह्य अग्नि" मे साय प्रात हवन किया जाय। सायकाल को सूर्यास्त से पहले और प्रात काल सूर्योदय से पूर्व अग्नि को भली प्रकार प्रज्ज्वलित करके सूर्योदय होने समय हवन कर्म करे। अगर चावल या फलो का हवन करना हो तो उनको अच्छी तरह धोकर भीगे रहते ही हवन करे ॥१–१०॥

दधि चेत्पयो वा कसेन ।११। चरुस्थाल्या वा ।१२। अग्नये स्वाहेति मध्ये ।१३। तूष्णी प्रागुदीचीमुत्तराम् ।१४। सूर्यायेति प्रात पूर्वाम् ।१५। नात्र परिसमूहनादीनि पर्युक्षणवर्जम् ।१६। पत्नी जुहुयादित्येके ।१७। गृहा

पत्नी गृह्योऽग्निरेष इति ।१८। सिद्धे सायप्रातर्भूत-मित्युक्त ओमित्युच्चैर्ब्रूयात् ।१९। माक्षा नमस्त इत्यु-पांशु ।२०।

यदि दूध, दही, यवागू से हवन करना हो तो उनको धोना आवश्यक है। उनको किसी पात्र मे रख कर स्रुवा से हवन करे। पहली आहुति "अग्नये स्वाहा" कह कर सायकाल के समय दे और दूसरी बिना म त्र पढे ईशान कोण मे दे। दूसरी आहुति ईशान कोण मे बिना म त्र के ही दे। प्रात कालीन हवन मे "सूर्याय स्वाहा' बोल कर आहुति दे। प्रात काल और सायकाल के हवन मे परिसमूहन और पर्युक्षण करने की आवश्यकता नही होती। कुछ आचार्यों का मत है कि पत्नी ही हवन करे क्योकि पत्नी को गृह्या कहते है और इस अग्नि का नाम भी "गृह्य' है। अतएव पत्नी ही दोनो समय हवन किया करे। प्रात काल और सायकाल जब भोजन बन जाय और पाक करन वाला कहे कि "तैयार हो गया" तो गृह स्वामी 'ॐ' का उच्चारण करे। उसी समय हवन किया जाय। हवन के समय यज्ञ कर्ता कर्म काण्ड सम्बन्धी बात ही करे अन्य लौकिक विषयो की चर्चा न करे। यदि लौकिक बात करने मे आ जाय तो प्रति बार 'तस्मै तन्माक्षा" मन्द स्वर मे मन मे कहे और ऊँचे स्वर मे "ॐ" कहे ॥१९–२०॥

हविष्यस्यान्नस्य जुहुयात् प्राजापत्य सौविष्टकृत च ।२१। बलीन्नयेत् ।२२। बहिरन्तर्वा चतुर्निधाय ।२३। मणिकदेशे ।२४। मध्ये ।२५। द्वारि ।२६। शय्यामनु ।२७। वर्चं वा ।२८। अथ सस्तूपम् ।२९। एकैकमुभयत परिषि-ञ्चेत् ।३०।

भोजन सामग्री बन जाने पर उसमे से थोडा सा लेकर हविष्य व्यजन के साथ उसी अग्नि मे बिना मत्र पढे एक आहुति देवे। इस आहुति

आहुतिमे स्रुवा आदि की आवश्यकता नही होती, यो ही हाथसे दे । फिर 'प्रजापतये स्वाहा' मन मे कह कर एक आहुति दे और 'स्विष्टकृते स्वाहा' मत्र से दूसरी आहुति देवे । तत्पश्चात् निम्न स्थानो मे 'बलि' रखे, यह बलि घर के भीतर या भीतरी घर के बाहर चार स्थानो मे रखी जाती है । एक जल देवता के लिये जहाँ घर मे व्यवहार आने वाला जल रखा जाता हो, दूसरी भीतरी घर के बीच मे, तीसरी भीतरी घर के दरबाजे पर, चौथी सोने के स्थान मे शैया के समीप इनके अतिरिक्त जहाँ घर का कूडा बुहार कर रखा जाता हो वहा एक बलि रखे । एक घर मे पहले से स्थापित स्थूण (खूटा) की समीप रखे । ये सब बलियाँ एक ही पात्र मे से थोडा-थोडा लेकर रखता जाय और रखने से एक बार पहले और एक बार बाद मे उस स्थान पर जल छिडके ॥ २१-३० ॥

शेषमद्भिस्सार्धं दक्षिणा निनयेत् ।३१। फलीकरणानामपामाचामस्वेति विश्राणिते ।३२। पृथिवी वायु प्रजापतिर्विश्वेदेवा आप ओपधिवनस्पतय आकाश कामो मन्युर्वा रक्षोगणा पितरो रुद्र इति वलिदैवतानि ।३३। तूष्णी तु कुर्यात् ।३४। सर्वस्य त्वन्नस्यैतत्कुर्यात् ।३५। असकृच्चेदेकस्मिन् काले सिद्धे सकृदेव कुर्यात ।३६। बहुधा चेद्यद्गृहपते ।३७। सर्वस्य त्वन्नस्याग्नौ कृत्वाऽग्र ब्राह्मणाय दत्वा स्वय कुर्यात् ।३८। व्रीहिप्रभृत्या यवेभ्यो यवेभ्योवाऽऽव्रीहिभ्य स्वय हरेत् ।३९।

उसके पश्चात् पात्र मे बचे हविष्यान्न को हाथ धोकर हाथ की पैत्र अगुली से दक्षिण की ओर फेके । वह बलि पितृगण के लिये होती है । एक बलि जौ या चावल के माँड से तैयार करे और 'रुद्राय नम' मत्र पढ कर रुद्र देवता के नाम पर ईशान कोण मे देवे । उपर्युक्त समस्त बलियो के देवता इस प्रकार होते है—पृथिवी, वायु, प्रजापति,

विश्वेदेवा, आप ओषधि, वनस्पति, आकाश, काम या मन्यु, रक्षोगण, पितर और रुद्र। इन देवताओ के नाम मन मे लेकर बलि देवे। जैसे 'पृथिव्यै नम' 'वायवे नम 'विश्वेभ्यो देवेभ्यो नम' 'अद्भ्यो नम' 'औषधि वनस्पतिभ्यो नम' 'आकाशाय नम' 'मन्यवे नम' 'रक्षोगणेभ्यो नम' 'पितृभ्यो नम' 'रुद्राय नम'— इनको मन मे स्मरण करते हुए अलग अलग बलि रखता जाय। पितृ कार्य के लिये हो, या ब्राह्मण भोजनादि कल्याण कार्य के लिए हो, या अपने खाने के लिए हो सब प्रकार के अन्न से बलि दे सकते है। यदि घर मे प्रयोजन वश कई बार भोजन बनाया जाय तो बलि-कर्म केवल एक ही वार करना चाहिये। यदि मकान मे एक वश के व्यक्ति अपना भोजन पृथक्-पृथक् बनाते हो तो उन सब मे जो ज्येष्ठ या प्रमुख हो वही बलि कर्म करे। तो एक को करने की आवश्यकता नही। यदि एक घर मे अनेक व्यक्ति अपना भोजन बनाने वाले रहते हो जिसका भोजन सबसे पहले तैयार हो वही अग्नि मे थोडा अन्न डालकर पके अन्न मे से पहले ब्राह्मण को या श्रेष्ठ अतिथि को देकर फिर स्वय भोजन करे। 'काम्य बलि' का आशय यह है कि यदि अपने को बहुत समय तक जीने की इच्छा हो तो एक बलि दे जिसको 'आशस्थ' कहा जाता है। इसके लिए जिस समय तक हेमन्त ऋतु का धान्य शस्य (खेत मे उगा हुआ धान) तैयार न हो तो तब तक, यव के अन्न होने के पहले और बाद मे, धान्य की उत्पत्ति के निकट एक बलि देवे।

वाराह गृह्यसूत्रम् ।

प्रथम खण्ड

प्राङ्मुखमुदङ्मुख वा सूतिकालय कल्पयित्वा 'ध्रुव प्रपद्ये शुभ प्रपद्ये' इति काले प्रपादयेत् ।१। 'रेतो मूत्र' मिति च्यावनीभ्यां दक्षिणकुक्षिमभिमृशेत् ।२। श्रावयेद्वा पुत्र जातमन्वक्ष स्नात न मातोपहन्यात् आमन्त्र प्रयोगात् ।३। अग्नेरभ्याहितस्य परिसमूढस्य परिस्तीर्णस्य पश्चादहते वासंसि कुमार प्राक्शिर-समुत्तान सवेश्य पालाशस्य मध्यमपर्ण प्रवेष्ट्य तेनास्य कर्णावाजपेत् ।४। 'भूस्त्वयि दधामी' ति दक्षिणे 'भुव-स्त्वयि दधामी' ति सव्ये 'स्वस्त्वयि दधामी' ति दक्षिणे भूर्भुव स्वस्त्वयि दधामि' ति सव्ये ।५। अथैनमभिम-न्त्रयेत्—'अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृत भव ।६। वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरद शतम् । अङ्गादङ्गा-त्सभवसि हृदयादधिजायसे ।७। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरद शतमिति यत्र शेते तदभिमृशेत् ।८। वेद ते भूमिहृदय दिवि चन्द्रमसि श्रितम् ।९। वेदा-मृतस्य देवानह पुत्रमह हृद' मित्याज्य सस्कृत्य ब्राह्मण-मामन्त्र्य समिधमाधाया घारावाघार्याज्य भागौ हुत्वा व्याहृतिभिश्चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयात् ।१०। जयाभ्या-तानाना राष्ट्रभृनश्चैके ।११। कास्ये चमसे वाहुति सपाता नवनीय तस्मिन्सुवर्ण सनिघृष्य व्याहृतिभि कुमार चतु प्राशयेदत्यन्तमेके श्वःवर्णप्राशनमुदके निघृष्य

आद्वादशवर्षतराया 'इष पिन्वोर्ज पिन्वेति' स्तनौ प्रदापयेत् ।१२। दक्षिण पूर्व सव्य पश्चात् स्विष्टकृत हुत्वा प्रायश्चित्त हुतीश्च समिधमाधाय पर्युक्षति ।१३। एष कर्मान्तो बहिर्द्वारेऽग्निर्नित्य ।१४। कण सर्षपयवाना होम ।१५। व्याहृतिभिर्जुहुयात् ।१६। अप्रतिरथ जपेत् ।१७। 'इन्द्रो भूतस्ये' ति षडच च सूतिकालय यथाकाल समन्तादुदकेन परिषिचेत् ।१८।

मानव-समाज और सृष्टिक्रम की स्थिरता का प्रमुख आधार प्रजनन और सन्तानोत्पत्ति ही है, इस कारण 'वाराह गृह्य सूत्र' मे सर्व प्रथम गर्भवती द्वारा शिशु जन्म सम्बन्धी विधि विधान का ही वर्णन किया जाता है तदनुसार गर्भवती के लिये ऐसा सूतिका गृह बनावे जिसका दर्वाजा पूर्व या उत्तर की तरफ हो। जब प्रसव का समय बिल्कुल निकट आ जाय तब 'ध्रुव प्रपद्ये शुभ प्रपद्ये' मन्त्र को पढ कर गर्भणी को उस सूतिकागार मे प्रवेश करावे। जब उसके प्रसव की वेदना होने लगे तो 'रेतो मूत्र मिति०' इत्यादि मन्त्रो से पेट के दाहिने भाग को स्पर्श करे। जब शिशु जन्म हो जाय तब 'पुत्र उत्पन्न हुआ' ऐसा वचन कहे। जब तक जात-कर्म सम्बन्धी क्रियाएँ विधि पूर्वक न हो जाय तब तक बच्चे को माता की गोद मे न दिया जाय। बच्चे को स्नान कराके तथा स्वेच्छा करके, जहाँ हवन करना हो वहाँ की भूमि को पचम् सस्कार के अनुसार शुद्ध करके अग्नि स्थापन करे, उसके पश्चिम ओर कुशा बिछा कर उस पर नये अखण्ड वस्त्र पर बच्चे को पूव की ओर शिर करके सीधा (उत्तान) लिटा दे। तब ढाक के बीच के पत्ते को लपेट कर गोल बनावे और उसका एक छोर मुख मे लगाकर बच्चे के दाहिने कान से 'भूस्त्वमि०' इत्यादि मत्र और बाँये कान मे 'भुवस्त्व०' मन्त्र को पढ कर सुनावे। जहाँ बच्चा लेटा हो वहाँ 'अश्माभव०' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर स्पर्श करे और अभिमन्त्रित करे। 'वेदते०' इत्यादि मन्त्र को पढ़ कर आज्य का

सस्कार कर ब्राह्मणो को निमन्त्रित करे और समिधा इकट्ठा करके उन पर घी डाल दे। आज्य-भाग की दो आहुति देकर व्याहृति मन्त्र से चार आहुति दे। कासे के कटोरे या प्रणीता के समान किसी पात्र मे 'अहुति सम्पात्' को लेकर उसमे सोने को घिस कर बच्चे को चार बार चटावे। (सुवण को पानी मे घिस कर बच्चे को १२ वर्ष की आयु तक चटाया जाता है)। तब 'इष पिन्वा०' मन्त्र को पढ कर शिशु को प्रथम दाहिना और फिर बाँया स्तन पीने को दे। तत्पश्चात् 'स्विष्टकृत' आहुति देकर प्रायश्चित की आहुति दे और समधि डालकर उसके जल से पर्युक्षण करे। यह कर्मान्त विधि द्वार के बाहर नित्य अग्नि मे करे। कण, सरसो और जौ से होम करे। व्याहृतियो से हवन करे 'अप्रतिरथ०' का जप करके 'इन्द्रोभूतस्य०' और षडर्च मन्त्रो का भी जप करे। सूतिकागार के चारो ओर जल छिडके ॥१-१८॥

द्वितीय खण्ड

एवमेव दशम्या कृत्वा पिता माना च पुत्रस्य नाम दध्याताम् ।१। घोषवदाद्यन्तरन्तस्थ दीर्घाभिनिष्ठानान्त कृत न तद्धित द्वचक्षर चतुरक्षर वा व्यक्त पितृनामधेयान्नक्षत्रदेवतेष्टनामानो वा ।२। द्विनामा तु ब्राह्मणो नामैव कन्याया अकारव्यवधानमाकारान्तमयुग्माक्षर नदीनक्षत्र चन्द्र सूर्य पूषादेवदत्तरक्षितावर्जम् ।३। नवनीतेन पाणी प्रलिप्य 'सोमस्य त्वा द्युम्नेने' त्येनमभिमृशेत् ।४। सर्वेषु कुमारकमसु आग्नेय स्थालीपाक प्रजापत्यो वा सर्वत्रानादेशेऽग्नि पु सामर्थमा स्त्रीणाम् ।५।

जात कर्म से दशवे दिन पूर्वोक्त विधि से हवन-कृत्य करके माता-पिता अपने पुत्र का नामकरण सस्कार करे। नाम कृदन्त होना चाहिये तद्धितान्त न हो। पुत्र के नाम के साथ ही पीछे पिता का नाम भी लगाया जाय। जिन तिथि या नक्षत्र मे शिशु का जन्म हुआ हो तो उसके देवता सम्बन्धी या नक्षत्र-सम्बन्धी नाम यश के लिये उचित है, परन्तु देवता या पिता का साक्षात् नाम न धरे। पुत्र के दो नाम रखे जाये, पर कन्या का एक ही रखना चाहिये। नदी, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य पूषा, देवदत्त—इनसे रक्षिता नाम कन्या का नही रखा जाता। फिर धुले हाथो मे मक्खन लगा कर अग्नि मे तपावे और ब्राह्मण से आज्ञा लेकर 'सोमस्य०' मत्र पढ कर शिशु का स्पर्श करे। बच्चे के सब कर्मों मे 'आग्नेय स्थाली पाक' या 'प्राजापत्य स्थाली पाक' करे। कुमार के कर्मों मे जहा अग्नि के नाम का पर्यायवाची कोई शब्द न हो, वहाँ के कर्मों मे 'अग्नि' ग्रहण करना और कुमारी के कर्मों मे 'अर्यमा' समझना ।१-५।

तृतीय और चतुर्थ खण्ड

तृतीयवर्षस्य जटा कुर्वन्ति यथ वा कुलकल्प ।१। अग्निमुपसमाधाय परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य दक्षिणतोऽग्नेर्ब्राह्मणमुपवेश्योत्तरत उदकपात्र शमीशमकवत् ।२। अथैनमभिमन्त्रयते—"हिरण्यवर्णा शुचय" इति चतसृभि 'या ओषधय' इत्यनुवाकेन, 'श नो देवीरभिष्ट' य इति, 'श न आपो धन्वन्या' इति द्वाभ्यामिति च ।३। तासामुदकार्थान्कुर्वीत पर्युक्षणे अभ्युन्दने स्नापने च ।४। आज्य सस्कृत्य ब्राह्मणमामन्त्र्य समिध-

माधायाधारावाधार्याज्यभागौ हुत्वा 'अग्न आयूंषि पवस' इति सप्तभि सप्त जुहुयात् ।५। आयुर्दा देवेति' च ये केशिन प्रथमे सत्रमासत येभिरावृत यदिद विराजति ।६। तेभ्यो जुहोम्यायुषे दीर्घायुत्वाय स्वस्तय' इति व्याहृतिभिश्चोक्त कर्मान्ति पूर्वेण ।७। शीतेन वा उदकेनेत्युष्णेन वा उदकेनेति तप्ता इतराभि ससृज्य 'आर्द्रदानवस्थजीवदानवस्थोन्दतोषमावदे' त्यपोभिमन्त्र्य 'अदिति केशान् वपत्वाप उन्दन्तु जीवसे ।८। दीर्घायुत्वाय स्वस्तय' इति दक्षिण केशान्तमभ्युन्दति ।९। 'ओषधे त्रायस्वैन 'इति दक्षिणस्मिन्केशान्ते ऊर्ध्वाग्र दर्भमन्तर्दधाति ।१०। स्वधिते मैन हिसोरिति क्षुरेणाभिनिदधाति ।११। येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।१२। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्मानय जरदष्टिर्यथासहमसाविति प्रवपति ।१३। दक्षिणतो मातान्या वाऽविधवा आनड्डहेन गोमयेन आभूमिगतान्केशान् परिगृह्णीयात् ।१४।

बालक दो वर्ष से अधिक आयु का हो जाय तब उत्तरायण शुक्लपक्ष मे नवमी तिथि को छोडकर चूडाकरण सस्कार करे। जिस कुल मे जिस आयु मे मुण्डन कराने और दाहिनी या बॉयी तरफ शिखा रखने की रीति हो उसी प्रकार करे। इसके लिये हवन की वेदी पर अग्नि स्थापन कर परिसमूहन तथा पर्युक्षण करके अग्नि के समीप कुशा बिछा कर दक्षिण भाग मे ब्राह्मण बिठा कर उत्तर भाग जल पात्र और शमी या अन्य यज्ञीय वृक्ष की लकडी रक्खे। तदनन्तर कुमार को 'हिरण्य वर्णा०' इत्यादि चार ऋचाओ से, 'या ओषधय 'इस अनुवाक से, 'शन्नोदेवी०' और श न आपो धन्वस्या०' इन दो मन्त्रो से आवश्यकतानुसार जल से पर्युक्षण करे, भिगोये और स्नान कराये। आज्य (घृत) का सस्कार कर ब्राह्मण को निमन्त्रण देकर, समिधाओ को

डालकर आज्य को ढारे। आज्य-भाग की दो आहुति देकर 'अग्नि आयुंषि०' इत्यादि सात मन्त्रो से सात आहुति दे। तब 'आयुर्दा०' तथा 'ये केशिनः०' इत्यादि मन्त्रो से और व्याहृतियो से भी आहुति देकर कर्म की समाप्ति करे। तत्पश्चात् शीतल और उष्ण जल अलग-अलग रखे और शीतल जल को उष्ण मे मिलाकर 'आद्र दानवस्थ०' इत्यादि मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करके 'अदिति०' मन्त्र से कुमार के दाहिने तरफ के बालो को अन्त की तरफ से भिगोवे। 'ओषधे०' मन्त्र से दाहिने बालो को अन्त मे दाब रखे 'स्वधिते मै न हिंसी०' मंत्र पढ कर दान सहित बालो पर छुरा रख फिर 'ये नावपत्' इत्यादि तीन मन्त्र पढ कर तीन बार कुशा सहित बालो को काटे। बालक के दाहिने भाग मे बैठकर उसकी माता कट कर भूमि पर गिरे बालो को बैल के गोबर पर लेती जावे ॥१-१४॥

मा ते केशान् अनुगाद्वर्च एतत्ताथा धाता दधातु ते ।१५। तुभ्यमिन्द्रो वरुणो वृहस्पति सविता वर्च आदधु' रिति प्रवपतोऽनुमन्त्रयते ।१६। तेन धर्मेण पुनरपोभि-मन्त्र्यापर केशान्तमभ्युन्द्यात् ।१७। उत्तर च। अन्यौ तु प्रवपनौ।१८। 'येन पूषा वृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत् ।१९। तेन ते वपाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय स्वस्तय' इति पश्चात्।२०। येन भूयश्चरत्यय ज्योक्च पश्यति सूर्यम् ।२१। तेन ते वपाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय सुश्लोक्याय सुवर्चस' इत्युत्तरत ।२२। यत्क्षुरेण वर्तयता सुपेशया वप्तर्वपसि केशान् शुन्धशिरो मुख मास्यायु प्रमोषीरिति लोहायस क्षुर केशवापाय प्रयच्छति ।२३। यथार्थं केशयन्तान् कुर्वन्ति—दक्षिणत कपर्दा वसिष्ठाना उभयतोऽत्रि-भार्गव काश्यपाना पञ्चचूडाङ्गिरसा शिखिनोऽन्ये वाजि-मेकेमङ्गलार्थम्। त्र्यायुष जमदग्ने कश्यपस्य त्र्यायुष अगस्त्यस्य त्र्यायुषम्। यद्देवाना त्र्यायुष तन्मे अस्तु शतायुषमि'

ति शिर प्रभृति परिगृह्य गोमयेन केशानुत्तरपूर्वस्या गृहस्यामुष्यामन्तरा गेहात्पलद निदध्यात् ।२४। अति- रिक्ते वा वपनेउप्त्वाय केशान्वरुणस्य राज्ञो वृहस्पति सविता विष्णुरिद्र तेभ्यो निधान महदन्वविन्दन्नन्तरा द्यावापृथिव्योरवन्युरि' ति ।२५। कत्रे वर ददाति ।२६। पक्ष्मगुग तिलपिशित च केशवापाय प्रयच्छति ।२७। सवत्सर माता नाम्लाय धारयेद्रोषाय नाश्नीयात् ।२८। लवणवर्ज तूष्णीम् ।२९। कन्याया आहुतिवर्ज विदुषो ब्राह्मणार्थसिद्धि वाचयेत् ।३०। एवमुत्तरेषु ।३१।

'माते केशान०' इत्यादि मत्र केशो को काटत समय बोलता जाय। उसी प्रकार फिर जल को अभिमन्त्रित करके बचे केशो को पूर्ववत् भिगोवे और इसी भाँति काटे। 'येन पूषा०' मन्त्र से शिर के पीछे के भाग केशो को काटे "येन भूयचरत्य 'मन्त्र बोल कर उत्तर भाग के केशो को काटे। पुन 'यत्क्षुरेण' मन्त्र पढ के लोहे के छुरे (अस्तुरे) को नाई को देदे और अपनी प्रथानुसार शिखा को छोड कर सब केशो को कटवा दे। शिखा रखने की भिन्न-भिन्न प्रथाएँ हैं, जैसे वसिष्ठ गोत्र वाले दाँयी ओर चोटी रखते हैं और भार्गव तथा काश्यप दोनो तरफ दोनो रखते हैं आङ्गिरस गोत्री पचशिखा वाले होते हैं और वाजस- नेयी एक ही रखते हैं। 'त्र्यायुष०' मत्र पढ कर नाई सब बालो को भिगोवे और उस्तरा फेर कर सब बालो को मूँड दे। तत्पश्चात् बालो समेत गोबर को घर के उत्तर-पूर्व के दूर के कोने मे गाढ़ दे। यदि अतिरिक्त केश कट जाये 'उपत्वाय' मन्त्र का जप करे। पुरोहित को दक्षिणा और नाई को केशर, गुड और कूटे हुए तिल दिये जाये। बालक की माता एक वर्ष खटाई और लवण न खाय और कभी क्रोध की अवस्था मे भोजन न करे। यदि कन्या का चूड़ाकर्म सस्कार किया जाय तो मत्र न बोले जाये, पर हवन सदैव की भाँति मन्त्र सहित ही किया जायगा। विद्वान् ब्राह्मणो से 'अर्थसिद्धि' कहलाई

जाय और इसी प्रकार की विधि पश्चात् होने वाले कर्मों मे भी करे ॥१५-३१॥

पचम खण्ड

गर्भाष्टमे ब्राह्मणमुपनयेत् ।१। षष्ठे सप्तमे पञ्चमे वा ।२। ततो गर्भैकादशेषु क्षत्रियम् । गर्भद्वादशेषु वैश्यम् ।३। प्राक् षोडशाद्वर्षात् ब्राह्मणस्यापतिता सावित्री ।४। आ द्वाविशात् क्षत्रियस्य ।५। आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य ।६। अतऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ।७। नैनान्याजयेयु । 'नाध्यापयेयु'र्न विवहेयु ।८।

ब्राह्मण बालक का उपनयन सस्कार छठे से लेकर आठवे वष तक किसी समय करे। क्षत्रिय बालक का उपनयन ग्यारहवे वर्ष तथा वैश्य का तेरहवे वर्ष करने का नियम है। यदि किसी कारण से उपर्युक्त समय पर उपनयन न हो सके तो ब्राह्मण बालक का १६ वे वर्ष की आयु तक, क्षत्रिय का २२ वर्ष तक तथा वैश्य का २४ वर्ष तक उपनयन कराया जा सकता है। इसके पश्चात् उपनयन का अधिकार जाता रहता है और उनको समाज मे पतित (सावित्रीक) माना जाता है। पतित हो जाने वालो के यहाँ यज्ञ सस्कार करान, उनको वेदादि पढाने का निषेध है। उनसे विवाह सम्बन्ध भी न करे ॥१-८॥

अभ्यन्तर जटाकरण बाहुरुपनयनमुक्तोऽग्निसस्कार ।९। ब्राह्मणस्य कुमार पर्युप्तिन स्नातमभ्यक्तशिरसमुपस्पर्शनकल्पेनोपस्पृष्टमग्नेर्दक्षिणतोऽवस्थाप्य 'दधिक्राव्णो

अकारिषमि' ति कुमार दधि त्रि प्राशयेत् ।१०। 'इय दुरुक्तात्परिबाधमाना वरुण पवित्र पुनतो न आगात् ।११। प्राणापानाभ्या बलमा भजन्ती शिवा देवी सुभगा मेखलेयम् ।१२। ऋतस्य गोप्त्री तपसश्चरित्री घ्नती रक्ष सहमाना अराती ।१३। सा मा समन्तमनुपर्येहि भद्रे धर्त्तारस्ते सुभगे मेखले मारिषामे' ति मौञ्जी त्रिगुणा त्रि परिवीता मेखलामावध्नीत मौर्वीं धनुर्ज्यां क्षत्रियस्य शाणी वैश्यस्य ।१४। उपवीतमसि यज्ञस्य त्वोपवीतेनोपव्ययामी' ति यज्ञोपवीतम् ।१५। या अकृन्तन्या अतन्वन्यावन्या वाहरन् ।१६। याश्चाग्न्या देव्योन्तानभितो ततन्था ।१७। तास्त्वा देव्यो जरसे सव्ययन्त्वायुष्मन्निद परिधत्स्व वास ।१८। परिधत्त वर्च शतायुष दोघमायु ।१९। शत च जीव शरद पुरूची सूनिचाय्यो विभजा यजीयान्' ।२०। इत्यहत वास आच्छाद्य—'मित्रस्य चक्षुर्धरुण बलीयस्तेजो यश श्रीस्थविर समिद्धम् ।२१। आनाहनस्य वसन जरिष्णु परीद वाज्यजिन दधेह' मिति कृष्णाजिन च ।२२। आज्य सस्कृत्य ब्राह्मणमामन्त्र्य समिधमाधायाघारावाघार्याज्य भागौ हुत्वाष्टौ जटाकरणीयान् जुहुयात् ।२३। व्याहृतिभिश्चोक्ता कर्मान्त पूर्वेण ।२४।

उपनयन सस्कार के अवसर पर जो मुण्डन या चूडाकरण होता है उसकी विधि पहले ही कही जा चुकी है। शिर के केशो का मुण्डन होने के पश्चात् ब्राह्मण कुमार को स्नान कराके, शिर मे मक्खन लगा कर, उपस्पशन प्रक्रिया करने के पश्चात् होमाग्नि के दक्षिण भाग मे बैठावे और 'दधिक्राव्णो०' मन्त्र से उसे तीन बार दधि चाटने को दे। फिर 'इय दुरुक्तात् परि०' इत्यादि मन्त्र पढ कर कुमार की कटि मे मूँज की मेखला को तीन बार लपेटे। उस मेखला मे अपनी-अपनी

प्रथानुसार तीन या पाँच या सात गाँठे लगाकर बाध दे। क्षत्रिय बालक की मेखला तात की होती है और वैश्य के लिये सन की। आचार्य 'उपवीतमसि०' बोलकर उस मेखला को बालक को पहना दे।

[illegible]

न्मन्यमानग्तिरश्चिद्राजा चिद्यन्भग भक्षीमहीत्याहे' त्या-
दित्यमुपतिष्ठेत ।२८। ब्रह्मचर्यमुपागामुपमाहूयस्येति'
ब्रूयात् ।२९। एहि ब्रह्मापेहि ब्रह्म ब्रह्म त्वा सब्रह्म सन्त-
मुपनयाम्यहमसा' विति ।३०। अथास्याभिवादनीय नाम
गृह्णाति ।३१। 'देवस्य त्वेति' हस्त गृह्णाम्यहमसावि'
त्यस्य हस्त दक्षिणेन दक्षिणमुत्तानमभि वाङ्गुष्ठमभि
वा लोमानि गृह्णीयात् ।३२। ममेवान्वे तु ते मनो,
मामेवाऽपि त्वमन्विहि ।३३। अग्नौ घृतमिव दीप्यता

ग्रन्थिरसि' इति नाभिदेश ।३६। गणाना त्वा गणपति हवामहे कवि कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।३७। ज्येष्ठराज ब्रह्मणा ब्रह्मणस्पसत आ न शृण्वन्नूतिभि सीद सादनम्' इति पदक्षिणमग्नि परिणयेत् ।३८। पश्चादग्ने दर्भेषूपविशति दक्षिणतश्च ब्रह्मचारी–'अधीहि भो' ।३९। इत्युपविश्य जपति ।४०। प्रभुज्य दक्षिण जानु पाणी सधाय दभहस्ता 'वोमि' त्युक्त्वा व्याहृतिभि सावित्री चानुब्रूयात् ।४१। एव काण्डानुवचनेषु ।४२। तत्सवितुर्वरेण्यमि' ति गायत्री ब्राह्मणाय, 'देवो याति सविता सुरत्न' इति त्रिष्टुभ क्षत्रियाय, 'युजते मन' इति जगती वैश्याय पच्छोधचश सर्वामन्तत ।४३। पालाश दण्ड ब्राह्मणाय प्रयच्छति नैयग्रोध क्षत्रियाय आश्वत्थ वैश्याय ।४४। सुश्रव सुश्रवस मा कुरु यथा त्व सुश्रव सुश्रवा अस्येवमह सुश्रव सुश्रवा भूयास ।४५। यथा त्व देवाना वेदस्य निधिगोपोस्येवमह मनुष्याणा ब्रह्मणो निधिगोपो भूयासमिति दण्ड प्रतिगृह्णाति ।४६। ऊर्ध्वकपालो ब्राह्मणस्य कमण्डलु परिमण्डल क्षत्रियस्य निचलकलो वैश्यस्य ।४७।

'कालाय वा०' इत्यादि मन्त्र बोलकर अजलि मे जल ले और 'सुकृताय०' मन्त्र कहकर दोनो हाथो को धोवे। 'इदमह०' मन्त्र पढकर आचमन करके कुल्ला करे और 'भ्रातृव्याणा' मन्त्र से दूसरी बार आचमन करे। फिर 'प्रातर्जित०' मन्त्र बोलकर सूर्य का उपस्थान करे। तत्पश्चात् कुमार 'ब्रह्मचर्य' मन्त्र को बोले और आचार्य 'एहि ब्रह्मोपेहि०' इत्यादि पढे। आचार्य बालक के अभिवादनीय नाम को लेकर 'देवस्य त्वेति०' मन्त्र को पढते हुये बालक के दाहिने हाथ को पकडे और बालक का नाम बोले। उस समय बालक का मुँह पूर्व की ओर और आचार्य का पश्चिम की ओर रहे। शिष्य बैठा हो, आचार्य

खडे हो। शिष्य का हाथ नीचे की तरफ खाली हो। ऐसे शिष्य के हाथ को किसी माङ्गलिक पदार्थ के साथ आचार्य पकडे और 'ममेवान्वतु०' मत्र पढे। शिष्य आचार्य की ओर देखता रहे और आचार्य शिष्य को देखे। आचार्य अपना दायाँ हाथ कन्धे पर से ले जाते हुये उसके हृदय को स्पर्श करे और 'प्राणाना०' मन्त्र को उच्चा-करे। 'ब्राह्मणो०' मन्त्र पढकर उसकी नाभि को छुये और 'गणाना०' इत्यादि मन्त्र से अग्नि की परिक्रमा क्रम से करावे। फिर आचार्य होमाग्नि के पश्चिम ओर कुशासन पर बैठे और शिष्य को अपनी दाहिनी तरफ बैठावे। शिष्य बैठकर 'अधीहि भो०' मन्त्र को पढे और दायाँ जानु भूमि पर टेक कर दोनो हाथ इकट्ठा कर, कुश लेकर 'ॐ' का उच्चारण करे और व्याहृतियो के सहित सावित्री को पढे। इसी प्रकार 'कण्डानुवचन' क्रम से कहे। ब्राह्मण के लिये 'तत्सवितुर्वरेण्यम्०' इत्यादि गायत्री मन्त्र दे, क्षत्रिय को 'देवोयाति०' त्रिष्टुभ मन्त्र दे और वैश्य को जगती छन्द 'युञ्जते मन०' को बताये। यह इस प्रकार करे कि पहले एक-एक पद कहलाये, फिर आधी ऋचा कहलाये और अन्त मे पूरा मन्त्र बुलवाये। तत्पश्चात् ब्राह्मण को पलाश का दण्ड, क्षत्रिय के लिये वट वृक्ष का और वैश्य को पीपल का दण्ड दे। उस समय 'सुश्राव ०' मन्त्र का उच्चारण करे ब्राह्मण का दण्ड केशो तक ऊँचा, क्षत्रिय का मस्तक तक और वैश्य का नासिका तक ऊँचा होना चाहिये ॥२५-४७॥

'इमा आप प्रभराम्ययक्ष्माय यक्ष्मचातनी ।४८। ऋतेनाप प्रभराम्यमृतेन महायुषा' ।४९। इति 'प्रतिगृह्णा' मीति प्रतिगृह्य भैक्ष्यचर्य चरेत् ।५०। 'ॐ भवति भिक्षा देही' ति ब्राह्मण ।५१। 'भवतिमध्या' क्षत्रिय ।५२। भवत्यन्ता वैश्य ।५३। चतस्रष्षडष्टौ वाऽविधवा अप्रत्याख्यायिन्यो मातर प्रथममेके ।५४। गुरवे निवेद्य वाग्यत. प्राग्ग्रामात् सन्ध्यामुपास्ते ।५५। तिष्ठन् पूर्वां

सावित्री त्रिरधीत्य 'अध्वनामध्वपते श्रैष्ठ्य स्वस्त्य-स्याध्वन पारमशीय' ।५६। तच्चक्षुर्देवहित पुरस्ताच्छु-क्रमुच्चरत् ।५७। पश्येम शरद शत जीवेम शरद शत श्रृणुवाम शरद शतम् ।५८। प्रब्रवाम शरद शत अदीना स्याम शरद शतम् ।५९। भूयश्च शरद शतात् ।६०। या मेधा अप्सरस्सु गन्धर्वेषु च यन्मन ।६१। दैवी या मानुषी मेधा सा मा माविशतामिहैवे' ति प्रत्येत्याग्नि परिचरेत् ।६२। इम स्तोममर्हत इति परिसमूहेत् ।६३। एधोस्येधिषीमही' ति समिधमादधाति ।६४। समिदसि समेधिषीमही' ति द्वितीयम् । 'आपो अद्यान्वचारिषमि' त्युपतिष्ठते ।६५। 'मा ससृज वर्चसेति' मुख परिमृजीत 'यदग्ने तपसा तपो ब्रह्मचर्यमुपेयममि ।६६। प्रिया श्रुतस्य भूयासमायुष्मन्त सुमेधस ।६७। अग्ने समिधमहारिष बृहते जातवेदसे ।६८। स मे श्रद्धा च मेधा च जातवेदा प्रयच्छतु स्वाहे' ति समिधमादधाति ।६९। तेजसा मा समङ्ग्धि वचसा मा समङ्ग्धि ब्रह्मवर्चसेन मा सम-ङ्ग्धि' इति मुख परिमृजीत ।७०। आयुर्दा अग्नेऽसी' ति च यथारूप गात्राणि समृशति 'इह धृतिरिति' पर्याये असग्रीवाश्च त्रिरालभ्य 'ऋच नो धेही' ति ललाटम-भिमृशेत् ।७१। आद्यन्तयो पर्युक्षणम् । गुरवे ब्रह्मणे च वरमुत्तरासङ्ग च ददाति ।७२। द्वादशरात्रमक्षारलवण-माशेदक्षारमेके ।७३। व्युष्टे द्वादशरात्रे षड्रात्रे वा ग्रामा-त्प्राची वोदीची वा दिशमुपनिष्क्रम्य पश्चात्पालाशस्य यज्ञियस्य वा वृक्षस्य सावित्रेण स्थालीपाकेनेष्ट्वा जय-प्रभृतिभ्यश्चाज्यस्य पुरस्तात्स्विष्टकृतो मेखला दण्ड चाप्सु प्रास्येत् ।७४। तत्रैव हविश्शेष भु जोतेति श्रुति ।७५।

"इमा आप ०" मन्त्र पढ कर जल अपने शरीर पर छिडके और भिक्षा माँगे । इसके लिये ब्राह्मण बालक कहे–"ॐ भवति भिक्षाँ देहि०" क्षत्रिय कहे–'भिक्षाँ भवति देहि०" । वैश्य कहे "भिक्षा देहि भवति ।" चार, छ या आठ सधवा स्त्रियो से भिक्षा मागे–परन्तु स्त्रियाँ ऐसी हो जो भिक्षा माँगने पर इनकार न करे । कुछ आचार्यों का मत है कि पहले अपनी माता से ही भिक्षा मागे । भिक्षा लाकर गुरु के सामने रख दे और आश्रम के पूर्व भाग मे चुपचाप खडा रहे । सन्ध्योपासन करे और प्रात काल तीन बार सावित्री का जप करके "अध्वनाम०" मन्त्र पढ कर अग्नि मे समिधा डाले । "इम ०" मन्त्र से परिसमूहन करे और "एधोस्येधि०" मन्त्र से अग्नि मे प्रथम समिधा डाल कर "समिदसि०" मन्त्र पढ कर दूसरी डाले । "आपो अद्यान्व०" मन्त्र से उपस्थान करे । "मा म सृज०" मन्त्र बोल कर अपने मुख पर हाथ फेर कर मार्जन करे । "यदग्ने०" से 'स्वाहा' तक पढ कर समिधा डाले और "तेजसा०" पढ कर मुख का मार्जन करे । "आयुर्दा०" पढ कर शरीर के सब अगो को स्पर्श करे और "श्रृ च०" से ललाट का स्पर्श करे । आरम्भ और समाप्ति पर जल छिडके । गुरु और ब्राह्मण को दक्षिणा देवे । बारह रात्रि तक बिना नमक का भोजन करे । फिर तेरहवे दिन अथवा छठवे दिन गाँव के पूर्व या उत्तर दिशा मे जाकर पलाश या अन्य किसी यज्ञीय वृक्ष के पश्चिम भाग मे सावित्री स्थालीपाक से यज्ञ करे । "जय" प्रभृति मन्त्रो से आज्य की आहुति दे और स्विष्टकृत की आहुति कर मेखला और दण्ड को जल मे छोड दे और उसी स्थान पर हवि का बचा हुआ अश खाजाय ।।४८–७५।।

षष्ठ खण्ड

उपनयनप्रभृति व्रतचारी स्यात् ।१। उपनयने व्रतादेशा व्याख्याता ।२। मार्गवासा ।३। सहतकेश ।४। भैक्षाचर्यावृत्ति ।५। सशल्कदण्ड ।६। सप्तमौञ्जी मेखला धारयेत् ।७। आचार्यस्या प्रतिकूल सर्वकारी ।८। यदेनमुपेयात् तदस्मै दद्यात् ।९। बहूना येन सयुक्त ।१०। नास्य शय्यामाविशेत् ।११। न रथमारोहेत् ।१२। न सविशेत् ।१३। न विहारार्थो जल्पेत् ।१४। न रुच्यर्थ कचन धारयेत् ।१५। सर्वाणि सास्पशकानि स्त्रीभ्यो वर्जयेत् ।१६। न स्नायाद्दण्डवत् ।१७। नोदकमभ्युपेयात् ।१८। न दिवा स्वपेत् ।१९। त्रैविद्यक ब्रह्मचय चरेत् ।२०। इन्द्रिय सयत ।२१। साय प्रातर्भैक्षाचर्यवृत्ति ।२२। साय प्रातरग्नि परिचरेत् ।२३। अध शय्या ।२४।आचार्याधीनवृत्ति ।२५। तन्निसर्गादशनम् ।२६। अयाचितमलवणम् ।२७। वाग्यतोऽश्नीयात् ।२८। आच्छिन्नवस्त्रा विवृता स्त्रिय न पश्येत् ।२९–३०। यौपस्य वृक्षस्य दण्डी स्यात् ।३१। नानेन प्रहरेद्गवे न ब्राह्मणाय ।३२। न नृत्यगीते गच्छेत् ।३३। न चैने कुर्यात् ।३४। नावलिखेत् ।३५। शिखाजट सवजटो वा स्यात् ।३६। शाण क्षौममजिन वास ।३७। रक्त वसनम् ।३८। कम्बलमैणेय ब्राह्मणस्य ।३९। रौरव क्षत्रियस्य ।४०। आज वैश्यस्य ।४१। एतेन धर्मण द्वादशवर्षाण्येकवेदे ब्रह्मचर्य चरेत् ।४२। चतुर्विशति द्वयो षट्त्रिशन्त्रयाणाम् ।४३। अष्टचत्वारिशत्सर्वेषाम् ।४४। यावद्ग्रहण वा ।४५। मलज्ञु वेल कृश स्नात्वा स सर्व लभेत यत्किंचिन्मनसेप्सितम् ।४६। इत्येतेन धर्मेण साध्वधीतो ।४७। मन्त्रब्राह्मणान्य धीत्य कल्प मीमासा च याज्ञिकोऽधीत्य वक्त्र पद स्मृति

चैच्छिक ।४८। तौ स्नातकौ श्रोत्रियोन्यो वेदपाठी ।४६।
न तस्य स्नान उपविश्या चमन विधीयते ।५०। अन्त-
र्जानु बाहू कृत्वा त्रिराचामेत् ।५१। द्वि परिमृजेत् ।५२।
खानि चोपस्पृशेच्छीर्षण्यानि ।५३।

उपनयन स स्कार होने के पश्चात् निम्न नियमो का पालन करने वाला "ब्रह्मचारी" कहा जाता है। (इस सम्बन्ध मे विशिष्ट नियमो और आदेशो का वर्णन पिछले खण्ड मे कर दिया गया हैं।) दुपट्टा (उत्तरीय) के स्थान मे मृग चर्म ओढे, बाल सब रखे पर बिल्कुल मुडा दे। भिक्षा माँग कर या आचार्य से भोजन रूप जीविका प्राप्त करे। बक्कल सहित दण्ड धारण करे। सात गाँठो की मूँज-मेखला कमर मे धारण करे। आचार्य की आज्ञा से ही सब काम करे। धन और जो कुछ वस्तु ब्रह्मचारी को मिले वह सब आचार्य को देवे। उनके बिस्तर पर आगे या पीछे कभी न बैठे। गुरु के समान सूत आदि के अच्छे वस्त्र प्रयोग मे न लावे। रथ, घोडा, हाथी आदि पर अधिक सवारी न करे। काम–भोग विषयक चर्चा अथवा धन आदि कमाने की चर्चा न करे न सुने। अपनी शोभा बढाने को इतर, चन्दन, पुष्प-माला आदि का व्यवहार न करे। स्त्री सम्बन्धी शृ गार रस का काव्य सुनना, स्त्री के अ गो को ध्यान देकर देखना, छूना, खुजलाना, उबटन करना आदि कभी न करे। जब स्नान करे तो शरीर को उबटन आदिलगा कर मल मल कर न धोवे, वरन् लकडी के समान जल पर तैरता रहे। नित्य विशेष रूप से स्नान न करे। जलाशय मे घुस कर स्नान न करे वरन् किनारे पर बैठ कर ही आचमनादि क्रिया कर लेवे। दिन मे सोवे नही। तीनो वेद पढने तक ब्रह्मचर्य पालन करे। इन्द्रियो का दमन करता रहे। साय और प्रात काल भिक्षावृत्ति से भोजन करे। दोनो समय अग्निहोत्र भी करे। भूमि पर शयन करे। बिना माँगे पदाथ और लवण रहित भोजन मौन होकर करे। आचार्य की आज्ञा का पालन करे। गुरु से आज्ञा लेकर भोजन करे। वस्त्र रहित स्त्री को न देखे।

यज्ञिय वृक्ष का दण्ड धारण करे । नाच और गाने को देखने-सुनने न जावे और न स्वय नाचे गावे । भूमि पर न खावे, किसी पदार्थ से न लिखे । केवल शिखा मात्र रखे या सम्पूर्ण शिर मे जटा रखे । शण, रेशम, मृगचर्म का वस्त्र व्यवहार करे । लाल रग का वस्त्र काम मे लावे । ब्राह्मण ब्रह्मचारी मृगछाला का कम्बल रखे । क्षत्रिय रुरु मृग का चर्म काम मे लावे और वैश्य बकरे के ऊन का कम्बल रखे । इन नियमो से बारह वष तक एक वेद पढने मे सलग्न हुआ ब्रह्मचय पालन करे । चौबीस वष तक दो वेदो का, छत्तीस वर्ष तक तीन वेदो और अडतालीस वर्ष तक चारो वेदो का अध्ययन करता हुआ ब्रह्मचर्य का पालन करे । अथवा जब तक वेदो को पढता रहे तब तक उक्त नियमो का पालन करे । जो ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता है और मलिन शरीर निर्बल दुबला-पतला, कृश हुआ समावर्तन स्नान करता है वह जो कुछ मन मे चाहता है वही सब प्राप्त कर लेता है । इस तरह के नियमो से जो कुछ पढता है, वह पढना सफल होता है । वेद के मत्र भाग (सहिता) और ब्राह्मण भागो को पढने के पश्चात् कल्पसूत्र, पूर्व-मीमासा को पढ़े । व्याकरण और धर्मशास्त्र का पढना इच्छा पर निर्भर है । ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते है—एक नैष्ठिक और दूसरा वेद पढ लेने पर समावर्तन करने वाला । इनमे से नैष्ठिक ब्रह्मचारी आजीवन ब्रह्मचर्य ब्रत धारण करने वाला होने से उसे समावतन स्नान न करना चाहिये । नैष्ठिक ब्रह्मचारी आचमन करे । दोनो जाघो के बीच दोनो हाथ रख कर प्रति दिन तीन बार आचमन करे, दो बार शरीर का मार्जन करे और शिर मे स्थित ज्ञानेन्द्रियो का स्पर्श करे ।।१–५३।।

सप्तम खण्ड

'वर्षासु श्रवणेन स्वाध्यायानुपाकरोति' हस्तेन वा ।१। प्रौष्ठपदीमित्येके ।२। स जुहोति ।३। 'अप्वानामासि तस्यास्ते जोष्ट्री गमेयम् ।४। अहमिद्धि पितु परिमेधा अमृतस्य जग्रभ । अह सूय इवाजनि स्वाहा ।५। सरस्वती नामासि सरस्वान्नामासि युक्तिर्नामासि योगो नामासि मतिर्नामासि ।६। तस्यास्ते जोष्ट्री गमेयम् । तस्यते जोष्ट्र गमेयम् ।' ।७। इति सर्वत्रानुषजति ।८। युजे स्वाहा ।९। प्रयुजे स्वाहा ।१०। सयुजे स्वाहा ।११। उद्यु जे स्वाहा ।१२। उद्यु ज्यमानाय स्वाहा'-- इति जयप्रभृतिभिश्चाज्यस्य पुरस्तात् स्विष्टकृतोऽन्तेवासिना योगमिच्छन्नथ जपति ।१३। ऋत वदिष्यामि सत्य वदिष्यामि ब्रह्म वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तार वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरायुर्मयि धेहि वेदस्य वाणीस्थ उपतिष्ठन्तु छन्दास्युपाकुर्महेऽध्यायान् भूर्भुवः स्वरि' ति दर्भपाणि त्रिस्सावित्रीमधीत्यादितस्त्रीननुवाकान् तथाङ्गानामेकैक 'को वो युनक्ती' ति च ।१४।

तस्यानध्याया ।१५। समूहनवातो वलीकक्षारप्रभृतिवर्षा विद्योतमानस्तनयित्नुरिति' श्रुति ।१६। आकालिक देवनुमुल विद्युद्धन्वोल्कास्यक्षराश्शब्दा ।१७। आचारेणान्येऽधपञ्चमासानधीत्य ।१८। 'पञ्चार्धषष्ठान्वा' दक्षिणायन वाधीत्य अथोत्सृजन्ति ।१९। एतेन धर्मेण 'ऋतमवादिष सत्यमवादिषम् ।२०। ब्रह्मावादि-

षम् ।२१। तन्मावीत् तद्वक्तारमावीत् आवीन्ममावीत्त-
द्वक्तारम् ।२२। वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता ।२३। मनो मे
वाचि प्रतिष्ठितमाविरायुर्मयि धेहि ।२४। वेदस्य वाणी-
स्थ प्रतिश्वसन्तु छन्दास्युत्सृजामहेऽध्ययान् भूर्भुव-
स्वरि' त्यन्तमधीत्य 'को वो विमुञ्चती' ति च पक्षिणी
रात्रि नाधीयीतोभयत पक्षान्वा नात ऊर्ध्वं' अभ्रेषु ।
आकालिकविद्युत्स्तनयित्नुवर्षेषु । चाथोपनिषदर्हा ।२५।
ब्रह्मचारी सुचरितमेधावी कर्मकृद्धनद प्रियो विद्यया
वा विद्यामन्विच्छुस्तानि तीर्थानि ब्रह्मणो वेदस्य
ब्रह्मचारित्वादय ग्रहणे तीर्थान्युपाया ।२६।

वर्षाऋतु मे श्रवण नक्षत्र से उस दिन स्वाध्याय का उपाकरण नामक कर्म करे। अथवा भाद्रमास की किसी तिथि के पूर्वान्ह मे हस्त-नक्षत्र हो उसी दिन उपाकरण करे। वह वेदाध्ययन या ब्रह्मयज्ञ का करके वाला 'अप्वा नामासि' इत्यादि मत्रो से आठ आहुति होमे और आज्यभाग आहुतियो के पश्चात् दे। सरस्वती आदि छ खण्डो मे जो २ स्त्रीलिङ्ग है उनके साथ "तस्यास्ते" लगावे और "सरस्वान्नामा०" आदि पु नपुसक लिङ्गो मे "तस्यतेजो०" इत्यादि लगा कर सब के अन्त मे स्वाहा लगावे। फिर सहपाठियो को चाहता हुआ स्नातक "युजे स्वाहा०" इत्यादि तीन मत्रो से होम करे। फिर "स्विष्टकृत्" आहुति से पूर्व "ऋत वहिष्यामि०" इत्यादि मत्रो को जप करे। फिर दाहिने हाथ मे कुश लेकर तीन वार गायत्री मत्र पढे और "इषेत्वा०" इत्यादि तीन अनुवाक भी पढे। पश्चात् "को वोयु ०" इत्यादि मत्र पढ़े। अब वेदादि पढने मे अनध्यायो को बताते है कि उन उन अवसरो पर अन-ध्याय होगे—आधी आने पर, छज्जे से पानी टपकने पर, बिजली चमकने और बादल गरजने पर भी जब चमके या गर्जे तब तक स्वाध्याय न करे। ज्योतिषशास्त्र मे लिखे अनुसार ग्रहो मे परस्पर युद्ध हो तब तक न पढ़े। बिजली, इन्द्रधनुष, तारे टूटने, शृगाल आदि के कुसमय रोने तथा

सामवेद की ध्वनि होने पर अन्य वेद का पाठ न करे । साढे चार, साढे पाँच, छः मास अथवा दक्षिणायन काल तक पढ कर फिर बन्द रखे । यह वेदाध्यायोन्सर्ग कर्म कहा गया है । इसमे 'ऋतमवादि०' इत्यादि मत्र का जप करना चाहिए । ब्रह्मचारी, सदाचारी बुद्धिमान्, आचार्य को प्रिय, धन देने वाला, विद्या देने वाला, वेदादि पढाने मे निपुण, विद्या के बदले विद्या देनेवाला, ये सात वेद के ज्ञान प्राप्ति मे उपाय रूप है ॥१–२६॥

अष्टम खण्ड

अथ चातुर्होत्रिकी दीक्षा सम्वत्सरम् ।१। आघारावाघारार्ज्यभागौ हुत्वा चतुर्होतॄन् स्वकर्मणो जुहुयात् ।२। सहपञ्चहोत्रा षड्होत्रा सप्तहोतारमन्ततो हुत्वा व्रत प्रदायादितो द्वावनुवाकावनुवाचयेत् ।३। अथाग्निव्रताश्वमेधिकी दीक्षा सवत्सरम् । द्वादशरात्र वा ।४। आकूतमग्निमि' ति षडहुत्वा ।५। व्रत प्रदायादितोऽष्टावनुवाकाननुवाचयेत् ।६। त्रिषवणमुदकमाहरेत् ।७। त्रीस्त्रीन् कुम्भास्त्रीश्च समित्फलान् भस्मन शयीत ।८। करीषे सिकतासु भूम वा । नोदकमभ्युपेयात् ।९। सवत्सरे समाप्ते ।१०। घृतवतापूपेनाग्निमिष्ट्वा वात्सप्र वाचयेत् ।११। स्मार्तेन यावदध्ययनम् ।१२। काण्डव्रतावशेषो होमाथश्च आद्यन्तयोर्जुहुयात् ।१३। अथैन परिदत्ते 'अग्नये त्वा परिददामि ।१४। वायवे त्वा परिददामि ।१५। सूर्याय त्वा परिददामि ।१६। प्रजापतये त्वा परिददामी' ति ।१७। एतेनैवाश्वमेधो व्याख्यात ।१८। नवमेनानुवाकेन हुत्वा दशमेनोपतिष्ठेत ।१९। अश्वाय घासमुदकस्थान उदक चाभ्युपेयात् ।२०। एताभ्यामेव मन्त्राभ्या त्रैविद्यक व्रतमुपेयात् ।२१।

रहस्यम०्येग्यृत प्रवर्ग्य ।२२। तस्य व्रतोपायन समिन्मन्त्रश्च ।२३। तिष्ठेदहनि रात्रावासीन वाग्यत ।२४। पवसु चव स्यात् ।२५। सर्वजटश्च स्यात् । ६। सवत्सरा-द्रूर प्रवर्ग्यो भवति ।२७।

अब चातु र्त्रिकी दीक्षा के विषय मे कहेगे । ब्रह्मचारी इस दीक्षा को एक वष तक करे । आधार की दो आहुतिया देकर आज्य भाग की दो आहुतियाँ दे । वाचस्पति आदि देवो की स ज्ञा चतुर्होता आदि सज्ञा है । ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह दीक्षा काल मे अपना कम करता हुआ वाचस्पति आदि चार होताओ के लिए आहुतियाँ दिया करे और वाक् आदि छ होताओ के साथ सप्तहोतृक होम किया करे । अन्त म दीक्षित को भोजन के लिये दुग्धादि वस्तु दकर वेद के आरम्भिक दो अनुवाको का अनुवाचन कराव । अब एक वर्ष की अग्नि की दीक्षा को कहते है। यह १ वर्ष या १२ दिन की भी होती है।"प्राकृतमग्नि०"इत्यादि मत्र स छ आहुति दे और अग्निकाण्ड के आदि ए आठ अनुवाको का अनुवाचन करावे । कुछ विशेष नियम ये है मध्याह्न और साय तीनो समय तीन २ घडा भर कर जलाशय से जल लावे । साथ ही तीन २ समिधा और तीन २ फल भी लाया करे। नित्य ही शून्य भूमि पर या जिस पर भस्म या कण्डो का चूरा बिछा हो अथवा बालू बिछा हो उस पर केवल लगोटी या धोती अर्थात् एक ही वस्त्र पहन कर सोया करे । दीक्षा के दिनो म जल मे घुस कर या अन्य प्रकार से स्नान न करे । नियत अवधि तक व्रत समाप्त होने पर मालपूआ द्वारा प्रधान देव अग्नि के लिये होम करके "वत्स्त्री०" देवता वाले अनुवाक् को जपे, और जब तक अध्ययन करे स्मार्त्त विधि से रहे । काण्ड व्रत विशेष और होम की विधि यह है कि व्रत और होम के आदि और अन्त मे आहुतियाँ दे । फिर आचार्य ब्रह्मचारी को सकेत कर अग्नि आदि देवो को "अग्नये०" इत्यादि मत्रो से समर्पण करे । इसी प्रकार अश्वमेध के विषय मे भी समझो । बेत वृक्ष की समिधाओ से अग्नि को प्रज्वलित करे । फिर नवम अनुवाक् से होम और छठे अनुवाक् से देवता का

उपस्थान् करे। तदनन्तर दीक्षित को भोजन के लिये नियत यवागू देकर आदि से २१ अनुवाको का अनुवाचन करे। प्रात मध्यान्ह और साय तीनो काल मे तीन २ पूला घास घोडे के लिये लावे। यह आश्व-मेधिकी दीक्षा केवल क्षत्रिय ब्रह्मचारी के लिये ही है। इसलिये क्षत्रिय ब्रह्मचारी देव बुद्धि से घोडे की सेवा भी अपने अन्य नियमो को पालने के समान ही किया करे। जल के किनारे जाय किन्तु जल मे न घुस कर बाहर से ही जल लेकर घोडे की सेवा करे। इन्ही दो मन्त्रो से त्रैविधिक व्रत को करना चाहिए। वेद के उपनिपद भाग को पढने की इच्छा हो तो वाराह श्रौतसूत्र मे लिखे अनुमार ब्रह्मचारी प्रवर्ग्य सम्भरण कर्म के प्रतिपादक मन्त्र ब्राह्मण को प्रथम पढना चाहिये। दिन का समय खडा रह कर व्यतीत करे और रात्रि मे मौन होकर बैठे। पर्व के दिनो मे भी ऐसा ही आचरण रखे। यदि सम्पूर्ण शिर मे केश रखे तो एक वर्ष के पश्चात् श्रेष्ठ प्रवर्ग्य हो जाता है ॥१-२७॥

———

नवम खण्ड

षोडशवर्षस्य गोदानम् ।१। अग्नि वाऽध्येष्यमाणस्य अग्निगोदानिको मैत्रायणीयजटाकरणेनोक्तमन्त्र-विधि ।२। उपस्थ उपकक्षयोश्चाधिको मन्त्रप्रयोग ।३। यत्क्षुरेण मर्चयते' ति भूमौ केशान्निखनेत् ।४। अन्ते गा दद्यात् ।५। द्वे द्वे गुरुणाऽनुज्ञान स्नायात् ।६। छन्दस्यर्थान् बुध्वा स्नास्यन् गा कारयेत् ।७। आचार्य-मर्हयेत् ।८। 'आपो हिष्ठे' ति तिसृभि 'हिरण्यवर्णा शुचय' इति चतसृभि स्नात्वा अहते वाससी परिददाति ।९। वस्व्यसि वसुमन्त मा कुरु ।१०। सौवचसाय मा तेजसे ब्रह्मवर्चसाय परिददामी' ति, 'विश्वजनस्य छायासी' ति छत्र धारयते ।११। मालामावध्नीते 'यामश्विनौ धारयेता बृहस्पति पुष्करस्रजम् । २। ता विश्वे देवैरनुमता मालामारोपयामी' ति ।१३।

'तेजोसीति हिरण्य बिभृयात् ।१४। प्रतिष्ठे स्थो देवते द्यावापृथिवी मा मा सताप्ति' त्युपानहौ ।१५। 'विष्ट म्भोसी' ति धारयेद्वैणवी यष्टि सोदक च कमण्डलुम् ।१६। नित्यव्रतान्याहुराचार्या 'द्विवस्त्रोन ऊर्ध्व शोभन वासो भर्तव्यमि' ति श्रुति ।१७। आमन्त्र्य गुरून् गुरु वधूश्च स्वान् गृहान् व्रजेत् ।१८। प्रतिषिद्धमपरया द्वारा निस्सरण मलवद्वाससा सह सभाषा रजस्वद्वाससा सह शय्यागोगुर्वोर्दुरुक्तवचनमस्थाने शयन स्मयन स्थान यान गान स्मरणमिति तानि वर्जयेत् ।१९। याजन वृत्तिरुञ्छशिलमयाचितप्रतिग्रह माधुभ्यो वा याचित-मनायासेन सिध्यमानाया वा वैश्यवृत्ति ।२०। स्वाध्याय-विरोधिनोऽर्थान्विसृजेत् ॥२१॥

जन्म से सोलहवे वर्ष मे गोदान नामक सस्कार करे। श्रुति मे लिखा है कि महर्षि मैत्रायणि ने अग्नि स्थापन के समय गोदान सस्कार किया था। 'यत् क्षुरेण' इत्यादि मन्त्र पढकर केशो को काटकर भूमि मे गाड़े और अन्त मे आचार्य को दो दो गौये दे। फिर गुरु की आज्ञा से समावर्तन स्नान करे। वेदो के अर्थ को भली भाँति समझ कर समावतन स्नान करता हुआ गौ से आचार्य की पूजा करे। 'आपो हिष्ठा०' इत्यादि तीन और 'हिरण्यवर्णा०' इत्यादि चार ऋचाओं से स्नान करने पर स्नातक को नवीन वस्त्र दे। और 'वस्व्यसि' इत्यादि मन्त्र पढ़े। 'विश्व-जनस्य०' मन्त्र से छाता तथा 'या मश्विनौ०' मन्त्र पढ कर माला-धारण करे। 'तेजोसि०' मन्त्र से सुवर्ण धारण करे और प्रतिष्ठे 'स्थोदेवते०' इत्यादि मन्त्र से जूते पहने। 'विष्टम्भोसि०' इत्यादि मन्त्र से लाठी और जल सहित कमण्डलु को धारण करे। अब स्नातक के गृहस्थ के लिये कुछ नियमो को कहते है। यज्ञ कराना, और बिना माँगे धन स्वीकार करना। या आसानी से सिद्ध होने वाली वैश्य वृत्ति से जीविका करे तथा स्वाध्याय के विरुद्ध का कार्यो त्याग करे।१-२१।